ऋग्वेदभाष्यम्

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मितम्

संस्कृतार्य्यभाषाभ्यां समन्वितम् ।

अस्यैकैकाङ्कस्य प्रतिमासं मूल्यम् भारतवर्षान्तर्गतदेशान्तर प्रापणमूल्येन सहितं ।=) अङ्कद्वयस्यैकीकृतस्य ॥=)
वार्षिकं मूल्यम् ८)

इस अंक के प्रतिमास एक एक अंक का मूल्य भारतखंड के भीतर डांक महसूल सहित ।=) एक साथ छपे हुए दो अंकों के ॥=)
और वार्षिक मूल्य ८)

यस्य सज्जनमहाशयस्यास्य ग्रन्थस्य जिघृक्षा भवेत् स प्रयागनगरे वैदिकयन्त्रालयप्रबन्धकर्तुः समीपे वार्षिकमूल्यप्रेषणेन प्रतिमासं मुद्रितावङ्कौ प्राप्स्यति ॥

जिस सज्जन महाशय को इस ग्रन्थ के लेने की इच्छा हो वह प्रयाग नगर में वैदिकयन्त्रालयमेनेजर के समीप वार्षिक मूल्य भेजने से प्रतिमास के छपे हुए दोनों अंकों को प्राप्त कर सकता है ।

पुस्तक (१४४, १४५) अंक (१२८ [illegible])

अयं ग्रन्थः प्रयागनगरे वैदिकयन्त्रालये मुद्रितः

संवत् १९४१ माघ शुक्लपक्ष

वेदभाष्यसम्बन्धी विशेषनियम ॥

[१] यह «ऋग्वेदभाष्य» मासिक छपता है। एक मास में बत्तीस २ पृष्ठ के एक साथ छपे हुए दो अङ्क १ वर्ष में २४ अङ्क «ऋग्वेदभाष्य» के भेजे जाते हैं॥

[२] वेदभाष्य का मूल्य बाहर और नगर के ग्राहकों से एक ही लिया जायगा अर्थात् डाकव्यय से कुछ न्यूनाधिक न होगा॥

[३] इस वर्त्तमान बारहवें वर्ष के कि जो ११४—११५ अङ्क से प्रारंभ होकर १२६। १२७ पर पूरा होगा। वार्षिक मूल्य ८) रु० हैं।

[४] पीछे के ग्यारह वर्ष में जो वेदभाष्य छप चुका है उस का मूल्य यह है:—

[क] «ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका» विना जिल्द की ३)

स्वर्णाक्षरयुक्त जिल्द की ३॥)

[ख] ११३ अङ्क तक ३७॥⁄)

[५] वेदभाष्य का अङ्क प्रत्येक मास की पहिली तारीख को डाक में डाला जाता है। जो किसी का अङ्क डाक की भूल से न पहुंचे तो इस के उत्तरदाता प्रबंधकर्त्ता न होंगे। परन्तु दूसरे मास के अङ्क भेजने से प्रथम जो ग्राहक अङ्क न पहुंचने की [illegible] बता देंगे तो उन को विना दाम दूसरा अङ्क भेज दिया जायगा इस अवधि के व्यतीत हुए पीछे अङ्क दाम देने से मिलेंगे एक अङ्क ।⁄) दो अङ्क ॥⁄) तीन अङ्क १) देने से मिलेंगे॥

[६] दाम जिस को जिस प्रकार से सुबीता हो भेजे परन्तु मनी आर्डर द्वारा भेजना ठीक होगा। टिकट डाक के अधन्नी वाले लिये जा सकते हैं परन्तु एक रुपये पीछे आध आना बट्टे का अधिक लिया जायगा। टिकट आदि मूल्यवान् वस्तु रजिस्टरी पत्री में भेजना चाहिये॥

[७] जो लोग पुस्तक लेने से अनिच्छुक हों, वे अपनी ओर जितना रुपया हो भेज दें [illegible] पुस्तक के न लेने से प्रबन्धकर्त्ता को सूचित कर दें जबतक ग्राहक का पत्र [illegible] तबतक पुस्तक बराबर भेजा जायगा और दाम लेलिये जायेंगे।

[८] [illegible] ये पुस्तक पीछे नहीं लिये जायंगे॥

[९] जो ग्राहक एक स्थान से दूसरे स्थान में जायं वे अपने पुराने और नये पते से प्रबन्धकर्त्ता को सूचित करें। जिस में पुस्तक ठीक ठीक पहुंचता रहे॥

[१] «वेदभाष्य» सम्बन्धी रुपया, और पत्र प्रबन्धकर्त्ता वैदिकयन्त्रालय प्रयाग (इलाहाबाद) के नाम से भेजें॥

ओ३म्

अथ ऋग्वेदे तृतीयाष्टकारम्भः ॥

—:०*०:०*०:०*०:—

ओ३म् विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑सुव ।
य॒द्भ॒द्रं तन्न॒ आ सु॑व ॥ १ ॥

अथैकादशर्चस्य सप्तमस्य सूक्तस्य विश्वामित्र ऋषिः । अग्नि-
र्देवता । १ । ६ । ९ । १० त्रिष्टुप् । २ । ३ । ४ । ५ । ७
निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । ८ स्वराट् पङ्क्तिः ।
११ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥
अथ विद्वद्गुणवर्णनमाह ॥

अब तीसरे अष्टक का आरम्भ है उस के प्रथम अध्याय के पहिले सूक्त के
प्रथम मन्त्र में विद्वान् अग्नि के गुणों का वर्णन किया है ॥

प्र य आ॒रुः शि॑तिपृ॒ष्ठस्य॑ धा॒सेरा मा॒तरा॑ विविशुः
स॒प्त वाणीः॑ । प॒रि॒क्षि॒ता॑ पि॒तरा॑ सं च॑रेते॒ प्र स॑स्राते
दी॒र्घमायुः॑ प्र॒यक्षे॑ ॥ १ ॥

प्र । ये । आ॒रुः । शि॒ति॒ऽपृ॒ष्ठस्य॑ । धा॒सेः । आ । मा॒तरा॑ ।
वि॒वि॒शुः॒ । स॒प्त । वाणीः॑ । प॒रि॒ऽक्षि॒ता॑ । पि॒तरा॑ । सम् ।
च॒रे॒ते॒ इति॑ । प्र । स॒स्रा॒ते॒ऽ इति॑ । दी॒र्घम् । आयुः॑ । प्र॒ऽयक्षे॑ ॥ १ ॥

पदार्थः—(प्र) (ये) (आरुः) गच्छेयुः (शितिपृष्ठस्य)
शितिः पृष्ठं प्रश्नो यस्य तस्य (धासेः) धारकस्य (आ) (मातरा)
जलाग्नी (विविशुः) प्रविशेयुः (सप्त) (वाणीः) सप्तद्वारावकीर्णा

वाचः (परिक्षिता) सर्वतो निवसन्तौ (पितरा) पालकौ (सम्) (चरेते) (प्र) (सस्राते) प्रसरतः प्राप्नुतः (दीर्घम्) (आयुः) जीवनम् (प्रयक्षे) प्रकर्षेण यष्टुम् ॥ १ ॥

अन्वयः—ये शितिपृष्ठस्य धासेर्वह्नेः परिक्षिता मातरा पितरा प्रारुर्यौ सञ्चरेते प्रसस्राते ते दीर्घमायुः प्रयक्षे सप्त वाणीराविविशुः॥१॥

भावार्थः—यदि शरीरे विद्युद्वह्निः प्रसृतो न स्यात्तर्हि वाक् किञ्चिदपि न प्रचलेत्। तं ये ब्रह्मचर्यादिषु कर्मभिर्यथावत्सेवन्ते ते दीर्घमायुः प्राप्नुवन्ति ॥ १ ॥

पदार्थः—(ये) जो लोग (शितिपृष्ठस्य) जिस का पूंछना सूक्ष्म है (धासेः) उस धारण करने वाले विद्युत् अग्नि के सम्बन्धी (परिक्षिता) सब ओर से निवास करते हुए (पितरा) पालक (मातरा) जल और अग्नि को (प्र, आरुः) प्राप्त होवें । जो जल अग्नि दोनों को (सम्, चरेते) सम्यक् विचरते हैं तथा (प्र,सस्राते) विस्तार पूर्वक प्राप्त होते हैं वे (दीर्घम्, आयुः) बड़ी अवस्था को और (प्रयक्षे) अच्छे प्रकार यज्ञ करने के लिये (सप्त,वाणीः) सात द्वारों में फैली वाणियों को (आ,विविशुः) प्रवेश करें सब प्रकार जानें॥१॥

भावार्थः—जो शरीर में विद्युत् रूप अग्नि फैला न हो तो वाणी कुछ भी न चले उस विद्युत् अग्नि का जो ब्रह्मचर्यादि उत्तम कर्मों में यथावत् सेवन करते हैं वे बड़ी अवस्था को प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥

मनुष्यैः कीदृशी वाक् सेव्येत्याह ॥

मनुष्यों को कैसी वाणी का सेवन करना चाहिये इस वि० ॥

दिवक्षसो धेनवो वृष्णो अश्वा देवीरा तस्थौ मधुमद्वहन्तीः । ऋतस्य त्वा सदसि क्षेमयन्तं पर्येका चरति वर्त्तनिं गौः ॥ २ ॥

दिवक्षसः । धेनवः । वृष्णः । अश्वाः । देवीः । आ । तस्थौ । मधुऽमत् । वहन्तीः । ऋतस्य । त्वा । सदसि । क्षेमऽयन्तम् । परि । एका । चरति । वर्त्तनिम् । गौः ॥२॥

पदार्थः—(दिवक्षसः) दीप्तिं प्राप्य व्याप्ताः (धेनवः) वाचः (वृष्णः) बलिष्ठस्य (अश्वाः) आशुगामिनस्तुरङ्गा इव (देवीः) दिव्यस्वरूपाः (आ) (तस्थौ) समन्तात् तिष्ठति (मधुमत्) मधुराणि विज्ञानानि वर्त्तन्ते यस्मिँस्तत् (वहन्तीः) सुखं प्रापयन्त्यः (ऋतस्य) सत्यस्य (त्वा) त्वाम् (सदसि) सभायाम् (क्षेमयन्तम्) रक्षयन्तम् (परि) सर्वतः (एका) असहाया (चरति) गच्छति (वर्त्तनिम्) वर्त्तन्ते यस्मिँस्तं मार्गम् (गौः) या गच्छति सा भूमिः ॥ २ ॥

अन्वयः—हे विद्वन् या ऋतस्य सदसि दिवक्षसो वृष्णोऽश्वा-देवीर्मधुमद्वहन्तीर्धेनवो वाचः क्षेमयन्तं त्वैका गौर्वर्त्तनिं परिचरती वाऽऽतस्थौ तास्त्वं यथावद्विजानीहि ॥ २ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यथाऽसहाया पृथिवी स्वकक्षामार्गं नित्यं चलति तथैव सभ्यजनानां वाचो नियमेन मिथ्याभाषणं विहाय सत्यमार्गं गच्छन्ति य ईदृशीं वाणीं सेवन्ते न तेषां किंचिन्मू-दकुशलं जायते ॥ २ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् पुरुष जो (ऋतस्य) सत्य की (सदसि) सभा में (दिवक्षसः) प्रकाश को प्राप्त हो व्याप्त हुई (वृष्णः) बलिष्ठ पुरुष के (अश्वाः) शीघ्रगामी घोड़ों के समान (देवीः) दिव्य स्वरूप (मधुमत्) कोमल विज्ञान

वाले उस सुख को (वहन्तीः) प्राप्त कराती हुई (धेनवः) वाणी (क्षेमयन्तम्) रक्षा करते हुए (त्वा) आप को (एका) एक (गौः) अपनी कक्षा में चलने वाली भूमि (वर्त्तनिम्) मार्ग को (परि, चरति) सब ओर से चलती हुई सी (आ, तस्थौ) स्थित होती उन वाणियों को आप यथावत् जानो ॥२॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जैसे असहाय पृथिवी अपने कक्षा मार्ग में नित्य चलती है वैसे ही सभ्य जनों की वाणी नियम से मिथ्याभाषण को छोड़ सत्य मार्ग में चलती हैं जो ऐसी वाणी का सेवन करते हैं उन की कुछ भी हानि नहीं होती ॥ २ ॥

पुना राजा किं कुर्य्यादित्याह ॥

फिर राजा क्या करे इस वि० ॥

आ सीमरोहत्सुयमा भवन्तीः पतिश्चिकित्वान् रयिविद्रयीणाम् । प्र नीलपृष्ठो अतसस्य धासेस्ता अवासयत्पुरुधप्रतीकः ॥ ३ ॥

आ । सीम् । अरोहत् । सुऽयमाः । भवन्तीः । पतिः । चिकित्वान् । रयिऽवित् । रयीणाम् । प्र । नीलऽपृष्ठः । अतसस्य । धासेः । ताः । अवासयत् । पुरुधऽप्रतीकः ॥ ३ ॥

पदार्थः—(आ) (सीम्) आदित्यः (अरोहत्) रोहति (सुयमाः) (भवन्तीः) वर्त्तमानाः (पतिः) स्वामी (चिकित्वान्) ज्ञानवान् (रयिवित्) द्रव्यवेत्ता (रयीणाम्) धनानाम् (प्र) (नीलपृष्ठः) नीलो वर्णः पृष्ठे यस्य सः (अतसस्य) व्याप्तस्य (धासेः) पोषकस्य (ताः) (अवासयत्) वासयेत् (पुरुधप्रतीकः) पुरून् बहून दधाति येन तत् पुरुधं पुरुधं प्रतीतिकरं कर्म यस्य सः ॥ ३ ॥

अन्वयः—हे विद्वन् चिकित्वान् रयिविद्रयीणां पतिस्त्वं यथा पुरुधप्रतीको नीलपृष्ठः सीमादित्योऽतसस्य धासेर्या भवन्तीः सुयमाः प्रावासयदरोहच्च तथा ताः सुयमाः प्रजा आवासय ॥ ३ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यथा सूर्यः सर्वाः प्रजा उत्थाप्य वासयति तथैव राजा स्वकीयाः सुशिक्षिता रक्षिताः प्रजा भूगोलस्थेषु देशेषु वासयित्वा धनाढ्याः प्रकुर्यात् ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् (चिकित्वान्) ज्ञानी (रयिवित्) द्रव्यवेत्ता (रयीणाम्) धनों के (पतिः) स्वामी आप जैसे (पुरुधप्रतीकः) अनेकों के पोषण के वा धारण के हेतु प्रतीतिकारी कर्म वाला (नीलपृष्ठः) जिस के पिछिले भाग में नीलवर्ण है ऐसा (सीम्) सूर्य्यमण्डल (अतसस्य) व्याप्त बुद्धि (धासेः) पोषण करने वाले राजा की जो (भवन्तीः) वर्त्तमान (सुयमाः) सुन्दर नियम वाली प्रजाओं को (प्र, आ, अवासयत्) अच्छे प्रकार बास कराता और (अरोहत्) अपने काम में आरूढ़ होता है वैसे (ताः) उन सुन्दर नियम युक्त प्रजाओं को अच्छे प्रकार वास कराइये ॥ ३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे सूर्य्य सब प्रजाओं को उठा के अच्छे प्रकार वास कराता है वैसे ही राजा सुशिक्षित रक्षा की हुई प्रजाओं को भूगोल के सब देशों में वसा के धनाढ्य करे ॥ ३ ॥

पुनर्मनुष्यैः किं कार्य्यमित्याह ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस वि० ॥

महिं त्वाष्ट्रमूर्जयन्तीरजुर्य्यं स्तंभूयमानं वहतो वहन्ति । व्यङ्गेभिर्दिद्युतानः सधस्थ एकामिव रोदसी आ विवेश ॥ ४ ॥

महिं । त्वाष्ट्रम् । ऊर्जयन्तीः । अजुर्य्यम् । स्तभुऽय-मानम् । वहतः । वहन्ति । वि । अङ्गेभिः । दिद्युतानः । सध-ऽस्थे । एकाम्ऽइव । रोदसी इति । आ । विवेश ॥ ४ ॥

पदार्थः—(महि) महत् (त्वाष्ट्रम्) त्वष्टुः सूर्य्यस्येदं तेजः (ऊर्जयन्तीः) बलयन्त्यः (अजुर्यम्) जीर्णावस्थारहितम् (स्तभूयमानम्) लोकानां धारकम् (वहतः) वहनशीलः (वहन्ति) (वि) (अङ्गेभिः) विविधाङ्गैः (दिद्युतानः) देदीप्यमानः (सधस्थे) समानस्थाने (एकामिव) स्वकीयां स्त्रियमिव (रोदसीः) द्यावापृथिव्यौ (आ) (विवेश) आविशति ॥४॥

अन्वयः—हे मनुष्या यस्य सूर्यस्याजुर्य्यं महि स्तभूयमानं त्वाष्ट्रमूर्जयन्तीर्वहतो व्यङ्गेभिर्वहन्ति यो दिद्युतानः सन्नग्निःपतिः सधस्थ एकामिव रोदसी आ विवेश तं विद्युदग्निकार्य्यसिद्धये संप्रयुङ्ग्ध्वम् ॥ ४ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालं०—मनुष्यैः सर्वत्राभिव्याप्तस्य विद्युत्स्वरूपस्याग्नेर्गुणकर्मस्वभावान् विज्ञाय कार्यसिद्धिः सम्पादनीया ॥४॥

पदार्थ:—हे मनुष्यो जिस सूर्य के (अजुर्यम्) जीर्ण अवस्था से रहित (महि) बड़े (स्तभूयमानम्) लोकों के धारक (त्वाष्ट्रम्) तेज को (ऊर्जयन्तीः) बल देती हुई शक्तियों को यथा स्थान (वहतः) पहुंचाने वाले किरण (व्यङ्गेभिः) विविध प्रकार के अंगों से (वहन्ति) पहुंचाते हैं । जो (दिद्युतानः) देदीप्यमान हुआ अग्नि जैसे पति (सधस्थे) एक स्थान में (एकामिव) एक अपनी स्त्री का संग करता है वैसे (रोदसी) आकाश भूमि को (आ, विवेश) आवेश करता है उस विद्युत्रूप अग्नि को कार्य्य सिद्धि के लिये संप्रयुक्त करो ॥ ४ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालं०—मनुष्यों को चाहिये कि सर्वत्र अभिव्याप्त विद्युत् स्वरूप अग्नि के गुण कर्म स्वभावों को जान के कार्य्य सिद्धि करें ॥४॥

अथ के महात्मानो भवन्तीत्याह ॥

अब कौन महात्मा होते हैं इस वि० ॥

जानन्ति वृष्णो अरुषस्य शेवमुत ब्रध्नस्य शासने रणन्ति । दिवोरुचः सुरुचो रोचमाना इळा येषां गण्या माहिना गीः ॥ ५ ॥ १ ॥

जानन्ति । वृष्णः । अरुषस्य । शेवम् । उत । ब्रध्नस्य । शासने । रणन्ति । दिवःऽरुचः । सुऽरुचः । रोचमानाः । इळा । येषाम् । गण्या । माहिना । गीः ॥ ५ ॥ १ ॥

पदार्थः—(जानन्ति) (वृष्णः) बलिष्ठस्य (अरुषस्य) अश्वस्येव (शेवम्) सुखम् । शेवमिति सुखना० निघं० ३ । ६ (उत) अपि (ब्रध्नस्य) महतः (शासने) शिक्षायामाज्ञायां वा (रणन्ति) शब्दायन्ते (दिवोरुचः) विज्ञानप्रकाशे रुचिकरः (सुरुचः) सुप्रीतिसंपादकाः (रोचमानाः) रुचिमन्तः (इळा) स्तोतव्या वाक् (येषाम्) (गण्या) सङ्ख्यातुं योग्या (माहिना) सत्कर्त्तव्या (गीः) वाणी ॥ ५ ॥

अन्वयः—येषां गण्येळा माहिना गीर्वर्त्तते ते रोचमाना दिवोरुचः सुरुचो रणन्ति वृष्णोऽरुषस्य ब्रध्नस्य शासने शेवमुत विज्ञानं जानन्ति ॥ ५ ॥

भावार्थः—ये मनुष्या विदुषां शिक्षायां स्थिरा भवन्ति ते प्रशंसिता विद्वांसो भूत्वा महान्तो जायन्ते ॥ ५ ॥

पदार्थः—(येषाम्) जिन की (गण्या) गणना करने योग्य (इडा) स्तुति और (माहिना) सत्कार करने योग्य (गीः) वाणी हैं वे (रोचमानाः) रुचि वाले हुए (दिवोरुचः) विज्ञान रूप प्रकाश में रुचि करने वाले (सुरुचः) सुन्दर प्रीति के उत्पादक विद्वान् लोग (रणन्ति) शब्द करते हैं तथा (वृष्णः) बलिष्ठ (अरुषस्य) घोडे के तुल्य वेग युक्त (व्रध्नस्य) महान् राज पुरुष की (शासने) शिक्षा में (शेवम्) सुख (उत) और विज्ञान को (जानन्ति) जानते हैं ॥ ५ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य विद्वानों की शिक्षा में स्थिर होते हैं वे प्रशंसित विद्वान् हो कर महात्मा होते हैं ॥ ५ ॥

पुनर्मनुष्यैः किं कर्त्तव्यमित्याह ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस वि० ॥

उतो पितृभ्यां प्रविदानु घोषं महो महद्भ्याम-
नयन्त शूषम्। उक्षा ह यत्र परि धानमक्तोरनु स्वं
धाम जरितुर्ववक्ष ॥ ६ ॥

उतो इति । पितृऽभ्याम् । प्रऽविदा । अनु । घोषम् । महः ।
महत्ऽभ्याम् । अनयन्त । शूषम् । उक्षा । ह । यत्र । परि ।
धानम् । अक्तोः । अनु । स्वम् । धाम । जरितुः । ववक्ष ॥६॥

पदार्थः—(उतो) अपि (पितृभ्याम्) जनकजननीभ्याम् (प्रविदा) प्रकृष्टविज्ञानेन (अनु) (घोषम्) विद्याशिक्षायुक्तां वाचम् । घोष इति वाङ्ना० निघं० १ । ११ (महः) महत् (महद्भ्याम्) पूज्याभ्याम् (अनयन्त) प्राप्नुयुः (शूषम्) बलम् (उक्षा) सेचकः (ह) खलु (यत्र) (परि) (धानम्) धारणम् (अक्तोः)

रात्रेः (अनु) (स्वम्) स्वकीयम् (धाम) (जरितुः) स्तावकस्य (ववक्ष) वहति । अत्र वर्त्तमाने लिटि वाच्छन्दसीति सुडागमः॥६॥

अन्वयः—हे मनुष्या ये ब्रह्मचारिणो महद्भ्यां मह उतो पितृभ्यां प्रविदा घोषं शूषं चान्वनयन्त यत्रोक्षाऽक्तोः परि धानं जरितुर्ह स्वं धामानु ववक्ष तान् यूयं सत्कुरुत ॥ ६ ॥

भावार्थः—हे मनुष्या यथा ब्रह्मचारिणः पित्राचार्य्यादिमहतां सेवनेन ब्रह्मवर्चसमाप्नुवन्ति तथा यूयं प्रातरीश्वरस्तुत्यादिना धर्मसुखमाप्नुत ॥ ६ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे ब्रह्मचारी लोग (महद्भ्याम्) पूज्य अध्यापक उपदेशकों से (महः) बड़े ब्रह्मचर्य्य को (उतो) और (पितृभ्याम्) माता पिता के साथ (प्रविदा) प्रकृष्ट ज्ञान से (घोषम्) विद्याशिक्षायुक्त वाणी और (शूषम्) बल को (अनु,अनयन्त) अनुकूल प्राप्त हों (यत्र) जहां (उक्षा) सेचन करने वाला सूर्य्य (अक्तोः) रात्रि के (परि, धानम्) सब ओर से धारण को (जरितुः) स्तुति कर्त्ता के (ह) ही (स्वम्, धाम) अपने स्थान को अर्थात् प्राप्त अवस्था को (अनु,ववक्ष) पहुंचाता है उस का सत्कार करो॥६॥

भावार्थः—हे मनुष्यो जैसे ब्रह्मचारी लोग पिता आचार्य्य आदि महान् पुरुषों के सेवन से विद्या तेज को पाते हैं वैसे तुम लोग प्रातःकाल ईश्वर की स्तुति आदि से धर्म से हुए सुख को प्राप्त होओ ॥ ६ ॥

अथोपदेशकाः किंवत् किं कुर्वन्तीत्याह ॥

अब उपदेशक लोग किस के सदृश क्या करते हैं इस वि० ॥

अध्वर्य्युभिः पञ्चभिः सप्त विप्राः प्रियं रक्षन्ते निहितं पदं वेः । प्राञ्चो मदन्त्युक्षणो अजुर्या देवा देवानामनु हि व्रता गुः ॥ ७ ॥

अन्वयः—ये सप्त पृक्षासः स्वधया मदन्ति ऋतं शंसन्त ऋतं व्रतमित्ते व्रतपा दीध्याना अन्वाहुर्दैव्या प्रथमा होतारा च तानहं न्यृञ्जे ॥८॥

भावार्थः—ये विद्वांसो धर्म्येण व्यवहारेण धनधान्यानि प्राप्य सत्यमुपदिश्य तदेवाऽऽचर्य्य सर्वान् शिक्षन्ते ते सत्कर्त्तव्याः स्युः ॥८॥

पदार्थः—जो (सप्त) सात (पृक्षासः) कोमल स्वभाव वाले जन (स्वधया) अन्न से (मदन्ति) आनन्द करते हैं (ऋतम्) सत्य की (शंसन्तः) स्तुति करते हैं (ऋतम्) सत्य (व्रतम्) आचरण को (इत्) ही (ते) वे (व्रतपाः) सत्याचरण के रक्षक (दीध्यानाः) विद्यादि सद्गुणों से प्रकाशमान पुरुष (अनु,आहुः) अनुकूल उपदेश करते हैं । और (दैव्या) विद्वानों में कुशल (प्रथमा) प्रख्यात (होतारा) विद्या के देने वाले दो विद्वान् अध्यापक उपदेशक भी अनुकूल उपदेश करते हैं उन को मैं (नि) निरन्तर (ऋञ्जे) प्रसिद्ध करूं ॥ ८ ॥

भावार्थः—जो विद्वान् लोग धर्मयुक्त व्यवहार से धन धान्यों को प्राप्त हो सत्य का उपदेश कर उसी का आचरण करके सब को शिक्षा करते हैं वे सब को सत्कार करने योग्य हों ॥ ८ ॥

पुनर्विद्वांसः किं कुर्वन्तीत्याह ॥

फिर विद्वान् लोग क्या करते हैं इस वि० ॥

वृषायन्ते महे अत्याय पूर्वीर्वृष्णे चित्राय रश्मयः सुयामाः । देव होतर्मन्द्रतरश्चिकित्वान्महो देवान् रोदसी एह वक्षि ॥ ९ ॥

वृषऽयन्ते । महे । अत्याय । पूर्वीः । वृष्णे । चित्राय । रश्मयः । सुऽयामाः । देव । होतरिति । मन्द्रऽतरः । चिकित्वान् । महः । देवान् । रोदसीऽ इति । आ । इह । वक्षि ॥ ९ ॥

पदार्थः—(वृषायन्ते) वृष इवाचरन्ति (महे) महते (अत्याय) सर्वविद्याव्यापनशीलाय (पूर्वीः) पूर्वं वर्त्तमानाः प्रजाः (वृष्णे) विद्यावर्षकाय (चित्राय) आश्चर्य्यस्वभावाय (रश्मयः) किरणाः (सुयामाः) शोभना यामाः प्रहरा येषु ते (देव) देदीप्यमान (होतः) सर्वेभ्यः सुखस्य दाता (मन्द्रतरः) अतिशयेनाह्लादकः (चिकित्वान्) विज्ञापकः (महः) महतः (देवान्) विदुषः (रोदसी) द्यावापृथिव्यौ (आ) (इह) अस्मिन् संसारे (वक्षि) समन्तात्प्रापय ॥ ९ ॥

अन्वयः—हे होतर्देवमन्द्रतरश्चिकित्वांस्त्वं यथा सुयामा रश्मयो महेऽत्याय चित्राय वृष्णे विदुषे पूर्वीर्वृषायन्ते रोदसी प्रकटयन्ति तथेह महो देवानावक्षि ॥ ९ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यथा सूर्य्यकिरणाः प्रकाशेन वृष्टिद्वारा सर्वाः प्रजाः सुखयन्ति तथैव विद्वांसो विदुषः संपाद्य सर्वाः प्रजाः सुज्ञानाः कुर्वन्ति ॥ ९ ॥

पदार्थः—हे (देव) प्रकाशमान (होतः) सब के लिये सुख देने हारे विद्वान् (मन्द्रतरः) अतिआनन्दकारक (चिकित्वान्) चिताने हारे । आप जैसे (सुयामाः) सुन्दर प्रहर आदि समय वाली (रश्मयः) किरणें (महे) बड़े (अत्याय) सब विद्याओं में व्यापनशील (चित्राय) आश्चर्य स्वभाव वाले (वृष्णे) विद्या के प्रचारक विद्वान् के अर्थ (पूर्वीः) पहिले से वर्त्तमान प्रजा जनों को (वृषायन्ते) बैल के समान उत्साहित करतीं (रोदसी) सूर्य भूमि प्रकट करती हैं वैसे (इह) इस जगत् में (महः) महान् (देवान्) विद्वानों को (आ, वक्षि) अच्छे प्रकार प्राप्त कराइये ॥ ९ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे सूर्य्य की किरणें प्रकाश से वृष्टि द्वारा सब प्रजा को सुखी करती हैं वैसे ही विद्वान् लोग सब प्रजा जनों को विद्वान् कर सुन्दर ज्ञानयुक्त करते हैं ॥ ९ ॥

पुनर्विद्वद्भिः किं कर्त्तव्यमित्याह ॥
फिर विद्वानों को क्या करना चाहिये इस वि० ॥

पृक्षप्रयजो द्रविणः सुवाचः सुकेतव उषसो रेवदूषुः । उतो चिदग्ने महिना पृथिव्याः कृतं चिदेनः सं महे दशस्य ॥ १० ॥

पृक्षऽप्रयजः । द्रविणः । सुऽवाचः । सुऽकेतवः । उषसः । रेवत् । ऊषुः । उतो इति । चित् । अग्ने । महिना । पृथिव्याः । कृतम् । चित् । एनः । सम् । महे । दशस्य ॥ १० ॥

पदार्थः—(पृक्षप्रयजः) ये पृक्षेण शुभगुणैरार्द्रीभावेन प्रयजन्ति ते (द्रविणः) प्रशस्तानि द्रविणानि द्रव्याणि विद्यन्ते यस्य सः (सुवाचः) सुष्ठु सत्या वाग् येषान्ते (सुकेतवः) सुष्ठु केतुः प्रज्ञा येषान्ते (उषसः) प्रभाता इव (रेवत्) द्रव्यवत् (ऊषुः) वसेयुः (उतो) अपि (चित्) (अग्ने) विद्वन् (महिना) महिम्ना (पृथिव्याः) भूमेर्मध्ये (कृतम्) (चित्) (एनः) पापम् (सम्) (महे) महते सौभाग्याय (दशस्य) क्षयं गमय ॥ १० ॥

अन्वयः—हे अग्ने द्रविणस्त्वं महिना महे पृक्षप्रयज उषसइव वर्त्तमानाः सुवाचः सुकेतवो रेवदूषुरुतो अन्धकारं निवर्त्तयन्ति तद्वत्पृथिव्याः कृतमेनश्चित् त्वं सन्दशस्य चिदपि शोभनं प्रापय ॥ १० ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—हे विद्वांसो यूयं प्रभातवेलावन्मनुष्यात्मनः प्रकाश्य विज्ञानं दत्वा पापाचरणं त्याजयित्वा सर्वान्मनुष्यान् सत्यवादिनो विदुषः कुरुत येन पृथिव्यां पापाचरणं न वर्धेत॥ १०॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान् (द्रविणः) प्रशस्त द्रव्य जिस के विद्यमान ऐसे आप (महिना) महिमा से (महे) बड़े सौभाग्य के लिये (पृक्षप्रयजः) शुभ गुण और कोमल भाव से यज्ञ करने हारे (उषसः) प्रभात वेला के तुल्य वर्त्तमान (सुवाचः) सुन्दर सत्य वाणी से युक्त (सुकेतवः) सुन्दर बुद्धि वाले (रेवत्) द्रव्य के समान (ऊषुः) वसें (उतो) और अन्धकार को निवृत्त करते हैं वैसे (पृथिव्याः) भूमि के मध्य में (कृतम्) किया हुआ (एनः) पाप (चित्) शीघ्र आप (सम्,दशस्य) सम्यक् नष्ट करो (चित्) और सुन्दर कर्म को प्राप्त करो ॥ १० ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे विद्वानो तुम लोग प्रभात वेला के तुल्य मनुष्यों के आत्माओं को प्रकाशित कर विज्ञान दे और अधर्माचरण को छुड़ा के सब मनुष्यों को सत्यवादी विद्वान् करो जिस से पृथिवी पर पापाचरण न बढ़े ॥ १० ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

इळामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध । स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥ ११ ॥ व० २ ॥

इळाम् । अग्ने । पुरुऽदंसम् । सनिम् । गोः । शश्वत्ऽतमम् । हवमानाय । साध । स्यात् । नः । सूनुः । तनयः । विजाऽवा । अग्ने । सा । ते । सुऽमतिः । भूतु । अस्मे इति ॥ ११ ॥ व० २ ॥

पदार्थः—(इळाम्) प्रशंसनीयां वाचम् (अग्ने) प्रकाशात्मन् (पुरुदंसम्) पुरूणि दंसांसि कर्माणि विद्यन्ते यस्य तम् (सनिम्) संभजमानाम् (गोः) पृथिव्या मध्ये (शश्वत्तमम्) सदैव वर्त्तमानम् (हवमानाय) आददानाय (साध) (स्यात्) भवेत् (नः) अस्माकम् (सूनुः) अपत्यम् (तनयः) विद्यासुखप्रचारकः (विजावा) विशेषेण प्रसिद्धः (अग्ने) विद्वन् (सा) (ते) तव (सुमतिः) शोभना चासौ मतिश्च सा सुमतिः (भूतु) भवतु (अस्मे) अस्मभ्यम् ॥ ११ ॥

अन्वयः—हे अग्ने त्वं पुरुदंसं सनिमिळां साध । गोर्मध्ये हवमानाय शश्वत्तमं विज्ञानं साध येन नस्तनयो विजावा सूनुः स्यात् । हे अग्ने ते तव सा सुमतिरस्मे भूतु ॥ ११ ॥

भावार्थः—मनुष्यैः सदैव विद्यायुक्तां वाचं प्रज्ञां च प्राप्य सुशिक्षितान् सन्तानान् कृत्वाऽनादिभूतं सुखं प्राप्तव्यं सदैवाऽऽप्तानां प्रज्ञा सर्वत्र प्रसारणीयेति ॥ ११ ॥

अत्राऽग्निसूर्य्यविद्वद्गुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति वेद्यम् ॥

इति सप्तमं सूक्तं द्वितीयो वर्गश्च समाप्तः ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अपने शरीरात्मा के प्रकाश से युक्त विद्वान् आप (पुरुदंसम्) बहुत कर्मों वाली (सनिम्) सम्यक् सेवन की हुई (इळाम्) प्रशंसा के योग्य वाणी को (साध) साधो (गोः) पृथिवी के बीच (हवमानाय) ग्रहण करते हुए के अर्थ (शश्वत्तमम्) सदैव वर्त्तमान विज्ञान को

सिद्ध करो जिस से (नः) हमारा (विजावा) विशेष कर प्रसिद्ध (तनयः) विद्या और सुख का प्रचार करने हारा (सूनुः) सन्तान (स्यात्) होवे । हे (अग्ने) विद्वन् (ते) आप की (सा) वह (सुमतिः) उत्तम बुद्धि (अस्मे) हमारे लिये (भूतु) हो ॥ ११ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि सदैव विद्या युक्त वाणी और बुद्धि को प्राप्त हो सन्तानों को उत्तम शिक्षा दे के अनादि रूप सुख को प्राप्त होवें और सदैव सत्यवादी विद्वानों की बुद्धि सर्वत्र फैलावें ॥ ११ ॥

इस सूक्त में अग्नि सूर्य्य और विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

॥ यह सातवां सूक्त और दूसरा वर्ग समाप्त हुआ ॥

अथैकादशर्चस्याष्टमस्य सूक्तस्य विश्वामित्र ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । १ । ८ । ९ । १० निचृत्त्रिष्टुप् । २ । ५ । ६ । ११ त्रिष्टुप् । ४ स्वराट् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । ३ । ७ स्वराडनुष्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अथ मनुष्याः केषां कामनां कुर्युरित्याह ॥

अब तीसरे मण्डल के आठवें सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में मनुष्य लोग किस की कामना करें इस वि० ॥

अञ्जन्ति त्वामध्वरे देवयन्तो वनस्पते मधुना दैव्येन । यदूर्ध्वस्तिष्ठा द्रविणेह धत्ताद्यद्वा क्षयो मातुरस्या उपस्थे ॥ १ ॥

अञ्जन्ति । त्वाम् । अध्वरे । देवऽयन्तः । वनस्पते । मधुना । दैव्येन । यत् । ऊर्ध्वः । तिष्ठाः । द्रविणा । इह । धत्तात् । यत् । वा । क्षयः । मातुः । अस्याः । उपऽस्थे ॥१॥

पदार्थः—(अञ्जन्ति) कामयन्ते (त्वाम्) (अध्वरे) अध्ययनाध्यापनराजपालनादि व्यवहारे (देवयन्तः) कामयमानाः (वनस्पते) वनस्य रश्मिसमूहस्य पालकः सूर्य्यस्तद्वद्वर्त्तमान (मधुना) मधुरस्वभावेन (दैव्येन) देवेषु विद्वत्सु भवेन (यत्) यम् (ऊर्ध्वः) सद्गुणैरुत्कृष्टः (तिष्ठाः) तिष्ठेः (द्रविणा) द्रविणानि धनानि (इह) अस्मिन् संसारे (धत्तात्) दध्याः (यत्) (वा) (क्षयः) निवासस्थानम् (मातुः) माननिमित्तायाः (अस्याः) भूमेः (उपस्थे) समीपे ॥ १ ॥

अन्वयः—हे वनस्पते मधुना दैव्येन सह वर्त्तमाना देवयन्तो विद्वांसो यद्यं त्वामध्वरे अञ्जन्ति स त्वं येषामूर्ध्वस्तिष्ठा इह द्रविणा वा धत्तादस्या मातुरुपस्थे यत् क्षयोऽस्ति तद्वयमपि गृह्णीयाम ॥१॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यथा सर्वे प्राणिनो दिनं कामयन्ते तथैवोत्तमान्विदुषः सर्वे कामयन्ताम् । सर्वे मिलित्वा प्रीत्योत्तमं गृहमैश्वर्य्यं च साप्नुवन्ति ॥ १ ॥

पदार्थः—हे (वनस्पते) किरणों के रक्षक सूर्य्य के समान वर्त्तमान तेजस्वी विद्वन् (मधुना) (दैव्येन) विद्वानों में हुए कोमल स्वभाव के साथ वर्त्तमान (देवयन्तः) कामना करते हुए विद्वान् (यत्) जिन (त्वाम्) आप को (अध्वरे) पढ़ने पढ़ाने और राज्य पालनादि व्यवहार में (अञ्जन्ति)

चाहते हैं । सो आप जिन के बीच (ऊर्ध्वः) श्रेष्ठ गुणों से बढ़े हुए (तिष्ठाः) स्थित हूजिये (वा) और (इह) इस संसार में (द्रविणा) धनों को (धत्तात्) धारण करो (अस्याः) इस (मातुः) मान देने वाली भूमि के (उपस्थे) समीप गोद में (यत्) जो (क्षयः) निवास स्थान है उस को हम लोग ग्रहण करें ॥ १ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे सब प्राणी दिन को चाहते हैं वैसे ही उत्तम विद्वान् लोगों को सब मनुष्य चाहें । सब मिल के प्रीति से उत्तम घर और ऐश्वर्य्य की सिद्धि करें ॥ १ ॥

अथ के जनाः कल्याणमाप्नुवन्तीत्याह ॥

अब कौन मनुष्य कल्याण को प्राप्त होते हैं इस वि० ॥

समिद्धस्य श्रयमाणः पुरस्ताद्ब्रह्म वन्वानो अजरं सुवीरम् । आरे अस्मदमतिं बाधमान उच्छ्रयस्व महते सौभगाय ॥ २ ॥

सम्ऽइद्धस्य । श्रयमाणः । पुरस्तात् । ब्रह्म । वन्वानः । अजरम् । सुऽवीरम् । आरे । अस्मत् । अमतिम् । बाधमानः । उत् । श्रयस्व । महते । सौभगाय ॥ २ ॥

पदार्थः—(समिद्धस्य) प्रदीप्तस्य (श्रयमाणः) सेवमानः (पुरस्तात्) (ब्रह्म) महद्धनम् (वन्वानः) संभजमानः (अजरम्) अक्षयम् (सुवीरम्) शोभना वीरा यस्मात्तत् (आरे) समीपे दूरे वा (अस्मत्) (अमतिम्) विरुद्धामधर्मयुक्तां प्रज्ञाम् (बाधमानः) (उत्) (श्रयस्व) उत्कृष्टतया सेवस्व (महते) (सौभगाय) उत्तमैश्वर्यस्य भावाय ॥ २ ॥

अन्वयः—हे वनस्पते त्वं पुरस्तात्समिद्धस्य विदुषः श्रयमाणोऽजरं सुवीरं ब्रह्म वन्वानोऽस्मदारेऽमतिं बाधमानः सन् महते सौभगाय सततमुच्छ्रयस्व ॥ २ ॥

भावार्थः—अत्र पूर्वमन्त्रात् (वनस्पते) इति पदमनुवर्त्तते । ये जनाःसाशिक्षया कुबुद्धिं निवारयन्तो धनाद्यैश्वर्येण सुशिक्षाविद्याधर्मान् प्रचारयन्तः सर्वस्य कल्याणमिच्छेयुस्ते सदैव कल्याणभाजः स्युः॥२॥

पदार्थः—हे रश्मिरक्षक सूर्य के समान तेजस्वी विद्वन् आप (पुरस्तात्) पहिले से (समिद्धस्य) प्रदीप्त तेजस्वी विद्वान् का (श्रयमाणः) सेवन कर ते और (अजरम्) अक्षय (सुवीरम्) जिस से उत्तम वीर पुरुष हों ऐसे (ब्रह्म) बड़े धन को (वन्वानः) सेवन करते हुए (अस्मत्) हमारे (आरे) समीप वा दूर में (अमतिम्) अधर्म युक्त विरुद्ध बुद्धि को (बाधमानः) नष्ट करते हुए (महते) बड़े (सौभगाय) उत्तम ऐश्वर्य होने के लिये निरन्तर (उत्, श्रयस्व) अच्छे प्रकार सेवन करो ॥ २ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में पूर्व मंत्र से(वनस्पते)इस पद की अनुवृत्ति आती है । जो मनुष्य अच्छी शिक्षा से कुबुद्धि का निवारण करते और धनादि ऐश्वर्य के साथ सुशिक्षा विद्या और धर्म का प्रचार करते हुए सब के कल्याण की इच्छा करें वे सदैव कल्याण भागी होवें ॥ २ ॥

पुनर्मनुष्यैः किं कर्त्तव्यमित्याह ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस वि० ॥

उच्छ्रयस्व वनस्पते वर्ष्मन् पृथिव्या अधि ।
सुमिती मीयमानो वर्चो धा यज्ञवाहसे ॥ ३ ॥

उत् । श्रयस्व । वनस्पते । वर्ष्मन् । पृथिव्याः । अधि ।
सुऽमिती । मीयमानः । वर्चः । धाः । यज्ञऽवाहसे ॥ ३ ॥

पदार्थः—(उत) (श्रयस्व) (वनस्पते) वननीयस्य धनस्य रक्षक (वर्ष्मन्) सद्गुणानां सेचक (पृथिव्याः) भूमेः (अधि) उपरि (सुमती) शोभनया प्रज्ञया । अत्र पूर्वसवर्णादेशः । माङ्-मानइत्यस्मात् क्तिनि द्यतिस्यतिमास्थेतीत्वम् । धातूनामनेकार्थ-त्वाज् ज्ञानार्थत्वम् (मीयमानः) सत्क्रियमाणः (वर्चः) अध्यापन-तेजः (धाः) धेहि (यज्ञवाहसे) यज्ञस्याऽध्ययनाऽध्यापनस्य प्राप्तये॥३॥

अन्वयः—हे वर्ष्मन् वनस्पते त्वं पृथिव्या अधि स्तम्भइवो-च्छ्रयस्व मीयमानः सन्सुमती यज्ञवाहसे वर्चो धाः ॥ ३ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यथा वटादयो वनस्पतयो मूल-स्कन्धशाखादिभिर्वर्द्धन्ते तथैव पुरुषार्थेन विद्याः प्रचार्य्य मनुष्यै-र्वर्द्धनीयम् ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे (वर्ष्मन्) श्रेष्ठ गुणों के प्रचारक (वनस्पते) सेवने योग्य धन के रक्षक विद्वान् आप (पृथिव्याः) भूमि के (अधि) ऊपर खम्भ के तुल्य (उत्, श्रयस्व) ऊंचे हूजिये (मीयमानः) सत्कार किये हुए (सुमती) सुन्दर बुद्धि से (यज्ञवाहसे) पढ़ने पढ़ाने आदि यज्ञ के प्राप्त कराने हारे विद्यार्थी के लिये (वर्चः) पढ़ने रूप तेज को (धाः) धारण कीजिये ॥ ३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे बड आदि वनस्पति जड़ स्कध डाली आदि से बढ़ते हैं वैसे ही पुरुषार्थ के साथ विद्याओं का प्रचार कर मनुष्यों को बढ़ाना चाहिये ॥ ३ ॥

पुनः कीदृशो विद्वान् भवतीत्याह ॥

फिर कैसा विद्वान् हो इस वि० ॥

युवा सुवासाः परिवीत आगात्स उ श्रेयान्भ-वति जायमानः । तं धीरासः कवयः उन्नयन्ति स्वाध्यो३ मनसा देवयन्तः ॥ ४ ॥

युवा । सुऽवासाः । परिऽवीतः । आ । अगात् । सः । उं इति । श्रेयान् । भवति । जायमानः । तम् । धीरासः । कवयः । उत् । नयन्ति । सुऽआध्यः । मनसा । देवऽयन्तः ॥४॥

पदार्थः—(युवा) यौवनावस्थां प्राप्तः (सुवासाः) शोभनानि वासांसि धृतानि येन सः (परिवीतः) परितः सर्वतो व्याप्तविद्यः (आ) समन्तात् (अगात्) आगच्छेत् (सः) (उ) एव (श्रेयान्) अतिशयेन प्रशस्ता (भवति) (जायमानः) विद्याया मातुरन्तः स्थित्वा निष्पन्नः (तम्) (धीरासः) धीमन्तः (कवयः) अनूचाना विद्वांसः (उत्) ऊर्ध्वे (नयन्ति) उत्तमं संपादयन्ति (स्वाध्यः) सुष्ठु विद्याधानकर्त्तारः (मनसा) विज्ञानेनान्तःकरणेन वा (देवयन्तः) कामयमानाः ॥ ४ ॥

अन्वयः—योऽष्टमं वर्षमारभ्य ब्रह्मचर्येण गृहीतविद्यो युवा सुवासाः परिवीतः सन् गृहमागात्स उ विद्यायां जायमानः सञ्छ्रेयान् भवति तं देवयन्तो धीरासः स्वाध्यः कवयो मनसोन्नयन्ति ॥४॥

भावार्थः—नहि कश्चिदपि विद्यासुशिक्षाब्रह्मचर्यसेवनेन विना दीर्घायुःसभ्यो विद्वान्भवितुमर्हति न चैष क्वापि सत्कारं प्राप्तुं योग्यो जायते यं धार्मिका विद्वांसः प्रशंसन्ति स एव विद्वानस्ति ॥ ४ ॥

पदार्थः—जो आठवें वर्ष से ले कर ब्रह्मचर्य्य के साथ विद्या को ग्रहण किये (युवा) युवावस्था को प्राप्त (सुवासाः) सुन्दर वस्त्रों को धारण किये (परिवीतः) और सब ओर से विद्या में व्याप्त हुए ब्रह्मचर्य से घर को (आ,-अगात्) आवे (स,उ) वही विद्या में (जायमानः) प्रसिद्ध हुआ (श्रेयान्) अतिप्रशस्त (भवति) होता है (तम्) उसको (देवयन्तः) कामना करते हुए

(धीरासः) बुद्धिमान् (स्वाध्यः) सुन्दर विद्या का आधान करने वाले (कवयः) सर्वोत्तम विद्वान् लोग (मनसा) विज्ञान वा अन्तःकरण से (उत्,नयन्ति) उन्नत करते उत्तम मानते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थः—कोई भी मनुष्य विद्या की उत्तम शिक्षा और ब्रह्मचर्य्य सेवन के विना दीर्घायु और सभा के योग्य विद्वान् नहीं हो सकता और न वह मनुष्य कहीं सत्कार पाने योग्य होता है जिस मनुष्य की धार्मिक विद्वान् प्रशंसा करते हैं वही विद्वान् है ॥ ४ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥
फिर उसी वि० ॥

जातो जायते सुदिनत्वे अह्नां समर्य्य आ विदथे वर्द्धमानः । पुनन्ति धीरा अपसो मनीषा देवया विप्र उदियर्त्ति वाचम् ॥ ५ ॥ ३ ॥

जातः । जायते । सुऽदिनत्वे । अह्नाम् । सऽमर्य्ये । आ । विदथे । वर्द्धमानः । पुनन्ति । धीराः । अपसः । मनीषा । देवऽयाः । विप्रः । उत् । इयर्त्ति । वाचम् ॥५॥३॥

पदार्थः—(जातः) उत्पन्नः प्रसिद्धः (जायते) उत्पद्यते (सुदिनत्वे) शोभनानां दिनानां भावे (अह्नाम्) दिवसानाम् (समर्य्ये) संग्रामे । समर्य्य इति सङ्ग्रामना० निघं० २ । १७ (आ) समन्तात् (विदथे) विज्ञानमये व्यवहारे (वर्धमानः) (पुनन्ति) पवित्रीकुर्वन्ति (धीराः) मेधाविनो ध्यानवन्तः (अपसः) कर्माणि (मनीषा) प्रज्ञया (देवयाः) देवान् विदुषो यजमानः पूजयन् (विप्रः) सकलविद्यायुक्तो मेधावी (उत्) (इयर्त्ति) प्राप्नोति (वाचम्) शुद्धां वाणीम् ॥५॥

अन्वयः—यः समर्ये शूरवीर इवाह्नां सुदिनत्वे विदथे जातो वर्द्धमानो जायते यो मनीषा अपसः कुर्वन् देवया युक्तो विप्रो वाचमुदियर्त्ति तं धीरा आ पुनन्ति ॥ ५ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—तेषामेव सुदिनं भवति ये विद्यासुशिक्षे संगृह्य विद्वांसो जायन्ते यथा शूरवीरा दुष्टान् विजित्य धनाद्यैश्वर्येण सर्वतो वर्धन्ते तथैव विद्यया विद्वान् वर्धते ॥ ५ ॥

पदार्थः—जो (समर्ये) युद्ध में शूरवीर पुरुष के समान (अह्नाम्) दिनों के (सुदिनत्वे) सुन्दर दिनों के होने में (विदथे) विज्ञान सम्बन्धी व्यवहार में (जातः) प्रसिद्ध (वर्द्धमानः) बढ़ता हुआ (जायते) उत्पन्न होता है । जो (मनीषा) बुद्धि से (अपसः) कर्मों को करता हुआ (देवयाः) विद्वानों का पूजन करने वाला नियतात्मा (विप्रः) समस्त विद्याओं से युक्त बुद्धिमान् जन (वाचम्) शुद्ध वाणी को (उत् ,इयर्त्ति) प्राप्त होता है उस को (धीराः) बुद्धिमान् जन (आ, पुनन्ति) अच्छे प्रकार पवित्र करते हैं ॥ ५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—उन्हीं का सुदिन होता है जो विद्या और उत्तम शिक्षा का संग्रह कर विद्वान् होते हैं । जैसे शूरवीर पुरुष दुष्टों को जीत के धनादि ऐश्वर्य्य के साथ सब ओर से बढ़ते हैं वैसे ही विद्या से विद्वान् बढते हैं ॥ ५ ॥

मनुष्यैः के ग्राह्यास्त्याज्या वेत्याह ॥

मनुष्यों को किन का ग्रहण वा त्याग करना चाहिये इस वि० ॥

यान्वो नरो देवयन्तो निमिम्युर्वनस्पते स्वधितिर्वा ततक्ष । ते देवासः स्वरवस्तस्थिवांसः प्रजावदस्मे दिधिषन्तु रत्नम् ॥ ६ ॥

यान् । वः । नरः । देवऽयन्तः । निऽमिम्युः । वनस्पते । स्वऽधितिः । वा । ततक्ष । ते । देवासः । स्वरवः । तस्थिऽवांसः । प्रजाऽवत् । अस्मेऽइति । दिधिषन्तु । रत्नम् ॥६॥

पदार्थः—(यान्) (वः) युष्मान् (नरः) नायकाः (देवयन्तः) कामयमानाः (निमिम्युः) नितरां मिनुयुः (वनस्पते) वनानां पालक (स्वधितिः) वज्रः (वा) (ततक्ष) तक्षति (ते) (देवासः) विद्वांसः (स्वरवः) स्वकीयो रवो विद्याप्रज्ञापकः शब्दो येषान्ते (तस्थिवांसः) स्थिरप्रज्ञाः (प्रजावत्) प्रजा विद्यन्ते यस्मिँस्तत् (अस्मे) अस्मभ्यम् (दिधिषन्तु) उपदिशन्तु (रत्नम्) धनम् । रत्नमिति धनना० निघं० २ । १० ॥ ६ ॥

अन्वयः—हे नरो यान्वो देवयन्तो निमिम्युस्ते स्वरवस्तस्थिवांसो देवासो भवन्तोऽस्मे प्रजावद्रत्नं दिधिषन्तु । वा हे वनस्पते यथा स्वधितिर्मेघं ततक्ष तथा त्वं दुष्टतां तक्ष ॥ ६ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—हे मनुष्या येषां सङ्गेनान्ये सभ्या विद्वांसः स्युस्तेषामेव सङ्गं यूयमपि कुरुत येषां समागमेन दुर्व्यसनानि वर्धेरँस्तान् सर्वे त्यजन्तु ॥ ६ ॥

पदार्थः—हे (नरः) नायक लोगो (यान्, वः) जिन तुम को (देवयन्तः) कामना करते हुए जन (निमिम्युः) निरन्तर मान करें । (ते) वे (स्वरवः) अपने विद्या बोधक शब्दों से युक्त (तस्थिवांसः) स्थिर बुद्धि वाले (देवासः) आप विद्वान् लोग (अस्मे) हमारे (प्रजावत्) प्रजावान् (रत्नम्) धन का (दिधिषन्तु) उपदेश करें । (वा) अथवा हे (वनस्पते) बनों के रक्षक पुरुष जैसे (स्वधितिः) वज्र मेघ को (ततक्ष) काटता है वैसे आप दुष्टता को काटो ॥ ६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो जिन के संग से अन्य जन सभ्य विद्वान् हों उन्हीं का संग तुम लोग भी करो। जिन के समागम से दुर्व्यसन बढ़ें उन को सब लोग त्याग देवें॥ ६॥

अथ विद्यया किं भवतीत्याह॥
अब विद्या से क्या होता है इस वि०॥

ये वृक्णासो अधि क्षमि निमितासो यतस्रुचः।
ते नो व्यन्तु वार्य्यं देवत्रा क्षेत्रसाधसः॥ ७॥

ये। वृक्णासः। अधि। क्षमि। निऽमितासः। यतऽस्रुचः। ते। नः। व्यन्तु। वार्य्यम्। देवऽत्रा। क्षेत्रऽसाधसः॥७॥

पदार्थः—(ये) (वृक्णासः) छिन्नाविद्याः (अधि) (क्षमि) पृथिव्याम् (निमितासः) नित्यमितज्ञानाः (यतस्रुचः) यतास्रुग् यज्ञसाधनं यैस्ते ऋत्विजः (ते) (नः) अस्माकम् (व्यन्तु) प्राप्नुवन्तु (वार्य्यम्) वर्त्तुमर्हं विज्ञानम् (देवत्रा) देवेषु विद्वत्सु (क्षेत्रसाधसः) ये क्षेत्राणि साध्नुवन्ति ते॥ ७॥

अन्वयः—ये वृक्णासो निमितासो यतस्रुचः क्षम्यधि वर्त्तन्ते ते देवत्रा क्षेत्रसाधसो नो वार्य्यं व्यन्तु॥ ७॥

भावार्थः—यथा कुठारेण छिन्ना वृक्षा न रोहन्ति तथैव विद्यया क्षीणा अविद्या न वर्द्धते॥ ७॥

पदार्थः—(ये) जो (वृक्णासः) अविद्या से पृथक् हुए (निमितासः) सदैव सत्य २ ज्ञान वाले (यतस्रुचः) जिन्हों ने यज्ञ साधन नियत किया और (क्षमि) (अधि) पृथिवी पर वर्त्तमान हैं (ते) वे (देवत्रा) विद्वानों में (क्षेत्रसाधसः) खेतों को साधने वाले (नः) हमारे (वार्य्यम्) स्वीकार के योग्य ज्ञान को (व्यन्तु) प्राप्त हों॥७॥

भावार्थः—जैसे कुल्हाड़े से काटे हुए वृक्ष फिर नहीं जमते वैसे ही विद्या से नष्ट हुई अविद्या नहीं बढ़ती ॥ ७ ॥

पुनस्तमेवाहिंसाधर्मोन्नतिविषयमाह ॥
फिर उसी अहिंसाधर्म की उन्नति के वि० ॥

आदित्या रुद्रा वसवः सुनीथा द्यावाक्षामा पृथिवी अन्तरिक्षम् । सजोषसो यज्ञमवन्तु देवा ऊर्ध्वं कृण्वन्त्वध्वरस्य केतुम् ॥ ८ ॥

आदित्याः । रुद्राः । वसवः । सुऽनीथाः । द्यावाक्षामा । पृथिवी । अन्तरिक्षम् । सऽजोषसः । यज्ञम् । अवन्तु । देवाः । ऊर्ध्वम् । कृण्वन्तु । अध्वरस्य । केतुम् ॥ ८ ॥

पदार्थः—(आदित्याः) द्वादश मासाः (रुद्राः) प्राणाः (वसवः) पृथिव्यादयः (सुनीथाः) सुष्ठुसत्कृताः (द्यावाक्षामा) सूर्यभूमी (पृथिवी) विस्तीर्णं (अन्तरिक्षम्) आकाशम् (सजोषसः) समानप्रीतिसेवनाः (यज्ञम्) सर्वं सद्व्यवहारं (अवन्तु) रक्षन्तु (देवाः) कामयमानाः (ऊर्ध्वम्) उच्छ्रितमुत्कृष्टम् (कृण्वन्तु) (अध्वरस्य) अहिंसनीयस्य (केतुम्) प्रज्ञाम् ॥ ८ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यथादित्या रुद्रा वसवः पृथिवी द्यावाक्षामा अन्तरिक्षं च सजोषसः सुनीथा यज्ञं वर्द्धयन्ति तथा सजोषसो देवा यज्ञमवन्त्वध्वरस्य केतुमूर्ध्वं कृण्वन्तु ॥ ८ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—हे विद्वांसो यथा मासाः प्राणाः पृथिव्यादयश्च पदार्थाः सहानुभूत्या वर्त्तन्ते तथैव सर्वैः सर्वैः सह प्रीतिमुत्पाद्य विज्ञानं वर्धयित्वाऽहिंसाधर्मस्योन्नतिः कार्य्या ॥ ८ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (आदित्याः) बारह मास (रुद्राः) प्राण (वसवः) पृथिवी आदि (पृथिवी) विस्तारयुक्त (द्यावाक्षामा) सूर्य्य और भूमि तथा (अन्तरिक्षम्) आकाश ये सब (सजोषसः) सब के साथ समान प्रीति के सेवक (सुनीथाः) सुन्दर संगति को प्राप्त (यज्ञम्) यज्ञ को (वर्द्धयन्ति) बढ़ाते हैं वैसे (सजोषसः) समान प्रीति वाले (देवाः) कामना करते हुए विद्वान् यज्ञ की (अवन्तु) रक्षा करें (अध्वरस्य) रक्षा योग्य धर्म की (केतुम्) बुद्धि को (ऊर्ध्वम्) उत्तेजित (कृण्वन्तु) करें ॥ ८ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—हे विद्वानो जैसे महीने प्राण और पृथिवी आदि पदार्थ अविरुद्धता के साथ वर्त्तमान रहते हैं वैसे ही सब को सब के साथ प्रीति उत्पन्न कर विज्ञान बढ़ा के अहिंसाधर्म की उन्नति करनी चाहिये ॥ ८ ॥

पुनः के पूर्णं सुखमाप्नुवन्तीत्याह ॥
फिर कौन पूर्ण सुख को प्राप्त होते हैं इस वि० ॥

हंसाइव श्रेणिशो यतानाः शुक्रा वसानाः स्वरवो न आगुः । उन्नीयमानाः कविभिः पुरस्ताद्देवा देवानामपि यन्ति पाथः ॥ ९ ॥

हंसाःऽइव । श्रेणिऽशः । यतानाः । शुक्रा । वसानाः । स्वरवः । नः । आ । अगुः । उत्ऽनीयमानाः । कविऽभिः । पुरस्तात् । देवाः । देवानाम् । अपि । यन्ति । पाथः ॥ ९ ॥

पदार्थः—(हंसाइव) यथा पक्षिविशेषाः (श्रेणिशः) कृतश्रेणयो विहितपङ्क्तयः (यतानाः) प्रयतमानाः (शुक्रा) शुक्राण्युदकानि (वसानाः) आच्छादयन्तः (स्वरवः) सुस्वरान् सवमानाः (नः) अस्मान् (आ) समन्तात् (अगुः) प्राप्नुवन्ति

(उन्नीयमानाः) उत्कृष्टान् गुणान् प्रापयन्तः (कविभिः) मेधाविभिः (पुरस्तात्) प्रथमतः (देवाः) दिव्यगुणकर्मस्वभावा विपश्चितः (देवानाम्) विदुषाम् (अपि) (यन्ति) गच्छन्ति (पाथः) मार्गम्॥९॥

अन्वयः—ये देवाः श्रेणिशो यतानाः शुक्रा वसानाः स्वरवो हंसाइव न उन्नीयमानाः पुरस्तात्कविभिः सह वर्त्तमानानां देवानां पाथोपि यन्ति तेप्यस्मानागुः ॥ ९ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालं०—ये हंसाइव संहता भूत्वा प्रयत्नेन सर्वानुन्नीय स्वयमुन्नताः सन्त आप्तमार्गं गत्वा वीर्य्यं वर्धयन्ति त एव पुष्कलं सुखमश्नुवते ॥ ९ ॥

पदार्थः—जो (देवाः) उत्तम गुण कर्म स्वभाव वाले पण्डित लोग (श्रेणिशः) पंक्ति बांधे (यतानाः) यत्न करते और (शुक्राः) जलों को (वसानाः) आच्छादन करते हुए (स्वरवः) सुन्दर स्वरों का सेवन करने हारे (हंसाइव) हंसों के तुल्य दर्शनीय (नः) हम को (उन्नीयमानाः) उत्तम गुणों को प्राप्त करते हुए (पुरस्तात्) पहिले से (कविभिः) बुद्धिमानों के साथ वर्त्तमान (देवानाम्) विद्वानों के (पाथः) मार्ग को (अपि, यन्ति) चलते हैं वे भी हम को (आ, अगुः) अच्छे प्रकार प्राप्त होते हैं ॥ ९ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालं०—जो हंसों के तुल्य मिल के प्रयत्न से सब की उन्नति कर अपने आप उन्नति को प्राप्त हुए आप्त सत्यवादियों के मार्ग में चल के पराक्रम बढ़ाते हैं वे ही पूर्ण सुख को भोगते हैं ॥ ९ ॥

पुनः के विद्वांसः सत्कारमाप्नुवन्तीत्याह ॥

फिर कौन विद्वान् जन सत्कार पाते हैं इस वि० ॥

शृङ्गाणीवेच्छृङ्गिणां सन्ददृश्रे चषालवन्तः स्वरवः पृथिव्याम् । वाघद्भिर्वा विहवे श्रोषमाणा अस्माँ अवन्तु पृतनाज्येषु ॥ १० ॥

शृङ्गाणिऽइव। इत्। शृङ्गिणाम्। सम्। दृदृश्रे। चषालऽवन्तः। स्वरवः। पृथिव्याम्। वाघतऽभिः। वा। विऽह्वे। श्रोषमाणाः। अस्मान्। अवन्तु। पृतनाज्येषु॥ १०॥

पदार्थः—(शृङ्गाणीव) (इत्) एव (शृङ्गिणाम्) महिषादीनाम् (सम्) सम्यक् (दृदृश्रे) दृश्यन्ते (चषालवन्तः) बहवश्चषाला भोगा विद्यन्ते येषान्ते (स्वरवः) प्रशंसकाः (पृथिव्याम्) भूमौ (वाघद्भिः) ऋत्विग्भिः (वा) पक्षान्तरे (विह्वे) विशेषेण ह्वयति शब्दयति यस्मिँस्तस्मिन् (श्रोषमाणाः) शृण्वन्तः। अत्र वाच्छन्दसीति द्वित्वाभावः (अस्मान्) (अवन्तु) (पृतनाज्येषु) सङ्ग्रामेषु॥ १०॥

अन्वयः—ये चषालवन्तः स्वरवो विह्वे श्रोषमाणा वाघद्भिः सह वर्त्तमानाः पृथिव्यां शृङ्गिणां शृङ्गाणीव संदृदृश्रे त इत्पृतनाज्येषु वेतरेषु व्यवहारेष्वस्मानवन्तु॥ १०॥

भावार्थः—अत्रोपमालं०—ये बहुश्रुता विद्वांसः स्वात्मवत्सर्वान् पालयन्ति ते सुकीर्त्योत्तमाङ्गे मस्तके संस्थितानि पशूनां शृङ्गाणीव योग्यपदवीं प्राप्य संसारे स्तूयमानाः सर्वैः सत्क्रियन्ते॥ १०॥

पदार्थः—जो (चषालवन्तः) बहुत भोगों वाले (स्वरवः) प्रशंसक लोग (विह्वे) विशेष कर जहां पठन पाठनादि का शब्द करते उस स्थान में (श्रोषमाणाः) सुनते हुए (वाघद्भिः) ऋत्विजों के साथ वर्त्तमान (पृथिव्याम्) पृथिवी पर (शृङ्गिणाम्) भैंसा आदि के (शृङ्गाणीव) सींगों के तुल्य (संदृदृश्रे) सम्यक् दीख पड़ते हैं वे (इत्) ही (पृतनाज्येषु) संग्रामों (वा) अथवा अन्य व्यवहारों में (अस्मान्) हम को (अवन्तु) रक्षित करें॥१०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जो बहुश्रुत विद्वान् लोग अपने आत्मा के तुल्य सब की रक्षा करते हैं वे उत्तम कीर्त्ति से श्रेष्ठाङ्ग मस्तक में वर्त्तमान सब पशुओं के सींगों के तुल्य उत्तम पद को प्राप्त होकर संसार में स्तुति किये हुए के सत्कार को प्राप्त होते हैं ॥ १० ॥

अथ ब्रह्मचर्य्यानुष्ठानेन किं भवतीत्याह ॥
अब ब्रह्मचर्य्य के अनुष्ठान से क्या होता है इस वि० ॥

वनस्पते शतवल्शो वि रोह सहस्रवल्शा वि वयं रुहेम । यं त्वामयं स्वधितिस्तेजमानः प्रणिनाय महते सौभगाय ॥ ११ ॥ व० ४ ॥

वनस्पते । शतऽवल्शः । वि । रोह । सहस्रऽवल्शाः । वि । वयम् । रुहेम । यम् । त्वाम् । अयम् । स्वधितिः । तेजमानः । प्रऽनिनाय । महते । सौभगाय ॥ ११ ॥ व० ४ ॥

पदार्थः—(वनस्पते) वनस्पतिरिव वर्त्तमान (शतवल्शः) शतानि वल्शा अंकुरा यस्य सः (वि) विशेषेण (रोह) वर्द्धयस्व (सहस्रवल्शाः) सहस्रांकुरा वनस्पतय इवाङ्गोपाङ्गैः सह वर्त्तमानाः (वि) (वयम्) (रुहेम) वर्द्धेमहि (यम्) (त्वाम्) (अयम्) (स्वधितिः) वज्रः (तेजमानः) तीक्ष्णीकृतः (प्रणिनाय) प्रकर्षेण प्रापय (महते) (सौभगाय) शोभनस्य धनस्य भावाय ॥ ११ ॥

अन्वयः—हे वनस्पते यथा शतवल्शो वंशादिवृक्षविशेषो वर्धते तथा त्वं विरोह सुखं प्रणिनाय च यथा सहस्रवल्शा दूर्वादयो वर्द्धन्ते तथैव वयं विरुहेम यथाऽयं तेजमानः स्वधितिर्विद्युन्महते सौभगाय यन्त्वां वर्धयति तं वयमपि वर्धयेम ॥ ११ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—ये मनुष्या ब्रह्मचर्य्यविद्यासुशिक्षाधर्मपुरुषार्थैर्युक्ताः सन्तः कार्य्यसिद्धये प्रयतन्ते ते वंशादयो वृक्षाइव सर्वतो वर्द्धन्ते यथा सुतीक्ष्णैः शस्त्रैः शत्रून् सञ्जित्याऽजातशत्रवः सन्ति तान् विद्युन्मेघमिव शत्रुदलानि दग्धुं समर्था भूत्वा महदैश्वर्यं जनयेयुरिति ॥ ११ ॥

अत्र विद्वच्छ्रोत्रियब्रह्मचारिगुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति वेद्यम् ॥

इत्यष्टमं सूक्तं चतुर्थो वर्गश्च समाप्तः ॥

पदार्थः—हे (वनस्पते) वनस्पति के समान वर्त्तमान परोपकारी सज्जन जैसे (शतवल्शः) सैकड़ों अंकुर वाला वांस आदि वृक्ष विशेष बढ़ता है वैसे आप (वि,रोह) वृद्धि को प्राप्त हूजिये और सुख को (प्रणिनाय) उत्तम प्रकार से प्राप्त कीजिये । जैसे (सहस्रवल्शाः) हजारों अंकुर वाले वनस्पतियों के तुल्य सांगोपांग वर्त्तमान दूर्वा आदि बढ़ते हैं वैसे ही (वयम्) हम लोग (वि,रुहेम) विशेष कर बढ़ें । जैसे (अयम्) यह (तेजमानः) तीक्ष्ण क्रिया (स्वधितिः) वज्ररूप विद्युत् अग्नि (महते) बड़े (सौभगाय) सुन्दर धन होने के लिये (यम्) जिस (त्वाम्) आप को बढ़ाता है वैसे हम लोग भी बढ़ावें ॥ ११ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो मनुष्य ब्रह्मचर्य्य विद्या सुशिक्षा धर्म और पुरुषार्थों से युक्त हुए कार्य्य सिद्धि के अर्थ प्रयत्न करते हैं वे वांस आदि वृक्षों के तुल्य सब ओर से बढ़ते हैं । जैसे सुन्दर तीक्ष्ण शस्त्रों से शत्रुओं को जीत के अजातशत्रु होते हैं उन को जैसे विद्युत् मेघ को वैसे शत्रुदलों को जलाने को समर्थ हो के महान् ऐश्वर्य्य को उत्पन्न करें ॥ ११ ॥

इस सूक्त में विद्वान् वेदपाठी और ब्रह्मचारी के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति है यह जानना चाहिये ॥

यह आठवां सूक्त और चौथा वर्ग समाप्त हुआ ॥

अथ नवर्चस्य नवमसूक्तस्य विश्वामित्र ऋषिः । अग्निर्देवता ।
१ । ४ बृहती । २ । ५ । ६ । ७ निचृद्बृहती । ३ ।
८ विराट् बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः । ९
स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥
अथ मनुष्यैरहिंसाधर्मो ग्राह्य इत्याह ॥

अब नव ऋचा वाले नवमें सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में मनुष्यों को अहिंसा धर्म का ग्रहण करना चाहिये इस वि० ॥

सखायस्त्वा ववृमहे देवं मर्त्तास ऊतये । अपां नपातं सुभगं सुदीदितिं सुप्रतूर्त्तिमनेहसम् ॥१॥

सखायः । त्वा । ववृमहे । देवम् । मर्त्तासः । ऊतये । अपाम् । नपातम् । सुऽभगम् । सुऽदीदितिम् । सुऽप्रतूर्त्तिम् । अनेहसम् ॥ १ ॥

पदार्थः—(सखायः) सुहृदः सन्तः (त्वा) त्वाम् (ववृमहे) वृणुयाम (देवम्) विद्वांसम् (मर्त्तासः) मननशीला मनुष्याः (ऊतये) रक्षणाय (अपाम्) प्राणानां मध्ये (नपातम्) आत्मत्वेन नाशरहितम् (सुभगम्) उत्तमैश्वर्यम् (सुदीदितिम्) विद्याविनयप्रकाशयुक्तम् । दीदयतीति ज्वलति कर्मा निघं० १ । १६ (सुप्रतूर्त्तिम्) सुष्ठु प्रकृष्टा तूर्त्तिः शीघ्रता यस्मिँस्तम् (अनेहसम्) अहन्तारम् ॥ १ ॥

अन्वयः—हे उपदेशक मर्त्तासः सखायो वयमूतये अपां नपातमनेहसं सुप्रतूर्त्तिं सुदीदितिं सुभगं देवं त्वा ववृमहे ॥ १ ॥

भावार्थः—मनुष्यैर्विद्यादिसौभाग्यजननाय सुहृद्भावमाश्रित्याप्तस्य विदुषः शरणं गत्वाऽहिंसाधर्मः सङ्ग्रहीतव्यः ॥ १ ॥

पदार्थः—हे उपदेशक सज्जन (मर्त्तासः) मननशील (सखायः) मित्र हुए हम लोग (ऊतये) रक्षा आदि के लिये (अपाम्) प्राणों के बीच (नपातम्) आत्मभाव से नाशरहित (अनेहसम्) न मारने हारे (सुप्रतूर्त्तिम्) सुन्दर शीघ्रता युक्त (सुदीदितिम्) विद्या और विनय के प्रकाश से युक्त (सुभगम्) उत्तम ऐश्वर्य्य वाले (देवम्) विद्वान् (त्वा) आप को (वृमहे) स्वीकार करें ॥ १ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि विद्यादि सौभाग्य जानने के लिये मित्रभाव का आश्रय कर और आप्त सत्य वक्ता विद्वान् के शरण को प्राप्त हो के अहिंसाधर्म का संग्रह करें ॥ १ ॥

विद्यार्थी कं प्राप्य सुखीभवतीत्याह ॥

विद्यार्थी किस को पाकर सुखी होता है इस वि० ॥

कायमानो वना त्वं यन्मातॄरजगन्नपः । न तत्ते अग्ने प्रमृषे निवर्त्तनं यद्दूरे सन्निहाभवः ॥ २ ॥

कायमानः । वना । त्वम् । यत् । मातॄः । अजगन् । अपः । न । तत् । ते । अग्ने । प्रऽमृषे । निऽवर्त्तनम् । यत् । दूरे । सन् । इह । अभवः ॥ २ ॥

पदार्थः—(कायमानः) अध्यापयन्नुपदिशन् वा (वना) वनानि याचनीयानि (त्वम्) (यत्) यतः (मातॄः) मातर इव पालिकाः (अजगन्) प्राप्नुयाः (अपः) प्राणान् (न) (तत्) तस्मात् (ते) तव (अग्ने) शुभगुणैः प्रकाशमान (प्रमृषे) सुखैः संयोजयेः (निवर्त्तनम्) अन्यायाचरणात्पृथग्भवनम् (यत्) यस्मात् (दूरे) (सन्) (इह) (अभवः) भवेः ॥ २ ॥

अन्वयः—हे अग्ने कायमानः सँस्त्वं यन्मातृरपोऽजगन्यन्निवर्त्तनं दूरे प्रक्षिपेर्मङ्गलायेहाभवस्तत्तस्मात्ते सकाशादहं वना प्रमृषे मत्तस्त्वं दूरे न भवेः ॥ २ ॥

भावार्थः—यथा तृषातुरो जलं प्राप्य तृप्यति तथैवाप्तमध्यापकमुपदेशकं वा लब्ध्वा विद्याभिलाषी सर्वतः सुखी भवति ॥२॥

पदार्थः—हे (अग्ने) शुभगुणों से प्रकाशमान सज्जन (कायमानः) पढ़ाते वा उपदेश करते (सन्) हुए (त्वम्) आप (यत्) जिस से (मातॄः) माताओं के तुल्य रक्षक वा प्रिय (अपः) प्राणों को (अजगन्) प्राप्त होवें । और (यत्) जिस से (निवर्त्तनम्) अन्यायाचरण से पृथक् होने को (दूरे) दूर फेंकिये और मंगल के अर्थ (इह) यहां (अभवः) हूजिये (तत्) इस से (ते) आप से मैं (वना) मांगने योग्य पदार्थों को (प्रमृषे) सुखों से संयुक्त करूं और मुझ से आप दूर न हूजिये ॥ २ ॥

भावार्थः—जैसे प्यासा जन जल को पा के तृप्त होता वैसे ही आप्त अध्यापक और उपदेशक को विद्यार्थी जन प्राप्त हो के सब ओर से सुखी होता है ॥२॥

अथ के जगति पूज्या भवन्तीत्याह ॥
अब कौन मनुष्य जगत् में पूज्य होते हैं इस वि० ॥

अति तृष्टं ववक्षिथाथैव सुमना असि । प्रप्रान्ये यन्ति पर्यन्य आसते येषां सख्ये असि श्रितः ॥ ३ ॥

अति । तृष्टम् । ववक्षिथ । अथ । एव । सुऽमनाः । असि । प्रऽप्र । अन्ये । यन्ति । परि । अन्ये । आसते । येषाम् । सख्ये । असि । श्रितः ॥ ३ ॥

पदार्थः—(अति) (तृष्टम्) पिपासितम् (ववक्षिथ) वोढुमिच्छ (अथ) (एव) (सुमनाः) प्रसन्नचित्तः (असि)

(प्रप्र) प्रकर्षेण (अन्ये) (यन्ति) गच्छन्ति (परि) सर्वतः (अन्ये) इतरे (आसते) उपविशन्ति (येषाम्) (सख्ये) सख्युर्भावे कर्मणि वा (असि) (श्रितः) ॥ ३ ॥

अन्वयः—हे विद्वन् यतस्त्वं तृष्टं ववक्षिथाऽथ सुमना एवासि येषां सख्ये त्वं श्रितोऽसि तेषां मध्यादन्ये प्रप्रातियन्ति। अन्ये पर्य्यासते ॥ ३ ॥

भावार्थः—ये मित्रभावेन तृषातुराय जलमिव विद्यामिच्छवे विद्यां दत्वा प्रसन्नात्मानं कुर्वन्ति त एव जगत्पूज्या भवन्ति ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् जन जिस कारण आप (तृष्टम्) प्यासे को (ववक्षिथ) प्राप्त करने चाहते (अथ) अथवा (सुमनाः) प्रसन्न चित्त (एव) ही (असि) हैं । तथा (येषाम्) जिन की (सख्ये) मित्रता वा मित्र कर्म में आप (श्रितः) संयुक्त (असि) हैं उन में से (अन्ये) अन्य लोग (प्रप्र, अति, यन्ति) विशेष कर अत्यन्त प्राप्त होते तथा (अन्ये) अन्य लोग (परि, आसते) सब ओर से बैठते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थः—जो लोग मित्र भाव से प्यासे के लिये जल के तुल्य विद्या चाहने वाले के अर्थ विद्या दे कर प्रसन्न रूप करते हैं वे ही जगत् में पूज्य होते हैं ॥ ३ ॥

पुनः पाखण्डिनः कथं दूरी भवन्तीत्याह ॥

फिर पाखण्डी लोग कैसे दूर होते हैं इस वि० ॥

ई॒यि॒वांस॒मति॒ स्रिधः॒ शश्व॑ती॒रति॑ स॒श्चतः॑ ।
अन्वी॑मविन्दन्निचि॒रासो॑ अ॒द्रुहो॒ऽप्सु सिं॒हमि॑व श्रि॒तम् ॥ ४ ॥

ई॒यि॒ऽवांस॑म् । अति॑ । स्रिधः॑ । शश्व॑तीः । अति॑ । स॒श्चतः॑ । अनु॑ । ई॒म् । अ॒वि॒न्द॒न् । नि॒ऽचि॒रासः॑ । अ॒द्रु॒हः॑ । अ॒प्ऽसु । सिं॒हम्ऽइ॑व । श्रि॒तम् ॥ ४ ॥

पदार्थः—(ईयिवांसम्) प्राप्नुवन्तम् (अति) (स्रिधः) अतिसहनशीलाः (शश्वतीः) सनातन्यः (अति) (सश्चतः) समवेताः (अनु) (ईम्) (अविन्दन्) लभेरन् (निचिरासः) निश्चयेन चिरन्तन्यः प्रजाः (अद्रुहः) द्रोहरहिताः (अप्सु) जलेषु (सिंहमिव) व्याघ्रमिव (श्रितम्) सेवमानम् ॥ ४ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या अति स्रिधः शश्वतीरति सश्चतो निचिरासोऽद्रुहः प्रजा ईयिवांसमप्सु श्रितं सिंहमिवेमन्वविन्दन् ताः सुखिनीर्यूयं विजानीत ॥ ४ ॥

भावार्थः—यथा सिंहं दृष्ट्वा मृगादयः पलायन्ते तथैव सुशिक्षिता विदुषीः प्रजाः समीक्ष्य पाखण्डिनो विलीयन्ते ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (अति, स्रिधः) अतिसहन शील (शश्वतीः) सनातन (अति, सश्चतः) अत्यन्त आपस में मिले हुए (निचिरासः) निश्चय से प्राचीन (अद्रुहः) द्रोह रहित प्रजा जन (ईयिवांसम्) प्राप्त होते हुए (अप्सु) जलों में (श्रितम्) आश्रित (सिंहमिव) सिंह के तुल्य (ईम् , अनु, अविन्दन्) सब ओर से अनुकूल प्राप्त हों उन को तुम लोग सुख भोगने वाले जानो ॥ ४ ॥

भावार्थः—जैसे सिंह को देख के हरिण आदि भाग जाते हैं वैसे ही सुशिक्षायुक्त विद्वान् प्रजा जनों को देख कर पाखण्डी लोग नष्ट भ्रष्ट हो जाते हैं ॥ ४ ॥

पुनरात्मज्ञानविषयमाह ॥
फिर आत्मज्ञान वि० ॥

समृवांसमिव त्मनाऽग्निमित्था तिरोहितम् ।
ऐनं नयन्मातरिश्वा परावतो देवेभ्यो मथितं परि
॥ ५ ॥ व० ५ ॥

समृवांसम्ऽइव । त्मना । अग्निम् । इत्था । तिरःऽहितम् ।
आ । एनम् । नयत् । मातरिश्वा । पराऽवतः । देवेभ्यः ।
मथितम् । परि ॥ ५ ॥ व० ५ ॥

पदार्थः—(समृवांसमिव) प्राप्नुवन्तमिव (त्मना) आत्मना (अग्निम्) पावकम् (इत्था) अनेन हेतुना (तिरोहितम्) परिच्छिन्नम् (आ) (एनम्) (नयत्) नयति (मातरिश्वा) वायुः (परावतः) विप्रकृष्टाद्देशात् (देवेभ्यः) विद्वद्भ्यः (मथितम्) (परि) सर्वतः ॥ ५ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यथा मातरिश्वा परावतो देवेभ्यो मथितं तिरोहितमग्निं समृवांसमिव पर्य्यानयदित्था तमेनं त्मना यूयं विजानीत ॥ ५ ॥

भावार्थः—अत्रोपमावाचकलु०—हे मनुष्या यथा प्रयत्नेन मन्थनादिना जातमग्निं वायुर्वर्धयति दूरे च गमयति वह्निश्च प्राप्तान् पदार्थान् दहति नैव तिरोहितान् । एवं ब्रह्मचर्य्यविद्यायोगाभ्यासधर्मानुष्ठानसत्पुरुषसङ्गैः साक्षात्कृत आत्मा परमात्मा च सर्वान् दोषान् दग्ध्वा सुप्रकाशितज्ञानं जनयति ॥ ५ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (मातरिश्वा) वायु (परावतः) दूर देश से (देवेभ्यः) विद्वानों के लिये (मथितम्) मन्थन किये (तिरोहितम्) परिच्छिन्न (अग्निम्) अग्नि को (ससृवांसमिव) प्राप्त होते हुए मनुष्य के समान (परि,आ,नयत्) सब ओर से सब प्रकार प्राप्त कराता है (इत्था) इस प्रकार उस (एनम्) अग्नि को (त्मना) आत्मा से तुम लोग विशेष कर जानो ॥ ५ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो जैसे प्रयत्न के साथ मन्थन आदि से उत्पन्न हुए अग्नि को वायु बढ़ाता और दूर पहुंचाता है तथा अग्नि प्राप्त हुए पदार्थों को जलाता है। और दूरस्थ पदार्थों को नहीं जलाता। इसी प्रकार ब्रह्मचर्य्य, विद्या, योगाभ्यास, धर्मानुष्ठान और सत्पुरुषों के संग से साक्षात् किया आत्मा और परमात्मा सब दोषों को जला के सुन्दर प्रकाशित ज्ञान को प्रकट करता है ॥ ५ ॥

पुनरुपदेशकविषयमाह ॥
फिर उपदेशक वि० ॥

तन्त्वा मर्त्ता अगृभ्णत देवेभ्यो हव्यवाहन। विश्वान्यद्यज्ञाँ अभिपासि मानुष तव क्रत्वा यविष्ठ्य ॥६॥

तम् । त्वा । मर्त्ताः । अगृभ्णत । देवेभ्यः । हव्यऽवाहन । विश्वान् । यत् । यज्ञान् । अभिऽपासि । मानुष । तव । क्रत्वा । यविष्ठ्य ॥ ६ ॥

पदार्थः—(तम्) (त्वा) (मर्त्ताः) मरणधर्माणो मनुष्याः (अगृभ्णत) गृह्णन्तु (देवेभ्यः) विद्वद्भ्यः (हव्यवाहन) यो हव्यानि ग्रहीतव्यानि प्रापयति तत्सम्बुद्धौ (विश्वान्) अखिलान् (यत्) यः (यज्ञान्) विद्यादिप्रापकान् व्यवहारान् (अभि, पासि) सर्वतो रक्षसि (मानुष) मननशील (तव) (क्रत्वा) प्रज्ञया (यविष्ठ्य) अतिशयेन ब्रह्मचर्य्यविद्याभ्यां प्राप्तयौवन ॥ ६ ॥

अन्वयः—हे मानुष हव्यवाहन यविष्ठ्य विद्वन् यद्विश्वान् यज्ञानभिपासि तस्य तव क्रत्वा मर्त्ता देवेभ्यस्तं त्वाऽगृभ्णात ॥६॥

भावार्थः—हे मनुष्या यस्योपदेशेन प्रज्ञां प्राप्य समग्राणि सुखानि भवन्तो लभेरन् तं सर्वतः सत्कुरुत ॥ ६ ॥

पदार्थः—हे (मानुष) मननशील (हव्यवाहन) ग्रहण करने योग्य शास्त्रीय युक्ति युक्त वचनों को प्राप्त कराने हारे (यविष्ठ्य) अत्यन्त ब्रह्मचर्य और विद्या के अभ्यास से युवावस्था को प्राप्त उपदेशक विद्वन् (यत्) जो आप (विश्वान्) समस्त (यज्ञान्) विद्यादि के प्रापक व्यवहारों की (अभि, पासि) सब ओर से रक्षा करते हैं उन (तव) आप की (क्रत्वा) बुद्धि से (मर्त्ताः) मरण धर्म वाले मनुष्य (देवेभ्यः) विद्वानों के लिये (तम्) उन (त्वा) आप को (अगृभ्णात) ग्रहण करें ॥ ६ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो जिस के उपदेश से बुद्धि को प्राप्त हो कर समग्र सुखों को आप लोग प्राप्त होवें उस का सब ओर से सत्कार करो ॥ ६ ॥

पुनर्मनुष्याः कथं सर्वभयाद्रहिता भवन्तीत्याह ॥
फिर मनुष्य कैसे सब भय से रहित होते हैं इस वि० ॥

तद्भद्रं तव॑ दं॒सना॒ पाका॑य चिच्छदयति । त्वां यद॑ग्ने प॒शव॑ः स॒मास॑ते॒ समि॑द्धमपिशर्व॒रे ॥ ७ ॥

तत् । भ॒द्रम् । तव॑ । दं॒सना॑ । पाका॑य । चि॒त् । छ॒द॒य॒ति । त्वाम् । यत् । अ॒ग्ने॒ । प॒शव॑ः । स॒म्ऽआस॑ते । सम्ऽइ॑द्धम् । अ॒पि॒ऽश॒र्व॒रे ॥ ७ ॥

पदार्थः—(तत्) प्रज्ञाजन्यं ज्ञानम् (भद्रम्) भन्दनीयं कल्याणकरम् (तव) (दंसना) दंशनं दर्शनम् । अत्र विभक्तेराकारादेशः

वैदिकयन्त्रालय प्रयाग के पुस्तकों का सूचीपत्र

और संक्षिप्त नियम ।

(१) मूल्य रोक भेज कर मंगावें (२) रोक भेजने वालों को १०) रु० वा इस से अधिक पर २०) रु० सैकड़ा के हिसाब से कमीशन के पुस्तक अधिक भेजे जांय गे (३) डाक महसूल वेदभाष्य छोड़ कर सब से अलग लिया जायगा । ५) रु० वा इस से अधिक के पुस्तक ग्राहक की आज्ञानुसार रजिस्टरी भेजे जांयगे (५) मूल्य (नीचे लिखे पतेसे भेजें ॥

पुस्तक	मू०	डा०
ऋग्वेदभाष्य अं० १—११७	३८)	
यजुर्वेद भाष्य सम्पूर्ण	३८)	
ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका	मू०	डा०
विना जिल्द की	३)	≠)
„ जिल्द की	३॥)	।)
वर्णोच्चारण शिक्षा	/)	)॥
सन्धिविषय	।≠)॥	)॥
नामिक	।≠)॥	)॥
कारकीय	।/)॥	)॥
सामासिक	।≠)॥	)॥
स्त्रैणताद्धित	१≠)	/)
अव्ययार्थ	≠)॥	)॥
सौवर	≠)॥	)॥
आख्यातिक	१॥)	≠)॥
पारिभाषिक	≠)॥	)॥
धातुपाठ	।≠)	)॥
गणपाठ	।/)	)॥
उणादिकोष	॥≠)	/)
निघण्टु	।≠)	)॥
अष्टाध्यायीमूल	।/)॥	)॥
संस्कृतवाक्यप्रबोध	≠)	)॥
व्यवहारभानु	≠)	)॥

पुस्तक	मू०	डा०
भ्रमोच्छेदन	)॥	)॥
अनुभ्रमोच्छेदन	)॥	)॥
मेलाचांदापुर	/)	)॥
आर्य्योद्देश्यरत्नमाला	/)	)॥
गोकरुणानिधि	/)	)॥
स्वामीनारायणमतखण्डन		
„ संस्कृतगुजराती	/)	)॥
„ उक्त गुजराती	/)	)॥
वेदविरुद्धमतखण्डन	≠)	)॥
स्वमन्तव्याऽमन्तव्यप्रकाश	)॥	)॥
शास्त्रार्थ फीरोज़ाबाद	≠)	)॥
शास्त्रार्थकाशी	/)	)॥
आर्य्याभिविनय	।)	/)
„ जिल्द की	।≠)	/)
वेदान्तिध्वान्तनिवारण	≠)	)॥
भ्रान्तिनिवारण	/)।	)॥
पञ्चमहायज्ञविधि	≠)॥	)॥
„ जिल्द की	।≠)॥	/)
सत्यार्थप्रकाश	२।)॥	≠)॥
„ जिल्द का	२॥)	।)
आर्य्यसमाज के नियमोपनियम	)।	)॥

मेनेजर—वैदिकयन्त्रालय—प्रयाग

रसीद मूल्य वेदभाष्य

आर्य्यसमाज सहारनपुर	१६)
डाक्टर गोपालदास जी हरनपुरा	८)
आर्य्यसमाज सक्खर के जमा मार्फत आर्य्यसमाज अजमेर	४)
योग	२८)

ऋग्वेदभाष्यम्

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मितम्

संस्कृतार्य्यभाषाभ्यां समन्वितम् ।

अस्यैकैकाङ्कस्य प्रतिमासं मूल्यम् भारतवर्षान्तर्गतदेशान्तर-
प्रापणमूल्येन सहितं ।=) अङ्कद्वयस्यैकीकृतस्य ॥≈)
वार्षिकं मूल्यम् ८)

इस ग्रंथ के प्रतिमास एक एक अंक का मूल्य भरतखंड के भीतर डांक
महसूल सहित ।/) एक साथ छपे हुए दो अंकों के ॥/)
और वार्षिक मूल्य ८)

यस्य सज्जनमहाशयस्यास्य ग्रन्थस्य जिघृक्षा भवेत् स प्रयागनगरे वैदिक
यन्त्रालयप्रबन्धकर्त्तुः समीपे वार्षिकमूल्यप्रेषणेन प्रतिमासं
मुद्रितावङ्कौ प्राप्स्यति ॥

जिस सज्जन महाशय को इस ग्रन्थ के लेने की इच्छा हो वह प्रयाग नगरमें वैदिकयन्त्रालयमैनेजर
के समीप वार्षिक मूल्य भेजने से प्रतिमास के छपे हुए दोनों अङ्कों को प्राप्त कर सकता है ।

पुस्तक (१४६, १४७) अंक (१३०, १३१)

अयं ग्रन्थः प्रयागनगरे वैदिकयन्त्रालये मुद्रितः ॥

संवत् १९४६ फाल्गुण शुक्लपक्ष

वेदभाष्यसम्बन्धी विशेषनियम ॥

[१] यह «ऋग्वेदभाष्य» मासिक छपता है । एक मास में बत्तीस ३२ पृष्ठ के एक साथ छपे हुए दो अङ्क १ वर्ष में २४ अङ्क «ऋग्वेदभाष्य» के भेजे जाते हैं ॥

[२] वेदभाष्य का मूल्य बाहर और नगर के ग्राहकों से एक ही लिया जायगा अर्थात् डाकव्यय से कुछ न्यूनाधिक न होगा ॥

[३] इस वर्तमान बारहवें वर्ष के कि जो ११४—११५ अङ्क से प्रारंभ हो कर १२६ । १२७ पर पूरा होगा । वार्षिक मूल्य ८) रु० हैं ।

[४] पीछे के ग्यारह वर्षमें जो वेदभाष्य छप चुका है उस का मूल्य यह है:—

[क] «ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका» विना जिल्द को ३)

स्वर्णाक्षरयुक्त जिल्द को ३॥)

[ख] ११३ अङ्क तक ३७॥=)

[५] वेदभाष्य का अङ्क प्रत्येक मास की पहिली तारीख को डाक में डाला जाता है । जो किसी का अङ्क डाक की भूल से न पहुंचे तो इस के उत्तर दाता प्रबंधकर्त्ता न होंगे । परन्तु दूसरे मास के अङ्क भेजने से प्रथम जो ग्राहक अङ्क न पहुंचने की सूचना देदेंगे तो उन को बिना दाम दूसरा अङ्क भेज दिया जायगा इस अवधि के व्यतीत हुए पीछे अङ्क दाम देने से मिलेंगे एक अङ्क ।=) दो अङ्क ॥=) तीन अङ्क १) देने से मिलेंगे ॥

[६] दाम जिस को जिस प्रकार से सुबीता हो भेजे परन्तु मनी आर्डर द्वारा भेजना ठीक होगा । टिकट डाक के अधन्नी वाले लिये जा सकते हैं परन्तु एक रुपये पीछे आध आना बट्टे का अधिक लिया जायगा । टिकट आदि मूल्यवान् वस्तु रजिस्टरी पत्री में भेजना चाहिये ॥

[७] जो लोग पुस्तक लेने से अनिच्छुक हों, वे अपनी ओर जितना रुपया हो भेज दें और पुस्तक के न लेने से प्रबन्धकर्त्ता को सूचित कर दें जबतक ग्राहक का पत्र न आवेगा तबतक पुस्तक बराबर भेजा जायगा और दाम लेलिये जायंगे।

[८] बिके हुए पुस्तक पीछे नहीं लिये जायंगे ॥

[९] जो ग्राहक एक स्थान से दूसरे स्थान में जायं वे अपने पुराने और नये पते से प्रबन्धकर्त्ता को सूचित करें । जिस में पुस्तक ठीक ठीक पहुंचता रहे ।

[१०] «वेदभाष्य” सम्बन्धी रुपया, और पत्र प्रबन्धकर्त्ता वैदिकयन्त्रालय प्रयाग (इलाहाबाद) के नाम से भेजें ॥

(पाकाय) परिपक्वत्वाय (चित्) इव (छदयति) सत्करोति। छदयतीत्यर्चतिकर्मा। निघं० ३। १४ (त्वाम्) (यत्) यतः (अग्ने) अग्निरिव प्रकाशात्मन् (पशवः) गवादयः (समासते) सम्यगुपविशन्ति (समिद्धम्) प्रदीप्तम् (अपिशर्वरे) निश्चिते रात्रावन्धकारे ॥ ७ ॥

अन्वयः—हे अग्ने यद्ये मनुष्या अपिशर्वरे समिद्धमग्निं पशवइव त्वां समासते तेषां पाकायाग्निश्चिदिव तद्भद्रं तव दंसना छदयति ॥७॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—हे मनुष्या यथाऽरण्येऽग्नेरभितः स्थिताः पशवः सिंहादिभ्यो रक्षिता भवन्ति तथैव विद्वज्ज्ञानाश्रयो मनुष्यान् सर्वतो भयाद् रक्षति ॥ ७ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य तेजस्वि (यत्) जो मनुष्य (अपिशर्वरे) निश्चित अन्धकार रूप रात्रि में भी (समिद्धम्) प्रज्वलित अग्नि के निकट जैसे (पशवः) गौ आदि पशु शीत निवारणार्थ वैसे (त्वाम्) आप के निकट (समासते) बैठते हैं उन के (पाकाय) परिपक्व दृढ़ होने के लिये अग्नि के (चित्) तुल्य (तत्) उस (भद्रम्) कल्याणकारक बुद्धि से उत्पन्न ज्ञान को (तव) आप का (दंसना) दर्शन शास्त्र (छदयति) बढाता है ॥७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो जैसे वन में अग्नि के चारों ओर स्थित हुए पशु सिंह आदि से रक्षित होते हैं वैसे ही विद्वानों के ज्ञान का आश्रय मनुष्यों की सब ओर के भय से रक्षा करता है ॥ ७ ॥

पुनरीश्वर एव ध्येय इत्याह ॥

फिर ईश्वर का ही ध्यान करना चाहिये इस वि० ॥

आ जुहोत स्वध्वरं शीरं पावकशोचिषम्। आशुं दूतमजिरं प्रत्नमीड्यं श्रुष्टी देवं सपर्यत ॥ ८ ॥

आ । जुहोत । सुऽअध्वरम् । शीरम् । पावकऽशोचिषम् । आशुम् । दूतम् । अजिरम् । प्रत्नम् । ईड्यम् । श्रुष्टी । देवम् । सपर्यत ॥ ८ ॥

पदार्थः—(आ) समन्तात् (जुहोत) गृह्णीत । अत्र संहितायामिति दीर्घः (स्वध्वरम्) सुष्ठ्वहिंसनीयम् (शीरम्) विद्युद्रूपेण सर्वत्र शयानम् (पावकशोचिषम्) पवित्रकरदीप्तिम् (आशुम्) सद्योगामिनम् (दूतम्) दूतवद्देशान्तरे समाचारप्रापकम् (अजिरम्) गन्तारं प्रक्षेप्तारम् (प्रत्नम्) प्राक्तनम् (ईड्यम्) अध्यन्वेषणीयम् (श्रुष्टी) सद्यः (देवम्) दिव्यगुणकर्मस्वभावं सर्वानन्दप्रदम् (सपर्य्यत) परिचरत ॥ ८ ॥

अन्वयः—हे विद्वांसो यूयं स्वध्वरं शीरं पावकशोचिषमाशुं दूतमाजिरं प्रत्नमीड्यं विद्युदाख्यं वन्हिमाजुहोत तथैव स्वप्रकाशं सर्वत्र व्यापकं परमात्मानं देवं श्रुष्टी सपर्य्यत ॥ ८ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—हे मनुष्या यो विद्युद्वद् व्यापकः स्वप्रकाशोऽविद्यादिदोषहन्ता सनातनोऽनादिः प्रशंसनीयः परमात्माऽस्ति तमेव ध्यायत ॥ ८ ॥

पदार्थः—हे विद्वानो तुम लोग जैसे (स्वध्वरम्) हिंसा न करने योग्य (शीरम्) विद्युत् रूप से सब जगह भरे हुए (पावकशोचिषम्) शुद्ध प्रकाश वाले (आशुम्) शीघ्रगामी (दूतम्) दूत के तुल्य देशान्तर में समाचार पहुंचाने वाले (अजिरम्) फेंकने हारे (प्रत्नम्) प्राचीन (ईड्यम्) खोजने योग्य विद्युत् रूप अग्नि का (आ, जुहोत) अच्छे प्रकार ग्रहण करो वैसे ही स्वयं प्रकाश रूप सर्वत्र व्यापक (देवम्) उत्तम गुणकर्मस्वभावयुक्त सब आनन्द देने वाले परमात्मा की (श्रुष्टी) शीघ्र (सपर्यत) सेवा करो ॥ ८ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो जो बिजुली के तुल्य व्यापक स्वयं प्रकाश रूप अविद्यादि दोषों का नाश करने वाला सनातन अनादि काल से प्रशंसा करने योग्य परमात्मा है उसी का नित्य ध्यान करो ॥ ८ ॥

पुनरग्निः किं करोतीत्याह ॥
फिर अग्नि क्या करता है इस वि० ॥

त्रीणि शता त्री स॒हस्रा॑ण्य॒ग्निं त्रिं॒शच्च॑ दे॒वा नव॑ चासपर्य्यन् । औक्ष॑न् घृ॒तैरस्तृ॑णन् ब॒र्हिर॑स्मा आदिद्धोतां॑र॒ं न्य॑सादयन्त ॥ ९ ॥ व० ॥ ६ ॥

त्रीणि॑ । श॒ता । त्री । स॒हस्रा॑णि । अ॒ग्निम् । त्रिं॒शत् । च॒ । दे॒वाः । नव॑ । च॒ । अ॒स॒प॒र्य्य॒न् । औक्ष॑न् । घृ॒तैः । अस्तृ॑णन् । ब॒र्हिः । अ॒स्मै । आत् । इत् । होता॑रम् । नि । अ॒सा॒द॒य॒न्त ॥ ९ ॥ व० ६ ॥

पदार्थः—(त्रीणि) (शता) शतानि (त्री) त्रीणि (सहस्राणि) तत्वानि (अग्निम्) पावकम् (त्रिंशत्) (च) त्रयश्च (देवाः) पृथिव्यादयः (नव) हिरण्यगर्भादयः (च) (असपर्यन्) सेवन्ते (औक्षन्) सिञ्चन्ति (घृतैः) उदकैः (अस्तृणन्) (बर्हिः) (अस्मै) (आत्) आनन्तर्ये (इत्) एव (होतारम्) आदातारम् (नि) (असादयन्त) कार्य्येषु नियोजयत ॥ ९ ॥

अन्वयः—हे विद्वांसो यमग्निं त्रीणि शता त्री सहस्राणि त्रिंशच्च नव च देवा असपर्य्यन् घृतैरौक्षन्नस्मै बर्हिरस्तृणन्तमाद्धोतारमिदेव यूयं न्यसादयन्त ॥ ९ ॥

भावार्थः—हे मनुष्या भवन्तो यस्याश्रये त्रयस्त्रिंशत्सहस्राणि त्रीणि शतानि द्विचत्वारिंशच्च तत्वानि सन्ति य एकः सर्वान् विद्युद्रूपेण व्याप्नोति तेनाग्निना सर्वाणि कार्य्याणि साध्नुवन्तु ॥ ९ ॥

अत्राग्निमनुष्यादिगुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति वेद्यम् ॥

इति नवमं सूक्तं षष्ठो वर्गश्च समाप्तः ॥

पदार्थः—हे विद्वान् लोगो जिस (अग्निम्) अग्नि को (त्रीणि) तीन (शता) सैकड़े (त्री) तीन (सहस्राणि) हजार तत्त्व (च) और (त्रिंशत्) पृथिवी आदि तीश तथा तीन तेंतीश (च) और (नव) नौ हिरण्यगर्भादि (देवाः) दिव्य गुण वाले पदार्थ (असपर्यन्) सेवन करते (घृतैः) जलों से (औक्षन्) सींचते (अस्मै) इस अग्नि के लिये (बर्हिः) पदार्थ वृद्धि का (अस्तृणन्) विस्तार करते उस (आत्) विद्या प्राप्ति के पश्चात् (होतारम्) आदर करने वाले कार्य साधक (इत्) को ही तुम लोग (नि, असादयन्त) कार्य्यों में निरन्तर युक्त करो ॥ ९ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो जिस के आश्रय में तेंतीश हजार तीन सौ बयालीश तत्त्व हैं जो एक सब को विद्युत् रूप से व्याप्त है उस अग्नि के आश्रय से आप लोग सब कार्य्य सिद्ध करो ॥ ९ ॥

इस सूक्त में अग्नि और मनुष्यादि के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

॥ यह नवमां सूक्त और छठा वर्ग समाप्त हुआ ॥

अथ नवर्चस्य दशमस्य सूक्तस्य विश्वामित्र ऋषिः । अग्निर्देवता
१ । ५ । ८ विराडुष्णिक् । ३ उष्णिक् । ४ । ६ । ७ । ९
निचृदुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः । २ भुरिग्
गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अथेश्वरः किं करोतीत्याह ॥

अब नौ ऋचा वाले दशमें सूक्त का आरम्भ है इस के प्रथम
मन्त्र में ईश्वर क्या करता है इस विषय को कहते हैं ॥

त्वाम॑ग्ने मनी॒षिणः॑ स॒म्राजं॑ चर्षणी॒नाम् । दे॒वं
मर्ता॑स इन्धते॒ सम॑ध्व॒रे ॥ १ ॥

त्वाम् । अ॒ग्ने॒ । म॒नी॒षिणः॑ । स॒म्ऽराज॑म् । च॒र्ष॒णी॒नाम् ।
दे॒वम् । मर्ता॑सः । इ॒न्ध॒ते॒ । सम् । अ॒ध्व॒रे ॥ १ ॥

पदार्थः—(त्वाम्) अग्निरिव वर्त्तमानं परमात्मानम् (अग्ने)
स्वप्रकाशस्वरूप (मनीषिणः) मनस ईषिणः । अत्र शकन्ध्वादिना
पररूपम् (सम्राजम्) सम्राडिव वर्त्तमानम् (चर्षणीनाम्) मनुष्यादि
प्रजानाम् (देवम्) सर्वसुखदातारम् (मर्त्तासः) मनुष्याः (इन्धते)
प्रकाशयन्ति (सम्) (अध्वरे) अहिंसनीये धर्म्ये व्यवहारे ॥१॥

अन्वयः—हे अग्ने जगदीश्वर मनीषिणो मर्त्तासो यं चर्षणीनां
सम्राजं देवं त्वामध्वरे समिन्धते तमेव वयमभ्युपासीमहि ॥ १ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यथाऽग्निः सूर्य्यादिरूपेण सर्वं जग-
त्प्रकाश्योपकृत्याऽऽनन्दयति तथैव परमात्माऽन्तर्यामिरूपेण जिज्ञा-
सूनां योगिनामात्मनो विशेषतः सामान्यतः सर्वेषां च प्रकाश्यजगत्स्थैर-
सङ्ख्यैः पदार्थैरुपकृत्याऽभ्युदयनिःश्रेयससुखदानेन सदैव सुखयति॥१॥

पदार्थः—हे (अग्ने) स्वयं प्रकाशरूप जगदीश्वर (मनीषिणः) मननशील (मर्त्तासः) मनुष्य जिन (चर्षणीनाम्) मनुष्यादि प्रजाओं के (सम्राजम्) सम्यक् न्यायाधीश राजा (देवम्) सब सुख देने वाले (त्वाम्) आप को (अध्वरे) रक्षणीय धर्मयुक्त व्यवहार में (सम्, इन्धते) सम्यक् प्रकाशित करते हैं । उन्हीं आप की हम भी उपासना करें ॥ १ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे अग्नि सूर्य्यादि रूप से सब जगत् को प्रकाशित और उपकृत कर आनन्दित करता है वैसे ही परमात्मा अन्तर्यामी रूप से जिज्ञासु योगी लोगों के आत्माओं को विशेष और सामान्य से सब के आत्माओं को प्रकाशित कर और जगत् के असंख्य पदार्थों से उपकृत कर इस लोक पर लोक के सुख देने से सदैव सुखी करता है ॥ १ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

त्वां यज्ञेष्वृत्विजमग्ने होतारमीळते । गोपा ऋतस्य दीदिहि स्वे दमे ॥ २ ॥

त्वाम् । यज्ञेषु । ऋत्विजम् । अग्ने । होतारम् । ईळते । गोपाः । ऋतस्य । दीदिहि । स्वे । दमे ॥ २ ॥

पदार्थः—(त्वाम्) (यज्ञेषु) पूजनीयेषु व्यवहारेषु वा (ऋत्विजम्) ऋत्विग्वत्सुखसाधकम् (अग्ने) अविद्यादोषप्रदाहकपरात्मन् (होतारम्) सर्वस्य धर्त्तारम् (ईळते) स्तुवन्ति (गोपाः) रक्षकाः (ऋतस्य) सत्यस्य (दीदिहि) प्रकाशय (स्वे) स्वकीये (दमे) दमनशीले व्यवहारे ॥ २ ॥

अन्वयः—हे अग्ने जगदीश्वर य ऋतस्य गोपा यज्ञेष्वृत्विजं होतारं यं त्वामीळते स त्वं स्वे दमे तान् दीदिहि ॥ २ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—हे परमेश्वर ये सत्यभाषणादिलक्षणं धर्ममनुष्ठायाऽसत्यभाषणादिलक्षणमधर्मं विहाय त्वां भजन्ति ते भवन्तं प्राप्य सदाऽऽनन्दिता इह वसन्ति ॥ २ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अविद्यादि दोषों के नाशक जगदीश्वर जो (ऋतस्य) सत्य के (गोपाः) रक्षक विद्वान् लोग (यज्ञेषु) अच्छे व्यवहारों वा यज्ञों में (ऋत्विजम्) ऋत्विज् के तुल्य सुखसाधक (होतारम्) सब के धारण करने हारे (त्वाम्) आप की (ईडते) स्तुति करते हैं सो आप (स्वे) अपने (दमे) नियम रूप व्यवहार में उन विद्वानों को (दीदिहि) विज्ञान दान दीजिये ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो लोग सत्य भाषणादि धर्म का अनुष्ठान कर और असत्य भाषणादि रूप अधर्म को छोड़ के आप का भजन करने हैं वे आप को प्राप्त होके सदा आनन्दित हुए इस संसार में वसते हैं ॥ २ ॥

अथ मनुष्याः कथं सुखानि लभेरन्नित्याह ॥

अब मनुष्य कैसे सुखों को प्राप्त हों इस वि० ॥

स घा यस्ते ददाशति समिधा जातवेदसे ।
सो अग्ने धत्ते सुवीर्यं स पुष्यति ॥ ३ ॥

सः । घ । यः । ते । ददाशति । सम्ऽइधा । जातऽवेदसे ।
सः । अग्ने । धत्ते । सुऽवीर्यम् । सः । पुष्यति ॥ ३ ॥

पदार्थः—(सः)(घ) एव । अत्र ऋचितुनुघेति दीर्घः (यः) (ते) तुभ्यम् (ददाशति) (समिधा) सम्यक् प्रदीपकेनेन्धनेन सुविज्ञानेन वा (जातवेदसे) जातेषु पदार्थेषु विद्यमानाय जातप्रज्ञानाय वा (सः) (अग्ने) सर्वस्य प्रकाशक (धत्ते) धरति (सुवीर्यम्) शोभनं विज्ञानादि धनं पराक्रमं वा (सः) (पुष्यति) सर्वतः पुष्टो भवति ॥ ३ ॥

अन्वयः—हे अग्ने यस्समिधा जातवेदसे त आत्मानं ददाशति स घ सुवीर्य्यं धत्ते स पुष्यति सोऽन्यान् पोषयति च ॥ ३ ॥

भावार्थः—यथा प्राणिनोऽग्नौ घृतादिकं प्रक्षिप्य वाय्वादिशुद्धि द्वारा सर्वाऽऽनन्दं प्राप्नुवन्ति तथैव विद्वांसः परमात्मनि स्वात्मनः समर्प्याऽखिलानि सुखानि लभन्ते ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) सब के प्रकाशक जन (यः) जो (समिधा) सम्यक् प्रकाशक इन्धन वा सुन्दर विज्ञान से (जातवेदसे) उत्पन्न हुए पदार्थों में विद्यमान वा बुद्धि को प्राप्त हुए (ते) आप के लिये आत्मा अपने स्वरूप को (ददाशति) देता प्राप्त कराता है (सः, घ) वही (सुवीर्य्यम्) सुन्दर विज्ञानादि धन वा पराक्रम को (धत्ते) धारण करता (सः) वह (पुष्यति) सब ओर से पुष्ट होता और (सः) वह दूसरों को पुष्ट करता है ॥ ३ ॥

भावार्थः—जैसे प्राणी अग्नि में घृतादि उत्तम द्रव्य का होम कर वायु आदि की शुद्धि होने से सब आनन्द को प्राप्त होते हैं वैसे ही विद्वान् लोग परमात्मा में अपने आत्मा का समर्पण कर समस्त सुखों को प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥

अथोपदेशककृत्यमाह ॥

अब उपदेशक का कर्त्तव्य कहते हैं ॥

स केतुरध्वराणामग्निर्देवेभिरागमत् । अञ्जानः सप्त होतृभिर्हविष्मते ॥ ४ ॥

सः । केतुः । अध्वराणाम् । अग्निः । देवेभिः । आ । अगमत् । अञ्जानः । सप्त । होतृऽभिः । हविष्मते ॥ ४ ॥

पदार्थः—(सः) (केतुः) ध्वज इव प्रज्ञापकः (अध्वराणाम्) अहिंसामयानां यज्ञानाम् (अग्निः) पावकइव (देवेभिः) दिव्य गुणैः

पदार्थैरिव विद्वद्भिः (आ) (अगमत्) आगच्छेत् (अञ्जानः) प्रसिद्धो दिव्यान् गुणान् प्रकटी कुर्वन् (सप्त) सप्तभिः पञ्चप्राणमनोबुद्धिभिः (होतृभिः) आदातृभिः (हविष्मते) प्रशस्तानि हवींषि दातव्यानि यस्य तस्मै ॥ ४ ॥

अन्वयः—हे विद्वन् यथा स केतुरञ्जानोऽग्निर्देवेभिः सप्त होतृभिः सहाऽध्वराणां हविष्मत आगमत्तथा त्वमागच्छ ॥ ४ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यथा विज्ञाय संसेवितोऽग्निर्दिव्यान् गुणान् प्रयच्छति तथैव सेवित्वा आप्ता विद्वांसोऽहिंसादिलक्षणं धर्मं विज्ञाप्य दिव्यानि सुखानि श्रोतृभ्यो ददति ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् पुरुष जैसे (सः) वह (केतुः) ध्वजा के तुल्य प्रज्ञापक (अञ्जानः) दिव्य गुणों को प्रकट करता हुआ प्रसिद्ध (अग्निः) अग्नि (देवेभिः) दिव्य गुणों वाले पदार्थों के तुल्य विद्वानों और (होतृभिः) ग्रहण करने हारे (सप्त) पांच प्राण मन और बुद्धि के साथ (अध्वराणाम्) अहिंसारूप यज्ञों के सम्बन्धी (हविष्मते) प्रशस्त देने योग्य पदार्थों वाले जन के लिये (आ, अगमत्) आवे प्राप्त होवे अर्थात् अग्निविद्यायुक्त होवे वैसे तू प्राप्त हो ॥ ४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे विज्ञान कर सम्यक् सेवन किया अग्नि दिव्य गुणों को देता है वैसे ही सेवन किये आप्त विद्वान् जन अहिंसादि रूप धर्म को जता कर श्रोताओं के लिये दिव्य सुखों को देते हैं ॥४॥

अथाध्यापकविद्वत्कृत्यमाह ॥

अब अध्यापक और विद्वान् के कर्त्तव्य को कहते हैं ॥

प्र होत्रे पूर्व्यं वचोऽग्नये भरता बृहत् । विपां ज्योतींषि बिभ्रते न वेधसे ॥ ५ ॥ व० ७ ॥

प्र । होत्रे । पूर्व्यम् । वचः । अग्नये । भरत । बृहत् ।
विपाम् । ज्योतींषि । बिभ्रते । न । वेधसे ॥ ५ ॥ व० ७ ॥

पदार्थः—(प्र) (होत्रे) आदात्रे (पूर्व्यम्) पूर्वैर्विद्वद्भिरुपदिष्टम् (वचः) वचनम् (अग्नये) पावकाय (भरत) धरत । अत्र संहितायामिति दीर्घः (बृहत्) महदर्थयुक्तम् (विपाम्) मेधाविनाम् । अत्र वाच्छन्दसीति नुडभावः (ज्योतींषि) विद्यातेजांसि (बिभ्रते) धर्त्रे (न) इव (वेधसे) मेधाविने ॥ ५ ॥

अन्वयः—हे विद्वांसो होत्रेऽग्नये विपां ज्योतींषि न बिभ्रते वेधसे बृहत्पूर्व्यं वचः प्रभरत ॥ ५ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालं०—यथा याजका यज्ञाय घृतादीन् पदार्थान् गृहीत्वा सुसंस्कृतान्नैरग्निं वर्द्धयन्ति तथैवाध्यापकाः साङ्गोपाङ्गाः सर्वा विद्या धृत्वा विद्यार्थिनः श्रोतॄँश्च तर्प्पयेयुः ॥ ५ ॥

पदार्थः—हे विद्वज्जनो (होत्रे) ग्रहण करने वाले (अग्नये) अग्नि के (न) समान (विपाम्) उत्तम बुद्धि वालों के (ज्योतींषि) विद्या रूप तेजों को (बिभ्रते) धारण करते हुए (वेधसे) बुद्धिमान् के लिये (बृहत्) महत् प्रयोजन वाले (पूर्व्यम्) प्राचीन विद्वानों से उपदेश किये हुए (वचः) वचन को (प्र, भरत) उपदेश कीजिये ॥ ५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जैसे यज्ञ करने वाले यज्ञ के लिये घृत आदि पदार्थों से उत्तम प्रकार पूर्वक पकाये हुए अन्नों से अग्नि की वृद्धि करते हैं वैसे ही अध्यापक पुरुष अंग और उपांगों के सहित सम्पूर्ण विद्याओं के प्रचार से विद्यार्थी और श्रोतृ जनों को तृप्त करें ॥ ५ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

अग्निं वर्द्धन्तु नो गिरो यतो जायंत उक्थ्यः ।
महे वाजाय द्रविणाय दर्शतः ॥ ६ ॥

अग्निम् । वर्द्धन्तु । नः । गिरः । यतः । जायते । उक्थ्यः ।
महे । वाजाय । द्रविणाय । दर्शतः ॥ ६ ॥

पदार्थः—(अग्निम्) पावकमिव (वर्धन्तु) वर्द्धयन्तु । अत्र व्यत्ययेन परस्मैपदं णिजर्थोऽन्तर्गतः (नः) अस्माकम् (गिरः) सुशिक्षिता वाचः (यतः) (जायते) (उक्थ्यः) प्रशासितो-योग्यो विद्वान् (महे) महते (वाजाय) विज्ञानाय (द्रविणाय) ऐश्वर्य्याय (दर्शतः) द्रष्टुं योग्यः ॥ ६ ॥

अन्वयः—हे विद्वांसो भवन्तः समिद्भिरग्निमिव नो गिरो वर्द्धन्तु यतो महे वाजाय द्रविणाय दर्शत उक्थ्यो जायते ॥ ६ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—अध्यापकोपदेशकैस्तथा प्रयत्नो विधेयो यथाऽध्येतॄणां श्रोतॄणाञ्च सुशिक्षाविद्यासभ्यता वर्धेरन् श्रीमन्तश्च स्युः ॥ ६ ॥

पदार्थः—हे विद्वज्जनो आप लोग जैसे समिधों से (अग्निम्) अग्नि बढ़ता है वैसे (नः) हम लोगों की (गिरः) उत्तम प्रकार से शिक्षित वाणियों को (वर्धन्तु) वृद्धि करें (यतः) जिस से (महे) श्रेष्ठ (वाजाय) विज्ञान और (द्रविणाय) ऐश्वर्य के लिये (दर्शतः) देखने और (उक्थ्यः) प्रशंसा करने योग्य विद्वान् पुरुष (जायते) प्रकट होता है ॥ ६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—अध्यापक और उपदेशक पुरुषों को ऐसा प्रयत्न करना चाहिये जिस से कि पढ़ने और सुनने वाले जनों की उत्तम शिक्षा विद्या और सभ्यता बढ़े और वे धनवान् होवें ॥ ६ ॥

पुनर्विद्वत्कृत्यमाह ॥

फिर विद्वान् के कृत्य को कहते हैं ॥

अग्ने यजिष्ठो अध्वरे देवान् देवयते यज ।
होता मन्द्रो वि राजस्यति स्रिधः ॥ ७ ॥

अग्ने । यजिष्ठः । अध्वरे । देवान् । देवऽयते । यज ।
होता । मन्द्रः । वि । राजसि । अति । स्रिधः ॥ ७ ॥

पदार्थः—(अग्ने) पावकवद्वर्त्तमान (यजिष्ठः) अतिशयेन यष्टा (अध्वरे) अहिंसामये यज्ञे (देवान्) दिव्यान् गुणान् (देवयते) दिव्यान् गुणकर्मस्वभावान् कामयमानाय (यज) सङ्गमय (होता) दाता (मन्द्रः) आह्लादकः (वि) (राजसि) विशेषेण प्रकाशसे (अति) उल्लङ्घने (स्रिधः) विद्यादिसद्व्यवहारविरोधिनः ॥ ७ ॥

अन्वयः—हे अग्ने होता मन्द्रो यजिष्ठस्त्वमध्वरे देवयते देवान् यज यतोऽतिस्रिधो निवार्य्य विराजसि तस्मात्सत्कर्त्तव्योऽसि ॥७॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यथाऽग्निः संप्रयुक्तः शिल्पादिव्यवहारान् संसाध्य दारिद्र्यं विनाशयति तथैव सेविता विद्वांसो विद्योन्नतिं संसाध्याऽविद्यादिकुसंस्कारान् विनाशयन्ति ॥ ७ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य वर्त्तमान (होता) देनें हारे (मन्द्रः) प्रसन्न करने तथा (यजिष्ठः) अतिशय यज्ञ करने वाले आप (अध्वरे) अहिंसारूप यज्ञ में (देवयते) दिव्य गुण कर्म स्वभावों की कामना करने वाले के लिये (देवान्) उत्तम गुणों को (यज) संयुक्त कीजिये जिस से (अति) (स्त्रिधः) विद्या आदि उत्तम व्यवहार के विरोधी पुरुषों को उत्तम अधिकारों से पृथक् करके (वि) (राजसि) अत्यन्त प्रकाशित होते हो इस से उत्तम सत्कार करने योग्य हैं ॥ ७ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे अग्नि उत्तम प्रकार से यन्त्रों में संयुक्त किया हुआ शिल्पविद्या आदि व्यवहारों की सिद्धि करके दारिद्र्य का नाश करता है वैसे ही पूजित हुए विद्वान् पुरुष विद्या का प्रचार करके अविद्या आदि दुष्ट स्वभावों का नाश करते हैं ॥ ७ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

स नः पावक दीदिहि द्युमदस्मे सुवीर्य्यम् ।
भवा स्तोतृभ्यो अन्तमः स्वस्तये ॥ ८ ॥

सः । नः । पावक । दीदिहि । द्युऽमत् । अस्मेऽइति । सुऽवीर्य्यम् । भव । स्तोतृऽभ्यः । अन्तमः । स्वस्तये ॥ ८ ॥

पदार्थः—(सः) (नः) अस्मान् (पावक) वह्निवत्पवित्रकारक (दीदिहि) प्रकाशय (द्युमत्) प्रशस्तविज्ञानयुक्तम् (अस्मे) अस्मभ्यम् (सुवीर्य्यम्) शोभनं धनम् (भव)। अत्र द्व्यचोतस्तिङ इति दीर्घः (स्तोतृभ्यः) विद्याप्रचारकेभ्यः (अन्तमः) समीपस्थः (स्वस्तये) सुखप्राप्तये ॥ ८ ॥

अन्वयः—हे पावक विद्वन् त्वं स्तोतृभ्योऽस्मे द्युमत्सुवीर्य्यं देहि स त्वं नो दीदिहि स्वस्तयेऽन्तमो भव ॥ ८ ॥

भावार्थः—विद्वद्भिः स्वयं पवित्रैरन्ये विद्यासुशिक्षाभ्यां पवित्राः सम्पादनीया यतः सर्वे सखायः सन्तः सुखाय प्रभवेयुः ॥ ८ ॥

पदार्थः—हे (पावक) अग्नि के तुल्य पवित्रकारक विद्वान् पुरुष आप (स्तोतृभ्यः) विद्याओं के प्रचार करने वाले (अस्मे) हम लोगों को (द्युमत्) प्रशंसा करने योग्य सद्विद्या के विज्ञान से युक्त (सुवीर्य्यम्) श्रेष्ठ धन दीजिये (सः) वह आप (नः) हम लोगों को (दीदिहि) प्रकाशित करो (स्वस्तये) सुख प्राप्ति के लिये (अन्तमः) समीप में वर्त्तमान (भव) हूजिये ॥ ८ ॥

भावार्थः—विद्वज्जन जो कि स्वयं पवित्र हैं उन को चाहिये कि औरों को भी विद्या और उत्तम शिक्षा से पवित्र करें जिस से सम्पूर्ण पुरुष मित्र हो कर सुख करने के लिये समर्थ हों ॥ ८ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

तन्त्वा विप्रा विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते ।
हव्यवाहममर्त्यं सहोवृधम् ॥ ९ ॥ व० ८ ॥

तम् । त्वा । विप्राः । विपन्यवः । जागृवांसः । सम् । इन्धते । हव्यऽवाहम् । अमर्त्यम् । सहःऽवृधम् ॥९॥ व०८॥

पदार्थः—(तम्) सर्वविद्याप्रकाशकमनूचानम् (त्वा) त्वाम् (विप्राः) मेधाविनः (विपन्यवः) विशेषेण प्रशंसिताः (जागृवांसः) अविद्यानिद्रात उत्थिता विद्यायां जागरूकाः (सम्)

(इन्धते) प्रदीपयन्ति (हव्यवाहम्) दातव्यविज्ञानप्रापकम् (अमर्त्यम्) मर्त्यस्य स्वभावराहित्येन देवस्वभावम् (सहोवृधम्) यः सहसा बलेन वर्धते बलस्य वर्धकं वा ॥ ९ ॥

अन्वयः—हे आप्त विद्वन् ये जागृवांसो विपन्यवो विप्रास्तं हव्यवाहममर्त्यं सहोवृधं त्वा समिन्धते तान् भवान् सर्वतश्शुभैर्गुणैः प्रकाशयतु ॥ ९ ॥

भावार्थः—विद्वांस एव विदुषां श्रमं ज्ञातुं शक्नुवन्ति नेतरे विद्वांसो विदुष एव सत्कुर्वन्तु न मूढानिति ॥ ९ ॥

अत्राग्निपरमात्मविद्वद्गुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिर्वेद्या॥

इति दशमं सूक्तमष्टमो वर्गश्च समाप्तः ॥

पदार्थः—हे सत्य कहने वाले विद्वान् पुरुष जो लोग (जागृवांसः) अविद्यारूप निद्रा से उठे विद्या में जागते हुए और (विपन्यवः) विशेष प्रकार से प्रशंसा किये गये (विप्राः) बुद्धिमान् जन (तम्) उन सम्पूर्ण विद्याओं के प्रकाश करने वाले वक्ता (हव्यवाहम्) देने के योग्य विज्ञान के दाता (अमर्त्यम्) मनुष्य के स्वभाव से रहित होने से देवता स्वभाव वाले (सहोवृधम्) बल से बढ़ते वा बल को बढ़ाने वाले (त्वा) आप को (सम्, इन्धते) प्रकाशित करते हैं उन को आप सब ओर से शुभ गुणों के साथ प्रकाशित कीजिये ॥ ९ ॥

भावार्थः—विद्वान् ही लोग विद्वानों के परिश्रम को जान सकते हैं अन्य जन नहीं इस से विद्वज्जन विद्वान् पुरुषों ही का सत्कार करें मूर्खों का नहीं ॥९॥

इस सूक्त में अग्नि, परमात्मा और विद्वान् के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछिले सूक्त के अर्थ के साथ संगति है यह जानना चाहिये॥

यह दशवां सूक्त और आठवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

अथ नवर्चस्यैकादशसूक्तस्य विश्वामित्र ऋषिः । अग्निर्देवता । १ । २ । ५ । ७ । ८ निचृद्गायत्री ३ । ३ विराड् गायत्री ४ । ६ गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अथाऽग्न्यादिदृष्टान्तेन विद्वांसः किं कुर्युरित्याह ॥

अब ग्यारहवें सूक्त का आरम्भ है इस के प्रथम मन्त्र से अग्न्यादि के दृष्टान्त से विद्वान् लोग क्या करें इस वि० ॥

अग्निर्होता पुरोहितोऽध्वरस्य विचर्षणिः । स वेद यज्ञमानुषक् ॥ १ ॥

अग्निः । होता । पुरःऽहितः । अध्वरस्य । विऽचर्षणिः । सः । वेद । यज्ञम् । आनुषक् ॥ १ ॥

पदार्थः—(अग्नि) वह्निः (होता) दाता (पुरोहितः) सर्वेषां हितसाधकः (अध्वरस्य) अहिंसनीयस्य यज्ञस्य (विचर्षणिः) प्रकाशकः (सः) (वेद) (यज्ञम्) (आनुषक्) आनुकूल्येन वर्त्तमानः ॥ १ ॥

अन्वयः—यो मनुष्योऽध्वरस्य विचर्षणिर्होता पुरोहितोऽग्निरिव भवति स आनुषक् यज्ञं वेद ॥ १ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—ये ब्रह्मचर्यविद्यादि सद्गुणग्रहणानुकूला भवन्ति तएवाऽग्न्यादिपदार्थान् विज्ञाय सृष्टौ प्रशंसितकर्माणः सन्ति ॥ १ ॥

पदार्थः—जो मनुष्य (अध्वरस्य) जिस में हिंसा न हो ऐसे कर्म का (विचर्षणिः) प्रकाश कर्त्ता (होता) दानकारक (पुरोहितः) सब जीवों के हित करने वाले (अग्निः) अग्नि के सदृश होता है (सः) वह (आनुषक्) अनुकूलता से वर्त्तता हुआ (यज्ञम्) विधि यज्ञादि कर्म को (वेद) जानता है ॥ १ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो पुरुष ब्रह्मचर्य और विद्या आदि उत्तम गुणों के ग्रहण करने में तत्पर होते हैं वे ही अग्नि आदि पदार्थों को जान कर अर्थात् शिल्प विद्या में निपुण हो कर संसार में प्रशंसा होने योग्य कर्म करने वाले होते हैं ॥ १ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥
फिर उसी वि० ॥

स हव्यवाळमर्त्य उशिग्दूतश्चनोहितः । अग्निर्धिया समृण्वति ॥ २ ॥

सः । हव्यऽवाट् । अमर्त्यः । उशिक् । दूतः । चनःऽहितः । अग्निः । धिया । सम् । ऋण्वति ॥ २ ॥

पदार्थः—(सः) (हव्यवाट्) यो हव्यान् दातुमर्हाणि वस्तूनि वहति प्राप्नोति (अमर्त्यः) मरणधर्मरहितः (उशिक्) कामयमानः (दूतः) अविद्यायाः पारे विद्यायां गमयिता (चनोहितः) चनःस्वन्नादिषु हितो हितकारी (अग्निः) पावकइव (धिया) कर्मणा प्रज्ञया वा (सम्) (ऋण्वति) गच्छति जानाति वा ॥२॥

अन्वयः—योऽग्निरिव हव्यवाडमर्त्य उशिग्दूतश्चनोहितो विद्वान् धिया समृण्वति स एवास्माञ्छिक्षयितुं शक्नोति ॥ २ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यथाऽग्निः स्वकर्मणा दूतवत् कार्य्याणि साध्नोति तथैव विद्वांसो राजकार्य्यादीनि साद्धुं शक्नुवन्ति ॥२॥

पदार्थः—जो पुरुष (अग्निः) अग्नि के तुल्य तेजस्वी (हव्यवाट्) ग्रहण करने योग्य हवन सामग्री को प्राप्त (अमर्त्यः) मरणरूप धर्म से रहित (उशिक्) कामना करता हुआ (दूतः) अविद्या आदि से पृथक् दूर विद्या को प्राप्त

कराने वाला (चनोहितः) अन्नादिकों में वृद्धिरूप हित कर्म करने वाला विद्वान् पुरुष (धिया) सुकर्म से वा उत्तम बुद्धि से (सम्) (ऋण्वति) चलता वा श्रेष्ठ बुद्धि युक्त होकर उन कर्मों को जानता है (सः) वही पुरुष हम लोगों को शिक्षा कर सकता है ॥ २ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे अग्नि अपने व्यापार से दूत के सदृश कार्य्यों को सिद्ध करता है वैसे ही विद्वान् लोग राज्य के कार्य्य आदिकों को सिद्ध कर सकते हैं ॥ २ ॥

मनुष्यैः के सेवनीया इत्याह ॥

मनुष्यों को किन का सेवन करना चाहिये इस वि० ॥

अ॒ग्निर्धि॒या स चे॑तति के॒तुर्य॒ज्ञस्य॑ पू॒र्व्यः। अर्थं॒ ह्य॑स्य त॒रणि॑ ॥ ३ ॥

अ॒ग्निः। धि॒या। सः। चे॒त॒ति॒। के॒तुः। य॒ज्ञस्य॑। पू॒र्व्यः। अर्थ॑म्। हि। अ॒स्य॒। त॒रणि॑ ॥ ३ ॥

पदार्थः—(अग्निः) पावकइव (धिया) क्रियया प्रज्ञया वा (सः) (चेतति) संजानीते संज्ञापयति वा (केतुः) प्रज्ञापकः (यज्ञस्य) विद्वत्सत्कारादेर्व्यवहारस्य (पूर्व्यः) पूर्वेषु विद्वत्सु कुशलः (अर्थम्) प्रयोजनम् (हि) यतः (अस्य) (तरणि) सन्तारकः। अत्र सुपांसुलुगिति सुलुक् ॥ ३ ॥

अन्वयः—यो विद्वानग्निरिव केतुस्तरणि पूर्व्यो धिया ह्यस्य यज्ञस्यार्थं चेतति तस्मात्स सेव्योऽस्ति ॥ ३ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—हे मनुष्या ये विद्यामयं यज्ञं यथावज्जानन्ति तानेव विद्यावृद्धये सेवध्वम् ॥ ३ ॥

पदार्थः—जो विद्वान् पुरुष (अग्निः) अग्नि के सदृश तेजस्वी (केतुः) उपदेश द्वारा बुद्धि का प्रकाश करने तथा (तरणि) सद्विद्या से दुःख का छुड़ाने वाला (पूर्व्यः) प्राचीन विद्वानों में चतुर (धिया) कर्म से वा बुद्धि से (हि) जिस कारण से (अस्य) इस (यज्ञस्य) विद्वानों के सत्काररूप व्यवहार को (अर्थम्) प्रयोजन को (चेतति) उत्तम प्रकार जानता वा अन्यों को जनाता है इस से (सः) वह सेवा करने योग्य है ॥ ३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो जो पुरुष विद्या रूप यज्ञ को उत्तम प्रकार से जानते हैं उन्हीं पुरुषों की विद्या की उन्नति होने के लिये सेवा करो ॥ ३ ॥

अथ सन्तानशिक्षाविषयमाह ॥

अब सन्तानों की शिक्षा वि० ॥

अग्निं सूनुं सनश्रुतं सहसो जातवेदसम् । वह्निं देवा अकृण्वत ॥ ४ ॥

अग्निम् । सूनुम् । सनऽश्रुतम् । सहसः । जातऽवेदसम् । वह्निम् । देवाः । अकृण्वत ॥ ४ ॥

पदार्थः—(अग्निम्) पावकमिव तेजस्विनम् (सूनुम्) अपत्यवत्सेवकम् (सनश्रुतम्) यः सनातनानि शास्त्राणि शृणोति तम् (सहसः) प्रशस्तबलयुक्तस्य (जातवेदसम्) प्राप्तविद्यम् (वह्निम्) सद्गुणानां वोढारम् (देवाः) विद्वांसः (अकृण्वत) कुर्वन्तु ॥ ४ ॥

अन्वयः—हे विद्वांसः स्वयं देवाः सन्तो भवन्तः सहसः सूनुं वह्निं सनश्रुतं जातवेदसमग्निमिवाऽकृण्वत ॥ ४ ॥

भावार्थः—विद्वद्भिः स्वापत्यवदन्यापत्यानि विदित्वा प्रेम्णा विद्यायुक्तानि बहुश्रुतानि कृत्वाऽऽनन्दयितव्यानि ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे विद्वानो स्वयं (देवाः) विद्वान् हुए आप लोग (सहसः) प्रशंसा करने योग्य विद्या बल वाले के (सूनुम्) पुत्र के सदृश सेवा करने (वह्निम्) अच्छे ही गुणों को धारण करने और (सनश्रुतम्) सनातन शास्त्रों को श्रवण करने वाले (जातवेदसम्) विद्या से युक्त जिज्ञासु को (अग्निम्) अग्नि के समान तेजस्वी (अकृण्वत) करो ॥ ४ ॥

भावार्थः—विद्वान् लोगों को चाहिये कि अपने पुत्रों के सदृश और लोगों के पुत्रों को समझ कर स्नेह से विद्या युक्त और बहुत शास्त्रों को सुनने वाले अर्थात् जिन्हों ने बहुत शास्त्र सुने हों ऐसे करके आनन्द सहित करें ॥ ४ ॥

पुनर्विद्वांसः किं कुर्य्युरित्याह ॥
फिर विद्वान् लोग क्या करें इस वि० ॥

अदा॑भ्यः पुरए॒ता वि॒शाम॒ग्निर्मानु॑षीणाम् । तूर्णी॒ रथः॒ सदा॒ नवः॑ ॥ ५ ॥ व० ९ ॥

अदा॑भ्यः । पु॒रः॒ऽए॒ता । वि॒शाम् । अ॒ग्निः । मानु॑षीणाम् । तूर्णि॑ः । रथः॑ । सदा॑ । नवः॑ ॥ ५ ॥ व० ९ ॥

पदार्थः—(अदाभ्यः) हिंसितुमनर्हः (पुरएता) यः पुर एति सः (विशाम्) प्रजानाम् (अग्निः) पावकइव (मानुषीणाम्) मनुष्यसम्बन्धिनीनाम् (तूर्णिः) सद्यो गामी (रथः) उत्तमं यानम् (सदा) सर्वस्मिन् काले (नवः) नूतनः ॥ ५ ॥

अन्वयः—विद्वान् तूर्णिर्नवो रथइवाऽग्निरिव मानुषीणां विशां सदाऽदाभ्यः पुरएता भवेत् ॥ ५ ॥

भावार्थः–अत्र वाचकलु०–विद्वांसो यथा शीघ्रगामिना नवेन रथेन सद्योऽभीष्टं स्थानं गच्छति तथैव निर्वैरा भूत्वा सर्वानभीष्टाः सद्विद्याः सद्यः प्रापय्य कृतकृत्यान् संपादयेयुः॥ ५॥

पदार्थः—विद्वान् पुरुष (तूर्णिः) शीघ्र चलने वाला और (नवः) नवीन (रथः) उत्तम सवारी और (अग्निः) अग्नि के सदृश प्रकाशित (मानुषीणाम्) मनुष्य संबन्धिनी (विशाम्) प्रजाओं की (सदा) सब काल में (अदाभ्यः) परस्पर हिंसा का वारण कर्त्ता और (पुरएता) अग्रगामी होवे॥ ५॥

भावार्थः–इस मंत्र में वाचकलु०—विद्वान् लोग जैसे शीघ्रगामी नवीन रथ से शीघ्र अपने वांछित स्थान को कोई एक मनुष्य पहुंचता है वैसे वैर को त्याग के सब लोगों को अपनी इच्छानुकूल सद्विद्याओं की शीघ्र शिक्षा देकर उन का जन्म सफल करें॥ ५॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥
फिर उसी वि०॥

साह्वान्विश्वा अभियुजः क्रतुर्देवानाममृक्तः।
अग्निस्तुविश्रवस्तमः॥ ६॥

सह्वान्। विश्वाः। अभिऽयुजः। क्रतुः। देवानाम्। अमृक्तः। अग्निः। तुविश्रवःऽतमः॥ ६॥

पदार्थः—(साह्वान्) षोढा। अत्र दाश्वान्साह्वान्मीढ्वाँश्चेति निपातनात् सिद्धिः (विश्वाः) अखिलाः (अभियुजः) या आभिमुख्येन युज्यन्ते ताः प्रजाः (क्रतुः) प्राज्ञः (देवानाम्) विदुषां मध्ये (अमृक्तः) अन्यैरहिंस्यः (अग्निः) पावकइव शुद्धस्वरूपः (तुविश्रवस्तमः) अतिशयेन बहुश्रुतः॥ ६॥

अन्वयः-हे मनुष्या योऽमृक्तः साह्वान् क्रतुरग्निरिव शुद्धस्तुविश्रवस्तमो देवानां विश्वा अभियुजः प्रजाः सर्वतो रक्षति सएव सर्वैः प्रजाजनैः सत्कर्त्तव्यः॥ ६॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यः कञ्चन न हिनस्ति तं कोपि हिंसितुं नेच्छति यो बहूनि शास्त्राण्यध्येतुं वा श्रोतुमिच्छति स प्राज्ञतमो जायते यो यादृशेन भावेन प्रजायां वर्त्तते तं प्रति प्रजाअपि तादृशेन भावेनाभियुङ्क्ते॥ ६॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (अमृक्तः) जो कि औरों से न मारा जा सकै (साह्वान्) क्रोध रहित (क्रतुः) बुद्धिमान् और (अग्निः) अग्नि के सदृश शुद्ध स्वभाव वाला (तुविश्रवस्तमः) अतिशय कर बहुत शास्त्रों को जिस ने सुना हो (देवानाम्) पण्डितों के बीच में (विश्वाः) संपूर्ण (अभियुजः) अपने अनुकूल व्यवहार करने वाली प्रजाओं की सब प्रकार रक्षा करता है वही सब प्रजाजनों से सत्कार पाने योग्य है॥ ६॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जो किसी को नहीं मारता उस को मारने की कोई इच्छा नहीं करता जो पुरुष बहुत शास्त्रों को पढने और सुनने की इच्छा करता है वह अति बुद्धिमान् होता है जो जैसी भावना से प्रजा में वर्त्ताव रखता है उस के साथ प्रजा भी उसी भावना से वर्त्ताव रखती है॥६॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी वि०॥

अभि प्रयांसि वाहसा दाश्वाँ अश्नोति मर्त्यः।
क्षयं पावकशोचिषः॥ ७॥

अभि। प्रयांसि। वाहसा। दाश्वान्। अश्नोति। मर्त्यः।
क्षयम्। पावकऽशोचिषः॥ ७॥

पदार्थः—(अभि) आभिमुख्ये (प्रयांसि) कमनीयान्यन्नादीनि (वाहसा) प्रापणेन (दाश्वान्) दाता (अश्नोति) प्राप्नोति (मर्त्यः) मनुष्यः (क्षयम्) निवासम् (पावकशोचिषः) पावकस्याग्नेः शोचिर्दीप्तिरिव शोचिर्यस्य विदुषस्तस्य ॥ ७ ॥

अन्वयः—यो दाश्वान्मर्त्यो पावकशोचिषः क्षयमश्नोति स वाहसा प्रयांस्यभ्यश्नोति ॥ ७ ॥

भावार्थः—यदा मनुष्या विदुषां विद्यास्थानं प्राप्नुवन्ति तदैव पूर्णकामा जायन्ते ॥ ७ ॥

पदार्थः—जो (दाश्वान्) देने वाला (मर्त्यः) मनुष्य (पावकशोचिषः) अग्नि की दीप्ति के सदृश दीप्ति युक्त विद्वान् पुरुष के (क्षयम्) विद्या स्थान को (अश्नोति) प्राप्त होता वह (वाहसा) उत्तम पदवी के प्राप्त होने से (प्रयांसि) कामना अभिलाषा के योग्य अन्न आदि को (अभि) प्राप्त होता है ॥ ७ ॥

भावार्थः—जब मनुष्य विद्वानों की विद्या पदवी को प्राप्त होते हैं तब ही उन के मनोरथ पूर्ण होते हैं ॥ ७ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

परि विश्वानि सुधिताग्नेरश्याम मन्मभिः । विप्रासो जातवेदसः ॥ ८ ॥

परि । विश्वानि । सुऽधिता । अग्नेः । अश्याम । मन्मऽभिः । विप्रासः । जातऽवेदसः ॥ ८ ॥

पदार्थः—(परि) सर्वतः (विश्वानि) सर्वाणि (सुधिता) सुष्ठु धृतानि (अग्नेः) पावकस्येव (अश्याम) प्राप्नुयाम (मन्मभिः) विज्ञानविशेषैः सह (विप्रासः) मेधाविनः (जातवेदसः) जातविद्या विद्वांसः सन्तः ॥ ८ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यथा जातवेदसो विप्रासो वयं मन्मभिरग्नेर्विश्वानि सुधिता पर्यश्याम तथैव यूयमपि प्राप्नुत ॥ ८ ॥

भावार्थः—विद्वद्भिर्मनुष्यैर्यथा मेधाविनो सृष्ट्यात्मनोर्विद्याग्रहणाय प्रयतन्ते तथैव विद्योन्नतये प्रयतितव्यम् ॥ ८ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (जातवेदसः) विद्वान् हुए (विप्रासः) बुद्धिमान् हम लोग (मन्मभिः) विज्ञान विशेषों के सहित (अग्नेः) अग्नि के सदृश (विश्वानि) सम्पूर्ण (सुधिता) उत्तम प्रकार धारण किये शास्त्रों को (परि) सब ओर से (अश्याम) प्राप्त हों वैसे ही आप लोग भी प्राप्त हूजिये ॥ ८ ॥

भावार्थः—विद्वान् मनुष्यों को चाहिये कि जैसे बुद्धिमान् विद्वान् सृष्टि और आत्मा की विद्या ग्रहण के लिये प्रयत्न करते हैं वैसे ही विद्या वृद्धि के लिये प्रयत्न करें ॥ ८ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

अग्ने विश्वानि वार्या वाजेषु सनिषामहे । त्वे देवास एरिरे ॥ ९ ॥ व० १० ॥

अग्ने । विश्वानि । वार्या । वाजेषु । सनिषामहे । त्वे इति । देवासः । आ ईरिरे ॥ ९ ॥ व० १० ॥

पदार्थः—(अग्ने) पावकवद्विद्याप्रकाशमान विद्वन् (विश्वानि) अखिलानि (वार्य्या) वर्त्तुमर्हाणि धनादीनि वस्तूनि (वाजेषु) सङ्ग्रामादिषु व्यवहारेषु (सनिषामहे) संभज्य प्राप्नुयाम (त्वे) त्वयि (देवासः) विद्वांसः (आ) (ईरिरे) प्रेरयन्ति ॥ ९ ॥

अन्वयः—हे अग्ने यस्मिँस्त्वे देवासोऽस्मानेरिरे ते वयं वाजेषु विश्वानि वार्य्या सनिषामहे ॥ ९ ॥

भावार्थः—हे मनुष्या यत्र धर्म्ये पुरुषार्थे विद्वांसो युष्मान् प्रेरयेयुर्यथा वयं तदाज्ञायां वर्तित्वा विद्यां धनं च प्राप्नुयाम तथा तत्र वर्त्तित्वा यूयमपि तादृशा भवत ॥ ९ ॥

अत्राग्निविद्वद्गुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति वेद्यम् ॥

इत्येकादशं सूक्तं दशमो वर्गश्च समाप्तः ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य विद्याओं से उत्तम प्रकार प्रकाशयुक्त विद्वन् पुरुष जिन (त्वे) आप के विषय में (देवासः) विद्वान् लोग हम लोगों को (आ) (ईरिरे) प्रेरणा करते हैं फिर प्रेरित हुए हम लोग (वाजेषु) सङ्ग्राम आदि व्यवहारों में (विश्वानि) सम्पूर्ण (वार्य्या) अच्छे प्रकार स्वीकार करने योग्य धनादि वस्तुओं को (सनिषामहे) यथाभाग प्राप्त होवें ॥ ९ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो जिस धर्म युक्त पुरुषार्थ में विद्वान् लोग तुम लोगों को प्रेरणा करें तो जैसे हम लोग उन की आज्ञानुकूल वर्त्ताव करके विद्या और धन को प्राप्त होवें वैसे ही उन पुरुषों की आज्ञानुसार वर्त्ताव करके आप लोग भी विद्या और धनयुक्त होइये ॥ ९ ॥

इस सूक्त में अग्नि और विद्वान् पुरुष के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछिले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिये ॥

यह ग्यारहवां सूक्त और दशवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

अथ नवर्चस्य द्वादशसूक्तस्य विश्वामित्र ऋषिः। इन्द्राग्नी देवते। १। ३। ५। ८। ९ निचृद्गायत्री। २। ४। ६ गायत्री। ७ यवमध्या विराड् गायत्री च छन्दः। षड्जः स्वरः॥

अथाध्यापकोपदेशकविषयमाह॥

अब नव ऋचा वाले बारहवें सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में अध्यापक और उपदेशक का विषय कहते हैं॥

इन्द्रा॑ग्नी॒ आ ग॑तं सु॒तं गी॒र्भिर्नभो॒ वरे॑ण्यम्। अ॒स्य पा॑तं धि॒येषि॒ता॥ १॥

इन्द्रा॑ग्नी॒ इति॑। आ। ग॒त॒म्। सु॒तम्। गीः॒ऽभिः। नभः॑। वरे॑ण्यम्। अ॒स्य। पा॒त॒म्। धि॒या। इ॒षि॒ता॥ १॥

पदार्थः—(इन्द्राग्नी) वायुविद्युतौ (आ) (गतम्) आगच्छतम् (सुतम्) विद्याजन्यमैश्वर्य्यवन्तं पुत्रं विद्यार्थिनं वा (गीर्भिः) सुशिक्षिताभिर्वाग्भिः सह (नभः) अन्तरिक्षमवकाशम्। नभ इति साधारणना० निघं० १। ४ (वरेण्यम्) वरितुं स्वीकर्त्तुमर्हम् (अस्य) संसारस्य मध्ये (पातम्) रक्षतम् (धिया) प्रज्ञया (इषिता) प्रज्ञापकौ सन्तौ॥ १॥

अन्वयः—हे अध्यापकोपदेशकौ युवामिन्द्राग्नी इवास्य मध्ये वर्त्तमानाविषिता गीर्भिर्धिया नभो वरेण्यं सुतं पातम्। विद्या प्रचारायाऽऽगतम्॥ १॥

भावार्थः—हे अध्यापकोपदेशकौ यथा वायुसूर्यौ सर्वस्य जगतो रक्षकौ स्तस्तथैव विद्यासुशिक्षाभ्यां सर्वस्य रक्षकौ भवतम्॥ १॥

पदार्थः—हे विद्या पढ़ाने और उपदेश देने वाले पुरुषो आप दोनो (इन्द्राग्नी) वायु और बिजुली के सदृश (अस्य) इस संसार में वर्त्तमान हो कर (इषिता) बोध देते हुए (गीर्भिः) उत्तम शिक्षाओं से पूरित वाणि-यों के सहित (धिया) श्रेष्ठ बुद्धि से (नभः) अन्तरिक्ष नामक अवकाश की और (वरेण्यम्) स्वीकार करने योग्य (सुतम्) विद्या से उपार्जित धन से युक्त पुत्र वा शिष्य की (पातम्) रक्षा कीजिये और (आ,गतम्) विद्या के प्रचार के लिये आइये ॥ १ ॥

भावार्थः—हे अध्यापक और उपदेशक पुरुषो जैसे वायु और सूर्य्य सम्पूर्ण जगत् के रक्षाकारक हैं वैसे ही विद्या और उत्तम शिक्षा से सम्पूर्ण जगत् के रक्षक हूजिये ॥ १ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

इन्द्राग्नी जरितुः सचा यज्ञो जिगाति चेतनः ।
अया पातमिमं सुतम् ॥ २ ॥

इन्द्राग्नी इति । जरितुः । सचा । यज्ञः । जिगाति ।
चेतनः । अया । पातम् । इमम् । सुतम् ॥ २ ॥

पदार्थः—(इन्द्राग्नी) ऐश्वर्यविद्यायुक्तौ (जरितुः) स्तावकस्य (सचा) सम्बन्धिनौ (यज्ञः) यष्टुं योग्यः (जिगाति) गच्छति प्राप्नोति (चेतनः) सम्यग् ज्ञाता (अया) अनया विद्यासुशिक्षा-सहितया वाण्या । अत्र छान्दसो वर्णलोप इति न लोपः (पातम्) रक्षतम् (इमम्) वर्त्तमानम् (सुतम्) उत्पन्नं संसारम् ॥ २ ॥

अन्वयः—हे इन्द्राग्नी धनविद्येश्वरौ यश्चेतनो यज्ञो युवां जिगाति तौ जरितुः सचा सन्तावयेमं सुतं पातम् ॥ २ ॥

भावार्थः—हे अध्यापकोपदेशका ये विद्योपदेशग्रहणाय युष्मान् प्राप्नुयुस्तान् वायुसूर्य्यौ जगदिव सततं रक्षन्तु ॥ २ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्राग्नी) धन और विद्यायुक्त पुरुषो जो (चेतनः) उत्तम रीति से जानने वाला (यज्ञः) पूजा करने योग्य पुरुष आप दोनों के (तिगाति) शरण को प्राप्त होवे। वे दोनो आप (जरितुः) स्तुतिकर्त्ता पुरुष के (सचा) सम्बन्धी हुए (अया) इस विद्या सुशिक्षा सहित वाणी से (इमम्) इस वर्त्तमान (सुतम्) उत्पन्न संसार को (पातम्) पालो ॥ २ ॥

भावार्थः—हे अध्यापक और विद्योपदेशक लोगो जो पुरुष विद्या के उपदेश ग्रहण करने के लिये आप लोगों के शरण आवें उन की जैसे वायु सूर्य्य जगत् की रक्षा करते हैं वैसे निरन्तर पालना करो ॥ २ ॥

पुनर्मनुष्याः किं कुर्युरित्याह ॥

फिर मनुष्य क्या करें इस वि० ॥

इन्द्रमग्निं कविच्छदा यज्ञस्य जूत्या वृणे । ता सोमस्येह तृम्पताम् ॥ ३ ॥

इन्द्रम् । अग्निम् । कविऽछदा । यज्ञस्य । जूत्या । वृणे । ता । सोमस्य । इह । तृम्पताम् ॥ ३ ॥

पदार्थः—(इन्द्रम्) विद्युदिव दुष्टदोषप्रणाशकम् (अग्निम्) पावकइव दुष्टानां दाहकम् (कविच्छदा) यौ कवीन् विदुषश्छदयत ऊर्जयतस्तौ (यज्ञस्य) धर्म्यस्य व्यवहारस्य (जूत्या) वेगेन (वृणे) स्वीकरोमि (ता) तौ (सोमस्य) ऐश्वर्यस्य (इह) अस्मिन् संसारे (तृम्पताम्) सुखयतम् ॥ ३ ॥

अन्वयः—अहं यौ जूत्या सह वर्त्तमानौ कविच्छदा इन्द्रमाग्निं च वृणे ता इह सोमस्य यज्ञस्य मध्ये तृम्पताम् ॥ ३ ॥

भावार्थः—मनुष्यैर्मूर्खसङ्गं विहाय विद्वत्सङ्गं विधायोत्तमाचरणेनास्मिन् जगत्यैश्वर्य्यमुन्नीय सदैवानन्दितव्यम् ॥ ३ ॥

पदार्थः—मैं जिन (जूत्या) वेग के सहित वर्त्तमान (कविच्छदा) विद्वानों का सत्संग करने वाले (इन्द्रम्) दुष्टों के दोषों के नाश करता और (अग्निम्) अग्नि के सदृश दुष्टों के भस्म कारक जनों को (वृणे) स्वीकार करता हूं (ता) वे (इह) इस संसार में (सोमस्य) ऐश्वर्य्य और (यज्ञस्य) धर्मसम्बन्धी व्यवहार के मध्य में (तृम्पताम्) सुख भोगें और सब को सुखी करें ॥ ३ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि मूर्ख लोगों का संग त्याग के और विद्वानों का संग करके उत्तम आचरण करने से इस संसार में ऐश्वर्य्य का संग्रह करके सदा ही आनन्द युक्त रहैं ॥ ३ ॥

अथ राजधर्मविषयमाह ॥

अब राजधर्म वि० ॥

तो॒शा वृ॑त्र॒हणा॑ हुवे स॒जित्वा॒नाप॑राजिता ।
इ॒न्द्रा॒ग्नी वा॑ज॒सात॑मा ॥ ४ ॥

तो॒शा । वृ॒त्र॒ऽहना॑ । हु॒वे॒ । स॒ऽजित्वा॑ना । अप॑राऽजिता ।
इ॒न्द्रा॒ग्नी इति॑ । वा॒ज॒ऽसात॑मा ॥ ४ ॥

पदार्थः—(तोशा) वर्द्धकौ विज्ञातारौ (वृत्रहणा) वृत्रं दुष्टमसुरप्रकृतिं हन्तारौ सभासेनेशौ (हुवे) प्रशंसामि (सजित्वाना) जयशीलैर्वीरैः सह वर्त्तमानौ (अपराजिता) शत्रुभिः पराजेतुमशक्यौ (इन्द्राग्नी) सूर्य्यविद्युतौ (वाजसातमा) वाजस्य विज्ञानस्य धनस्य वातिशयेन विभक्तारौ ॥ ४ ॥

अन्वयः—हे सभासेनेशावहं वृत्रहणेन्द्राग्नी इव वर्त्तमानौ तोशा सजित्वानाऽपराजिता वाजसातमा युवां हुवे ॥ ४ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—ये राजानः शत्रूणां विजेतॄन् शत्रुभिरपराजितान् न्यायाधीशान् पुरुषान् स्वीकुर्वन्ति तेषां नित्यो विजयो भवति ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे सभासेना के अध्यक्षो मैं (वृत्रहणा) असुर स्वभाव वाले दुष्ट के नाशकारक (इन्द्राग्नी) सूर्य्य बिजुली के सदृश वर्त्तमान (तोशा) बढ़ाने वाले वा विज्ञानशील (सजित्वाना) जीतने वाले वीरों के साथ वर्त्तमान (अपराजिता) शत्रुओं से नहीं हारने योग्य (वाजसातमा) विज्ञान वा धन का अतिशय विभाग करने वाले आप लोगों की (हुवे) प्रशंसा करता हूं ॥ ४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो राजा लोग शत्रुओं के जीतने और शत्रुओं से नहीं हारने वाले न्यायकर्त्ता पुरुषों का सन्मान पूर्वक स्वीकार करते हैं उन का सर्वदा विजय होता है ॥ ४ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

प्र वा॑मर्चन्त्यु॒क्थिनो॑ नीथा॒विदो॑ जरि॒तारः॑ ।
इन्द्रा॑ग्नी॒ इष॒ आ वृ॑णे ॥ ५ ॥ व० ११ ॥

प्र । वा॒म् । अ॒र्च॒न्ति॒ । उ॒क्थिनः॑ । नी॒थ॒ऽविदः॑ । ज॒रि॒तारः॑ । इन्द्रा॑ग्नी॒ इति॑ । इषः॑ । आ । वृ॒णे॒ ॥ ५ ॥ व० ११ ॥

पदार्थः—(प्र) (वाम्) युवाम् (अर्चन्ति) सत्कुर्वन्ति (उक्थिनः) गुणप्रशंसकाः (नीथाविदः) ये नीथान् विनयान्

विन्दन्ति ते (जरितारः) स्तावकाः (इन्द्राग्नी) विद्युत्सूर्याविव वर्त्तमानौ (इषः) अन्नादीनि (आ) समन्तात् (वृणे) प्राप्नुयाम् ॥५॥

अन्वयः—हे इन्द्राग्नी इव वर्त्तमानौ सभासेनेशौ ये नीथाविद उक्थिनो जरितारो वां प्रार्चन्ति तेभ्योऽहमिष आवृणे ॥ ५ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—ये पदार्थानां गुणकर्मस्वभावान् जानन्ति त एव युद्धं न्यायं च कर्त्तुं शक्नुवन्ति ॥ ५ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्राग्नी) बिजुली और सूर्य्य के सदृश प्रकाश सहित विद्यमान सभापति सेनापतियो जो (नीथाविदः) नम्रतायुक्त (उक्थिनः) उत्तम गुणों की प्रशंसा करने तथा (जरितारः) ईश्वर की स्तुति करने वाले (वाम्) तुम दोनों को (प्र, अर्चन्ति) विशेष सत्कार करते हैं उन से मैं (इषः) अन्न आदि को (आ, वृणे) सब ओर से प्राप्त होऊं ॥ ५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो पुरुष पृथिवी आदि पदार्थों के गुण कर्म स्वभावों को जानते हैं वे ही युद्ध और न्यायाचरण कर सकते हैं ॥५॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

इन्द्राग्नी नवतिं पुरो दासपत्नीरधूनुतम् । साकमेकेन कर्मणा ॥ ६ ॥

इन्द्राग्नी इति । नवतिम् । पुरः । दासऽपत्नीः । अधूनुतम् । साकम् । एकेन । कर्मणा ॥ ६ ॥

पदार्थः—(इन्द्राग्नी) वाय्वग्नी (नवतिम्) एतत्सङ्ख्याताः (पुरः) पालिकाः (दासपत्नीः) ये दस्यन्त्युपक्षिण्वन्ति शत्रून् ते दासास्तेषां पत्नीरिव वर्त्तमानाः किरणाः (अधूनुतम्) (साकम्) सह (एकेन) (कर्मणा) क्रियया ॥ ६ ॥

अन्वयः—हे सभासेनेशौ यथेन्द्राग्नी साकमेकेन कर्मणा नवतिं पुरो दासपत्नीरधूनुतं तथैव युवां सेनादिभिः शत्रून् कम्पयतम्॥६॥

भावार्थः—सभाध्यक्षादिमनुष्यैरैकमत्येन दुष्टान्निवार्य्य श्रेष्ठान् सत्कृत्य धर्म्येणाचरणेन राज्यशासनं कर्त्तव्यम् ॥ ६ ॥

पदार्थः—हे सभापति सेनापतियो जैसे (इन्द्राग्नी) वायु और अग्नि को (साकम्) एक साथ (एकेन) (कर्मणा) एक कर्म से (नवतिम्) नब्बे संख्यायुक्त (पुरः) पालन करने वाली (दासपत्नीः) शत्रुओं को युद्ध में दूर फेंकने वाले पुरुषों की स्त्रियों के तुल्य वर्त्तमान सूर्य्य की किरणें (अधूनुतम्) कंपाती हैं वैसे आप दोनों सेना आदिकों से शत्रुओं को कम्पावें ॥ ६ ॥

भावार्थः—सभाध्यक्षादि मनुष्यों को चाहिये कि परस्पर एक सम्मति से दुष्ट पुरुषों को उत्तम स्थानों से दूर कर और श्रेष्ठ पुरुषों का सत्कार करके धर्मपूर्वक व्यवहार से राज्य प्रबन्ध करें ॥ ६ ॥

पुनर्मनुष्याः किं कुर्य्युरित्याह ॥

फिर मनुष्य क्या करें इस वि० ॥

इन्द्रा॑ग्नी अ॒पस॒स्पर्यु॒प प्र य॑न्ति धी॒तय॑ः ।
ऋ॒तस्य॑ प॒थ्या॒३॑ अनु॑ ॥ ७ ॥

इन्द्रा॑ग्नी॒ इति॑ । अ॒पस॑ः । परि॑ । उप॑ । प्र । य॒न्ति॒ ।
धी॒तय॑ः । ऋ॒तस्य॑ । प॒थ्या॑ः । अनु॑ ॥ ७ ॥

पदार्थः—(इन्द्राग्नी) वायुविद्युतौ (अपसः) कर्मणः (परि) सर्वतः (उप) समीपे (प्र) (यन्ति) गच्छन्ति (धीतयः) अङ्गुलय इव गतयः। धीतयइत्यङ्गुलिना० निघं० २।५ (ऋतस्य) सत्यस्य (पथ्याः) पथि साध्वीर्वीथीः (अनु) ॥ ७ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यथेन्द्राग्नी ऋतस्यापसः परि पथ्या अनु गच्छतोऽनयोर्गतयो धीतय इवोप प्रयन्ति तथा यूयं सन्मार्गं नियमेन गच्छत ॥ ७ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु० यथेश्वरसृष्टौ सूर्य्यादिपदार्था नियमेन स्वं२ मार्गं गच्छन्ति तथैव मनुष्या धर्म्येण मार्गेण गच्छन्तु ॥७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (इन्द्राग्नी) वायु और बिजुली (ऋतस्य) सत्य (अपसः) कर्म के (परि) सब ओर से (पथ्याः) मार्ग में सुखकारक सड़कों के (अनु) अनुकूल जाते हुए इन वायु बिजुलियों की गति (धीतयः) अंगुलियों के समान (उप) समीप में (प्र, यन्ति) प्राप्त होती हैं वैसे ही आप लोग भी श्रेष्ठ मार्ग में नियमपूर्वक चलिये ॥ ७ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे ईश्वर की सृष्टि में सूर्य्य आदि पदार्थ नियम के साथ अपने २ मार्गपर चलते हैं वैसे ही मनुष्य लोग भी धर्मयुक्त मार्ग में चलें ॥ ७ ॥

पुना राजधर्मविषयमाह ॥

फिर राज धर्म वि० ॥

इन्द्रा॑ग्नी तवि॒षाणि॑ वां स॒धस्था॑नि॒ प्रया॑ंसि च । यु॒वोर॒प्तूर्यं॑ हि॒तम् ॥ ८ ॥

इन्द्रा॑ग्नी॒ इति॑ । त॒वि॒षाणि॑ । वा॒म् । स॒धऽस्था॑नि । प्रया॑ंसि । च॒ । यु॒वोः । अ॒प्ऽतूर्य॑म् । हि॒तम् ॥ ८ ॥

पदार्थः—(इन्द्राग्नी) वायुविद्युताविव सेनासेनाध्यक्षौ (तविषाणि) बलानि (वाम्) युवयोः (सधस्थानि) समानस्थानानि (प्रयांसि) कमनीयानि (च) (युवोः) (अप्तूर्य्यम्) कर्मानुष्ठानाय त्वरितव्यम् (हितम्) सुखसाधकम् ॥ ८ ॥

अन्वयः—हे इन्द्राग्नी वायुविद्युताविव वर्त्तमानौ सेनासेनाध्यक्षौ वां सधस्थानि प्रयांसि तविषाणि च युवोरप्तूर्य्यं हितं भवतु ॥८॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यदि वायुविद्युत्संयोगवत्सेनासेनाध्यक्षावविरुद्धौ स्यातां तर्हि सर्वे कामाः सिध्येयुः ॥ ८ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्राग्नी) वायु बिजुली के सदृश ऐक्यमत से वर्त्तमान सेना और सेना के मुख्य अधिष्ठाता (वाम्) आप दोनों के (सधस्थानि) तुल्य स्थान में विद्यमान (प्रयांसि) कामना करने योग्य (तविषाणि) बल पराक्रम (च) और (युवोः) आप दोनों के (अप्तूर्य्यम्) कर्म करने के लिये शीघ्रता (हितम्) सुख साधक हो ॥ ८ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो वायु और बिजुली के संयोग के समान परस्पर सेना और सेना के स्वामी प्रेमभाव से विरोध छोड़ के वर्त्ताव करें तो संपूर्ण मनोरथ सिद्ध हों ॥ ८ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥
फिर उसी वि० ॥

इन्द्राग्नी रोचना दिवः परि वाजेषु भूषथः ।
तद्वां चेति प्र वीर्य्यम् ॥ ९ ॥ १२ । अनु० १ ॥

इन्द्राग्नी इति । रोचना । दिवः । परि । वाजेषु । भूषथः । तत् । वाम् । चेति । प्र । वीर्य्यम् ॥ ९ ॥ १२ ॥ अनु० १ ॥

पदार्थः—(इन्द्राग्नी) वायुविद्युतौ (रोचना) रोचनानि रुचिकराणि कर्माणि (दिवः) प्रकाशस्य मध्ये (परि) (वाजेषु) सङ्ग्रामेषु (भूषथः) अलङ्कुरुथः (तत्) (वाम्) युवयोः (चेति) संज्ञपयाति (प्र) प्रकृष्टम् (वीर्य्यम्) बलं पराक्रमम् ॥ ९ ॥

अन्वयः—हे सेनासेनाध्यक्षौ यथेन्द्राग्नी दिवो रोचना परिभूषथस्तथा वाजेषु विजयेन सेनाजना युवां परिभूषन्तु तद्वां प्रवीर्य्यञ्चेति ॥ ९ ॥

भावार्थः—ये राजानो सेनासेनाध्यक्षान् सर्वथोत्तमान् सम्पादयन्ति तेषां सर्वदा विजय एव भवतीति ॥ ९ ॥

अत्रेन्द्राग्न्यध्यापकोपदेशकसेनासेनाध्यक्षगुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति वेद्यम् ॥

इति तृतीयमण्डले द्वादशं सूक्तं प्रथमोनुवाको द्वादशो वर्गश्च समाप्तः॥

पदार्थः—हे सेना और सेना के स्वामी जैसे (इन्द्राग्नी) वायु बिजुली (दिवः) प्रकाश के मध्य में (रोचना) प्रीति कारक कर्मों को (परि) सब ओर से (भूषथः) शोभित करते हैं वैसे (वाजेषु) संग्रामों में विजय से सेना के पुरुष आप दोनों को शोभित करें । और (तत्) वह कर्म (वाम्) आप दोनों के (प्र) उत्तम (वीर्य्यम्) पराक्रम को (चेति) सम्यक् जनाता है ॥९॥

भावार्थः—जो राजा लोग राज्यकार्य्य में सब प्रकार से निपुण सेना और सेना के स्वामियों को अधिकार देते हैं उन का सब काल में विजय ही होता है॥९॥

इस सूक्त में इन्द्र अग्नि अध्यापक उपदेशक और सेना तथा सेना के स्वामी के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्वसूक्त के अर्थ के साथ संगति है यह जानना चाहिये ॥

यह तीसरे मण्डल में बारहवां सूक्त प्रहिला अनुवाक और बारहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

अथ सप्तर्चस्य त्रयोदशस्य सूक्तस्य ऋषभो वैश्वामित्र ऋषिः । अग्निर्देवता । १ भुरिगुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः । २ । ३ । ५ । ६ । ७ निचृदनुष्टुप् । ४ विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अथ विद्वांसः किं कुर्युरित्याह ॥

अब सात ऋचा वाले तेरहवें सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में विद्वान् लोग क्या करें इस विषय को कहते हैं ॥

प्र वो देवायाग्नये बर्हिष्ठमर्चास्मै । गमद्देवेभिरा स नो यजिष्ठो बर्हिरा सदत् ॥ १ ॥

प्र । वः । देवाय । अग्नये । बर्हिष्ठम् । अर्च । अस्मै । गमत् । देवेभिः । आ । सः । नः । यजिष्ठः । बर्हिः । आ । सदत् ॥ १ ॥

पदार्थः—(प्र) (वः) युष्मान् (देवाय) दिव्यगुणाय (अग्नये) अग्निवद्वर्त्तमानाय (बर्हिष्ठम्) बर्हिषि यज्ञे तिष्ठतीति (अर्च) सत्कुरु (अस्मै) (गमत्) गच्छेत् प्राप्नुयात् । अत्राडभावः (देवेभिः) दिव्यगुणैः सह (आ) (सः) (नः) अस्मान् (यजिष्ठः) अतिशयेन यष्टा (बर्हिः) अन्तरिक्षे (आ) (सदत्) प्राप्नुयात् ॥ १ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यो देवेभिः सहास्मै देवायाग्नये वो युष्मानागमत्तं बर्हिष्ठं प्रार्च स यजिष्ठो नो बर्हिरासदत् ॥ १ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—हे मनुष्या ये युष्मान् सत्कुर्वन्ति तान् यूयमपि सत्कुरुत यथा विद्वांसो विद्वद्भ्यो विद्यया युक्तान् शुभान् गुणान् गृह्णन्ति तान् यूयमर्चताऽस्मान् दिव्या गुणाः प्राप्नुवन्त्वितीच्छत ॥ १ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो पुरुष (देवेभिः) उत्तम गुणों के साथ (अस्मै) इस (देवाय) श्रेष्ठगुणयुक्त (अग्नये) अग्नि के सदृश तेजधारी के लिये (वः) आप लोगों को (आ) सब प्रकार (गमत्) प्राप्त होवे उस (बर्हिष्ठम्) यज्ञ में बैठने वाले का (प्र) (अर्च) विशेष सत्कार करो (सः) वह (यजिष्ठः) अतिशय यज्ञ करने वाला (नः) हम लोगों को (बर्हिः) अन्तरिक्ष में (आ) (सदत्) प्राप्त होवे ॥ १ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो जो लोग आप लोगों का सत्कार करते हैं उन का आप लोग भी सत्कार करें जैसे विद्वज्जन विद्वान् पुरुषों से विद्यायुक्त शुभगुणों को ग्रहण करते हैं उन विद्वज्जनों की आप लोग भी सेवा करें और हम लोगों को उत्तम गुण प्राप्त हों ऐसी इच्छा करो ॥१॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

ऋतावा यस्य रोदसी दक्षं सचन्त ऊतयः ।
हविष्मन्तस्तमीळते तं सनिष्यन्तोऽवसे ॥ २ ॥

ऋतऽवा । यस्य । रोदसी इति । दक्षम् । सचन्ते । ऊतयः ।
हविष्मन्तः । तम् । ईळते । तम् । सनिष्यन्तः । अवसे ॥२॥

पदार्थः—(ऋतावा) य ऋतं सत्यं वनुते याचते सः (यस्य) (रोदसी) द्यावापृथिव्यौ (दक्षम्) बलं चातुर्य्यम् (सचन्ते) सम्बध्नन्ति (ऊतयः) रक्षका गुणाः (हविष्मन्तः) प्रशस्तानि हवींषि दानानि विद्यन्ते येषु ते (तम्) (ईळते) प्रशंसन्ति (तम्) (सनिष्यन्तः) सेवनं करिष्यमाणाः (अवसे) रक्षणाद्याय॥२॥

अन्वयः-हे विद्वन् ऋतावा भवान् यस्य दक्षमूतयश्च रोदसी सचन्ते तं हविष्मन्तः सचन्ते तमवसे सनिष्यन्तः ईळते तमेव प्रशंसतु॥२

भावार्थः—हे मनुष्या यस्य कीर्त्तिर्द्यावापृथिव्यो र्व्याप्ता यस्य न्यायेन रक्षणादीनि कर्माणि प्रशंसितानि सन्ति तमेव विद्वांसं सभापतिं रक्षणाद्यायाश्रयत ॥ २ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् पुरुष (ऋतावा) सत्य की प्रार्थना करने वाले आप (यस्य) जिस के (दक्षम्) पराक्रम वा चतुराई और (ऊतयः) रक्षा करने वाले गुण (रोदसी) अन्तरिक्ष और पृथिवी को (सचन्ते) सम्बद्ध करते अर्थात् उन में व्याप्त होते हैं (तम्) उस के (हविष्मन्तः) प्रशंसा करने योग्य दान युक्त जन सम्बन्धी होते हैं (तम्) उस की (अवसे) रक्षा आदि के लिये (सनिष्यन्तः) सेवन करने वाले लोग (ईळते) प्रशंसा करते हैं उसी की प्रशंसा करो ॥ २ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो जिस की कीर्त्ति आकाश और पृथिवी में व्याप्त जिस के न्याय से प्रशस्त रक्षा आदि कर्म होते हैं उसी विद्वान् सभापति का रक्षा आदि के लिये तुम आश्रय करो ॥ २ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

स यन्ता विप्र एषां स यज्ञानामथा हि षः ।
अग्निं तं वो दुवस्यत दाता यो वनिता मघम् ॥३॥

सः । यन्ता । विप्रः । एषाम् । सः । यज्ञानाम् । अथ । हि । सः । अग्निम् । तम् । वः । दुवस्यत । दाता । यः । वनिता । मघम् ॥ ३ ॥

पदार्थः—(सः) (यन्ता) निग्रहीता (विप्रः) मेधावी (एषाम्) विद्यासुशिक्षान्वितानाम् (सः) (यज्ञानाम्) सङ्गन्तव्यानां व्यवहाराणाम् (अथ) आनन्तर्ये । अत्र निपातस्य चेति दीर्घः (हि) यतः (सः) (अग्निम्) पावकम् (तम्)

अग्निवद्वर्त्तमानम् (वः) युष्माकम् (दुवस्यत) सेवध्वम् (दाता) (यः) (वनिता) याचकः (मघम्) परमपूजनीयं धनम् ॥३॥

अन्वयः—हे मनुष्या यो विप्र एषां यज्ञानां वो युष्माकं च यन्ता दाता वनिता भवेत्तमग्निमिव तस्मात्प्राप्तं मघञ्च दुवस्यत स हि स्वयं जितेन्द्रियः स स्वयं मेधावी सोऽथ स्वयं दाता यज्ञानुष्ठानात् सद्गुणयाचकः स्यात् ॥ ३ ॥

भावार्थः—हे मनुष्या यः स्वयं धर्मात्मा जितेन्द्रियः सत्योपदेष्टा सद्गुणानां दाता ग्रहीता च प्रकृतेर्नियन्ता भवेत्तं सर्वोपायैः सेवध्वम् ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यः) जो (विप्रः) बुद्धिमान् पुरुष (एषाम्) इन विद्या और उत्तमशिक्षायुक्त (यज्ञानाम्) करने योग्य व्यवहारों को और (वः) आप लोगों का (यन्ता) कुमार्ग से निवारणकर्त्ता (दाता) दानशील (वनिता) मांगने वाला होवे (तम्) उस (अग्निम्) अग्नि के सदृश प्रकाशमान जन को और उस से प्राप्त हुए (मघम्) अत्यन्त पूजने योग्य धन को (दुवस्यत) सेवो (सः) वह (हि) जिस से कि अपनेआप ही जितेन्द्रिय इस से (सः) वह अपनेआप ही बुद्धिमान् (अथ) इस के अनन्तर (सः) वह स्वयं दानशील यज्ञों के करने से उत्तम गुणों का मांगने वाला होवे ॥ ३ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो जो पुरुष अपनेआप धर्मात्मा जितेन्द्रिय सत्य का प्रचारक श्रेष्ठगुणों का देने और ग्रहण करने वाला स्वभाव का धर्म में प्रवर्त्तनकर्त्ता होवे उस की सम्पूर्णउपायों से सेवा करो ॥ ३ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

स नः शर्माणि वीतयेऽग्निर्यच्छतु शन्तमा । यतो नः प्रुष्णवद्वसु दिवि क्षितिभ्यो अप्स्वा ॥ ४ ॥

सः । नः । शर्माणि । वीतये । अग्निः । यच्छतु । शंऽतमा । यतः । नः । प्रुष्णवत् । वसु । दिवि । क्षितिऽभ्यः । अप्ऽसु । आ ॥ ४ ॥

पदार्थः—(सः) (नः) अस्मभ्यम् (शर्माणि) उत्तमानि गृहाणि (वीतये) विज्ञानादिधनप्राप्तये (अग्निः) पावक इव (यच्छतु) ददातु (शन्तमा) अतिशयेन शङ्कराणि (यतः) (नः) अस्मान् (प्रुष्णवत्) सुष्ठ्वैश्वर्य्ययुक्तम् (वसु) धनम् (दिवि) प्रकाशे (क्षितिभ्यः) भूमिस्थदेशेभ्यः (अप्सु) प्राणेष्वन्तरिक्षे वा (आ) समन्तात् ॥ ४ ॥

अन्वयः—स पूर्वोक्तो विद्वानग्निरिव वीतये नः शन्तमा शर्माणि क्षितिभ्यो दिव्यप्स्वा यच्छतु यतो नोऽस्मान् प्रुष्णवद्वसु प्राप्नुयात् ॥ ४ ॥

भावार्थः—गृहस्थैः सर्वदा सुखकराणि गृहाणि निर्माय जले पृथिव्यामन्तरिक्षे गमनाय यानानि साधनानि निर्माय सर्वाः समृद्धयः प्राप्तव्यास्ताभिर्विज्ञानं वर्द्धनीयम् ॥ ४ ॥

पदार्थः—(सः) वह पूर्वमन्त्र में कहा हुआ विद्वान् (अग्निः) अग्नि के सदृश (वीतये) विज्ञान आदि धन की प्राप्ति के लिये (नः) हम लोगों को (शन्तमा) अतिशय कल्याणकारक (शर्माणि) उत्तम गृहों को (क्षितिभ्यः) पृथ्वी में विराजमान देशों से (दिवि) प्रकाश में (अप्सु) प्राणों जलों वा अन्तरिक्ष में (आ) चारों ओर से (यच्छतु) देवे (यतः) जिस से (नः) हम लोगों को (प्रुष्णवत्) अच्छे ऐश्वर्ययुक्त जैसा (वसु) धन प्राप्त होवे ॥४॥

भावार्थः—गृहस्थ लोगों को चाहिये कि सर्वदा सुखोत्पादक गृहों को निर्मित करके और जल स्थल अन्तरिक्ष मार्ग से गमन के लिये उत्तम वाहन तथा अन्य यन्त्रादि साधनों को रच कर सम्पूर्ण समृद्धियां सञ्चित करें फिर उन से अपना विज्ञान बढ़ावें ॥ ४ ॥

पुनर्मनुष्याः किं कुर्युरित्याह ॥
फिर मनुष्य क्या करें इस वि० ॥

दीदिवांसमपूर्व्यं वस्वीभिरस्य धीतिभिः । ऋक्वाणो अग्निमिन्धते होतारं विश्पतिं विशाम् ॥५॥

दीदिवांसम् । अपूर्व्यम् । वस्वीभिः । अस्य । धीतिऽभिः । ऋक्वाणः । अग्निम् । इन्धते । होतारम् । विश्पतिम् । विशाम् ॥ ५ ॥

पदार्थः—(दीदिवांसम्) सद्गुणैर्देदीप्यमानम् (अपूर्व्यम्) अपूर्वेषु दिव्येषु गुणेषु कुशलम् (वस्वीभिः) धनप्रापिकाभिः क्रियाभिः (अस्य) (धीतिभिः) अङ्गुलीभिरिव (ऋक्वाणः) स्तुत्यानां गुणानां स्तावकाः (अग्निम्) अग्निमिव वर्त्तमानम् (इन्धते) प्रकाशयन्ति (होतारम्) सुखस्य दातारम् (विश्पतिम्) विशिष्टानां पालकम् (विशाम्) प्रजानाम् ॥ ५ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या य ऋक्वाणो धीतिभिरिव वस्वीभिरस्य संसारस्य मध्य अग्निमिव दीदिवांसमपूर्व्यं होतारं विशां विश्पतिमिन्धते तं यूयं सदा सेवध्वम् ॥ ५ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—हे मनुष्या युष्माभिरत्र श्रेष्ठाश्रयः कर्त्तव्यो दुष्टसङ्गो हातव्यो विद्याधनवृद्धिः कर्त्तव्या विद्याविनयसहितो राजा सेवनीयोस्तीति विजानीत ॥ ५ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो पुरुष (ऋक्वाणः) स्तुति करने योग्य गुणों के स्तुति कर्त्ता (धीतिभिः) अंगुलियों के सदृश (वस्वीभिः) धन प्राप्त कराने

वालीं क्रियायों से (अस्य) इस संसार के मध्य में (अग्निम्) अग्नि के तुल्य वर्त्तमान (दीदिवांसम्) उत्तम गुणों के प्रकाश से युक्त (अपूर्व्यम्) अपूर्व श्रेष्ठ गुणों में निपुण (होतारम्) सुखदायक (विशाम्) प्रजाओं के बीच (विश्पतिम्) विशिष्टों के पालन कर्त्ता जन को (इन्धते) प्रकाशित करता है उस की आप लोग सेवा करें ॥ ५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो आप लोगों को इस संसार में श्रेष्ठ पुरुषों का आश्रय करना दुष्टों का सङ्ग त्यागना विद्या धन की वृद्धि करनी और विद्या विनय से युक्त राजा का सेवन करना योग्य है ऐसा समझो ॥ ५ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

उत नो ब्रह्मन्नविष उक्थेषु देवहूतमः । शं नः शोचा मरुद्वृधोऽग्ने सहस्रसातमः ॥ ६ ॥

उत । नः । ब्रह्मन् । अविषः । उक्थेषु । देवऽहूतमः । शम् । नः । शोच । मरुत्ऽवृधः । अग्ने । सहस्रऽसातमः ॥ ६ ॥

पदार्थः—(उत) अपि (नः) अस्मान् (ब्रह्मन्) ब्रह्माणि धने (अविषः) व्यापयेत् (उक्थेषु) प्रशंसनीयपदार्थेषु (देवहूतमः) देवैर्विद्वद्भिरतिशयेन प्रशंसितः (शम्) सुखम् (नः) अस्माकम् (शोच) विचारय । अत्र द्व्यचोतस्तिङ इति दीर्घः (मरुद्वृधः) मनुष्यैर्वर्धमानान् (अग्ने) अग्निरिव यशसा प्रकाशमान (सहस्रसातमः) यः सहस्रमसङ्ख्यं सनति ददाति सोतिशयितः॥६॥

अन्वयः—हे अग्ने त्वं ब्रह्मन्नुक्थेषु नोऽविष उत देवहूतमः सहस्रसातमस्त्वं मरुद्वृधो नः शं शोच प्रापय ॥ ६ ॥

भावार्थः—मनुष्यैर्विदुषः प्राप्य प्रथमतो ब्रह्मचर्य्यविद्यादिग्रहणं ततो धनैश्वर्य्यवर्द्धनोपायो याचनीयो धनं प्राप्य सुपात्रेषु सन्मार्गे व्ययितव्यम् ॥ ६ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य कीर्त्ति से प्रकाशमान आप (ब्रह्मन्) धन और (उक्थेषु) प्रशंसनीय पदार्थों के निमित्त (नः) हम को (अविषः) संयुक्त कीजिये (उत) और (देवहूतमः) विद्वानों से अतिप्रशंसा को प्राप्त (सहस्रसातमः) असङ्ख्य उपदेश वा धनों को अत्यन्त देने वाले आप (मरुद्वृधः) मनुष्यों से बढ़ते हुए (नः) हमारे (शम्) सुख का (शोच) विचार कीजिये वा सुख प्राप्त कीजिये ॥ ६ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि विद्वानों के शरण जा के प्रथम से ब्रह्मचर्य्य विद्या आदि का ग्रहण तदन्तर धन ऐश्वर्य की वृद्धि के उपाय की प्रार्थना करें और फिर धन को प्राप्त होके उत्तम विद्यावान् पुरुषों और श्रेष्ठ मार्ग में खर्चें ॥ ६ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

नू नो रास्व सहस्रवत्तोकवत्पुष्टिमद्वसु । द्युमदग्ने सुवीर्य्यं वर्षिष्ठमनुपक्षितम् ॥ ७ ॥ व० ॥ १३ ॥

नु । नः । रास्व । सहस्रऽवत् । तोकऽवत् । पुष्टिऽमत् । वसु । द्युऽमत् । अग्ने । सुऽवीर्य्यम् । वर्षिष्ठम् । अनुपऽक्षितम् ॥ ७ ॥ व० ॥ १३ ॥

पदार्थः—(नु) सद्यः (नः) अस्मभ्यम् (रास्व) देहि (सहस्रवत्) सहस्रमसङ्ख्यपरिमाणं विद्यते यस्मिँस्तत् (तोकवत्) प्रशंसितानि तोकान्यपत्यानि भवन्ति यस्मिँस्तत् (पुष्टिमत्)

बहुविधा पुष्टिर्विद्यते यस्मिंस्तत् (वसु) विद्यासुवर्णादिधनम् (द्युमत्) द्यौर्ज्ञानप्रकाशो विद्यते यस्मिंस्तत् (अग्ने) परमेश्वर विद्वन् वा (सुवीर्य्यम्) शोभनं वीर्य्यं बलं यस्मात्तत् (वर्षिष्ठम्) अतिशयेन वृद्धम् (अनुपक्षितम्) यद्व्ययेनापि नोपक्षीयते तत् ॥७॥

अन्वयः—हे अग्ने जगदीश्वर विद्वन् वा त्वं नः सहस्रवत्तोकवत्पुष्टिमत्सुवीर्य्यं द्युमद्वर्षिष्ठमनुपक्षितं च वसु नु रास्व ॥ ७ ॥

भावार्थः—मनुष्यैः परमेश्वरादैश्वर्य्यवतो विदुषो मनुष्याद्वा विद्यैश्वर्य्यं श्रेष्ठान्यपत्यान्युत्तमं बलं पुरुषार्थेन वर्द्धनीयं येन सर्वेषां सद्यो वृद्धिः कर्त्तुं शक्येतेति ॥ ७ ॥

अत्र विद्वदग्निगुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति वेद्यम् ॥

॥ इति त्रयोदशं सूक्तं त्रयोदशो वर्गश्च समाप्तः ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) जगदीश्वर वा विद्वान् पुरुष आप (नः) हम लोगों के लिये (सहस्रवत्) असंख्यपरिमाणयुक्त (तोकवत्) प्रशंसा करने योग्य सन्तानों से पूरित (पुष्टिमत्) अनेक प्रकार की पुष्टि के दाता (सुवीर्य्यम्) प्रचण्ड बल को बढ़ाने वाले (द्युमत्) ज्ञान के प्रकाश से युक्त (वर्षिष्ठम्) अतिशय वृद्धि से युक्त और (अनुपक्षितम्) खर्च करने से नहीं न्यून होने वाले (वसु) विद्या सुवर्ण आदि धन को (नु) शीघ्र (रास्व) दीजिये ॥७॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि परम ऐश्वर्य्य युक्त ईश्वर वा किसी विद्वान् पुरुष से प्रार्थना करके प्राप्ति के योग्य विद्या ऐश्वर्य्य उत्तम सन्तान श्रेष्ठ बल पुरुषार्थ से बढ़ावें जिससे सब जनों की शीघ्र वृद्धि कर सकें ॥ ७ ॥

इस सूक्त में विद्वान् और अग्नि के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछिले सूक्त के अर्थ के साथ संगति है यह जानना चाहिये ॥

॥ यह तेरहवां सूक्त और तेरहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

अथ सप्तर्चस्य चतुर्दशस्य सूक्तस्य ऋषभो वैश्वामित्र ऋषिः। अग्निर्देवता। १। ७ निचृत् त्रिष्टुप्। २। ५ त्रिष्टुप्। ३। ४ विराट् त्रिष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः। ६ पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

अथ शिल्पविद्याविषयमाह॥

अब सात ऋचावाले चौदहवें सूक्त का आरम्भ है इस के प्रथम मन्त्र से शिल्पविद्या विषय को कहते हैं॥

आ होता मन्द्रो विदथान्यस्थात्सत्यो यज्वा कवितमः स वेधाः। विद्युद्रथः सहसस्पुत्रो अग्निः शोचिष्केशः पृथिव्यां पाजो अश्रेत्॥ १॥

आ। होता। मन्द्रः। विदथानि। अस्थात्। सत्यः। यज्वा। कविऽतमः। सः। वेधाः। विद्युत्ऽरथः। सहसः। पुत्रः। अग्निः। शोचिःऽकेशः। पृथिव्याम्। पाजः। अश्रेत्॥१॥

पदार्थः—(आ) समन्तात् (होता) सकलविद्यादाता (मन्द्रः) कमनीयो हर्षयिता (विदथानि) विज्ञानानि (अस्थात्) तिष्ठेत् (सत्यः) सत्सु साधुः (यज्वा) सङ्गन्ता (कवितमः) अतिशयेन विद्वान् (सः) (वेधाः) मेधावी। वेधा इति मेधाविना० निघं० ३। १५। (विद्युद्रथः) विद्युता चालितो रथो विद्युद्रथः (सहसः) बलयुक्तस्य वायोः (पुत्रः) सन्तान इव (अग्निः) (शोचिष्केशः) शोचींषि तेजांसि केशा इव ज्वाला यस्य सः (पृथिव्याम्) (पाजः) बलम् (अश्रेत्) श्रयेत्॥ १॥

अन्वयः—हे मनुष्या यो मन्द्रः सत्यो यज्वा होता कवितमो वेधा अस्ति स विदथान्यास्थात् विद्युद्रथः सहसस्पुत्रः शोचिष्केशोऽग्निः पृथिव्यां पाजोऽश्रेत्तस्मादेव युष्माभिः शिल्पविद्या सङ्ग्राह्या॥ १ ॥

भावार्थः—ये मनुष्याः पदार्थविज्ञानानि प्राप्य हस्तक्रियया यन्त्रकला निष्पाद्य विद्युदादिचाल्यानि यानानि साधयेयुस्तेऽत्यन्तं सुखमाप्नुयुः ॥ १ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (मन्द्रः) अच्छे और प्रसन्न कराने (सत्यः) श्रेष्ठ पुरुषों का आदर करने (यज्वा) मेल करने और (होता) सब विद्या का देने-वाला (कवितमः) अत्यन्त विद्वान् (वेधाः) बुद्धिमान् पुरुष है (सः) वह (विदथानि) विज्ञानों को (आ) (अस्थात्) प्राप्त हो कर उत्पन्न करे (विद्युद्रथः) बिजुली से रथ चलवाने वाला (सहसः) बलयुक्त वायु के (पुत्रः) सन्तान के सदृश (शोचिष्केशः) केशों के सदृश तेजों को धारणकर्त्ता (अग्निः) अग्नि के तुल्य तेजस्वी इस (पृथिव्याम्) पृथिवी में (पाजः) बल का (अश्रेत्) आश्रय करे उस से विमान रचना और शिल्पविद्या में निपुण होइये ॥ १ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य पदार्थविद्या में कुशल हो कर हाथ की कारीगरी से यन्त्रकला सिद्ध करके बिजुली से चलाने योग्य वाहनों को रचें तो वे अत्यन्त सुख को प्राप्त होवें ॥ १ ॥

अथाध्ययनाध्यापनविषयमाह ॥

अब पढ़ने पढ़ाने रूप वि० ॥

अयांमि ते नमंउक्तिं जुषस्व ऋतांवस्तुभ्यं चेतते सहस्वः । विद्वाँ आ वंक्षि विदुषो नि षंत्सि मध्य आ बर्हिरूतये यजत्र ॥ २ ॥

अयामि । ते । नमःऽउक्तिम् । जुषस्व । ऋतंऽवः । तुभ्यम् । चेतते । सहस्वः । विद्वान् । आ । वक्षि । विदुषः । नि । सत्सि । मध्ये । आ । बर्हिः । ऊतये । यजत्र ॥ २ ॥

पदार्थः—(अयामि) प्राप्नोमि (ते) तव (नमउक्तिम्) नमसां नमस्काराणां वचनम् (जुषस्व) सेवस्व (ऋतावः) सत्यप्रकाशक (तुभ्यम्) (चेतते) प्रज्ञापकाय (सहस्वः) बहुबलयुक्त सकलविद्याविद्वा (विद्वान्) (आ) समन्तात् (वक्षि) वदसि (विदुषः) विपश्चितः (नि) निश्चितम् (सत्सि) निषीदसि (मध्ये) (आ) (बर्हिः) अन्तरिक्षस्य (ऊतये) रक्षणाद्याय (यजत्र) सङ्गन्तः ॥ २ ॥

अन्वयः—हे ऋतावोऽहं ते नमउक्तिमयामि तां त्वं जुषस्व । हे सहस्वो यो विद्वाँस्त्वं विदुष आ वक्षि तेन त्वया सहाऽहं विदुषोऽयामि । हे यजत्र यस्त्वमूतये बर्हिर्मध्य आनिषत्सि तस्मै चेतते तुभ्यं नमउक्तिं विदधामि ॥ २ ॥

भावार्थः—यथा विद्यार्थिनो नमस्कारादिसेवयाऽध्यापकान् प्रसादयेयुस्तथाऽध्यापकाः सुशिक्षादानेन विद्यार्थिनः सन्तोषयेयुः ॥ २ ॥

पदार्थः—हे (ऋतावः) सत्यप्रकाशकशील मैं (ते) आप के (नमउक्तिम्) नमस्कारों के वचन को (अयामि) प्राप्त होता हूं (जुषस्व) उस का आप आदर सहित ग्रहण कीजिये । हे (सहस्वः) अतिबलयुक्त वा संपूर्ण विद्या जानने वाले जो (विद्वान्) विद्वान् आप (विदुषः) विद्वानों को (आ) (वक्षि) सब प्रकार उपदेश देते हो ऐसे आप के साथ विद्वानों को प्राप्त होता हूं । हे (यजत्र) पूजन करने योग्य जो आप (ऊतये) रक्षा आदि

के लिये (बर्हिः) अन्तरिक्ष के (मध्ये) मध्य में (आ) (नि) अच्छे प्रकार निश्चित (सत्सि) विराजो उस (चेतते) बोध देने वाले (तुभ्यम्) आप के लिये नमस्काररूप वचन करता हूं ॥ २ ॥

भावार्थः—जैसे विद्यार्थी लोग नमस्कार आदि सेवा से अध्यापकों को प्रसन्न करें वैसे अध्यापक लोग उत्तमशिक्षारूप विद्यादान से विद्यार्थियों को प्रसन्न सन्तुष्ट करें ॥ २ ॥

मनुष्यैर्नियम आश्रयितव्य इत्याह ॥

मनुष्यों को नियम का आश्रय करना चाहिये इस वि० ॥

द्रवंतान्ते उषसा वाजयंन्ती अग्ने वातस्य पथ्याभिरच्छं । यत्सीमञ्जन्ति पूर्व्यं हविर्भिरा बन्धुरेव तस्थतुर्दुरोणे ॥ ३ ॥

द्रवंताम् । ते । उषसा । वाजयंन्ती इति । अग्ने । वातस्य । पथ्याभिः । अच्छं । यत् । सीम् । अञ्जन्ति । पूर्व्यम् । हविःऽभिः । आ । बन्धुराऽइव । तस्थतुः । दुरोणे ॥ ३ ॥

पदार्थः-(द्रवताम्) गच्छेताम् (ते) तुभ्यम् (उषसा) प्रातःसायंसन्धिवेले (वाजयन्ती) प्रज्ञापयन्त्यौ (अग्ने) अग्निरिव वर्त्तमान (वातस्य) वायोः (पथ्याभिः) पथिषु साध्वीभिर्गतिभिः (अच्छ) सम्यक् (यत्) (सीम्) सर्वतः (अञ्जन्ति) प्रकटयन्ति (पूर्व्यम्) पूर्वैर्निष्पादितं यानविशेषम् (हविर्भिः) आदातव्यैः साधनैः (आ) (बन्धुरेव) यथा बन्धुरे तथा (तस्थतुः) तिष्ठेताम् (दुरोणे) गृहे ॥ ३ ॥

अन्वयः—हे अग्ने विद्वन् ते यथा वाजयन्ती उषसा द्रवतां वा वातस्य पथ्याभिर्दुरोणेऽच्छ तस्थतुर्बन्धुरेव शिल्पिनो हविर्भिर्यत्पूर्व्यं यानविशेषं सीमाञ्जन्ति ते त्वं यथावत् तच्च यानं साधुहि ॥ ३ ॥

भावार्थः—हे मनुष्या यथेश्वरनियते सायंप्रातर्वेले नियमेन वर्त्तेते यथा च सुशिल्पिभिर्निर्मितानि यन्त्रयुतानि यानानि यथानियमं गच्छन्त्यागच्छन्ति तथैव स्वयं नियमे वर्त्तित्वा नियतानि यानानि संसाध्याभीष्टं व्यवहारं सम्यक् साध्नुत ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के सदृश प्रकाशयुक्त विद्वान् पुरुष (ते) आप के लिये जैसे (वाजयन्ती) बोध कराती हुई (उषसा) प्रातःकाल सन्ध्या-काल दोनों वेला (द्रवताम्) प्रवाह से चलें वा (वातस्य) वायु के (पथ्याभिः) मार्ग में उत्तम गमनों से (दुरोणे) गृह में (अच्छ) उत्तम प्रकार (तस्थतुः) वर्त्तमान होवें (बन्धुरेव) बन्धनों के सदृश कारीगर लोग (हविर्भिः) ग्रहण करने योग्य साधनों से (यत्) जिस (पूर्व्यम्) प्राचीन लोगों से रचे गये वाहन विशेष को (सीम्) (आ,अञ्जन्ति) सब प्रकार प्रकट करते हैं उन दोनों सायंप्रातः वेला की आप यथायोग्य सेवा करें और उस वाहन को सिद्ध करो ॥ ३ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो जैसे ईश्वर से नियत किई सन्ध्या और प्रातःसमय की वेला नियम से वर्त्तमान हैं और जैसे चतुर कारीगरों से बनाये गये कलायन्त्रों से युक्त वाहन नियम सहित जाते आते हैं वैसे ही अपने आप नियम पूर्वक वर्त्ताव करके नियत यानों को रच के अपनी इच्छानुकूल व्यवहार को उत्तम प्रकार सिद्ध करें ॥ ३ ॥

पुनर्मनुष्याः किं कुर्य्युरित्याह ॥

फिर मनुष्य क्या करें इस वि० ॥

मित्रश्च तुभ्यं वरुणः सहस्वोऽग्ने विश्वे मरुतः सुम्नमर्चन् । यच्छोचिषा सहसस्पुत्र तिष्ठा अभि क्षितीः प्रथयन्त्सूर्यो नॄन् ॥ ४ ॥

मित्रः। च। तुभ्यम्। वरुणः। सहस्वः। अग्ने। विश्वे। मरुतः। सुम्नम्। अर्चन्। यत्। शोचिषा। सहसः। पुत्र। तिष्ठाः। अभि। क्षितीः। प्रथयन्। सूर्य्यः। नॄन्॥ ४॥

पदार्थः—(मित्रः) सखा (च) व्यवहारवित् (तुभ्यम्) (वरुणः) श्रेष्ठः (सहस्वः) बहुबलयुक्त (अग्ने) अग्निरिव प्रतापवन् (विश्वे) सर्वे (मरुतः) मनुष्याः (सुम्नम्) (अर्चन्) प्राप्नुवन्तु (यत्) यतः (शोचिषा) प्रकाशेन (सहसः) बलाय (पुत्र) पुत्रवद्वर्त्तमान (तिष्ठाः) तिष्ठेः (अभि) आभिमुख्ये (क्षितीः) मनुष्यान् (प्रथयन्) प्रकटीकुर्वन् (सूर्य्यः) सवितेव (नॄन्) नायकान्॥ ४॥

अन्वयः—हे सहस्वोऽग्ने तुभ्यं यौ मित्रो वरुणश्चार्चतस्तौ त्वमर्च। हे सहसस्पुत्र यद्यतः शोचिषा सूर्य्य इव त्वं यान् क्षितीर्नॄन् प्रथयन् सन्नभितिष्ठास्तस्मात्त्वं विश्वे मरुतः सुम्नमर्चन्॥ ४॥

भावार्थः—यदि मनुष्या अग्न्यादिपदार्थेभ्यो विद्ययोपकारान् गृह्णीयुस्तर्ह्येते मित्रवत्सुखानि विस्तारयेयुः॥ ४॥

पदार्थः—हे (सहस्वः) अत्यन्त बलधारी (अग्ने) अग्नि के सदृश प्रतापयुक्त जन (तुभ्यम्) आप के लिये जो (वरुणः) श्रेष्ठ (मित्रः) प्रेमी (च) और व्यवहार ज्ञाता आदर करते हैं तो उन का आप भी आदर करें। हे (सहसः) बल के (पुत्र) पुत्र के सदृश तेज से विद्यमान (यत्) जिस कारण (शोचिषा) प्रकाश से (सूर्य्यः) सूर्य्य के तुल्य आप जिन (क्षितीः) मनुष्यों वा (नॄन्) मुख्यपुरुषों को (प्रथयन्) प्रकट करते हुए (अभि) सन्मुख (तिष्ठाः) उपस्थित होइये जिस से आप को (विश्वे) सम्पूर्ण (मरुतः) मनुष्य (सुम्नम्) सुखपूर्वक (अर्चन्) स्तवन करें॥ ४॥

भावार्थः—जो मनुष्य अग्नि आदि पदार्थों से विद्या द्वारा उपकार ग्रहण करें तो वे परस्पर मित्रों के तुल्य सुख भोग करें ॥ ४ ॥

पुनरध्यापकाध्येतृविषयमाह ॥
फिर अध्यापक और अध्येता के वि० ॥

वयं ते अद्य ररिमा हि काममुत्तानहस्ता नमसोपसद्य । यजिष्ठेन मनसा यक्षि देवानस्रेधता मन्मना विप्रो अग्ने ॥ ५ ॥

वयम् । ते । अद्य । ररिम । हि । कामम् । उत्तानऽहस्ताः । नमसा । उपऽसद्य । यजिष्ठेन । मनसा । यक्षि । देवान् । अस्रेधता । मन्मना । विप्रः । अग्ने ॥ ५ ॥

पदार्थः—(वयम्) (ते) (अद्य) इदानीम् (ररिम) दद्याम (हि) यतः (कामम्) (उत्तानहस्ताः) उत्थापितकराः (नमसा) सत्कारेणान्नादिना वा (उप, सद्य) समीपं प्राप्य (यजिष्ठेन) अतिशयेन सङ्गतेन (मनसा) चित्तेन (यक्षि) सङ्गच्छसि (देवान्) विदुषः (अस्रेधता) अक्षीणेन (मन्मना) विज्ञानवता (विप्रः) मेधावी (अग्ने) विद्वन् ॥ ५ ॥

अन्वयः—हे अग्ने हि विप्रस्त्वं यजिष्ठेनास्रेधता मन्मना मनसा अस्मान् देवान् यक्षि तस्मादद्य उत्तानहस्ता वयं त्वां नमसोपसद्य ते कामं ररिम ॥ ५ ॥

भावार्थः—यथाऽध्यापकाः शिष्याणां विद्येच्छाः पूरयन्ति तथैव विद्यार्थिनोऽप्यध्यापकानामभीष्टानि पूरयन्तु सर्वदा सर्वे विद्यादिशुभगुणानां दातारः स्युः ॥ ५ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान् पुरुष (हि) जिस से (विप्रः) बुद्धिमान् आप (यजिष्ठेन) अत्यन्त संलग्न और (अस्रेधता) नहीं विघ्न हुए (मन्मना) विज्ञान से युक्त (मनसा) चित्त से हम (देवान्) विद्वानों का (यक्षि) सङ्ग कीजिये उस से (अद्य) इस समय (उत्तानहस्ताः) हाथ उठाये हुए (वयम्) हम लोग आप को (नमसा) सत्कार से वा अन्न आदि से (उप, सद्य) समीप प्राप्त हो के (ते) आप के (कामम्) मनोरथ को (ररिम) देवें ॥५॥

भावार्थः—जैसे अध्यापक लोग शिष्यों की विद्या विषयिणी इच्छा को सन्तृप्त करते हैं वैसे ही विद्यार्थी जन भी अध्यापकों के मनोरथों को सफल करें और सब काल में संपूर्ण पुरुष विद्या आदि शुभगुणों के देने वाले होवें ॥५॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

त्वद्धि पुत्र सहसो वि पूर्वीर्देवस्य यन्त्यूतयो वि वाजाः । त्वं देहि सहस्रिणं रयिं नोऽद्रोघेण वचसा सत्यमग्ने ॥ ६ ॥

त्वत् । हि । पुत्र । सहसः । वि । पूर्वीः । देवस्य । यन्ति । ऊतयः । वि । वाजाः । त्वम् । देहि । सहस्रिणम् । रयिम् । नः । अद्रोघेण । वचसा । सत्यम् । अग्ने ॥ ६ ॥

पदार्थः—(त्वत्) तवसकाशात् (हि) यतः (पुत्र) पवित्रकारक (सहसः) बलस्य (वि) (पूर्वीः) सनातन्यः (देवस्य) जगदीश्वरस्य (यन्ति) प्राप्नुवन्ति (ऊतयः) रक्षणाद्याः (वि) (वाजाः) विज्ञानान्नयुक्ताः (त्वम्) (देहि) (सहस्रिणम्) सहस्रमसङ्ख्यानि वस्तूनि विद्यन्ते यस्मिँस्तम् (रयिम्) श्रियम्

(नः) अस्मभ्यम् (अद्रोघेण) अद्रोहेण निर्वैरेण । अत्र वर्ण-व्यत्ययेन हस्य घः (वचसा) वचनेन (सत्यम्) सत्सु व्यवहारेषु साधुम् (अग्ने) पावकवद्वर्त्तमान ॥ ६ ॥

अन्वयः—हे सहसस्पुत्र हि या देवस्य पूर्वीरूतयो वाजा अस्मान्त्वद्वियन्ति । हे अग्ने ततस्त्वमद्रोघेण वचसा नोऽस्मभ्यं सत्यं सहस्रिणं रयिं वि देहि ॥ ६ ॥

भावार्थः—सर्वैरध्येत्रध्यापकराजपुरुषप्रजाजनैर्द्रोहादिदोषान्विहाय प्रीतिं संपाद्य परस्परेषामसङ्ख्यं धनं विज्ञानं च सततमुन्नेयम् ॥६॥

पदार्थः—हे (सहसः) बल के (पुत्र) पवित्रकर्त्ता (हि) जिस से जो (देवस्य) जगदीश्वर की (पूर्वीः) अतिकाल से उत्पन्न (वाजाः) विज्ञान और अन्नयुक्त (ऊतयः) रक्षा आदि क्रिया हम लोगों को (त्वत्) आप से (वि,यन्ति) प्राप्त होती हैं । हे (अग्ने) अग्नि के सदृश तेजस्वी उस से (त्वम्) आप (अद्रोघेण) वैर रहित (वचसा) वचन से (नः) हम लोगों के लिये (सत्यम्) उत्तम व्यवहारों में व्यय होने योग्य (सहस्रिणम्) असङ्ख्य वस्तुओं से पूरित (रयिम्) धन को (वि, देहि) दीजिये ॥ ६ ॥

भावार्थः—सकल शिष्य अध्यापक राजपुरुष और प्रजाजनों को चाहिये कि वैर आदि दोषों को त्याग परस्पर स्नेह उत्पन्न करके मेल कर असङ्ख्य धन और विज्ञान परस्पर बढ़ावें ॥ ६ ॥

अथ विद्वद्वदितर आचरन्त्वित्याह ॥

अब विद्वानों के तुल्य अन्य लोग आचरण करें इस वि० ॥

तुभ्यं॑ दक्ष कविक्रतो॒ यानी॒मा देव॒ मर्त्ता॑सो अध्व॒रे अक॑र्म । त्वं विश्व॑स्य सु॒रथ॑स्य बोधि॒ सर्वं॒ तद॑ग्ने अमृत स्वदे॒ह ॥ ७ ॥ व० १४ ॥

तुभ्यम् । दक्ष । कविक्रतो इति कविऽक्रतो । यानि । इमा । देव । मर्त्तासः । अध्वरे । अकर्म । त्वम् । विश्वस्य । सुऽरथस्य । बोधि । सर्वम् । तत् । अग्ने । अमृत । स्वद । इह ॥ ७ ॥ व० ॥ १४ ॥

पदार्थः—(तुभ्यम्) (दक्ष) अतिचतुर (कविक्रतो) कवीनां क्रतुरिव क्रतुः प्रज्ञा यस्य (यानि) (इमा) (देव) दिव्यगुणकर्मस्वभावप्रद (मर्त्तासः) मनुष्याः (अध्वरे) अहिंसादिलक्षणे यज्ञे (अकर्म) कुर्याम (त्वम्) (विश्वस्य) समग्रस्य (सुरथस्य) शोभनानि रथादीन्यङ्गानि यस्मिँस्तस्य विद्याबोधकव्यवहारस्य (बोधि) बुध्यस्व (सर्वम्) (तत्) (अग्ने) विद्वन् (अमृत) स्वस्वरूपेण नाशरहित (स्वद) आस्वादय (इह) अस्मिन् संसारे ॥ ७॥

अन्वयः—हे दक्ष कविक्रतो देवाऽमृताऽग्ने विद्वन्मर्त्तासो वयमध्वरे तुभ्यं यानीमा धर्म्याणि कर्माणीहाऽकर्म तत्सर्वं त्वं विश्वस्य सुरथस्य मध्ये बोधि सुसंस्कृतान्यन्नानि स्वद ॥ ७ ॥

भावार्थः-सर्वे मनुष्या यथा विद्वांसो धर्मयुक्तानि कर्माणि कुर्युस्तथैव कुर्वन्तु सर्वे मिलित्वेह विद्यासुखोन्नतिं सम्पादयेयुरिति ॥७॥

अत्राऽग्निविद्वद्गुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति वेद्यम् ॥

इति चतुर्दशं सूक्तं चतुर्दशो वर्गश्च समाप्तः ॥

पदार्थः—हे (दक्ष) अत्यन्त चतुर (कविक्रतो) पण्डितों के तुल्य बुद्धिमान् (देव) श्रेष्ठ गुण कर्म स्वभावों के देने वाले (अमृत) अपने स्वरूप से

नाशरहित (अग्ने) विद्वान् पुरुष (मर्त्तासः) हम मनुष्य लोग (अध्वरे) अहिंसा आदि रूप धर्म में (तुभ्यम्) आप के लिये (यानि) जो (इमा) ये धर्मसम्बन्धी कर्म उन को (इह) इस संसार में (अकर्म) करें (तत्) उस (सर्वम्) संपूर्ण कर्म को (त्वम्) आप (विश्वस्य) सम्पूर्ण (सुरथस्य) उत्तम रथ आदि अङ्गों से युक्त विद्याप्रकाशकारक व्यवहार के बीच (बोधि) जानिये और उत्तम प्रकार पाक से सिद्ध किये हुए अन्नों का (स्वद) स्वादपूर्वक भोग करें ॥ ७ ॥

भावार्थः—सम्पूर्ण मनुष्यों को चाहिये कि जैसे विद्वान् लोग धर्म योग्य कर्म करें वैसे वे भी करें और सम्पूर्ण जन एक सम्मति करके इस संसार में विद्या और सुख की उन्नति करें ॥ ७ ॥

इस सूक्त में अग्नि और विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछिले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह समझनी चाहिये ॥

यह चौदहवां सूक्त और चौदहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

अथ सप्तर्चस्य पञ्चदशस्य सूक्तस्य उत्कीलः कात्य ऋषिः । अग्निर्देवता । १ । ४ त्रिष्टुप् । ५ विराट् त्रिष्टुप् । ६ निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । २ पङ्क्तिः । ३ । ७ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

पुनर्विद्वद्भिः किं कार्य्यमित्याह ॥

अब तृतीय मण्डल में सात ऋचा वाले पन्द्रहवें सूक्त का आरम्भ है इस के प्रथम मन्त्र से विद्वानों को क्या करना चाहिये इस वि० ॥

वि पाजसा पृथुना शोशुचानो बाधस्व द्विषो रक्षसो अमीवाः । सुशर्मणो बृहतः शर्मणि स्यामग्नेरहं सुहवस्य प्रणीतौ ॥ १ ॥

वि । पाजसा । पृथुना । शोशुचानः । बाधस्व । द्विषः । रक्षसः । अमीवाः । सुशर्मणः । बृहतः । शर्मणि । स्याम् । अग्नेः । अहम् । सुऽहवस्य । प्रऽनीतौ ॥ १ ॥

पदार्थः—(वि) (पाजसा) बलेन (पृथुना) विस्तीर्णेन (शोशुचानः) भृशं पवित्रः सन् (बाधस्व) निवारय (द्विषः) वैरिणः (रक्षसः) दुष्टस्वभावाः (अमीवाः) रोगइवाऽन्यान् पीडयन्तः (सुशर्मणः) शोभनानि शर्माणि गृहाणि यस्य तस्य (बृहतः) विद्यादिशुभगुणैर्वृद्धस्य (शर्मणि) गृहे (स्याम्) भवेयम् (अग्नेः) पावकस्येव शुभगुणप्रकाशकस्य (अहम्) (सुहवस्य) सुष्ठु स्तुतस्य विदुषः (प्रणीतौ) प्रकृष्टायां नीतौ ॥१॥

अन्वयः—हे विद्वन् शोशुचानस्त्वं पृथुना पाजसा येऽमीवा इव वर्त्तमानान् रक्षसो द्विषो विबाधस्व यतोऽहं सुहवस्य सुशर्मणो बृहतोऽग्नेस्तव प्रणीतौ शर्मणि स्थिरः स्याम् ॥ १ ॥

भावार्थः—विद्वद्भिः स्वयं निर्दोषैर्भूत्वाऽन्येषां दोषान्निवार्य्य गुणान् प्रदाय विद्यासुशिक्षायुक्ताः कार्य्या यतः सर्वे पक्षपातरहिते न्याय्ये धर्मे दृढतया प्रवर्त्तेरन् ॥ १ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् पुरुष (शोशुचानः) अतिपवित्र हुए आप (पृथुना) विस्तारयुक्त (पाजसा) बल से जो (अमीवाः) रोग के सदृश औरों को पीड़ा देते हुए (रक्षसः) निकृष्ट स्वभाव वाले (द्विषः) वैरी लोग हैं उन को (वि) (बाधस्व) त्यागो जिस से (अहम्) मैं (सुहवस्य) उत्तम प्रकार प्रशंसित (सुशर्मणः) उत्तम गृहों से युक्त (बृहतः) विद्या आदि शुभ गुणों से वृद्धभाव को प्राप्त (अग्नेः) अग्नि के सदृश उत्तम गुणों के प्रकाशकर्त्ता आप की (प्रणीतौ) श्रेष्ठ नीतियुक्त (शर्मणि) गृह में (स्याम्) स्थिर होऊं॥१॥

भावार्थः—विद्वान् लोगों को चाहिये कि स्वयं दोषरहित हो औरों के दोष छुड़ा और गुण दे कर विद्या तथा उत्तम शिक्षा से युक्त करें जिस से कि सकल जन पक्षपातशून्य न्याययुक्त धर्म में दृढ़भाव से प्रवृत्त होवें ॥ १ ॥

पुनर्मनुष्याः किं कुर्य्युरित्याह ॥

फिर मनुष्य क्या करें इस वि० ॥

त्वं नो॑ अ॒स्या उ॒षसो॒ व्यु॑ष्टौ॒ त्वं सूर॒ उदि॑ते बोधि गो॒पाः । जन्मे॑व॒ नित्यं॒ तन॑यं जुषस्व॒ स्तोमं॑ मे अग्ने त॒न्वा॑ सुजात ॥ २ ॥

त्वम् । नः॒ । अ॒स्याः । उ॒षसः॑ । वि॒ऽउ॑ष्टौ । त्वम् । सूरे॑ । उदि॑ते । बो॒धि॒ । गो॒पाः । जन्म॑ऽइव । नित्य॑म् । तन॑यम् । जु॒षस्व॒ । स्तोम॑म् । मे॒ । अ॒ग्ने॒ । त॒न्वा॑ । सु॒जा॒त॒ ॥ २ ॥

पदार्थः—(त्वम्) (नः) अस्मान् (अस्याः) (उषसः) प्रभातवेलायाः (व्युष्टौ) विशेषेण दाहे (त्वम्) (सूरे) सूर्य्ये (उदिते) प्राप्तोदये (बोधि) बुध्यस्व (गोपाः) रक्षकः सन् (जन्मेव) यथा प्रादुर्भावि कर्म प्रकटयति तथा (नित्यम्) (तनयम्) पुत्रम् (जुषस्व) सेवस्व प्रीणीहि वा (स्तोमम्) विद्याप्रशंसाम् (मे) मम (अग्ने) पावक इव (तन्वा) शरीरेण (सुजात) सुष्ठु प्रसिद्ध ॥ २ ॥

अन्वयः—हे सुजाताऽग्ने गोपाः विद्वँस्त्वमस्या उषसो व्युष्टौ नो बोधि। त्वं सूर उदितेऽस्मान् बोधि नित्यं तनयं जन्मेव मे तन्वा स्तोमं जुषस्व ॥ २ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालं०—यथा गर्भाशयस्थिता गर्भा न विज्ञायन्ते तथैव सुप्ता अविद्यायां स्थिताश्च विज्ञानरहिता भवन्ति यथा जन्मानन्तरं सशरीरो जीवः प्रसिद्धिं प्राप्नोति तथैव निद्रां विहाय प्रातरुत्थिता इवाविद्यां हित्वा विद्यायां जागृता भूत्वा प्रशंसां प्राप्नुवन्ति ॥ २ ॥

पदार्थः—हे (सुजात) उत्तम प्रकार प्रसिद्ध (अग्ने) अग्नि के सदृश तेजस्वी (गोपाः) रक्षाकारक विद्वान् पुरुष (त्वम्) आप (अस्याः) इस (उषसः) प्रभात समय के (व्युष्टौ) अतिप्रकाश होने पर (नः) हम लोगों को (बोधि) जगाइये (त्वम्) आप (सूरे) सूर्य्य के (उदिते) उदय को प्राप्त होने पर हम को जगाइये (नित्यम्) अतिकाल प्राणधारी (तनयम्) पुत्र को (जन्मेव) जैसे प्रारब्ध कर्म प्रकट करता है वैसे (मे) मेरे (तन्वा) शरीर से (स्तोमम्) विद्या सम्बन्धिनी प्रशंसा को (जुषस्व) आदर कीजिये वा ग्रहण कीजिये ॥ २ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जैसे गर्भाशय में वर्त्तमान पुरुष गर्भों के स्वरूप को नहीं जानते हैं वैसे ही निद्रावस्थापन्न और अविद्या में लिप्त पुरुष विज्ञान से रहित होते हैं और जैसे जन्मधारण होने के अनन्तर शरीरसहित जीवात्मा प्रकट होता है वैसे ही निद्रा को त्याग के प्रातःकाल में जागृत पुरुषों के सदृश अविद्या को त्याग के विद्या में कुशल जन प्रशंसनीय होते हैं॥२॥

पुनर्मनुष्याः किं कुर्य्युरित्याह ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस वि० ॥

त्वं नृचक्षा॑ वृष॒भानु॒ पू॒र्वीः कृ॒ष्णास्व॑ग्ने अरु॒षो वि भा॑हि । वसो॒ नेषि॑ च॒ पर्षि॑ चात्यंहः॑ कृ॒धी नो॑ रा॒ये उ॒शिजो॑ यविष्ठ ॥ ३ ॥

त्वम् । नृऽचक्षाः । वृषभ । अनु । पूर्वीः । कृष्णासु । अग्ने । अरुषः । वि । भाहि । वसो इति । नेषि । च । पर्षि । च । अति । अंहः । कृधि । नः । राये । उशिजः । यविष्ठ ॥ ३ ॥

पदार्थः—(त्वम्) (नृचक्षाः) नृणां सदसत्कर्मद्रष्टा (वृषभ) प्राप्तशरीरात्मबल (अनु) (पूर्वीः) पूर्वेणेश्वरेण कृताः (कृष्णासु) निकृष्टवर्णास्वाकार्षितासु प्रजासु (अग्ने) पावक इव विद्याप्रकाशयुक्त (अरुषः) अहिंसकः सन् (वि) (भाहि) प्रकाशय (वसो) सद्गुणेषु कृतनिवास (नेषि) नयसि (च) (पर्षि) पालयसि । अत्रोभयत्र विकरणाभावः (च) (अति) (अंहः) अनिष्टाचरणम् (कृधि) कुरु । अत्र द्व्यचोतस्तिङ इति दीर्घः (नः) अस्मान् (राये) धनाय (उशिजः) कामयमानान् (यविष्ठ) अतिशयेन युवन् ॥ ३ ॥

अन्वयः—हे यविष्ठ वृषभाऽग्ने त्वं सूर्य्य इवारुषो नृचक्षाः सन् कृष्णास्वनुपूर्वीः प्रजा वि भाहि । हे वसो यतस्त्वं राय उशिजो नेषि च मनोरथान् पर्षि चांहोऽति नेषि तस्मात्त्वं नोऽस्मानुत्तमान् कृधि ॥ ३ ॥

भावार्थः—हे विद्वांसो युष्माभी रविरिव विद्यासुशिक्षाभ्यां सर्वाः प्रजा विद्याधनाढ्याःकृत्वा पापान्निवार्य्य पुण्ये प्रवर्त्तयितव्याः॥३॥

पदार्थः—हे (यविष्ठ) अत्यन्त युवा (वृषभ) वीरतायुक्त (अग्ने) अग्नि के सदृश विद्या से प्रकाशमान (त्वम्) आप सूर्य्य के सदृश (अरुषः) रक्षक और (नृचक्षाः) मनुष्यों के सत् असत् कर्म में विवेकी हो कर (कृष्णासु) अविद्यान्धकारयुक्त नीच प्रजाओं में (अनु) (पूर्वीः) प्रथम ईश्वर से प्रकट

की गई प्रजाओं को (वि) (भाहि) प्रकाशमान कीजिये । हे (वसो) उत्तम गुणधारी जिस से आप (राये) धन के लिये (उशिजः) कामनाविशिष्ट पुरुषों के योग्य (नेषि) प्राप्त कराते (च) मनोरथों को पूर्ण (च) और (पर्षि) दुःखों से रहित तथा (अंहः) बुरे आचरण को (अति) दूर कीजिये इस से आप (नः) हम लोगों को श्रेष्ठ (कृधि) कीजिये ॥ ३ ॥

भावार्थः—हे विद्वान् पुरुषो आप लोगों को चाहिये कि जैसे सूर्य्य अपने किरणोंके द्वारा सब जनों का पालन करता है वैसे विद्या और उत्तम शिक्षा से सम्पूर्ण प्रजा को विद्या धन से युक्त तथा पाप से निवृत्त करके पुण्य कर्मों में प्रीतिपूर्वक प्रवृत्त करावें ॥ ३ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

अषा॑ळ्हो अग्ने वृष॒भो दि॑दीहि॒ पुरो॒ विश्वाः॒ सौभ॑गा सञ्जिगी॒वान् । य॒ज्ञस्य॑ ने॒ता प्र॑थ॒मस्य॑ पा॒योर्जात॑वेदो बृह॒तः सु॑प्रणीते ॥ ४ ॥

अषा॑ळ्हः । अग्ने॒ । वृ॒ष॒भः । दि॒दी॒हि॒ । पुरः॑ । विश्वाः॑ । सौभ॑गा । स॒म्ऽजि॒गी॒वान् । य॒ज्ञस्य॑ । ने॒ता । प्र॒थ॒मस्य॑ । पा॒योः । जात॑ऽवेदः । बृ॒ह॒तः । सु॒ऽप्र॒णी॒ते॒ ॥ ४ ॥

पदार्थः—(अषाळ्हः) असहमानः (अग्ने) पावकइव वर्त्तमान (वृषभः) बलिष्ठः (दिदीहि) धर्म्याणि कर्माणि प्रकाशय (पुरः) नगरीः (विश्वाः) समग्राः (सौभगा) सुभगानामैश्वर्य्याणां सम्बन्धिनीः। अत्र सुपामितिविभक्तेराकारादेशः (सञ्जिगीवान्) सम्यग् विजेता सन् (यज्ञस्य) विद्वत्सत्कारादेः (नेता)

प्रापकः (प्रथमस्य) आदिमाश्रमब्रह्मचर्य्यस्य (पायोः) रक्षकस्य (जातवेदः) जातविद्यः (बृहतः) महतः (सुप्रणीते) शोभना प्रकृष्टा नीतिर्न्यायो यस्य तत्सम्बुद्धौ ॥ ४ ॥

अन्वयः—हे सुप्रणीतेऽग्नेऽषाळ्हो विद्वन् वृषभस्त्वं विश्वाः सौभगा पुरो दिदीहि । हे जातवेदो विद्वन् प्रथमस्य पायोर्बृहतो यज्ञस्य नेता सन् सत्राजिगीवान् भव ॥ ४ ॥

भावार्थः—हे राजपुरुषा विद्याविनयाभ्यां सर्वाः प्रजा आनन्द्य ब्रह्मचर्य्याद्याश्रमानुष्ठानेन प्रजासु विद्यासुशिक्षासभ्यतादीर्घायूंषि वर्धयित्वैश्वर्य्याण्युन्नयन्तु ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे (सुप्रणीते) उत्कृष्टन्यायकारी (अग्ने) अग्नि के सदृश तेजस्वी (अषाळ्हः) दूसरे से नहीं पराजय के योग्य विद्वान् (वृषभः) बलवान् पुरुष आप (विश्वा) सम्पूर्ण (सौभगा) उत्तम ऐश्वर्य वाली (पुरः) नगरियों में (दिदीहि) धर्म मिश्रित कर्मों का प्रकाश कीजिये । हे (जातवेदः) सकलविद्यापूरित विद्वन् पुरुष (प्रथमस्य) प्रथमाश्रमब्रह्मचर्य्यरूप (पायोः) रक्षाकारक (बृहतः) श्रेष्ठ (यज्ञस्य) अहिंसा धर्म के (नेता) उत्तम रीति से निर्वाहक हुए और (सत्रजिगीवान्) उत्तम प्रकार जयशाली होइये ॥ ४ ॥

भावार्थः—हे राजपुरुषो विद्या और विनय से सम्पूर्ण प्रजाओं को प्रसन्न तथा ब्रह्मचर्य्य आदि आश्रमों के निर्वाह से उन में विद्या उत्तम शिक्षा श्रेष्ठता अतिकाल जीवन आदि बढ़ाय के ऐश्वर्य्यों का आधिक्य कीजिये ॥ ४ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

अच्छिद्रा शर्म्म जरितः पुरूणि देवाँ अच्छा दीद्यानः सुमेधाः । रथो न सस्निरभि वक्षि वाजमग्ने त्वं रोदसी नः सुमेके ॥ ५ ॥

अच्छिद्रा । शर्म । जरितरिति । पुरूणि । देवान् । अच्छ । दीद्यानः । सुऽमेधाः । रथः । न । सस्निः । अभि । वक्षि । वाजम् । अग्ने । त्वम् । रोदसी इति । नः । सुमेके इति सुऽमेके ॥ ५ ॥

पदार्थः—(अच्छिद्रा) अच्छिन्नानि (शर्म) शर्माणि गृहाणि (जरितः) सत्यगुणस्तावक (पुरूणि) बहूनि (देवान्) विदुषो दिव्यगुणान् वा (अच्छ) सुष्ठु । अत्र निपातस्य चेति दीर्घः (दीद्यानः) प्रकाशमानः प्रकाशयन् वा (सुमेधाः) उत्तमप्रज्ञः सन् (रथः) उत्तमयानम् (न) इव (सस्निः) शुद्धः (अभि) आभिमुख्ये (वक्षि) वदसि (वाजम्) विज्ञानम् (अग्ने) पावकवद्वर्त्तमान (त्वम्) (रोदसी) द्यावापृथिव्यौ (नः) अस्माकम् (सुमेके) सुष्ठु प्रक्षिप्ते ॥ ५ ॥

अन्वयः—हे अग्ने त्वं यथाऽग्निः सुमेके रोदसी प्रकाशयति तथैव नो दीद्यानः सुमेधाः सस्नी रथो न नोऽस्मभ्यं वाजमभि वक्षि । हे जरितर्विद्वँस्त्वमच्छिद्रा पुरूणि शर्म देवाँश्च कामयमानः सन्नच्छाभि वक्षि ॥ ५ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालं०—यथा शुद्धेन दृढेन रथेनाऽभीष्टं स्थानं सद्यो गच्छन्ति तथैव येऽनलसाः पुरुषार्थिनः शोभनानि स्थानानि कामयमानाः विद्वत्सङ्गेन दिव्यान् गुणान् प्राप्याऽन्यान् प्रत्युपदिशन्ति ते सम्यक् सिद्धसुखा जायन्ते ॥ ५ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के सदृश प्रतापी (त्वम्) आप जैसे अग्नि (सुमेके) अच्छे प्रकार फैलाये गये (रोदसी) अन्तरिक्ष पृथिवी को प्रकाशित

करता है उसी प्रकार (नः) हम लोगों के (दीद्यानः) प्रकाशयुक्त वा प्रकाशक (सुमेधाः) श्रेष्ठ बुद्धिमान् और (सप्तिः) सुडौल (रथः) उत्तम रथ के (न) सदृश हम लोगों के लिये (अभि) सन्मुख (वाजम्) विज्ञान को (वक्षि) कहिये हे (जरितः) सत्य गुणों की स्तुति कर्त्ता विद्वान् पुरुष आप (अच्छिद्रा) अति पुष्ट (पुरूणि) बहुत (शर्म) गृह और (देवान्) विद्वान् वा उत्तम गुणों से प्रसन्नता पूर्वक (अच्छ) उत्तम प्रकार संयुक्त कीजिये ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जैसे सुडौल बने हुए और दृढ रथ से अभिवाञ्छित स्थानों को शीघ्र पहुंचते हैं वैसे ही जो पुरुष आलस्य त्याग कर पुरुषार्थी हैं वे उत्तम स्थानों की कामना करते हुए विद्वानों के सङ्ग द्वारा श्रेष्ठगुणों से संयुक्त होकर अन्य जनों के लिये भी उपदेश देते हैं वे पुरुष उत्तम प्रकार सुख भोगते हैं ॥ ५ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

प्र पीपय वृषभ जिन्व वाजानग्ने त्वं रोदसी नः सुदोघे। देवेभिर्देव सुरुचा रुचानो मा नो मर्त्तस्य दुर्मतिः परि ष्ठात् ॥ ६ ॥

प्र । पीपय । वृषभ । जिन्व । वाजान् । अग्ने । त्वम् । रोदसीऽइति । नः । सुदोघेइति सुऽदोघे । देवेभिः । देव । सुऽरुचा । रुचानः । मा । नः । मर्त्तस्य । दुःऽमतिः । परि । स्थात् ॥ ६ ॥

पदार्थः—(प्र) (पीपय) वर्द्धय (वृषभ) शरीरात्मबलयुक्त (जिन्व) प्रीणीहि (वाजान्) विज्ञानवतः (अग्ने)

पावकवद्वर्त्तमान (त्वम्) (रोदसी) द्यावापृथिव्यौ (नः) अस्मभ्यम् (सुदोघे) कामानां सुष्ठुप्रपूरिके । अत्र वर्णव्यत्ययेन ह्रस्य घः (देवेभिः) विद्वद्भिः सह (देव) दिव्यगुणप्रद (सुरुचा) यया सुष्ठु रोचते तया (रुचानः) प्रीतिमान् (मा) (नः) अस्मान् (मर्त्तस्य) मनुष्यस्य (दुर्मतिः) दुष्टा चासौ मतिश्च (परि) सर्वतः (स्थात्) तिष्ठेत् ॥ ६ ॥

अन्वयः—हे वृषभाऽग्ने त्वं सुदोघे रोदसी सूर्य्य इव वाजान्नोऽस्मभ्यं पीपय । हे देव त्वं देवेभिः सुरुचा सह रुचानः सन्नोऽस्मान् प्र जिन्व यतो नो मर्त्तस्य दुर्मतिर्मा परि ष्ठात् ॥ ६ ॥

भावार्थः—यस्मिन्देशे विद्वांसः प्रीत्या सर्वान् वर्धयितुमिच्छन्ति दुष्टां प्रज्ञां विनाशयन्ति तत्र सर्वे प्रवृद्धविज्ञानधना जायन्ते ॥ ६ ॥

पदार्थः—हे (वृषभ) शरीर और आत्मा के बल से युक्त (अग्ने) अग्नि के सदृश तेजस्वी (त्वम्) आप जैसे (सुदोघे) कामनाओं की उत्तम प्रकार पूर्त्तिकारक (रोदसी) अन्तरिक्ष पृथिवी को सूर्य्य प्रकाशित और सुखयुक्त करता है वैसे (वाजान्) विज्ञानयुक्त (नः) हम लोगों को (पीपय) संपत्तियुक्त कीजिये। हे (देव) उत्तम गुण प्रदाता आप (देवेभिः) विद्वानों के साथ (सुरुचा) उत्तम तेज से प्रीतिसहित (रुचानः) प्रीतियुक्त हुए(नः) हम लोगों को (प्र)(जिन्व) आनन्दित कीजिये जिस से कि हम लोगों के लिये (मर्त्तस्य) मनुष्य सम्बन्धिनी (दुर्मतिः) दुष्ट बुद्धि (मा) नहीं (परि) सब ओर से (स्थात्) स्थित हो ॥ ६ ॥

भावार्थः—जिस देश में विद्वान् लोग प्रीति से सब लोगों को बढ़ाने की इच्छा करते हैं और दुष्ट बुद्धि का नाश करते हैं वहां सब लोग वृद्धि की प्राप्त विज्ञानरूप धन वाले होते हैं ॥ ६ ॥

वैदिकयन्त्रालय प्रयाग के पुस्तकों का सूचीपत्र

और संक्षिप्त नियम ।

(१) मूल्य टिकट भेज कर मंगावें (२) टिकट भेजने वालों को १०) रु० वा इस से अधिक पर २०) रु० सैकड़ा के हिसाब से कमीशन के पुस्तक अधिक भेजे जांय गे (३) डाक महसूल वेदभाष्य छोड़ कर सब से अलग लिया जायगा । ५) रु० वा इस से अधिक के पुस्तक ग्राहक की आज्ञानुसार रजिस्टरी भेजे जांयगे (५) मूल्य नीचे लिखे पतेसे भेजें ॥

पुस्तक	मू०	डा०
ऋग्वेदभाष्य अं० १—११७	३८)	
यजुर्वेद भाष्य सम्पूर्ण	३८)	
ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका	मू०	डा०
बिना जिल्द की	२)	=)
„ जिल्द की	२॥)	।)
वर्णोच्चारण शिक्षा	/)	)॥
सन्धिविषय	।=)॥	)॥
नामिक	।=)॥	)॥
कारकीय	।/)॥	)॥
सामासिक	।=)॥	)॥
स्त्रैणताद्धित	१=)	/)
अव्ययार्थ	=)॥	)॥
सौवर	=)॥	)॥
आख्यातिक	१॥)	=)॥
पारिभाषिक	=)॥	)॥
धातुपाठ	।=)	)॥
गणपाठ	।/)	)॥
उणादिकोष	॥=)	/)
निघण्टु	।=)	)॥
अष्टाध्यायीमूल	।/)॥	)॥
संस्कृतवाक्यप्रबोध	=)	)॥
व्यवहारभानु	=)	)॥

पुस्तक	मू०	डा०
भ्रमोच्छेदन	)॥	)॥
अनुभ्रमोच्छेदन	)॥	)॥
मेलाचांदापुर	/)	)॥
आर्य्योद्देश्यरत्नमाला	/)	)॥
गोकरुणानिधि	/)	)॥
स्वामीनारायणमतखण्डन		
„ संस्कृतगुजराती	/)	)॥
„ उक्त गुजराती	/)	)॥
वेदविरुद्धमतखण्डन	=)	)॥
स्वमन्तव्याऽमन्तव्यप्रकाश	)॥	)॥
शास्त्रार्थ फीरोज़ाबाद	=)	)॥
शास्त्रार्थकाशी	/)	)॥
आर्य्याभिविनय	।)	/)
„ जिल्द की	।=)	/)
वेदान्तिध्वान्तनिवारण	=)	)॥
भ्रान्तिनिवारण	/)।	)॥
पञ्चमहायज्ञविधि	=)॥	)॥
„ जिल्द की	।/)॥	/)
सत्यार्थप्रकाश	२।)॥	=)॥
„ जिल्द का	२॥)	।)
आर्य्यसमाज के नियमोपनियम	)।	)।

मैनेजर—वैदिकयन्त्रालय—प्रयाग

रसीदमूल्यवेदभाष्य

पं० रामचन्द्र जी नेहा	... जि० अमृतसर	८)
पं० हीरालाल जी	... बूर्री	१०)

मार्फ़त बा० केशोराम

बा० किशनचन्द चोपड़ा एगज़ामिनर का दफ़तर ...	लाहौर	२)
बा० मङ्गलसेन रीडर रेलवे प्रेस	लाहौर	८)
ला० कांबलनेन अकोन्डेन्ट्स आफिस	लाहौर	४)
बा० लालचन्द एम. ए. प्लीडर	लाहौर	३२॥)
बा० मदनसिंह बी. ए.	लाहौर	१६)
डाक्टर चेतनशाह	भङ्ग	४४)
रजिष्ट्रार एजुकेशनल डिपार्टमेण्ट	लाहौर	२१)
पं० सालिगराम प्लीडर ...	मांट गोमरी	२०)
	जोड़	१६७॥)

सूचना

सब सज्जन महाशयों को विदित हो कि नीचे लिखी पुस्तकें वैदिकयन्त्रालय में नहीं रही हैं किन्तु छपरही हैं इस लिये आशा है कि इन पुस्तकों का कुछ दिन इन्तज़ार करें॥

सत्यार्थप्रकाश	२ मास
पञ्चमहायज्ञविधि	१ मास
संस्कारविधि	२ मास
अष्टाध्यायी	१ मास

ऋग्वेदभाष्यम्

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मितम्

संस्कृतार्य्यभाषाभ्यां समन्वितम् ।

अस्यैकैकाङ्कस्य प्रतिमासं मूल्यम् भारतवर्षान्तर्गतदेशान्तर-
प्रापणमूल्येन सहितम् ।=) अङ्कद्वयस्यैकीकृतस्य ॥=)
वार्षिकं मूल्यम् ८)

इस ग्रंथ के प्रतिमास एक एक अंक का मूल्य भरतखंड के भीतर डांक
महसूल सहित ।✓) एक साथ छपे हुए दो अंकों के ॥✓)
और वार्षिक मूल्य ८)

यस्य सज्जनमहाशयस्यास्य ग्रन्थस्य जिघृक्षा भवेत् स प्रयागनगरे वैदिक-
यन्त्रालयप्रबन्धकर्त्तुः समीपे वार्षिकमूल्यप्रेषणेन प्रतिमासं
मुद्रितावङ्कौ प्राप्स्यति ॥

जिस सज्जन महाशय की इस ग्रन्थ के लेने की इच्छा हो वह प्रयाग नगरमें वैदिकयन्त्रालयमेनेजर
के समीप वार्षिक मूल्य भेजने से प्रतिमास के छपे हुए दोनों अंकों को प्राप्त कर सकता है ।

पुस्तक (१४८, १४९) अंक (१३२, १३३)

अयं ग्रन्थः प्रयागनगरे वैदिकयन्त्रालये मुद्रितः ॥

संवत् १९४० चैत्रशुक्ल

१—१—८०

वेदभाष्यसम्बन्धी विशेषनियम ॥

[१] यह "ऋग्वेदभाष्य" मासिक छपता है । एक मास में बत्तीस २ पृष्ठ के एक साथ छपे हुए दो अङ्क १ वर्ष में २४ अङ्क "ऋग्वेदभाष्य" के भेजे जाते हैं ॥

[२] वेदभाष्य का मूल्य बाहर और नगर के ग्राहकों से एक ही लिया जायगा अर्थात् डाकव्यय से कुछ न्यूनाधिक न होगा ।।

[३] इस वर्तमान बारहवें वर्ष के कि जो ११४—११५ अङ्क से प्रारंभ हो कर १२६ । १२७ पर पूरा होगा । वार्षिक मूल्य ८) रु० हैं ।

[४] पीछे के ग्यारह वर्षमें जो वेदभाष्य छप चुका है उस का मूल्य यह है:—

[क] "ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका" विना जिल्द की ३)

स्वर्णाक्षरयुक्त जिल्द की ३।।)

[ख] ११३ अङ्क तक ३७॥≠)

[५] वेदभाष्य का अङ्क प्रत्येक मास की पहिली तारीख को डाक में डाला जाता है । जो किसी का अङ्क डाक की भूल से न पहुंचे तो इस के उत्तर दाता प्रबंधकर्त्ता न होंगे । परन्तु दूसरे मास के अङ्क भेजने से प्रथम जो ग्राहक अङ्क न पहुंचने की सूचना दे देंगे तो उन को विना दाम दूसरा अङ्क भेज दिया जायगा इस अवधि के व्यतीत हुए पीछे अङ्क दाम देने से मिलेंगे एक अङ्क ।≠) दो अङ्क ॥≠) तीन अङ्क १) देने से मिलेंगे ॥

[६] दाम जिस को जिस प्रकार से सुवीता हो भेजे परन्तु मनीआर्डर द्वारा भेजना ठीक होगा । टिकट डाक के अधन्नी वाले लिये जा सकते हैं परन्तु एक रुपये पीछे आध आना बट्टे का अधिक लिया जायगा । टिकट आदि मूल्यवान् वस्तु रजिस्टरी पत्री में भेजना चाहिये ॥

[७] जो लोग पुस्तक लेने से अनिच्छुक हों, वे अपनी ओर जितना रुपया हो भेज दें और पुस्तक के न लेने से प्रबन्धकर्त्ता को सूचित कर दें जबतक ग्राहक का पत्र न आवेगा तबतक पुस्तक बराबर भेजा जायगा और दाम लेलिये जायंगे।

[८] बिके हुए पुस्तक पीछे नहीं लिये जायंगे ।।

[९] जो ग्राहक एक स्थान से दूसरे स्थान में जांय वे अपने पुराने और नये पते से प्रबन्धकर्त्ता को सूचित करें । जिस में पुस्तक ठीक ठीक पहुंचता रहे ।

[१०] "वेदभाष्य" सम्बन्धी रुपया, और पत्र प्रबन्धकर्त्ता वैदिकयन्त्रालय प्रयाग (इलाहाबाद) के नाम से भेजें ।।

पुनस्तमेव विषयमाह ॥
फिर उसी वि० ॥

इळामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध । स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥ ७ ॥ व० १५ ॥

इळाम् । अग्ने । पुरुऽदंसम् । सनिम् । गोः । शश्वत्ऽतमम् । हवमानाय । साध । स्यात् । नः । सूनुः । तनयः । विजाऽवा । अग्ने । सा । ते । सुऽमतिः । भूतु । अस्मेऽइति ॥ ७ ॥ व० १५ ॥

पदार्थः—(इळाम्) सुशिक्षितां वाचम् (अग्ने) पावक इव विद्याप्रकाशक (पुरुदंसम्) पुरूणि बहूनि दंसांसि धर्म्याणि कर्माणि यस्य तम् (सनिम्) न्यायेन सत्याऽसत्यविभाजकम् (गोः) पृथिव्या मध्ये (शश्वत्तमम्) अनादिभूतम् (हवमानाय) प्रशंसमानाय (साध) साध्नुहि (स्यात्) भवेत् (नः) अस्माकम् (सूनुः) सन्तानः (तनयः) धार्मिकः पुत्रः (विजावा) विजयशीलः । अत्र जी धातोरौणादिको वन् प्रत्ययो बाहुलकादाकारादेशश्च (अग्ने) विद्वन् (सा) (ते) तव (सुमतिः) शोभना प्रज्ञा (भूतु) भवतु (अस्मे) अस्मासु ॥ ७ ॥

अन्वयः—हे अग्ने त्वं हवमानाय शश्वत्तमं पुरुदंसामिळां गोः सनिमैश्वर्यं साध येन नः सूनुः तनयः विजावा स्यात् । हे अग्ने या ते सुमतिरस्ति सास्मे भूतु ॥ ७ ॥

भावार्थः—विद्वद्भिर्जिज्ञासुभ्यो विद्यां सुशिक्षां धर्मानुष्ठानमैश्वर्यञ्च साधनीयं यथा सर्वेषां कुमाराः कुमार्यश्चोत्तमाःस्युस्तथा प्रयत्नोऽनुविधेयः सर्वतो विद्यां गृहीत्वा सर्वेभ्यो देया इति ॥ ७ ॥

अत्र विद्वदध्यापकाऽध्येत्रग्निगुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिर्वेद्या ॥

इति पञ्चदशं सूक्तं पञ्चदशो वर्गश्च समाप्तः ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के सदृश विद्याप्रकाशकारक विद्वन् आप (हवमानाय) प्रशंसाकर्त्ता के लिये (शश्वत्तमम्) अनादि से उत्पन्न (पुरुदंसम्) अत्यन्त धर्म सहित कर्मयुक्त (इळाम्) उत्तम शिक्षा युक्त वाणी को (गोः) पृथिवी के मध्य में (सनिम्) न्याय से सत्य और असत्य के विभागकारक ऐश्वर्य्य को (साध) सिद्ध करिये जिस से (नः) हम लोगों का (सुनुः) सन्तान (तनयः) धार्मिक पुत्र (विजावा) विजयशील (स्यात्) हो। हे (अग्ने) विद्वन् जो (ते) आप की (सुमतिः) उत्तम बुद्धि है (सा) वह (अस्मे) हम लोगों के लिये (भूतु) होवे ॥ ७ ॥

भावार्थः—विद्वानों को चाहिये कि जिज्ञासु जनों के लिये विद्या उत्तमशिक्षा धर्मानुष्ठान तथा ऐश्वर्यवृद्धि सिद्ध करें और जैसे कि सम्पूर्ण मनुष्यों के लड़के लड़कियां उत्तम कर्म युक्त तथा सब के सन्तान विद्या बल युक्त होवें ऐसा प्रयत्न करें अर्थात् सब स्थान से विद्या ग्रहण करके सब को देवें ॥ ७ ॥

इस सूक्त में विद्वान् अध्यापक अध्येता और अग्नि के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछिले सूक्त के अर्थ के साथ संगति है यह जानना चाहिये ॥

यह पन्द्रहवां सूक्त और पन्द्रहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

अथ षडृचस्य षोडशस्य सूक्तस्य उत्कीलः कात्य ऋषिः। अग्निर्देवता। १ । ५ भुरिगनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः। २ । ६ निचृत् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः। निचृद्बृहती। ४ भुरिक्बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः ॥

अथाऽग्निगुणानाह ॥

अब छः ऋचा वाले सोलहवें सूक्त का आरम्भ है इस के प्रथम मन्त्र में अग्नि के गुणों को कहते हैं ॥

अयमग्निः सुवीर्य्यस्येशे महः सौभगस्य राय ईशे । स्वपत्यस्य गोमत ईशे वृत्रहथानाम् ॥ १ ॥

अयम् । अग्निः । सुऽवीर्य्यस्य । ईशे । महः । सौभगस्य । रायः । ईशे । सुऽअपत्यस्य । गोऽमतः । ईशे । वृत्रऽहथानाम् ॥ १ ॥

पदार्थः—(अयम्) (अग्निः) अग्निरिव वर्त्तमानो राजा (सुवीर्य्यस्य) सुष्ठुबलस्य (ईशे) ईष्टे (महः) महतः (सौभगस्य) श्रेष्ठैश्वर्य्यस्य (रायः) (ईशे) (स्वपत्यस्य) शोभनान्यपत्यानि यस्य तस्य (गोमतः) शोभना वाग् पृथिव्यादयो वा विद्यन्ते यस्य तस्य (ईशे) ईष्टे। अत्र सर्वत्रैकपक्षे लोपस्त आत्मनेष्विति तल्लोपोऽन्यत्रोत्तमपुरुषस्यैकवचनम् (वृत्रहथानाम्) वृत्रा मेघा इव वर्त्तमानाः शत्रवो हथा हता यैस्तेषाम् ॥ १ ॥

[अन्व]यः—यथा वृत्रहथानां मध्येऽयमग्निर्महः सुवीर्यस्येशे सौभगस्य राय ईशे गोमतः स्वपत्यस्येशे तथाऽहमेतेषामेनस ईशे ॥ १ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—मनुष्या यथा सुसाधितेनाग्निनोत्तमं बलं महदैश्वर्य्यमुत्तमान्यपत्यानि च लब्ध्वा शत्रून् विनाशयन्ति तथैव मनुष्याः सुपुरुषार्थेनोत्तमं सैन्यमतुलमैश्वर्य्यं शरीरात्मबलयुक्तान् सन्तानान् प्राप्य शत्रुवद्दोषान् घ्नन्तु ॥ १ ॥

पदार्थः—जैसे (वृत्रहथानाम्) मेघ के सदृश वर्त्तमान शत्रुओं के हननकारियों के मध्य में (अयम्) यह (अग्निः) अग्नि के सदृश प्रकाशमान राजा (महः) श्रेष्ठ (सुवीर्य्यस्य) उत्तम बल का (ईशे) स्वामी तथा (सौभगस्य) श्रेष्ठ ऐश्वर्यभाव और (रायः) धन का (ईशे) स्वामी है (गोमतः) उत्तम वाणी तथा पृथिवी आदि युक्त पुरुष का स्वामी है (स्वपत्यस्य) उत्तम सन्तान युक्त पुरुष का स्वामी है वैसे ही मैं इन पुरुषों के मध्य में दोष का (ईशे) स्वामी हूं॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—मनुष्य लोग जैसे उत्तम प्रकार होम तथा यन्त्र आदि से सिद्ध किये हुए अग्नि से उत्तम बल श्रेष्ठ ऐश्वर्य और उत्तम सन्तानों को प्राप्त हो के शत्रु लोगों का नाश करते वैसे ही मनुष्य लोगों को चाहिये कि उत्तम पुरुषार्थ से उत्तम सेना अतुल ऐश्वर्य्य शरीर आत्मा बल से युक्त सन्तानों को प्राप्त हो कर शत्रुओं के समान क्रोध आदि दोषों को त्यागें ॥१॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

इमं नरो मरुतः सश्चता वृधं यस्मिन् रायः शेवृधासः । अभि ये सन्ति पृतनासु दूढ्यो विश्वाहा शत्रुमादभुः ॥ २ ॥

इमम् । नरः । मरुतः । सश्चत । वृधम् । यस्मिन् । रायः । शेऽवृधासः । अभि । ये । सन्ति । पृतनासु । दुःऽध्यः । विश्वाहा । शत्रुम् । आऽदभुः ॥ २ ॥

पदार्थः—(इमम्) (नरः) विद्याविनयनेतारः (मरुतः) वायव इव मनुष्याः (सश्चत) प्राप्नुत। अत्र संहितायामिति दीर्घः (वृधम्) वर्द्धकं व्यवहारम् (यस्मिन्) यस्मिन् व्यवहारे (रायः) श्रियः (शेवृधासः) शेवृन् सुखानि दधति येभ्यस्ते (अभि) (ये) (सन्ति) (पृतनासु) मनुष्यसेनासु (दूढ्यः) दुःखेन ध्यातुं योग्यान् (विश्वाहा) सर्वाण्यहानि (शत्रुम्) (आदभुः) समन्ताद्धिंसन्तु ॥ २ ॥

अन्वयः—हे मरुतो नरो यूयं यस्मिञ्छेवृधासो रायः सन्ति तमिमं वृधं विश्वाहा सश्चत। ये पृतनासु दूढ्यः सन्ति शत्रुमादभुस्तानभि सश्चत ॥ २ ॥

भावार्थः—राजपुरुषैर्यथा धनराजसत्ताप्रतिष्ठा वर्धेरन् यथा च सेनासूत्तमा वीरा जायेरन् तथा सत्यव्यवहारः सदाऽनुष्ठेयः ॥ २ ॥

पदार्थः—हे (मरुतः) वायु के सदृश बलयुक्त मनुष्यो (नरः) विद्या और नम्रता के नायक आप लोग (यस्मिन्) जिस व्यवहार में (शेवृधासः) सुखवृद्धिकारक (रायः) धन (सन्ति) होते हैं उस (इमम्) इस (वृधम्) पुत्र आदि की वृद्धिकारक व्यवहार को (विश्वाहा) सर्वदा (सश्चत) प्राप्त करो (ये) जो (पृतनासु) मनुष्यों की सेनाओं में (दूढ्यः) कठिनता से पराजित होने योग्य पुरुष हैं ऐसे और (शत्रुम्) शत्रु को (आदभुः) सब ओर से नाश करें उन पुरुषों को (अभि) सब प्रकार प्राप्त होओ ॥ २ ॥

भावार्थः—राजपुरुषों को चाहिये कि जिस प्रकार धन राजस्थिति और प्रतिष्ठा बढ़े और जिस प्रकार सेनाओं में उत्तम वीरपुरुष होवें वैसा सत्य व्यवहार सदा करें ॥ २ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

स त्वं नो रायः शिशीहि मीढ्वो अग्ने सुवीर्य्यस्य । तुविद्युम्न वर्षिष्ठस्य प्रजावतोऽनमीवस्य शुष्मिणः ॥ ३ ॥

सः । त्वम् । नः । रायः । शिशीहि । मीढ्वः । अग्ने । सुऽवीर्य्यस्य । तुविऽद्युम्न । वर्षिष्ठस्य । प्रजाऽवतः । अनमीवस्य । शुष्मिणः ॥ ३ ॥

पदार्थः—(सः) (त्वम्) (नः) अस्मभ्यम् (रायः) धनानि (शिशीहि) तीव्रान् संपादय (मीढ्वः) सुखानां सेचकः (अग्ने) पावकवद्वर्त्तमान (सुवीर्यस्य) शोभनेषु वीरेषु भवस्य (तुविद्युम्न) तुविर्बहुविधं धनं यशो वा यस्य (वर्षिष्ठस्य) अतिशयेन वृद्धस्य (प्रजावतः) बह्व्यःप्रजा विद्यन्ते यस्य तस्य (अनमीवस्य) नीरोगस्य (शुष्मिणः) बहुबलयुक्तस्य ॥ ३ ॥

अन्वयः—हे मीढ्वस्तुविद्युम्नाग्ने स त्वं नः सुवीर्यस्य वर्षिष्ठस्य प्रजावतोऽनमीवस्य शुष्मिणो रायः शिशीहि ॥ ३ ॥

भावार्थः—ये मनुष्या धनेन सैन्यं श्रेष्ठतां प्रजामारोग्यं बलं च वर्धयन्ति ते सर्वदाऽग्रश्रियो भवन्ति ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे (मीढ्वः) सुखों के दाता (तुविद्युम्न) बहुत प्रकार के धन वा यश से युक्त (अग्ने) अग्नि के समान तेजोवान् (स.) वह (त्वम्) आप (नः) हम लोगों के लिये (सुवीर्य्यस्य) उत्तम वीरों में उत्पन्न (वर्षि-

द्धस्य) अतिवृद्ध और (प्रजावतः) अत्यन्त प्रजायुक्त (अनमीवस्य) रोगरहित (शुष्मिणः) अत्यन्त बल सहित पुरुष के (रायः) धनों को (शिशीहि) अति बढाइये ॥ ३ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य धन से सेना श्रेष्ठता प्रजा आरोग्य और बल को बढाते हैं वे लोग सर्वदा बहुत धन वाले होते हैं ॥ ३ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

चक्रिर्यो विश्वा भुवनाभि सासहिश्चक्रिर्देवेष्वा दुवः । आ देवेषु यतत आ सुवीर्य्य आ शंस उत नृणाम् ॥ ४ ॥

चक्रिः । यः । विश्वा । भुवना । अभि । ससहिः । चक्रिः । देवेषु । आ । दुवः । आ । देवेषु । यतते । आ । सुऽवीर्य्यें । आ । शंसे । उत । नृणाम् ॥ ४ ॥

पदार्थः—(चक्रिः) यः करोति सः (यः) (विश्वा) सर्वाणि (भुवना) भवन्ति येषु तानि भुवनानि (अभि) (सासहिः) अतिशयेन सोढा (चक्रिः) कर्त्तु शीलः (देवेषु) दिव्यगुणेषु (आ) (दुवः) परिचरणं सेवनम् (आ) (देवेषु) प्रशंसकेषु (यतते) साध्नोति (आ) (सुवीर्य्ये) शोभने बले (आ) (शंसे) स्तुतौ (उत) (नृणाम्) वीरजनानाम् ॥ ४ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यो विश्वा भुवनाऽभिचक्रिर्देवेषु सासहिर्दुवरा चक्रिर्देवेष्वा यतत उतापि नृणामाशंसे सुवीर्य्य आ यतते तं सदा सेवध्वम् ॥ ४ ॥

भावार्थः—हे मनुष्या येन सर्वे लोका निर्मिता मनुष्यादयः प्राणिनस्तेषां निर्वाहायान्नादयः पदार्था रचिता यो विद्वद्भिर्वेद्यस्तस्यैव परमात्मनः सेवनं सततं कर्त्तव्यम् ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यः) जो (विश्वा) सम्पूर्ण (भुवना) लोकों का (अभि, चक्रिः) अभिमुख कर्त्ता (देवेषु) उत्तम गुणों में (सासहिः) अतिसहनशील और (दुवः) सेवन को (आ, चक्रिः) अच्छे प्रकार करने वाला और जो (देवेषु) स्तुतिकारकों में (आ) (यतते) अच्छा यत्न करता है (उत) और भी (नृणाम्) वीरपुरुषों की (आ) (शंसे) स्तुति में (सुवीर्ये) श्रेष्ठ बल में (आ) सब प्रकार प्रयत्न करता है उस की सदा (सेवध्वम्) सेवा करो ॥ ४ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो जिस ने सम्पूर्ण लोक तथा मनुष्य आदि प्राणी रचे और उन प्राणियों के जीवनार्थ अन्न आदि पदार्थ रचे और जो विद्वानों से जानने योग्य उस ही परमात्मा का निरन्तर सेवन करना चाहिये ॥ ४ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

मा नो॑ अग्नेऽमतये मावीरताये रीरधः । मागोताये सहसस्पुत्र मा निदेऽप द्वेषांस्या कृधि ॥५॥

मा । नः । अग्ने । अमतये । मा । अवीरतायै । रीरधः । मा । अगोतायै । सहसः । पुत्र । मा । निदे । अप । द्वेषांसि । आ । कृधि ॥ ५ ॥

पदार्थः—(मा) निषेधे (नः) अस्माकम् (अग्ने) विद्वन् (अमतये) विरुद्धप्रज्ञायै (मा) (अवीरतायै) कातरतायै

(रीरधः) रध्याः हिंस्याः (मा) (अगोतायै) इन्द्रियविकलतायै (सहसः) बलस्य (पुत्र) पालक (मा) (निदे) निन्दकाय (अप) दूरीकरणे (द्वेषांसि) (आ) (कृधि) समन्तात् कुर्याः ॥ ५ ॥

अन्वयः हे सहसस्पुत्राऽग्ने त्वं नोऽमतये मा रीरधोऽवीरतायै मा रीरधोऽगोतायै मा रीरधो निदे द्वेषांसि माऽपा कृधि ॥ ५ ॥

भावार्थः—जिज्ञासुभिर्विदुषः प्राप्य प्रज्ञा वीरता जितेन्द्रियता विद्या सुशिक्षा धर्मो ब्रह्मज्ञानं च याचनीयम् । निन्दादिदोषान् निन्दकसङ्गं च विहाय सभ्यता सङ्ग्राह्या ॥ ५ ॥

पदार्थः—हे (सहसः) बल के (पुत्र) पालक (अग्ने) विद्वन् पुरुष आप (नः) हम लोगों की (अमतये) विपरीत बुद्धि के लिये (मा) नहीं (रीरधः) वश में करो तथा (अवीरतायै) कायरता के लिये (मा) नहीं वशीभूत करो (अगोतायै) इन्द्रिय विकारता के लिये (मा) नहीं वशीभूत करो (निदे) निन्दक पुरुष के लिये (द्वेषांसि) द्वेष भावों को (मा) नहीं (अप) अलग करने में (आ) (कृधि) सब प्रकार कीजिये ॥ ५ ॥

भावार्थः—ज्ञान सुख की इच्छा करने वाले पुरुषों को चाहिये कि विद्वानों के समीप प्राप्त हो कर बुद्धि वीरता जितेन्द्रियता विद्या उत्तम शिक्षा धर्म और ब्रह्मज्ञान की प्रार्थना करें तथा निन्दा आदि दोष और निन्दक पुरुषों का संग त्याग के सभ्यता ग्रहण करें ॥ ५ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

शुग्धि वाजस्य सुभग प्रजावतोऽग्ने बृहतो अध्वरे । सं राया भूयसा सृज मयोभुना तुविद्युम्न यशस्वता ॥ ६ ॥ व० ॥ १६ ॥

शग्धि । वाजस्य । सुऽभग । प्रजाऽवतः । अग्ने । बृहतः । अध्वरे । सम् । राया । भूयसा । सृज । मयःऽभुना । तुविऽद्युम्न । यशस्वता ॥ ६ ॥ व० ॥ १६ ॥

पदार्थः-(शग्धि) शक्नुहि (वाजस्य) अन्नादेर्विज्ञानस्य वा (सुभग) प्राप्तोत्तमैश्वर्य्य (प्रजावतः) प्रशस्ताः प्रजा विद्यन्ते यस्मिंस्तस्य (अग्ने) विद्वन् (बृहतः) महतः (अध्वरे) अहिंसादिलक्षणे व्यवहारे (सम्) सम्यक् (राया) धनेन (भूयसा) बहुना (सृज) (मयोभुना) यो मयांसि सुखानि भावयति तेन (तुविद्युम्न) बहुधनकीर्त्तियुक्त (यशस्वता) बहु यशो विद्यते यस्मिंस्तेन ॥ ६ ॥

अन्वयः—हे तुविद्युम्न सुभगाऽग्ने त्वं प्रजावतो बृहतो वाजस्याऽध्वरे शग्धि तेन भूयसा मयोभुना यशस्वता राया संसृज अस्मान् संसर्जय ॥ ६ ॥

भावार्थः—मनुष्यैर्विदुषां सङ्गेनेयम्प्रार्थना कार्य्या । हे विद्वांसोऽस्मान् विद्याविनयनधनसुखैः सह संयोजयतेति ॥ ६ ॥

अत्राऽग्निविद्वद्गुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिर्वेद्या ॥

इति षोडशं सूक्तं षोडशो वर्गश्च समाप्तः ॥

पदार्थः—हे (तुविद्युम्न) बहुत धन और कीर्त्ति से युक्त (सुभग) उत्तम ऐश्वर्य्यधारी (अग्ने) विद्वान् पुरुष आप (प्रजावतः) प्रशंसा करने योग्य प्रजायुक्त (बृहतः) श्रेष्ठ (वाजस्य) अन्न आदि वा विज्ञान के (अध्वरे) अहिंसा आदि स्वरूप व्यवहार में (शग्धि) सामर्थ्य स्वरूप हो उस (भूयसा) बड़े (मयोभुना) सुखकारक (यशस्वता) अधिक यश सहित (राया) धन से हम को (संसृज) संयुक्त कीजिये ॥ ६ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि विद्वानों के संग से यह प्रार्थना करें कि । हे विद्वानो हम लोगों को विद्या विनय और धन गुणों से संयुक्त करो ॥६॥

इस सूक्त में अग्नि और विद्वानों के गुणों के वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछिले सूक्त के अर्थ के साथ संगति है यह जानना चाहिये ॥

यह सोलहवां सूक्त और सोलहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चर्चस्य सप्तदशस्य सूक्तस्य उत्कीलः कात्य ऋषिः । अग्निर्देवता । १ । २ त्रिष्टुप् । ४ विराट् त्रिष्टुप् । ५ निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः । ३ निचृत् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अथाग्निगुणानाह ॥

अब पांच ऋचा वाले सत्रहवें सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में अग्नि के गुणों को कहते हैं ॥

समिध्यमानः प्रथमानु धर्मा समक्तुभिरज्यते विश्ववारः । शोचिष्केशो घृतनिर्णिक् पावकः सुयज्ञो अग्निर्यजथाय देवान् ॥ १ ॥

सम्ऽइध्यमानः । प्रथमा । अनु । धर्म । सम् । अक्तुऽभिः । अज्यते । विश्वऽवारः । शोचिःऽकेशः । घृतऽनिर्निक् । पावकः । सुऽयज्ञः । अग्निः । यजथाय । देवान् ॥१॥

पदार्थः—(समिध्यमानः) सम्यक् प्रदीप्यमानः (प्रथमा) प्रख्यातानि । (अनु) (धर्म) धर्माणि । अत्र संहितायामिति-

दीर्घः (सम्,अक्तुभिः) सम्यक् रात्रिभिः (अज्यते) प्रक्षिप्यते (विश्ववारः) यो विश्वं वृणोति (शोचिष्केशः) शोचींषि तेजांसि इव केशा यस्य सः (घृतनिर्णिक्) यो घृतेन निर्णेक्ति सः (पावकः) पवित्रकर्त्ता (सुयज्ञः) शोभना यज्ञा यस्मात् सः (अग्निः) पावकः (यजथाय) सङ्गमनाय (देवान्) दिव्यान् गुणान् ॥१॥

अन्वयः—हे मनुष्या यः समिध्यमानो विश्ववारः शोचिष्केशो घृतनिर्णिक् पावकः सुयज्ञोऽग्निःसमक्तुभिर्यजथाय प्रथमा धर्माज्यते देवाननु गमयति तं संप्रयुङ्ग्ध्वम् ॥ १ ॥

भावार्थः-यदि पुष्कलगुणयुक्तेनाऽग्न्यादिपदार्थेन कार्य्याणि साधुयुस्तर्हि किं कार्य्यमसिद्धं भवेत् ॥ १ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (समिध्यमानः) उत्तम प्रकार प्रकाशमान (विश्ववारः) सकल जन का प्रिय (शोचिष्केशः) तेजरूप केशवान् (घृत-निर्णिक्) तेजस्वी (पावकः) पवित्रकर्त्ता (सुयज्ञः) सुन्दर यज्ञ जिस से हों वह अग्नि (समक्तुभिः) उत्तम रात्रियों से (यजथाय) संग के लिये (प्रथमा) प्रसिद्ध (धर्म) धर्मों को (अज्यते) उत्तम प्रकार प्रसिद्ध करता तथा (देवान्) उत्तम गुणों का (अनु) प्रचार करता है उस को अच्छे प्रकार प्रेरणा करो ॥१॥

भावार्थः—जो अति गुणों से युक्त अग्नि आदि पदार्थ से कार्य्यों को सिद्ध करें तो सम्पूर्ण कार्य्य मनुष्य सिद्ध कर सकते हैं ॥ १ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

यथायंजो होत्रमंग्ने पृथिव्या यथां दिवो जांतवेदश्चिकित्वान् । एवानेनं हविषां यक्षि देवान्मंनुष्वद्यज्ञं प्र तिरेममद्य ॥ २ ॥

यथा । अयजः । होत्रम् । अग्ने । पृथिव्याः । यथा । दिवः ।
जातऽवेदः । चिकित्वान् । एव । अनेन । हविषा । यक्षि ।
देवान् । मनुष्वत् । यज्ञम् । प्र । तिर । इमम् । अद्य ॥२॥

पदार्थः-(यथा) (अयजः) यजेः (होत्रम्) हवनाभ्यासम् (अग्ने) पावक इव (पृथिव्याः) भूमेरन्तरिक्षस्य वा मध्ये(यथा) (दिवः) प्रकाशस्य (जातवेदः) उत्पन्नप्रज्ञ (चिकित्वान्) ज्ञानवान् (एव) (अनेन) (हविषा) (यक्षि) यजसि । अत्र शपो लुक् (देवान्) विदुषो दिव्यान् पदार्थान् वा (मनुष्वत्) मनुष्येण तुल्यम् (यज्ञम्) सङ्गतिकरणम् (प्र) (तिर) विस्तारय (इमम्) (अद्य) इदानीम् ॥ २ ॥

अन्वयः—हे जातवेदोऽग्ने यथा त्वं पृथिव्या होत्रमयजो यथा दिवः चिकित्वान् सन् अनेन हविषैव देवान् यक्ष्यसीमं यज्ञं प्र तिर तथाहमपि मनुष्वत्कुर्य्याम् ॥ २ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालं०—ये मनुष्या अस्यां सृष्टौ सर्वैः प्राणादिभिः सङ्गन्तव्यं व्यवहारं साध्नुवन्ति ते दिव्यं विज्ञानं प्राप्नुवन्ति॥२॥

पदार्थ:—हे (जातवेदः) उत्तम बुद्धि युक्त (अग्ने) अग्नि के सदृश तेजस्वी (यथा) जैसे आप (पृथिव्याः) भूमि वा अन्तरिक्ष के मध्य में (होत्रम्) हवन करने के अभ्यास को (अयजः) करें और (यथा) जैसे (दिवः) प्रकाश के (यथा) (चिकित्वान्) ज्ञाता पुरुष आप (अनेन) इस (हविषा) हवन सामग्री से (एव) ही (देवान्) विद्वानों वा उत्तम पदार्थों का (यक्षि) आदर करो (अद्य) इस समय (इमम्) इस (यज्ञम्) संगेलन करने को (प्र) (तिर) विशेष सफल करो वैसे मैं भी (मनुष्वत्) मनुष्य के तुल्य प्रसिद्ध करूं ॥२॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालं०—जो मनुष्य इस सृष्टि में संपूर्ण प्राण आदिकों से भी कार्य्य होने योग्य व्यवहार को सिद्ध करते वे श्रेष्ठ विज्ञान को प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

त्रीण्यायूंषि तव जातवेदस्तिस्र आजानीरुषसस्ते अग्ने । ताभिर्देवानामवो यक्षि विद्वानथा भव यजमानाय शंयोः ॥ ३ ॥

त्रीणि । आयूंषि । तव । जातऽवेदः । तिस्रः । आजानीः । उषसः । ते । अग्ने । ताभिः । देवानाम् । अवः । यक्षि । विद्वान् । अथ । भव । यजमानाय । शम् । योः ॥ ३ ॥

पदार्थः—(त्रीणि) त्रिविधानि शरीरात्ममनःसुखकराणि (आयूंषि) जीवनानि (तव) (जातवेदः) जातवित्त (तिस्रः) (आजानीः) समन्तात्प्रसिद्धाः (उषसः) प्रकाशकर्य्यो वेलाः (ते) तव (अग्ने) अग्निरिव वर्त्तमान (ताभिः) वेलाभिः (देवानाम्) दिव्यानां पदार्थानां विदुषां वा (अवः) रक्षणादिकम् (यक्षि) सङ्गच्छसे (विद्वान्) सत्यासत्यवेत्ता (अथ)। अत्र निपातस्य चेति दीर्घः (भव) (यजमानाय) सङ्गन्त्रे (शम्) सुखम् (योः) मिश्रयिता भेदको वा ॥३॥

अन्वयः—हे जातवेदोऽग्ने विद्वांस्त्वं यथातेऽग्निर्यजमानाय शंकरो भवति तथैव तव यानि त्रीण्यायूंषि यथाऽग्नेस्तिस्र आजानीरुषसस्तथा योः सन् यक्ष्यथ ताभिर्देवानामवो विधेहि शंकरश्च भव॥३॥

भावार्थः—यदि मनुष्या दीर्घेण ब्रह्मचर्येण युक्ताहारविहाराभ्यां जीवनं वर्द्धितुमिच्छेयुस्तर्हि त्रिगुणं त्रीणि शतानि वर्षाणि तावज्जीवितुं शक्यमिति विज्ञेयम् ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे (जातवेदः) सम्पूर्ण उत्पन्न पदार्थ के ज्ञाता (अग्ने) अग्नि के सदृश तेजस्वी और (विद्वान्) सत्य असत्य के ज्ञाता पुरुष आप जैसे (ते) आप का ज्ञाता अग्नि (यजमानाय) किसी पदार्थ में अग्नि का संयोग करने वाले के (शम्) कल्याण कारक होता है वैसे (तव) आप के जो (त्रीणि) तीन प्रकार के शरीर आत्मा मन के सुख कारक (आयूंषि) जीवन और जैसे अग्नि के सदृश तेजस्वी (तिस्रः) तीन (आजानीः (स्व) ओर से प्रसिद्ध (उषसः) प्रकाश कारक समय वैसे ही (याः) संयोग कारक वा भेदक आप (यांक्ष) संप्राप्त होते (ताभिः) उन वेलाओं से (देवानाम्) पदार्थों की विद्वानों की (अवः) रक्षा आदि कीजिये और कल्याण करने वाले भी (भव) हूजिये ॥ ३ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य बहुत काल पर्यन्त ब्रह्मचर्य्य नियत भोजन और विहार से आयु बढाने की इच्छा करैं तो त्रिगुण अर्थात् तीन सौ वर्ष तक जीवन हो सकता है ॥३॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

अ॒ग्निं सु॒दीतिं सु॒दृशं॑ गृ॒णन्तो॑ नम॒स्याम॒स्त्वेड्यं॑ जातवेदः । त्वां दू॒तम॑र॒तिं ह॑व्य॒वाहं॑ दे॒वा अ॑कृण्वन्न॒मृत॑स्य॒ नाभि॑म् ॥ ४ ॥

अ॒ग्निम् । सु॒ऽदीतिम् । सु॒ऽदृश॑म् । गृ॒णन्तः॑ । न॒म॒स्याम॑ः । त्वा॒ । ईड्य॑म् । जात॒ऽवे॒दः॒ । त्वाम् । दू॒तम् । अ॒र॒तिम् । ह॒व्य॒ऽवाह॑म् । दे॒वाः । अ॒कृ॒ण्व॒न् । अ॒मृत॑स्य । नाभि॑म् ॥४॥

पदार्थः—(अग्निम्) पावकवद्विद्वांसम् (सुदीतिम्) सुरक्षकम् (सुदृशम्) सम्यग् द्रष्टुं योग्यं दर्शकं वा (गृणन्तः) स्तुवन्तः (नमस्यामः) सेवेमहि (त्वा) त्वाम् (ईड्यम्) प्रशंसितुमर्हम् (जातवेदः) जातेषु पदार्थेषु कृतविद्य (त्वाम्) (दूतम्) दूतमिव परितापकम् (अरतिम्) प्रापकम् (हव्यवाहम्) हव्यानां पदार्थानां प्रापकम् (देवाः) विद्वांसः (अकृण्वन्) (अमृतस्य) मोक्षस्य (नाभिम्) नाभिरिव बन्धकम् ॥ ४ ॥

अन्वयः-हे जातवेदो यं त्वा दूतमरतिं हव्यवाहं पावकमिवामृतस्य नाभिं देवा अकृण्वन्तं सुदीतिं सुदृशमीड्यमग्निमिव त्वां गृणन्तः सन्तो वयं नमस्यामः ॥ ४ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—ये पावकवर्चसो विज्ञानप्रदा विद्वांसो धर्मार्थकाममोक्षसाधनान्युपदिशेयुस्तान्नित्यं नमस्कृत्य सेवेयुः ॥४॥

पदार्थः—हे (जातवेदः) संपूर्ण उत्पन्न पदार्थों में प्रसिद्ध विद्वान् जिन (त्वा) आप (दूतम्) दूत के समान सन्तापकारी (अरतिम्) प्राप्त कारक (हव्यवाहम्) हवन करने योग्य पदार्थों को प्राप्त होने वाले अग्नि के सदृश (अमृतस्य) मोक्ष का (नाभिम्) नाभि के सदृश बंधन कर्त्ता (देवाः) विद्वान् लोग (अकृण्वन्) किया करते हैं उस (सुदीतिम्) उत्तम प्रकार रक्षा कारक (सुदृशम्) सम्यक् देखने योग्य वा दर्शक और (ईड्यम्) प्रशंसा करने योग्य (अग्निम्) अग्नि के सदृश तेजस्वी विद्वान् (त्वाम्) आप को (गृणन्तः) स्तुति करते हुए हम लोग (नमस्यामः) नमस्कार करते हैं ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो पुरुष अग्नि के सदृश तेजस्वी विज्ञान दाता विद्वान् लोग धर्म अर्थ काम और मोक्ष के साधनों का उपदेश दें इन की नित्य नमस्कार पूर्वक सेवा करनी चाहिये ॥ ४ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

यस्त्वद्धोता पूर्वो अग्ने यजीयान्द्विता च सत्ता स्वधया च शम्भुः । तस्यानु धर्म प्र यजा चिकित्वोऽथा नो धा अध्वरं देववीतौ ॥५॥ व० १७ ॥

यः । त्वत् । होता । पूर्वः । अग्ने । यजीयान् । द्विता । च । सत्ता । स्वधया । च । शम्भुः । तस्य । अनु । धर्म । प्र । यज । चिकित्वः । अथ । नः । धाः । अध्वरम् । देवऽवीतौ ॥ ५ ॥ व० १७ ॥

पदार्थः—(यः) (त्वत्) तव सकाशात् (होता) दाता (पूर्वः) पूर्वविद्यः (अग्ने) विद्वन् (यजीयान्) अतिशयेन यष्टा सङ्गन्ता (द्विता) द्वयोर्भावः (च) (सत्ता) दत्तः (स्वधया) अन्नेन (च) (शम्भुः) सुखं भावुकः (तस्य) (अनु) (धर्म) धर्त्तव्यम् (प्र) (यज) सङ्गच्छस्व । अत्र द्व्यचोत-स्तिङ इति दीर्घः (चिकित्वः) विज्ञानयुक्त (अथ) आनन्तर्य्ये । अत्रापि निपातस्य चेति दीर्घः (नः) अस्माकम् (धाः) धेहि (अध्वरम्) अहिंसादिगुणयुक्तं व्यवहारम् (देववीतौ) देवानां वीतिर्व्याप्तिस्तस्याम् ॥ ५ ॥

अन्वयः—हे अग्ने यस्त्वद्धोता पूर्वो यजीयान् द्विता च सत्ता स्वधया च शम्भुर्भवेत्तस्य धर्मानु प्रयजाथ । हे चिकित्वः संस्त्वं देववीतौ नोऽध्वरं धाः ॥ ५ ॥

भावार्थः—हे मनुष्या ये विद्वांसो युष्मत्प्राचीना अन्नादिसामग्रीभिरहिंसाख्यं व्यवहारं धरेयुस्ततस्ते सर्वदा सुखमाप्नुयुरिति ॥५॥

अत्राऽग्निविद्वद्गुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति वेद्यम् ॥

इति सप्तदशं सूक्तं सप्तदशो वर्गश्च समाप्तः ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान् पुरुष जो (त्वत्) आप के समीप से (होता) दानशील (पूर्वः) पूर्ण विद्यावान् (यजीयान्) अतिशय यज्ञकारक वा संमेलकारी (द्विता) द्वित्व स्वरूप (च) और (सत्ता) स्थित (स्वधया) अन्न से (च) भी (शम्भुः) सुखकारक होवे (तस्य) इस के (धर्म) धारण करने योग्य को (अनु) (प्र) (यज) सम्प्राप्त होइये (अथ) इस के अनन्तर। हे (चिकित्वः) विज्ञानशाली आप (देववीतौ) विद्वानों के समूह में (नः) हम लोगों के (अध्वरम्) अहिंसा आदि गुण युक्त व्यवहार को (धाः) धारण करिये ॥ ५ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो जो विद्वान् लोग आप लोगों की अपेक्षा प्राचीन तथा अन्न आदि सामग्रियों से अहिंसाख्य व्यवहार को धारण किया करें इस से वे सर्वदा सुखभोगी हों ॥ ५ ॥

इस सूक्त में अग्नि और विद्वान् के गुणों का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की पिछिले सूक्त के अर्थ के साथ संगति है ऐसा जानना चाहिये ॥

यह सत्रहवां सूक्त और सत्रहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

अथ पंचर्चस्याष्टादशस्य सूक्तस्य कतो वैश्वामित्र ऋषिः।
अग्निर्देवता। १। ३। ५ त्रिष्टुप्। २। ४
निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथ विद्वद्भिः किं विधेयमित्याह॥

अब इस तृतीय मण्डल में अठारहवें सूक्त का आरम्भ है उस के पहिले मन्त्र से विद्वानों को क्या करना योग्य है इस वि०॥

भवा नो अग्ने सुमना उपेतौ सखेव सख्ये पितरेव साधुः। पुरुद्रुहो हि क्षितयो जनानां प्रति प्रतीचीर्दहतादरातीः॥ १॥

भव। नः। अग्ने। सुऽमनाः। उपऽइतौ। सखाऽइव। सख्ये। पितराऽइव। साधुः। पुरुऽद्रुहः। हि। क्षितयः। जनानाम्। प्रति। प्रतीचीः। दहतात्। अरातीः॥ १॥

पदार्थः—(भव)। अत्र द्व्यचोतस्तिङ इति दीर्घः (नः) अस्मभ्यम् (अग्ने) कृपामय विद्वन् (सुमनाः) शोभनं मनो यस्य सः (उपेतौ) प्राप्तौ (सखेव) मित्रवत् (सख्ये) मित्रकर्मणे (पितरेव) जनकाविव (साधुः) (पुरुद्रुहः) ये पुरून् बहून्द्रुह्यन्ति तान् (हि) (क्षितयः) मनुष्याः (जनानाम्) मनुष्याणाम् (प्रति) (प्रतीचीः) प्रतिकूलं वर्त्तमानाः (दहतात्) भस्मीकुरु (अरातीः) शत्रून्॥ १॥

अन्वयः—हे अग्ने त्वमुपेतौ पितरेव सख्ये सखेव नोऽस्मभ्यं सुमना भव साधुः सन् जनानाम्मध्ये ये क्षितयः पुरुद्रुहः स्युस्तान् प्रतीचीररातीर्हि प्रतिदहतात्॥ १॥

भावार्थः—अत्रोपमालं०—हे मनुष्या युष्माभिर्ये विद्वांसो मनुष्यादिप्राणिषु पितृवन्मित्रवद्वर्त्तेरँस्तेषां सत्कारं ये द्वेष्टारस्तेषामसत्कारं कृत्वा धर्मो वर्द्धनीयः ॥ १ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) कृपारूप विद्वान् पुरुष आप (उपेतौ) प्राप्ति में (पितरेव) जनकों के सदृश (सख्ये) मित्र कर्म के लिये (सखेव) मित्र के तुल्य (नः) हम लोगों के लिये (सुमनाः) उत्तम मनयुक्त (भव) होइये और (साधुः) उत्तम उपदेश से कल्याणकारी होकर (जनानाम्) मनुष्यों के बीच में जो (क्षितयः) मनुष्य (पुरुद्रुहः) बहुत लोगों से द्वेष कर्त्ता होवें उन (प्रतीचीः) प्रतिकूल वर्त्तमान (अरातीः) शत्रुओं को (प्रति) (दहतात्) भस्म करिये ॥ १ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालं०—हे मनुष्यो आप लोगों को चाहिये कि जो विद्वान् लोग मनुष्य आदि प्राणियों में पिता और मित्र के तुल्य वर्तावकारी उनका सत्कार और जो द्वेषकारी उनका निरादर कर के धर्मवृद्धि करें ॥ १ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

तपो॒ ष्व॑ग्ने॒ अन्त॑राँ अ॒मित्रा॒न् तपा॒ शंस॒मर॑रुषः॒ पर॑स्य । तपो॑ वसो चिकिता॒नो अ॒चित्ता॒न्वि ते॑ तिष्ठन्ता॒मजरा॑ अ॒यासः॑ ॥ २ ॥

तपो॒ इति॑ । सु । अ॒ग्ने॒ । अन्त॑रान् । अ॒मित्रा॑न् । तप॑ । शंस॑म् । अर॑रुषः । पर॑स्य । तपो॒ इति॑ । व॒सो॒ इति॑ । चि॒कि॒ता॒नः । अ॒चित्ता॑न् । वि । ते॒ । ति॒ष्ठ॒न्ता॒म् । अ॒जराः॑ । अ॒यासः॑ ॥ २ ॥

पदार्थः-(तपो) तपस्विन् (सु) (अग्ने) दुष्टान्प्रतिपावकवद्वर्तमान (अन्तरान्) भिन्नान् (अमित्रान्) शत्रून् (तप) सन्तापय (शंसम्) प्रशंसाम् (अररुषः) अहिंसकस्य (परस्य) श्रेष्ठस्य (तपो) दुष्टानां पुरुषाणां दाहक (वसो) यस्सद्गुणेषु वसति तत्सम्बुद्धौ (चिकितानः) ज्ञानवान् ज्ञापकः (अचित्तान्) प्राप्तदरिद्रावस्थान् (वि) (ते) तव (तिष्ठन्ताम्) (अजराः) जरारोगरहिताः (अयासः) विज्ञानवन्तः ॥ २ ॥

अन्वयः—हे तपोऽग्ने त्वमन्तरानमित्रान्सुतप। अररुषः परस्य शंसं विधेहि। हे तपो वसो चिकितानस्त्वमचित्तान् बोधय। एतेऽजरा अयासस्ते समीपे वितिष्ठन्ताम् ॥ २ ॥

भावार्थः—ये मनुष्याः शत्रून्निवार्य्य धार्मिकानाप्तान्सत्कृत्य सर्वार्थं सुखं वर्द्धयन्ति तेऽपि सुखमाप्नुवन्ति ॥ २ ॥

पदार्थः—हे (तपो) तपस्वी (अग्ने) दुष्टजनों के अग्नि के सदृश दाहकर्त्ता आप (अन्तरान्) भेद को प्राप्त (अमित्रान्) शत्रुओं को (सुतप) सन्ताप युक्त तथा (अररुषः) अहिंसा युक्त (परस्य) श्रेष्ठ जन की (शंसम्) प्रशंसा करो हे (तपो) दुष्ट पुरुषों के दाहकारी (वसो) उत्तम गुणों में निवासी (चिकितानः) ज्ञानवान् वा बोधकारक आप (अचित्तान्) दरिद्र दशायुक्त पुरुषों को सचेत कीजिये और ये (अजराः) वृद्धावस्था रूप रोग से रहित (अयासः) विज्ञान युक्त पुरुष (ते) आप के समीप (वि) (तिष्ठन्ताम्) वर्तमान हों ॥ २ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य शत्रुओं को पृथक् कर धार्मिक यथार्थ वक्ता सत्यवादी पुरुषों का सत्कार करके सब जनों के लिये सुख वृद्धि करते हैं वे भी सुख पाते हैं ॥ २ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

इध्मेनाग्न इच्छमानो घृतेन जुहोमि हव्यन्तरसे बलाय । यावदीशे ब्रह्मणा वन्दमान इमान्धियं शतसेयाय देवीम् ॥ ३ ॥

इध्मेन । अग्ने । इच्छमानः । घृतेन । जुहोमि । हव्यम् । तरसे । बलाय । यावत् । ईशे । ब्रह्मणा । वन्दमानः । इमाम् । धियम् । शतऽसेयाय । देवीम् ॥ ३ ॥

पदार्थः—(इध्मेन) समिधेन (अग्ने) अग्निरिवप्रदीप्तविद्य (इच्छमानः) (घृतेन) सुसंस्कृतेनाज्येन (जुहोमि) (हव्यम्) (तरसे) तारकाय (बलाय) (यावत्) (ईशे) इच्छामि (ब्रह्मणा) महता धनेन सह (वन्दमानः) (इमाम्) वर्त्तमानाम् (धियम्) धारणावतीं प्रज्ञाम् (शतसेयाय) शतादिसंख्यापरिमितधनावसानाय (देवीम्) देदीप्यमानां विद्वद्भिः कमनीयाम् ॥ ३ ॥

अन्वयः—हे अग्ने यथेध्मेन घृतेनेच्छमानोऽहं तरसे बलाय हव्यं जुहोमि ब्रह्मणा वन्दमानः शतसेयायेमां देवीं धियं यावदीशे तथा त्वं जुहुधि तावदीशिष्व ॥ ३ ॥

भावार्थः—यथेन्धनघृताभ्यामग्निर्वर्द्धते तथैव ब्रह्मचर्य्यवेदाभ्यासाभ्यां बलविद्ये वर्द्धेते यावद्योग्यं तावदेव ब्रह्मचर्य्यं सेवनीयम् ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के सदृश प्रकाशित विद्यायुक्त जैसे (इध्मेन) समिध से तथा (घृतेन) उत्तम प्रकार के मन्त्रों से संस्कारयुक्त घृत से (इच्छमानः) इच्छाकारी मैं (तरसे) वेग तथा (बलाय) बल के लिये (हव्यम्) हवन सामग्री का (जुहोमि) होम करता हूं (ब्रह्मणा) अतिशय धन के साथ (वन्दमानः) स्तुति से उपासना कारक मैं (शतसेयाय) शत आदि संख्या से पूरित धन प्राप्ति के लिये (इमाम्) विद्यमान इस (देवीम्) प्रकाशमान (धियम्) धारणायोग्य बुद्धि को (यावत्) जितने परिमाण से (ईशे) इच्छाकारक हूं उसी प्रकार आप हवन कीजिये उतनी इच्छा करो ॥३॥

भावार्थः—जैसे इन्धन और घृत से अग्नि बढ़ती है वैसे ही ब्रह्मचर्य्य तथा वेद के अभ्यास से बल और विद्या बढ़ती है जितना वेद से ब्रह्मचर्य्य रखना योग्य है उतना अभ्यास करना चाहिये ॥ ३ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

उच्छोचिषा सहसस्पुत्र स्तुतो बृहद्वयः शशमानेषु धेहि । रेवदग्ने विश्वामित्रेषु शं योर्मर्मृज्मा ते तन्वं१ भूरि कृत्वः ॥ ४ ॥

उत् । शोचिषा । सहसः । पुत्र । स्तुतः । बृहत् । वयः । शशमानेषु । धेहि । रेवत् । अग्ने । विश्वामित्रेषु । शम् । योः । मर्मृज्म । ते । तन्वम् । भूरि । कृत्वः ॥ ४ ॥

पदार्थः—(उत्) (शोचिषा) तेजसा (सहसः) (पुत्र) बलस्योत्पादक (स्तुतः) प्रशंसितः (बृहत्) महत् (वयः) कमनीयमायुः (शशमानेषु) भोगाभ्यासोल्लङ्घनेषु (धेहि) (रेवत्) प्रशस्तधनयुक्तम् (अग्ने) पावकवद्वर्त्तमान वैद्यराज विद्वन् (विश्वामित्रेषु) विश्वं मित्रं सुहृद्येषान्तेषु (शम्) सुखम् (योः)

दुःखवियोजकः सुखसंयोजकः (मर्मृज्मा) भृशं शुद्धः शोधयिता (ते) तव (तन्वम्) (भूरि) बहु (क्रत्वः) बहवः कर्त्तारो विद्यन्ते यस्य तत्सम्बुद्धौ ॥ ४ ॥

अन्वयः—हे भूरि क्रत्वः सहस्पुत्राग्ने स्तुतस्त्वं शोचिषा शशमानेषु विश्वामित्रेषु रेवद्बृहद्वयो भूरि शं धेहि । योर्मर्मृज्मा त्वन्ते तन्वमुद्धेहि ॥ ४ ॥

भावार्थः—हे पुरुषाः युष्माभिः ब्रह्मचर्य्येण विद्यायुषी वर्द्धयित्वा सर्वैः सह मित्रतां कृत्वा सर्वे दीर्घायुषो बृहद्विद्याः सम्पादनीयाः ॥४॥

पदार्थः—हे (भूरि) (क्रत्वः) बहुत पुरुषों से रचित (सहस्पुत्र) बल के उत्पादक (अग्ने) अग्नि के सदृश तेजस्वी वैद्यराज विद्वान् (स्तुतः) प्रशंसायुक्त आप (शोचिषा) तेज से (शशमानेषु) भोग अभ्यास उल्लंघनों तथा (विश्वामित्रेषु) संपूर्ण जनों के मित्रों में (रेवत्) प्रशंसा करने योग्य धन से युक्त (बृहत्) अधिक (वयः) कामना योग्य अवस्था और बहुत (शम्) सुख को दीजिये (योः) दुःख के नाशक (मर्मृज्मा) अति पवित्र वा पवित्रकारक आप (ते) अपने (तन्वम्) शरीर को (उत्) (धेहि) स्थिर कीजिये ॥४॥

भावार्थः—हे पुरुषो आप लोगों को चाहिये कि ब्रह्मचर्य्य द्वारा विद्या और अवस्था बढा सब लोगों के साथ मित्रता करके सकल जनों को अधिक अवस्था युक्त तथा बहुत विद्यावान् करो ॥ ४ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

कृधि रत्नं सुसनितर्धनानां स घेदंग्ने भवसि यत्समिद्धः । स्तोतुर्दुरोणे सुभगस्य रेवत्सृप्रा करस्नां दधिषे वपूंषि ॥ ५ ॥ १८ ॥

कृधि । रत्नम् । सुऽसनितः । धनानाम् । सः । घ । इत् । अग्ने । भवसि । यत् । सम्ऽइद्धः । स्तोतुः । दुरोणे । सुऽभगस्य । रेवत् । सृप्रा । करस्ना । दधिषे । वपूंषि ॥५॥१८॥

पदार्थः—(कृधि) कुरु (रत्नम्) रमणीयन्धनम् (सुसनितः) सुष्ठुसंविभाजक (धनानाम्) सुवर्णादीनाम् (सः) (घ) एव (इत्) इव (अग्ने) विद्युद्वद्धनवर्द्धक (भवसि) (यत्) यः (समिद्धः) प्रदीप्तः (स्तोतुः) ऋत्विजः प्रशंसकस्य (दुरोणे) गृहे (सुभगस्य) वरैश्वर्य्यस्य (रेवत्) प्रशस्तधनयुक्तम् (सृप्रा) सर्पन्ति प्राप्नुवन्ति याभ्यां तौ (करस्ना) वाहू । करस्नौ बाहू कर्मणाम्प्रस्नातारौ । निरु० ६ । १७ (दधिषे) धरसि (वपूंषि) रूपवन्ति शरीराणि ॥ ५ ॥

अन्वयः—हे सुसनितरग्ने यद्यस्त्वं समिद्धोऽग्निरिव सुसमिद्धो भवसि स घ धनानां रत्नं कृधि सुभगस्य स्तोतुरिद्दुरोणे यौ सृप्रा करस्ना ते भवतस्ताभ्यां रेवद्वपूंषि च दधिषे स त्वमस्माभिः सत्कर्त्तव्योऽसि ॥ ५ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालं०—हे विद्वांसो मनुष्यान्सुशिक्ष्य पुरुषार्थेन संयोज्य विद्याधनयुक्तान् कृत्वा सुसभ्यान्दीर्घायुषः संपादयेयुरिति ॥ ५ ॥

अत्राग्निविद्वद्गुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिर्वेद्या ॥

इत्यष्टादशं सूक्तमष्टादशो वर्गश्च समाप्तः ॥

पदार्थः—हे (सुसनितः) उत्तम प्रकार दानविभागकारी (अग्ने) बिजुली के समान शीघ्र धन वृद्धि कर्त्ता (यत्) जो आप (समिद्धः) प्रकाशमान अग्नि के सदृश प्रकाशमान होते (सः, घ) सो ही (धनानाम्) सुवर्ण आदि रूप धनों में (रत्नम्) उत्तम धन को (दधि) संयुक्त कीजिये (सुभगस्य) उत्तम ऐश्वर्य और (स्तोतुः) हवनकर्त्ता वा प्रशंसाकर्त्ता के (इत्) समान (दुरोणे) गृह में जो (सृप्रा) अभीष्टस्थान की प्राप्तिकारक (करस्ना) कर्मों की शुद्धिकारक आप के बाहुओं और (रेवत्) उत्तमधनयुक्त (वपूंषि) रूपवत्-शरीरों को (दधिषे) धारण करते हो वह आप हम लोगों से आदर करने योग्य हो ॥ ५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—हे विद्वानो आप लोगों को चाहिये कि मनुष्यों को उत्तम प्रकार शिक्षा तथा पुरुषार्थ से युक्त और विद्या धनयुक्त करके उत्तम सभ्य चिरञ्जीवी जन बनाइये ॥ ५ ॥

इस सूक्त में विद्वान् और अग्नि के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह अठारहवां सूक्त और अठारहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चर्चस्यैकोनविंशस्य सूक्तस्य कुशिकपुत्रो गाथी ऋषिः । अग्निर्देवता । १ त्रिष्टुप् । २ । ४ । ५ विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ३ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः ॥

अथ मनुष्याणां धनाद्यैश्वर्यं कथं वर्धेतेत्याह ॥

अब इस तृतीय मण्डल में १९ उन्नीशवें सूक्त का प्रारम्भ है उस के प्रथम मन्त्र से मनुष्यों का धनादि ऐश्वर्य्य कैसे बढ़े इस वि० ॥

अग्निं होतारं प्र वृणे मियेधे गृत्सं कविं विश्वविदममूरम्। स नो यक्षद्देवताता यजीयान्राये वाजाय वनते मघानि ॥ १ ॥

अग्निम् । होतारम् । प्र । वृणे । मियेधे । गृत्सम् । कविम् । विश्वऽविदम् । अमूरम् । सः । नः । यक्षत् । देवऽताता । यजीयान् । राये । वाजाय । वनते । मघानि ॥१॥

पदार्थः—(अग्निम्) पावक इव वर्त्तमानम् (होतारम्) हवनकर्त्तारं दातारम् (प्र) (वृणे) स्वीकरोमि (मियेधे) घृतादिप्रक्षेपणेन प्रशंसनीये यज्ञे (गृत्सम्) यो गृणाति तं मेधाविनम् (कविम्) क्रान्तप्रज्ञं बहुशास्त्राऽध्यापकम् (विश्वविदम्) यो विश्वानि सर्वाणि शास्त्राणि वेत्ति तम् (अमूरम्) मूढतादिदोषरहितम्। अत्र वर्णव्यत्ययेन ढस्य रः (सः) (नः) अस्मान् (यक्षत्) सङ्गमयेत् (देवताता) देवान् विदुषः (यजीयान्) अतिशयेन यष्टा (राये) धनप्राप्तये (वाजाय) विज्ञानप्रदाय (वनते) संभजमानाय (मघानि) पूजितव्यानि धनानि ॥ १ ॥

अन्वयः—हे विद्वन्नहं यं मियेधे होतारं विश्वविदममूरं कविं गृत्समग्निं प्रवृणे स यजीयाँस्त्वं वाजाय वनते राये मघानि देवताता नोऽस्मान्यक्षत् ॥ १ ॥

भावार्थः-मनुष्यैर्यस्मिन्नधिकारे यस्य योग्यता भवेत् तस्मा एव सोऽधिकारो देयः।एवं सति धनधान्यैश्वर्य्यं प्रवृद्धं भवितुं शक्यम् ॥१॥

पदार्थः—हे विद्वान् पुरुष मैं जिस (मियेधे) घृतादि के प्रक्षेपण से होने योग्य यज्ञ में (होतारम्) हवनकर्ता वा दाता (विश्वविदम्) सकल शास्त्रों के वेत्ता (अमूरम्) मूढता आदि दोष रहित (कविम्) तीक्ष्ण बुद्धि युक्त वा बहुत शास्त्रों के अध्यापक (गृत्सम्) शिक्षा देने में चतुर बुद्धिमान् और (अग्निम्) अग्नि के सदृश तेजस्वी पुरुष को (प्र) (वृणे) स्वीकार करता

हूं (सः) वह (यजीयान्) अत्यन्त यज्ञकर्ता आप (वाजाय) ज्ञान दाता और (वनते) प्रसन्नता से दिये पदार्थों के स्वीकार कर्ता पुरुष के लिये तथा (राये) धन प्राप्ति के लिये (मघानि) आदर करने योग्य धन और (देवताता) विद्वानों को (नः) हम लोगों के लिये (यक्षत्) संयुक्त कीजिये ॥ १ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि जिस अधिकार में जिस पुरुष की योग्यता हो उस ही के लिये वह अधिकार देवें। क्योंकि ऐसा करने पर धनधान्यरूप ऐश्वर्य्य की वृद्धि हो सक्ती है ॥ १ ॥

पुनर्मनुष्यैः किं कार्यमित्याह ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस वि० ॥

प्र ते॑ अग्ने ह॒विष्म॑तीमिय॒र्म्यच्छा॑ सुद्यु॒म्नां रा॒तिनीं॑ घृ॒ताचीम्। प्र॒द॒क्षि॒णिद्दे॒वता॑तिमुरा॒णः सं रा॒तिभि॒र्वसु॑भिर्य॒ज्ञम॑श्रेत् ॥ २ ॥

प्र । ते॒ । अ॒ग्ने॒ । ह॒विष्म॑तीम् । इ॒यर्मि॑ । अच्छ॑ । सु॒द्यु॒म्नाम् । रा॒तिनी॑म् । घृ॒ताची॑म् । प्र॒ऽद॒क्षि॒णित् । दे॒वऽता॑तिम् । उ॒रा॒णः । सम् । रा॒तिऽभिः॑ । वसु॑ऽभिः । य॒ज्ञम् । अ॒श्रे॒त् ॥ २ ॥

पदार्थः—(प्र) (ते) तव (अग्ने) पावकवद्वर्त्तमान (हविष्मतीम्) बहूनि हवींषि विद्यन्ते यस्यान्ताम् (इयर्मि) प्राप्नोमि (अच्छ) उत्तमरीत्या । अत्र निपातस्य चेति दीर्घः (सुद्युम्नाम्) शोभनप्रकाशयुक्ताम् (रातिनीम्) रातानि दत्तानि विद्यन्ते यस्यां ताम् (घृताचीम्) या घृतमुदकमञ्चति प्राप्नोति तां रात्रीम् । घृताचीति रात्रिनाम निघं० १ । १ । (प्रदक्षिणित्) प्रदक्षिणमेति गच्छति सः । अत्रेण् धातोः क्विप् छान्दसो वर्णलोपोवेत्यन्तस्याकारलोपः (देवतातिम्) दिव्यस्वरूपाम् (उराणः) य उरु

बह्वनिति स उराणः। अत्र वर्णव्यत्ययेनोकारस्य स्थानेऽकारः (सम्) (रातिभिः) सुखदानादिभिः (वसुभिः) वासहेतुभिः सह (यज्ञम्) सुषुप्त्यादिसङ्गतं व्यवहारम् (अश्रेत्) आश्रयेत्। अत्र शपो लुक्॥ २॥

अन्वयः—हे अग्ने विद्वन्नहं ते तव शिक्षया यथोराणः प्रदक्षिणित् कश्चिज्जनो वसुभी रातिभिः सह हविष्मतीं सुद्युम्नां रातिनीं देवतातिं घृताचीं यज्ञं च समश्रेत् तथैतामच्छ प्रेयर्मि॥ २॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—मनुष्यैर्दिवा स्वापं वर्ज्जयित्वा व्यवहारसिद्धये श्रमं कृत्वा रात्रौ सम्यक् पञ्चदशघटिकामात्री निद्रा नेया दिवसे पुरुषार्थेन धनादीनि प्राप्य सुपात्रे सन्मार्गे च दानं देयम्॥ २॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के सदृश तेजधारी विद्वान् पुरुष मैं (ते) आप की शिक्षा से जैसे (उराणः) विद्वानों को आदर से श्रेष्ठकर्त्ता कोई (प्रदक्षिणित्) दक्षिणा अर्थात् सन्मार्गगन्ता जन (वसुभिः) निवास के कारण (रातिभिः) सुखदान आदि के साथ (हविष्मतीम्) अतिशय हवन सामग्री-युक्त (सुद्युम्नाम्) श्रेष्ठ प्रकाश से युक्त (रातिनीम्) दिये हुए हवन के पदार्थों से युक्त (देवतातिम्) उत्तमस्वरूपविशिष्ट (घृताचीम्) जल को प्राप्त होने वाली रात्रि और (यज्ञम्) शयनावस्था आदि में प्राप्त चित्त के व्यवहारों को (समश्रेत्) प्राप्त करे वैसे इस को (अच्छ) उत्तम रीति से (प्र) (इयर्मि) प्राप्त होता हूं॥ २॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—मनुष्यों को चाहिये कि दिन में शयन छोड़ सांसारिक व्यवहार की सिद्धि के लिये परिश्रम कर रात्रि के समय स्वस्थता पूर्वक पञ्चदश १५ घटिका पर्यन्त निद्रालु होवें और दिन भर पुरुषार्थ से धन आदि उत्तम पदार्थों को प्राप्त हो कर सुपात्र पुरुष तथा सन्मार्ग में दान देवें॥ २॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

स तेजीयसा मनसा त्वोत उत शिक्ष स्वपत्यस्य शिक्षोः । अग्ने रायो नृतमस्य प्रभूतौ भूयाम ते सुष्टुतयश्च वस्वः ॥ ३ ॥

सः । तेजीयसा । मनसा । त्वाऽऊतः । उत । शिक्ष । सुऽअपत्यस्य । शिक्षोः । अग्ने । रायः । नृऽतमस्य । प्रऽभूतौ । भूयाम । ते । सुऽस्तुतयः । च । वस्वः ॥ ३ ॥

पदार्थः—(सः) (तेजीयसा) तेजस्विना शुद्धस्वरूपेण (मनसा) अन्तःकरणेन (त्वोतः) त्वां कामयमानः (उत) अपि (शिक्ष) विद्यां ग्राहय (स्वपत्यस्य) शोभनान्यपत्यानि विद्यार्थिनो वा यस्य तस्य (शिक्षोः) शिक्षकस्य (अग्ने) पूर्णविद्याप्रकाशयुक्त (रायः) ऐश्वर्यस्य (नृतमस्य) अतिशयेन नायका यस्य तस्य (प्रभूतौ) बहुत्वे (भूयाम) (ते) तव (सुष्टुतयः) शोभनाः स्तुतयो येषां ते (च) (वस्वः) वसुना सुखेन वासहेतोर्धनस्य ॥ ३ ॥

अन्वयः—हे अग्ने वयं यस्य स्वपत्यस्य नृतमस्य शिक्षोस्ते शिक्षायां सुष्टुतयस्सन्तस्तेजीयसा मनसा वस्वो रायः प्रभूतौ भूयाम स त्वोत उत तमस्मांश्च त्वं शिक्ष ॥ ३ ॥

भावार्थः—ये ब्रह्मचर्य्येण विद्यया धर्म्याणि कृत्यानि कृत्वा शुद्धेनान्तःकरणेनात्मना वा प्रयतेरंस्ते धनपतयो भवेयुः ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) पूर्ण विद्या के प्रकाश से युक्त ! हम लोग जिस (स्वपत्यस्य) उत्तम सन्तान वा विद्यार्थियों के सहित (नृतमस्य) अत्यन्त शूर वीरों से विशिष्ट (शिक्षोः) शिक्षक पुरुष (ने) आप की शिक्षा में (सुष्टुतयः) उत्तम स्तुति कर्त्ता श्रेष्ठ पुरुष (तेजीयसा) तेजस्वी पवित्रस्वरूपवान् (मनसा) अन्तःकरण से (वस्वः) सुख पूर्वक निवास का कारण धन तथा (रायः) ऐश्वर्य्य के (प्रभूतौ) बहुत्वभाव में (भूयाम) वर्त्तमान होवें (सः) वह (त्वोतः) आप की कामना करता हुआ जो ऐसा पुरुष उस को (च) और हम लोगों को (उत) भी आप (शिक्ष) विद्योपदेश दीजिये ॥ ३ ॥

भावार्थः—जो पुरुष ब्रह्मचर्य्य और विद्या से धर्म सम्बन्धी कामों को करके निष्कपट अन्तःकरण तथा आत्मा से प्रयत्न करें उन को धनपति का अधिकार देना योग्य है ॥ ३ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

भूरी॑णि॒ हि त्वे द॑धि॒रे अनी॒काग्ने॑ दे॒वस्य॒ यज्य॑वो॒ जना॑सः । स आ व॑ह दे॒वता॑तिं यविष्ठ॒ शर्धो॒ यद॒द्य दि॒व्यं यजा॑सि ॥ ४ ॥

भूरी॑णि । हि । त्वे इति॑ । द॒धि॒रे । अनी॑का । अग्ने॑ । दे॒वस्य॑ । यज्य॑वः । जना॑सः । सः । आ । व॒ह । दे॒वऽता॑तिम् । य॒वि॒ष्ठ॒ । शर्धः॑ । यत् । अ॒द्य । दि॒व्यम् । यजा॑सि ॥ ४ ॥

पदार्थः—(भूरीणि) बहूनि (हि) यतः (त्वे) त्वयि (दधिरे) दधीरन् (अनीका) अनीकानि सैन्यानि (अग्ने) विद्युदिव सकलविद्यासु व्यापिन् (देवस्य) दिव्यगुणकर्मस्वभावस्य (यज्यवः) सत्कर्त्तव्याः (जनासः) विद्यादिगुणैः प्रादुर्भूताः (सः) (आ)

(वह) समन्तात्प्रापुहि (देवतातिम्) दिव्यस्वभावम् (यविष्ठ) अतिशयेन युवन् (शर्धः) बलम् (यत्) (अद्य) इदानीम् (दिव्यम्) पवित्रम् (यजासि) यजेः ॥ ४ ॥

अन्वयः-हे यविष्ठाग्ने यस्य देवस्य सङ्गेन यज्यवो जनासो हि त्वे भूरीण्यनीका दधिरे यदद्य दिव्यं शर्धो यजासि स त्वं देवतातिमावह ॥ ४ ॥

भावार्थः-ये मनुष्या विद्वत्सङ्गेन बह्वीः सुशिताः सेना गृह्णीयुस्ते महद्बलं प्राप्य दिव्यान्गुणानाकर्षेयुः ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे (यविष्ठ) अतिशय युवावस्थासंपन्न (अग्ने) बिजुली के सदृश सम्पूर्ण विद्याओं में व्यापी पुरुष जिस (देवस्य) उत्तम गुण कर्म स्वभाववान् जनके संग से (यज्यवः) आदर करने योग्य (जनासः) विद्या आदि गुणों से प्रकट जन (हि) जिस से (त्वे) आप में (भूरीणि) बहुत (अनीका) सेनाओं को (दधिरे) धारण करें (यत्) (अद्य) जो इस समय (दिव्यम्) पवित्र (शर्धः) बल को (यजासि) धारण करो और (सः) वह आप (देवतातिम्) उत्तम स्वभाव को (आ) (वह) सब प्रकार प्राप्त होइये ॥४॥

भावार्थः—जो मनुष्य विद्वानों के संग से बहुत सी उत्तम प्रकार शिक्षित सेनाओं को ग्रहण करें वे अतिबल को प्राप्त हो के उत्तम गुणों का आकर्षण करें ॥ ४ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

यस्त्वा होतारमनजन्मियेधे निषादयन्तो यजथाय देवाः । स त्वं नो अग्नेऽवितेह बोध्यधि श्रवांसि धेहि नस्तनूषु ॥ ५ ॥ १९ ॥

यत् । त्वा । होतारम् । अनजन् । मियेधे । निऽसादयन्तः । यजथाय । देवाः । सः । त्वम् । नः । अग्ने । अविता । इह । बोधि । अधि । श्रवांसि । धेहि । नः । तनूषु ॥५॥१९॥

पदार्थः—(यत्) यः (त्वा) त्वाम् (होतारम्) विद्यादातारम् (अनजन्) कामयेरन् (मियेधे) प्रापणीये यज्ञे (निषादयन्तः) नितरां स्थापयन्तो वा विज्ञापयन्तः (यजथाय) विद्यासङ्गमनाय (देवाः) विद्वांसः (सः) (त्वम्) (नः) अस्माकमस्मान्वा (अग्ने) विद्वन् (अविता) रक्षणादिकर्ता (इह) अस्मिन्संसारे (बोधि) बोधय (अधि) उत्कृष्टे (श्रवांसि) प्रियाण्यन्नानीव श्रवणानि (धेहि) स्थापय (नः) अस्माकम् (तनूषु) शरीरेषु ॥ ५ ॥

अन्वयः—हे अग्ने निषादयन्तो देवा मियेधे यजथाय यद्धोतारं त्वानजन् स त्वमिह नोऽविता सन्नस्मान्बोधि नस्तनूषु श्रवांस्यधि धेहि ॥ ५ ॥

भावार्थः—हे विद्वांसो मनुष्या येष्वधिकारेषु युष्मान्नियोजयेयुस्तेषु यथावद्वर्त्तित्वा सर्वान्सभ्यान्भवन्तो निष्पादयेयुर्यया शिक्षया विद्यासभ्यताऽऽरोग्यायूंषि वर्धेरंस्तथैव सततमनुतिष्ठतेति ॥ ५ ॥

अत्राग्निविद्वद्गुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति वेद्यम् ।

इत्येकोनविंशं सूक्तमेकोनविंशो वर्गश्च समाप्तः ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान् पुरुष (निषादयन्तः) अत्यन्त अधिकार में स्थित कराने वा जनाने वाले (देवाः) विद्वान् पुरुष (मियेधे) प्राप्त होने

योग्य यज्ञ में (यजथाय) विद्या में बोध कराने के लिये (यत्) जिन (होतारम्) विद्या दाता (त्वा) आप की (अनजन्) कामना करें (सः) वह (त्वम्) आप (इह) इस संसार में (नः) हम लोगों की (अविता) रक्षा आदि के कर्त्ता हुए हम लोगों को (बोधि) बोध कराइये और (नः) हम लोगो के (तनूषु) शरीरों में (श्रवांसि) प्रिय अन्नों के सदृश सम्पदाओं को (अधि) उत्तम प्रकार (धेहि) स्थित करो ॥ ५ ॥

भावार्थः—हे विद्वान् मनुष्यो जिन अधिकारों में आप लोग नियुक्त किये जांय उन अधिकारों में उत्तम प्रकार वर्त्तमान हो के सब जनों को श्रेष्ठ बनाइये और जिस शिक्षा से विद्या सभ्यता आरोग्यता और अवस्था बढ़े ऐसा उपाय निरन्तर करो ॥ ५ ॥

इस सूक्त में अग्नि और विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिये ॥

यह उन्नीशवां सूक्त और उन्नीशवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चर्चस्य विंशतितमस्य सूक्तस्य। गाथी ऋषिः। विश्वे देवा देवताः। १ विराट् त्रिष्टुप्। २ निचृत्त्रिष्टुप्। ३ भुरिक् त्रिष्टुप्। ४।५ त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथ विद्वांसः कथं वर्त्तेरन्नित्याह ॥

अब तृतीय मण्डल के वीशवें सूक्त का आरम्भ है इस के प्रथम मन्त्र से विद्वान् जन कैसे वर्त्तें इस विषय को कहते हैं ॥

अ॒ग्निमु॒षस॑म॒श्विना॑ दधि॒क्रां व्यु॑ष्टिषु हवते॒ वह्नि॑रु॒क्थैः। सु॒ज्योति॑षो नः शृण्वन्तु दे॒वाः स॒जोष॑सो अध्व॒रं वा॑वशा॒नाः ॥ १ ॥

अग्निम् । उषसम् । अश्विना । दधिऽक्राम् । विऽउंष्टिषु । हवते । वह्निः । उक्थैः । सुऽज्योतिषः । नः । शृण्वन्तु । देवाः । सऽजोषसः । अध्वरम् । वावशानाः ॥ १ ॥

पदार्थः—(अग्निम्) पावकम् (उषसम्) प्रभातकालम् (अश्विना) सूर्याचन्द्रमसौ (दधिक्राम्) यो धारकान् क्रामति तमश्वम् (व्युष्टिषु) विशेषेण दहन्ति यासु क्रियासु तासु (हवते) आदत्ते (वह्निः) वोढा वायुः (उक्थैः) प्रशंसनीयैः कर्मभिः (सुज्योतिषः) शोभनानि ज्योतींषि प्रज्ञाप्रकाशा येषां ते (नः) अस्मान् (शृण्वन्तु) (देवाः) विद्वांसः (सजोषसः) समानप्रीतिसेवनाः (अध्वरम्) अहिंसनीयं व्यवहारम् (वावशानाः) भृशं कामयमानाः ॥ १ ॥

अन्वयः—हे अध्यापकोपदेशका यथा वह्निर्व्युष्टिष्वग्निमुषसमश्विना दधिक्रां च हवते तथाऽध्वरं वावशानाः सजोषसः सुज्योतिषो देवा भवन्त उक्थैर्नः शृण्वन्तु ॥ १ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यथा वायुः सर्वान् सूर्यादीन्प्रकाशकान् पदार्थान्धृत्वा सर्वानुपकरोति तथैव विद्वांसः सर्वैःसह वैरत्यागरूपस्याहिंसाधर्मस्य प्रचारायैकमत्या भूत्वा सर्वं जगदुपकुर्युः॥१॥

पदार्थः—हे अध्यापक उपदेशक जनो जैसे (वह्निः) पदार्थों का धारणकर्त्ता (व्युष्टिषु) प्रकाशकारक क्रियाओं में (अग्निम्) अग्नि (उषसम्) प्रातःकाल (अश्विना) सूर्यचन्द्रमा और (दधिक्राम्) संसार के धारणकारकों के उल्लङ्घन कर्त्ता को (हवते) ग्रहण करता है वैसे (अध्वरम्) हिंसा भिन्न व्यवहार की (वावशानाः) अत्यन्त कामना करते हुए (सजोषसः)

समान प्रीति के निर्वाहक (सुज्योतिषः) शोभन उत्तम बुद्धि के प्रकाशों से युक्त (देवाः) विद्वान् आप लोग (उक्थैः) प्रशंसा करने योग्य कर्मों से (नः) हम लोगों के प्रार्थनारूप वचन (शृण्वन्तु) सुनिये ॥ १ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे वायु संपूर्ण प्रकाशकारी सूर्य आदि पदार्थों के धारण द्वारा सब जीवों का उपकार करता वैसे विद्वान् पुरुष सम्पूर्ण जनों के साथ वैर छोड़नारूप अहिंसा धर्म के प्रचार के लिये एक सम्मति से सब संसार का उपकार करें ॥ १ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

अग्ने त्री ते वाजिना त्री सधस्था तिस्रस्ते जिह्वा ऋतजात पूर्वीः । तिस्र उ ते तन्वो देववातास्ताभिर्नः पाहि गिरो अप्रयुच्छन् ॥ २ ॥

अग्ने । त्री । ते । वाजिना । त्री । सधस्था । तिस्रः । ते । जिह्वाः । ऋतऽजात । पूर्वीः । तिस्रः । ऊं इति । ते । तन्वः । देवऽवाताः । ताभिः । नः । पाहि । गिरः । अप्रऽयुच्छन् ॥ २ ॥

पदार्थः—(अग्ने) पावक इव प्रकाशात्मन् विद्वन् (त्री) त्रीणि (ते) तव (वाजिना) ज्ञानगमनप्राप्तिरूपाणि (त्री) त्रीणि (सधस्था) समानस्थानानि (तिस्रः) त्रित्वसङ्ख्याताः (ते) तव (जिह्वाः) विविधा वाणीः (ऋतजात) सत्याचरणे प्रसिद्ध (पूर्वीः) प्राचीनाः (तिस्रः) त्रिविधाः (उ) वितर्के (ते) तव (तन्वः) शरीरस्य (देववाताः) ये देवैर्विद्वद्भिः सह वान्ति ते (ताभिः) पूर्वोक्ताभिः (नः) अस्माकम् (पाहि) (गिरः) सुशिक्षिता वाचः (अप्रयुच्छन्) प्रमादमकुर्वन् ॥२॥

अन्वयः—हे ऋतजाताग्ने ते तव त्री वाजिना त्री सधस्था ते तिस्रो जिह्वाः पूर्वी उ ते तिस्रस्तन्वो देववाता गिरः सन्ति ताभि रप्रयुच्छन् संस्त्वं नोऽस्मान् पाहि ॥ २ ॥

भावार्थः—हे मनुष्या ब्रह्मचर्य्याध्ययनमननानि त्रीणि कर्माणि कृत्वा त्रिषु जन्मस्थाननामसु कृतकृत्या भवन्तु अध्यापनोपदेशाभ्यां सर्वेषां रक्षां कुर्वन्तु स्वयं प्रमादरहिता भूत्वाऽन्यानपि तादृशान् संपादयन्तु ॥ २ ॥

पदार्थः—हे (ऋतजात) सत्य आचरण करने में प्रसिद्ध (अग्ने) अग्नि के सदृश प्रकाशस्वरूप विद्वान् पुरुष (ते) आप के (त्री) तीन (वाजिना) ज्ञान गमन और प्राप्तिरूप (त्री) तीन (सधस्था) तुल्य स्थान वाले जन्मादि (ते) आप की (तिस्रः) तीन प्रकार वाली (जिह्वा) वाणियां (पूर्वीः) प्राचीन (उ) और (ते) आप के (तिस्रः) तीन (तन्वः) शरीर सम्बन्धी (देववाताः) विद्वानों के साथ संवाद करने में उपकारक (गिरः) वचन हैं उन से (अप्रयुच्छन्) अहंकार त्यागी आप (नः) हम लोगों की (पाहि) रक्षा करो ॥ २ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो आप लोग ब्रह्मचर्य्य अध्ययन और विचार से तीन कर्म करके तीन जन्म स्थान और नामों में कृतकृत्य अर्थात् जन्म सफल करो पढाने तथा उपदेश से सब की रक्षा करो और आप स्वयं प्रमाद रहित हो कर अन्य लोगों को वैसा ही करो ॥ २ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

अग्ने भूरीणि तव जातवेदो देव स्वधावोऽमृतस्य नाम । याश्च माया मायिनां विश्वमिन्व त्वे पूर्वीः संदधुः पृष्टबन्धो ॥ ३ ॥

अग्ने। भूरी॑णि। तव॑। जात॒ऽवे॒दः॒। देव॑। स्व॒धा॒ऽव॒ः। अमृत॑स्य। नाम॑। याः। च॒। मा॒या। मा॒यिना॑म्। वि॒श्व॒ऽमि॒न्व॒। त्वे इति॑। पू॒र्वीः। स॒म्ऽद॒धुः। पृष्ट॑ब॒न्धो॒ इति॑ पृष्ट॒ऽब॒न्धो॒॥ ३॥

पदार्थः—(अग्ने) प्रकाशात्मन् (भूरीणि) बहूनि (तव) (जातवेदः) प्रजातविज्ञान (देव) विद्वन् (स्वधावः) प्रशस्तानि स्वधा अमृतरूपाण्यन्नानि विद्यन्ते यस्य तत्सम्बुद्धौ (अमृतस्य) नाशरहितस्य (नाम) प्रसिद्धानि नामानि (याः) (च) (माया) प्रज्ञा (मायिनाम्) कुत्सिता माया प्रज्ञा विद्यते येषां तेषाम् (विश्वमिन्व) विश्वं सर्वं जगन्मिन्वं व्याप्तं येन तत्सम्बुद्धौ (त्वे) त्वयि (पूर्वीः) पुरातनीः प्रजाः (सन्दधुः) सन्धिताः कुर्य्युः (पृष्टबन्धो) यः पृष्टान् जनानुत्तरेषु बध्नाति तत्सम्बुद्धौ ॥ ३ ॥

अन्वयः-हे स्वधावो जातवेदो देवाऽग्ने यानि तव भूरीण्यमृतस्य नाम नामानि सन्ति। हे पृष्टबन्धो विश्वमिन्व याश्च पूर्वीस्त्वे सन्दधुर्मायिनां माया च हन्युस्ते विज्ञानवन्तो जायन्ते ॥ ३ ॥

भावार्थः—हे मनुष्या यूयं सर्वं जगत्परमेश्वरेण व्याप्यं मन्यध्वं छलीनां छलं मत परमेश्वरस्यार्थवन्ति सर्वाणि नामानि बुध्वाऽर्थानुकूलतया स्वाचरणानि कुर्वन्तु ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे (स्वधावः) प्रशंसनीय अमृतरूप अन्नयुक्त (जातवेदः) श्रेष्ठ विज्ञानयुक्त (देव) विद्वान् पुरुष (अग्ने) विद्या द्वारा प्रकाशकारक जो (तव) आप के (भूरीणि) बहुत (अमृतस्य) नाशरहित के (नाम)

नाम हैं हे (पृष्टबन्धो) मनुष्यों के कर्मानुसार फलदायक (विश्वमिन्व) सम्पूर्ण जगत् में व्यापक (याः) जो (पूर्वीः) प्राचीन प्रजायें (त्वे) आप में (सन्दधुः) स्थित की गई हैं (मायिनाम्) निकृष्ट बुद्धियुक्त पुरुषों की (माया) बुद्धिनाश हो तो (च) भी अन्य पुरुष विज्ञान युक्त होवें ॥ ३ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो आप लोग सम्पूर्ण संसार ईश्वर से व्याप्य अर्थात् पूरित जानो और छली पुरुषों के छल को नाश तथा परमेश्वर के अर्थ सहित सम्पूर्ण नाम जान के अर्थ के अनुकूल भाव से अपने आचरणों को शुद्ध करो॥३॥

पुनरग्निदृष्टान्तेन विद्वत्कर्त्तव्यमाह ॥

फिर अग्नि के दृष्टान्त से विद्वान् का कर्त्तव्य कहते हैं

अ॒ग्निर्ने॒ता भग॑इव क्षि॒ती॒नां दैवी॑नां दे॒व ऋ॑तु॒पा ऋ॒तावा॑ । स वृ॑त्र॒हा स॒नयो॑ वि॒श्ववे॑दाः पर्ष॒द्वि-श्वाति॑दुरि॒ता गृ॒णन्त॑म् ॥ ४ ॥

अ॒ग्निः । ने॒ता । भगः॑ऽइव । क्षि॒ती॒नाम् । दैवी॑नाम् । दे॒वः । ऋ॒तु॒ऽपाः । ऋ॒त॒ऽवा॑ । सः । वृ॒त्र॒ऽहा । स॒नयः॑ । वि॒श्वऽवे॑दाः । पर्ष॑त् । विश्वा॑ । अति॑ । दुः॒ऽइ॒ता । गृ॒णन्त॑म् ॥४॥

पदार्थः—(अग्निः) पावकः (नेता) गमकः (भगइव) सूर्य्य इव (क्षितीनाम्) भूमीनाम् (दैवीनाम्) देवेषु दिव्यगुणेषु भवानाम् (देवः) सुखप्रदाता (ऋतुपाः) य ऋतुं पाति रक्षति सः (ऋतावा) य ऋतं संभजति (सः) (वृत्रहा) मेघस्य हन्ता सूर्य्य इव (सनयः) सनातनाः (विश्ववेदाः) यो विश्वं वेत्ति सः (पर्षत्) पारं प्रापयतु (विश्वा) सर्वाणि (अति) उल्लङ्घने (दुरिता) दुष्टाचरणानि (गृणन्तम्) स्तुवन्तम् ॥ ४ ॥

अन्वयः—यो भग इव दैवीनां क्षितीनां नेता ऋतुपा ऋतावा देवो वृत्रहेव सनयो विश्ववेदा अग्निर्गृणन्तं विश्वा दुरितातिपर्षत्सोऽस्माभिस्सदैव सेवनीयः ॥ ४ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालं०—यथाग्निः सूर्य्यादिरूपेण पृथिव्यादीन्पदार्थान्नियमन्नयति यथा जगदीश्वरः सदा सर्वं जगद्व्यवस्थापयति तथैवोपासित ईश्वरः सेवितो विद्वान् सर्वेभ्यः पापाचरणेभ्यः पृथक्कृत्य दुःखार्णवात् पारं नयति ॥ ४ ॥

पदार्थः—जो (भगइव) सूर्य्य के तुल्य (दैवीनाम्) श्रेष्ठ गुणों में उत्पन्न (क्षितीनाम्) भूमियों का (नेता) अग्रणी (ऋतुपाः) ऋतुओं के रक्षक (ऋतावा) सत्यकर्म निर्वाहक (देवः) सुखदायक (वृत्रहा) मेघों के नाशक सूर्य्य के सदृश (सनयः) अनादि सिद्ध (विश्ववेदाः) संसार के ज्ञाता (अग्निः) अग्नि के सदृश तेजस्वी (गृणन्तम्) स्तुतिकारक को (विश्वा) संपूर्ण पुरुषों के (दुरिता) दुष्ट आचरणों को (अति) उलंघन करके (पर्षत्) पार पहुंचावे (सः) वह परमात्मा हम लोगों से सेवने योग्य है ॥ ४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जैसे अग्नि सूर्य्य आदिरूप धारण करके पृथिवी आदि पदार्थों को नियम पूर्वक अपने स्थान में स्थित रखता और जैसे जगदीश्वर सर्वदा संपूर्ण जगत् की व्यवस्था करता है वैसे ही उपासित हुआ ईश्वर तथा सेवित हुआ विद्वान् पुरुष संपूर्ण पापाचरणों से पृथक् करके दुःखरूप समुद्र के पार पहुंचाता है ॥ ४ ॥

पुनर्विद्वन्मनुष्यकर्त्तव्यमाह ॥

फिर विद्वान् मनुष्य के कर्त्तव्य को क० ॥

द॒धि॒क्राम॒ग्निमु॒षसं॑ च दे॒वीं बृह॒स्पतिं॑ सवि॒तारं॑ च दे॒वम्। अ॒श्विना॑ मि॒त्रावरु॑णा॒ भगं॑ च॒ वसू॑न्रु॒द्राँ आ॑दि॒त्याँ इ॒ह हु॑वे ॥ ५ ॥ २० ॥

दधिऽक्राम् । अग्निम् । उषसम् । च । देवीम् । बृहस्पतिम् । सवितारम् । च । देवम् । अश्विना । मित्रावरुणा । भगम् । च । वसून् । रुद्रान् । आदित्यान् । इह । हुवे ॥ ५ ॥ २० ॥

पदार्थः—(दधिक्राम्) यो भूम्यादीन् दधीन्धर्त्रीन् पदार्थान् क्रामति तम् (अग्निम्) विद्युतम् (उषसम्) प्रभातम् (च) (देवीम्) देदीप्यमानां कमनीयाम् (बृहस्पतिम्) बृहतां पालकं वायुम् (सवितारम्) सूर्य्यम् (च) सकलजगदुत्पादकं परमेश्वरम् (देवम्) कमनीयं दातारम् (अश्विना) अध्यापकोपदेशकौ (मित्रावरुणा) प्राणोदानौ (भगम्) सकलैश्वर्य्यप्रदं व्यवहारम् (च) (वसून्) भूम्यादीन् (रुद्रान्) प्राणान् (आदित्यान्) संवत्सरस्य मासान् (इह) (हुवे) स्तुवे गृह्णामि ॥ ५ ॥

अन्वयः-हे मनुष्या यथाहमिह दधिक्रामग्निं देवीमुषसं च बृहस्पतिं सवितारं परमेश्वरं देवं चाश्विना मित्रावरुणा भगं वसूनुद्रानादित्याँश्च हुवे तथैव यूयमप्येतान्सततमाह्वयत ॥ ५ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—सर्वैर्मनुष्यैः यथा विद्वांसोऽस्याः सृष्टेरुपकारकैः पदार्थैः सर्वाणि कार्य्याणि साध्नुवन्ति तथैतान् विदित्वा सर्वाण्यभीष्टानि कार्य्याणि साधनीयानि सर्वैः परमेश्वरः सततमुपासनीयश्चेति ॥ ५ ॥

अत्राग्न्यादिविद्वद्गुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिर्वेद्या ॥

इति विंशतितमं सूक्तं विंशतितमो वर्गश्च समाप्तः ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे मैं (इह) इस संसार में (दधिक्राम्) भूमि आदि धारण करने वाले पदार्थों को उलंघन करके वर्त्तमान (अग्निम्) बिजुली रूप अग्नि (देवीम्) प्रकाशमान तथा कामना करने योग्य (उषसम्) प्रातःकाल (च) और (बृहस्पतिम्) बड़े २ पदार्थों का रक्षक वायु (सवितारम्) सूर्य्य और सम्पूर्ण संसार की उत्पत्ति करने वाला (देवम्) कामना योग्य दानशील ईश्वर (च) और (अश्विना) अध्यापक उपदेश कर्त्ता (मित्रवरुणा) प्राण (च) और उदान वायु (भगम्) सम्पूर्ण ऐश्वर्य्य को देने वाला व्यवहार (वसून्) भूमि आदि पदार्थ (रुद्रान्) प्राण और (आदित्यान्) संवत्सरों के मासों की (हुवे) स्तुतिकरता हूं वा ग्रहण करता हूं वैसे ही तुम लोग इन की निरन्तर स्तुति वा ग्रहण करो ॥ ५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—सब मनुष्यों को चाहिये कि जैसे विद्वान् लोग इस सृष्टि के उपकारक पदार्थों से संपूर्ण कार्य्यों को सिद्ध करते हैं वैसे ही उन पदार्थों के गुणों को जान कर सम्पूर्ण अभीष्ट कार्यों को सिद्ध करें और सर्व जनों से ईश्वर उपासना करने योग्य है ॥ ५ ॥

इस सूक्त में अग्नि आदि और विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह बीशवां सूक्त और बीशवां वर्ग पूरा हुआ ॥

अथ पञ्चर्चस्यैकाधिकविंशतितमस्य सूक्तस्य । कौशिको गाथी ऋषिः । अग्निर्देवता । १ । ४ त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । २ । ३ अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः । ५ विराट् बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अथ मनुष्यैः किं कर्त्तव्यमित्याह ॥

अब पांच ऋचा वाले इक्कीशवें सूक्त का प्रारम्भ है इस के प्रथम मन्त्र से मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस वि० ॥

इ॒मं नो॑ य॒ज्ञम॒मृते॑षु धेही॒मा ह॒व्या जात॑वेदो जुषस्व । स्तो॒काना॑मग्ने॒ मेद॑सो घृ॒तस्य॒ होतः॒ प्राशा॑न प्रथ॒मो नि॒षद्य॑ ॥ १ ॥

इ॒मम् । नः॒ । य॒ज्ञम् । अ॒मृते॑षु । धे॒हि॒ । इ॒मा । ह॒व्या । जात॒ऽवे॒दः॒ । जु॒षस्व॒ । स्तो॒काना॑म् । अ॒ग्ने॒ । मेद॑सः । घृ॒तस्य॑ । हो॒त॒रिति॑ । प्र । अ॒शा॒न॒ । प्र॒थ॒मः । नि॒ऽसद्य॑ ॥ १ ॥

पदार्थः—(इमम्) (नः) अस्माकम् (यज्ञम्) विद्वत्सत्कारसत्सङ्गशुभगुणदानाख्यम् (अमृतेषु) नाशरहितेषु पदार्थेषु (धेहि) (इमा) इमानि (हव्या) होतुं धर्मार्थकाममोक्षान्साधयितुमर्हाणि साधनानि (जातवेदः) जातविज्ञान (जुषस्व) सेवस्व (स्तोकानाम्) अल्पानां पदार्थानाम् (अग्ने) विद्वन् (मेदसः) स्निग्धस्य (घृतस्य) (होतः) दातः (प्र) (अशान) भुङ्क्ष्व (प्रथमः) आदिमः (निषद्य) ॥ १ ॥

अन्वयः—हे जातवेदो मेदसो घृतस्य स्तोकानां होतरग्ने प्रथमस्त्वं निषद्य सुखं प्राशान न इमं यज्ञं जुषस्वेमा हव्या अमृतेषु धेहि ॥ १ ॥

भावार्थः—यथान्नपानादीनां दाता अन्येषां प्रियो भवति तथैव विद्यासुशिक्षाधर्मज्ञानप्रापको जिज्ञासूनां प्रियो भवति ॥ १ ॥

पदार्थः—हे (जातवेदः) संपूर्ण उत्पन्न पदार्थों के ज्ञाता (मेदसः) चिकने (घृतस्य) घृत और (स्तोकानाम्) छोटे पदार्थों के (होतः) दाता (अग्ने) विद्वान् पुरुष (प्रथमः) पूर्वकाल में वर्त्तमान आप (निषद्य) स्थित हो कर (प्र) (अशान) सुख को भोगो (नः) हम लोगों के (इमम्) इस (यज्ञम्) विद्वानों के सत्कार सत्संग शुभगुणों और दानरूप कर्म का (जुषस्व) सेवन कीजिये (इमा) इन (हव्या) धर्म अर्थ काम मोक्ष की सिद्धि के लिये योग्य साधनों का (अमृतेषु) नाश रहित पदार्थों में (धेहि) स्थापन करो ॥ १ ॥

भावार्थः—जैसे अन्न जल आदि का दाता पुरुष अन्य पुरुषों को प्रिय होता वैसे विद्या उत्तम शिक्षा और धर्म सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त कराने वाला जन इन कर्मों को जानने की इच्छा युक्त पुरुषों का प्रिय होता है ॥ १ ॥

अथ धर्मोपदेशकाः किंवत्पालयन्तीत्याह ॥

अब धर्मोपदेशक किस के तुल्य रक्षा करते हैं इस वि० ॥

घृतवन्तः पावक ते स्तोकाः श्चोतन्ति मेदसः ।
स्वधर्मन्देववीतये श्रेष्ठं नो धेहि वार्य्यम् ॥ २ ॥

घृतऽवन्तः । पावक । ते । स्तोकाः । श्चोतन्ति । मेदसः ।
स्वऽधर्मन् । देवऽवीतये । श्रेष्ठम् । नः । धेहि । वार्य्यम् ॥ २ ॥

पदार्थः—(घृतवन्तः) प्रशस्तं बहु वा घृतमाज्यमुदकं वा विद्यते येषान्ते (पावक) अग्निवत्पवित्रकारक (ते) तव (स्तोकाः) अल्पाः (श्चोतन्ति) सिञ्चन्ति (मेदसः) स्निग्धाः (स्वधर्मन्)

स्वस्य वैदिके धर्मणि (देववीतये) विद्वत्प्राप्तये (श्रेष्ठम्) अतिशयेन प्रशस्तम् (नः) अस्मभ्यम् (धेहि) देहि (वार्य्यम्) वर्तुमर्हं धनम् ॥ २ ॥

अन्वयः—हे पावक यस्य ते घृतवन्तो मेदसः स्तोकाः श्चोतन्ति स त्वं देववीतये श्रेष्ठं वार्य्यं स्वधर्मन्नो धेहि ॥ २ ॥

भावार्थः—यथा पावकः स्वकर्मणा जलादिपदार्थान् शुद्धान् कृत्वा वर्षादिरूपेण सर्वान् सिक्त्वा सर्वान् जीवयति तथैव विद्या-धर्म्मोपदेशकाः सर्वान् मनुष्यान्पालयन्ति ॥ २ ॥

पदार्थः—हे (पावक) अग्नि के सदृश पवित्रकर्ता जिन (ते) आप के (घृतवन्तः) उत्तम वा अधिक घृत वाले तथा जलयुक्त (मेदसः) चिकने (स्तोकाः) थोड़े पदार्थ (श्चोतन्ति) सिंचन करते हैं वह आप (देववीतये) विद्वानों की प्राप्ति के लिये (श्रेष्ठम्) अतिउत्तम (वार्य्यम्) स्वीकार करने योग्य धन (स्वधर्मन्) अपने वैदिक धर्म में (नः) हम लोगों के लिये (धेहि) दीजिये ॥२॥

भावार्थः—जैसे अग्नि जल आदि पदार्थों को अपने कर्म से शुद्ध कर वर्षा आदि रूप से संपूर्ण पदार्थों को सींच कर सब जीवों की रक्षा करते हैं वैसे ही विद्या और धर्म के उपदेशक लोग संपूर्ण मनुष्यों का पालन करते हैं ॥२॥

पुनर्विद्वांसः किं कुर्युरित्याह ॥

फिर विद्वान् लोग क्या करें इस वि० ॥

तुभ्यं॑ स्तो॒का घृ॑त॒श्चुतोऽग्ने॒ विप्रा॑य सन्त्य ।

ऋषि॑ः श्रेष्ठ॒ः समि॑ध्यसे य॒ज्ञस्य॑ प्रावि॒ता भ॑व ॥३॥

तुभ्य॑म् । स्तो॒काः । घृ॒त॒ऽश्चुत॑ः । अग्ने॑ । विप्रा॑य । सन्त्य॒ । ऋषि॑ः । श्रेष्ठ॑ः । सम् । इ॒ध्य॒से॒ । य॒ज्ञस्य॑ । प्र॒ऽअ॒वि॒ता । भ॒व॒ ॥ ३ ॥

पदार्थः—(तुभ्यम्) (स्तोकाः) स्तावकाः (घृतश्चुतः) घृतेन सिक्ताः (अग्ने) विद्वन् (विप्राय) मेधाविने (सन्त्य) सन्तिषु सत्याऽसत्यविभाजकेषु साधो (ऋषिः) मन्त्रार्थवेत्ता (श्रेष्ठः) श्रेयान् (सम्) (इध्यसे) प्रकाश्यसे (यज्ञस्य) सङ्गतस्य व्यवहारस्य (प्राविता) प्रकर्षेण रक्षकः (भव) ॥३॥

अन्वयः—हे सन्त्याग्ने ये घृतश्चुतः स्तोका विप्राय तुभ्यं श्चोतन्ति श्रेष्ठ ऋषिस्त्वं समिध्यसे स त्वं यज्ञस्य प्राविता भव ॥३॥

भावार्थः—हे विद्वांसो ये युष्मान् स्तुवन्ति तान्यूयं वेदार्थविदः कुरुत यतः परस्परेषां रक्षणं स्यात् ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे (सन्त्य) सत्य और असत्य के विभाग करने वालों में कुशल प्रवीण (अग्ने) विद्वान् पुरुष जो (घृतश्चुतः) घृत से सींचे गए (स्तोकाः) स्तुतिकर्त्ता लोग (विप्राय) बुद्धिमान् (तुभ्यम्) तुम्हारे लिये प्राप्त होते हैं और (श्रेष्ठः) उत्तम (ऋषिः) वेदमन्त्र और उन के अर्थ के ज्ञाता आप (समिध्यसे) प्रताप वा प्रकाशयुक्त किये जाते ऐसे आप (यज्ञस्य) संगति के योग्य व्यवहार के (प्राविता) अत्यन्त रक्षाकारक (भव) होइये ॥ ३ ॥

भावार्थः—हे विद्वान् लोगो जो लोग आप की स्तुति करते हैं उन पुरुषों को आप लोग वेद के अर्थ ज्ञान वाले कीजिये जिस्से एक सम्मति से परस्पर रक्षा होवे ॥ ३ ॥

पुनर्मनुष्याः किं कुर्युरित्याह ॥

फिर मनुष्य क्या करें इस वि० ॥

तुभ्यं श्चोतन्त्यध्रिगो शचीवः स्तोकासो अग्ने मेदसो घृतस्य । कविशस्तो बृहता भानुनागा हव्या जुषस्व मेधिर ॥ ४ ॥

तुभ्य॑म् । श्चो॒त॒न्ति॒ । अ॒ध्रि॒गो॒इत्य॑ध्रिऽगो । श॒ची॒ऽव॒: । स्तो॒कास॑: । अग्ने॑ । मे॒द॑सः । घृ॒तस्य॑ । क॒वि॒ऽश॒स्तः । बृ॒ह॒ता । भा॒नुना॑ । आ । अ॒गा॒: । ह॒व्या । जु॒ष॒स्व॒ । मे॒धि॒र॒ ॥४॥

पदार्थः—(तुभ्यम्) (श्चोतन्ति) सिञ्चन्ति (अध्रिगो) योऽध्रीन्मन्त्रान् गच्छति जानाति तत्सम्बुद्धौ (शचीवः) शची प्रशस्ता प्रज्ञा विद्यते यस्य तत्सम्बुद्धौ (स्तोकासः) गुणानां स्तावकाः (अग्ने) अग्निरिव प्रकाशक (मेदसः) स्निग्धस्य (घृतस्य) आज्यस्योदकस्य वा (कविशस्तः) कविभिर्विद्वद्भिः प्रशंसितः (बृहता) महता (भानुना) तेजसा (आ) (अगाः) गच्छेः (हव्या) दातुमर्हाणि वस्तूनि (जुषस्व) सेवस्व(मेधिर)मेधाविन्॥४॥

अन्वयः—हे अध्रिगो शचीवो मेधिराऽग्ने ये स्तोकासो मेदसो घृतस्य तुभ्यं श्चोतन्ति तैः सह कविशस्तस्त्वं बृहता भानुना सूर्य इवागाः हव्या जुषस्व ॥ ४ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यथोदकेन सिक्त्वा वृक्षान् वर्द्धयित्वा फलानि प्राप्नुवन्ति तथैव सत्सङ्गेन सत्पुरुषान् सेवयित्वा विज्ञानादिफलानि प्राप्नुयुः ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे (अध्रिगो) वेदमन्त्रों के ज्ञाता (शचीवः) प्रशंसनीय बुद्धियुक्त (मेधिर) बुद्धिमान् पुरुष (अग्ने) अग्नि के सदृश प्रकाशकारक जो पुरुष (स्तोकासः) उत्तम गुणों की स्तुतिकर्त्ता (मेदसः) चिकने (घृतस्य) घृत का (तुभ्यम्) तेरे लिये (श्चोतन्ति) सेचन करते उन के साथ (कविशस्तः) विद्वानों से प्रशंसित हुआ (बृहता) बड़े (भानुना) तेजसे सूर्य के सदृश (आ) (अगाः) प्राप्त हो और (हव्या) देने योग्य वस्तुओं का (जुषस्व) सेवन करो ॥ ४ ॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे जल से सींच कर वृक्षों को बढ़ाय फल प्राप्त होते हैं वैसे ही सत्सङ्ग से सत्पुरुषों का सेवन करके विज्ञान आदि फलों को प्राप्त करें ॥ ४ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

ओजिष्ठन्ते मध्यतो मेद उद्भृतं प्र ते वयं ददामहे । श्चोतन्ति ते वसो स्तोका अधि त्वचि प्रति तान्देवशो विहि ॥ ५ ॥ २१ ॥

ओजिष्ठम् । ते । मध्यतः । मेदः । उत्ऽभृतम् । प्र । ते । वयम् । ददामहे । श्चोतन्ति । ते । वसोऽइति । स्तोकाः । अधि । त्वचि । प्रति । तान् । देवऽशः । विहि ॥५॥ ॥२१॥

पदार्थः-(ओजिष्ठम्) अतिशयेन बलिष्ठम् (ते) तव (मध्यतः) (मेदः) स्नेहः (उद्भृतम्) उत्कृष्टतया धृतम् (प्र) (ते) तुभ्यम् (वयम्) (ददामहे) (श्चोतन्ति) सिञ्चन्ति (ते) तव (वसो) वासहेतो (स्तोकाः) स्तावकाः (अधि) उपरिभावे (त्वचि) (प्रति) (तान्) (देवशः) देवान् (विहि) प्राप्नुहि । अत्रान्येषामपि दृश्यत इत्याद्यचो ह्रस्वः ॥५॥

अन्वयः—हे वसो ते मध्यतो यदोजिष्ठं मेद उद्भृतं तत्ते वयं प्रददामहे ये स्तोकास्तेऽधित्वचि श्चोतन्ति तान्देवशः प्रति विहि ॥५॥

भावार्थः—यो हि अतीव हृद्यं वस्तु यस्मै दद्यात्तेन तस्मै तादृशमेव देयं ये विदुषां सङ्गेन दिव्यान्गुणान्प्राप्नुवन्ति ते सर्वान्कोमलस्वभावान् कर्तुं शक्नुवन्तीति ॥ ५ ॥

अत्राग्निमनुष्यगुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति वेद्यम् ॥

इत्येकाधिकविंशतितमं सूक्तमेकाधिकविंशतितमश्च वर्गस्समाप्तः ॥

पदार्थः—हे (वसो) निवास के कारण (ते) आप के (मध्यतः) मध्य से जो (ओजिष्ठम्) अतिबलयुक्त (मेदः) प्रीति (उद्भृतम्) उत्तम प्रकार धारण किया गया उस को (ते) आप के लिये (वयम्) हम लोग (प्र, ददामहे) देते हैं जो (स्तोकाः) स्तुतिकारक (ते) आप के (अधि) ऊपर (त्वचि) चर्म में (श्चोतन्ति) सिंचन करते हैं (तान्) उन (देवशः) विद्वानों के (प्रति) समीप (विढि) प्राप्त होइये ॥ ५ ॥

भावार्थः—जो पुरुष बहुत ही उत्तम वस्तु जिस पुरुष को देवै उस पुरुष को चाहिये कि उस देने वाले पुरुष को वैसी ही वस्तु देवे और जो लोग विद्वानों के सत्संग से श्रेष्ठ गुणों को प्राप्त होते हैं वे संपूर्ण जनों को कोमल स्वभावयुक्त कर सक्ते हैं ॥ ५ ॥

इस सूक्त में अग्नि और मनुष्यों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह इक्कीशवां सूक्त और इक्कीशवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चर्चस्य द्वाविंशतितमस्य सूक्तस्य गाथी ऋषिः। पुरीष्या अग्नयो देवताः। १ त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः। २। ३ भुरिक् पङ्क्तिः। ५ निचृत्पङ्क्तिश्छन्दः पञ्चमः स्वरः। ४ विराडनुप् छन्दः ऋषभः स्वरः॥

अथाग्निगुणानाह॥

अब बाईशवें सूक्त का प्रारम्भ है उस के प्रथम मन्त्र से अग्नि के गुण वर्णन वि०॥

अयं सो अग्निर्यस्मिन्त्सोममिन्द्रः सुतं दधे जठरे वावशानः। सहस्रिणं वाजमत्यं न सप्तिं ससवान्त्सन्त्स्तूयसे जातवेदः॥ १॥

अयम्। सः। अग्निः। यस्मिन्। सोमम्। इन्द्रः। सुतम्। दधे। जठरे। वावशानः। सहस्रिणम्। वाजम्। अत्यम्। न। सप्तिम्। ससऽवान्। सन्। स्तूयसे। जातऽवेदः॥१॥

पदार्थः—(अयम्) (सः) (अग्निः) विद्युत् (यस्मिन्) (सोमम्) पदार्थसमूहम् (इन्द्रः) जीवः (सुतम्) निष्पन्नम् (दधे) धरति (जठरे) उदराग्नौ (वावशानः) भृशं कामयमानः (सहस्रिणम्) असङ्ख्यं बलं विद्यते यस्मिँस्तम् (वाजम्) वेगम् (अत्यम्) व्यापकं शीघ्रगामिनं वायुम् (न) इव (सप्तिम्) अग्न्याख्यमश्वम् (ससवान्) संभाजकः (सन्) (स्तूयसे) (जातवेदः) जातविद्य॥१॥

अन्वयः—हे जातवेदो यस्मिन्नयमग्निः सहस्रिणं वाजमत्यं न सप्तिं दधे तस्मिन् वावशान इन्द्रो भवान् जठरे सुतं सोमन्दधे स त्वं ससवान् सन् स्तूयसे॥ १॥

भावार्थः—यदि मनुष्या विद्ययाग्निं चालयेयुस्तर्ह्ययं सहस्राणामश्वानां बलन्धरति ॥ १ ॥

पदार्थः—हे (जातवेदः) उत्तम विद्याधारी (यस्मिन्) जिस में (अयम्) यह (अग्निः) बिजुली (सहस्रियम्) असङ्ख्य पराक्रमयुक्त (वाजम्) वेग और (अत्यम्) व्यापक शीघ्र चलने वाले वायु के (न) तुल्य (सप्तिम्) अग्निनामक अश्व को (दधे) धारण करता है उस में (वावशानः) अत्यन्त कामना करने वाला (इन्द्रः) जीवात्मा आप (जठरे) पेट की अग्नि में (सुतम्) उत्पन्न (सोमम्) पदार्थों के समूह के धारणकर्ता आप (ससवान्) विभागकारक (सन्) हो कर (स्तूयसे) स्तुति करने योग्य हो ॥१॥

भावार्थः—जो मनुष्य विद्या से अग्नि को चलावें तो यह अग्नि हजारों घोड़ों के बल को धारण करता है ॥ १ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

अग्ने यत्ते दिवि वर्चः पृथिव्यां यदोषधीष्वप्स्वा यजत्र । येनान्तरिक्षमुर्वाततन्थ त्वेषः स भानुरर्णवो नृचक्षाः ॥ २ ॥

अग्ने । यत् । ते । दिवि । वर्चः । पृथिव्याम् । यत् । ओषधीषु । अप्सु । आ । यजत्र । येन । अन्तरिक्षम् । उरु । आऽततन्थ । त्वेषः । सः । भानुः । अर्णवः । नृऽचक्षाः ॥२॥

पदार्थः—(अग्ने) पावकवद्वर्त्तमान (यत्) (ते) तव (दिवि) प्रकाशे (वर्चः) दीप्तिः (पृथिव्याम्) (यत्) (ओषधीषु) सोमादिषु (अप्सु) जलेषु (आ) समन्तात् (यजत्र) सङ्गन्तः

(येन) (अन्तरिक्षम्) (उरु) (आततन्थ) समन्तात्तनोति (त्वेषः) दीप्तिमान् (सः) (भानुः) दीप्तिमान् (अर्णवः) समुद्र इव (नृचक्षाः) नृणां द्रष्टा ॥ २ ॥

अन्वयः—हे यजत्राग्ने ते दिवि यद्वर्चो यत्पृथिव्यां यदोषधीषु यदप्स्वा वर्तते येनोर्वन्तरिक्षमाततन्थ स त्वं त्वेषो भानुरर्णव इव नृचक्षा भव ॥ २ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—हे मनुष्या यद्विद्युताख्यं तेजः सूर्य्ये वायौ भूमौ जलेऽन्यत्र चोषध्यादिषु वर्त्तते तद्विज्ञाय सुखानि विस्तारयत ॥ २ ॥

पदार्थः—हे (यजत्र) प्रीति के पात्र (अग्ने) अग्नि के सदृश तेजस्वी (ते) आप के (दिवि) प्रकाश में (यत्) जो (वर्चः) तेज (यत्) जो (पृथिव्याम्) पृथिवी में (ओषधीषु) जो ओषधियों में और जो तेज (अप्सु) जलों में (आ) अच्छा वर्त्तमान है तथा (येन) जिस तेज से (अन्तरिक्षम्) पोलरूप (उरु) वक्षस्थल (आततन्थ) सब ओर से विस्तारकर्ता (सः) वह आप (त्वेषः) प्रकाशमान (भानुः) दीप्तियुक्त (अर्णवः) समुद्र के सदृश (नृचक्षाः) मनुष्यों के देखने वाले होइये ॥ २ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो जो बिजुली नामक तेज सूर्य्य वायु भूमि और जल में तथा अन्य पदार्थों ओषधी आदि में वर्त्तमान उस को जान के सुख का विस्तार करो ॥ २ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

अग्ने दिवो अर्णमच्छा जिगास्यच्छा देवाँ ऊँचिषे धिष्ण्या ये । या रोचने परस्तात्सूर्य्यस्य याश्चावस्तादुपतिष्ठन्त आपः ॥ ३ ॥

अग्ने॑ । दि॒वः । अर्ण॑म् । अच्छ॑ । जि॒गा॒सि॒ । अच्छ॑ । दे॒वा- न् । ऊ॒चि॒षे॒ । धिष्ण्याः॑ । ये । याः । रो॒च॒ने । प॒रस्ता॑त् । सूर्य॑स्य । याः । च॒ । अ॒वस्ता॑त् । उ॒प॒ऽतिष्ठ॑न्ते । आप॑ः ॥३॥

पदार्थः—(अग्ने) अग्निसदृश विद्वन् पुरुष (दिवः) सूर्य्यप्रकाशात् (अर्णम्) उदकम् (अच्छ) सम्यक्। अत्र निपातस्य चेति दीर्घः। (जिगासि) स्तौषि (अच्छ) । अत्र निपातस्य चेति दीर्घः (देवान्) दिव्यगुणान्मनुष्यान् (ऊचिषे) उच्याः (धिष्ण्याः) धर्षितुं योग्याः (ये) (याः) (रोचने) सूर्य्यप्रकाशे (परस्तात्) (सूर्य्यस्य) सवितृमण्डलस्य (याः) (च) (अवस्तात्) अधस्तात् (उपतिष्ठन्ते) (आपः) ॥३॥

अन्वयः—हे अग्ने त्वं यथाग्निर्देवोऽर्णमच्छ गमयति तथाच्छ जिगासि देवानच्छोचिषे याः सूर्य्यस्य रोचने परस्तात् याश्च धिष्ण्या आपोऽवस्तादुपतिष्ठन्ते य एता विजानीयुस्तेऽऽत्य उपकारं ग्रहीतुं शक्नुयुः ॥ ३ ॥

भावार्थः—यथा सूर्य्योऽन्धकारं विनाश्य दिनं जनयित्वाऽऽपो वर्षयित्वा च सर्वान् सुखयति तथैव विद्वांसोऽविद्यां विनाश्य विद्यां जनयित्वा सुखानि वर्षयित्वा सर्वानानन्दयाति ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के सदृश तेजस्वी विद्वान् पुरुष आप जैसे अग्नि (दिवः) सूर्य्य के प्रकाश से (अर्णम्) जल को (अच्छ) अच्छे प्रकार प्राप्त होता है वैसे (अच्छ) उत्तम प्रकार (जिगासि) स्तुति करो (देवान्) उत्तम गुणयुक्त मनुष्यों की (ऊचिषे) अच्छे प्रकार स्तुति करते हो (याः) जो (सूर्य्यस्य) सूर्य्य मण्डल के (रोचने) प्रकाश में (परस्तात्) ऊपर (च)

और (याः) जो (धिष्ण्याः) धर्षण करने योग्य (आपः) जल (अवस्तात्) नीचे से (उपतिष्ठन्ते) प्राप्त होते हैं (ये) जो लोग इन जलों के गुणों को जानते वे जलों से उपकार ले सक्ते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थः—जैसे सूर्य्य अन्धकार का नाश कर दिन को उत्पन्न कर और जल की वृष्टि करके सम्पूर्ण संसार का सुखकारक होता है वैसे ही विद्वान् लोग अविद्या का नाश विद्या की उत्पत्ति और सुख की वृष्टि करके सब को आनन्दित करते हैं॥३॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥
फिर उसी वि० ॥

पुरीष्यासो अग्नयः प्रावणेभिः सजोषसः ।
जुषन्तां यज्ञमद्रुहोऽनमीवा इषो महीः ॥ ४ ॥

पुरीष्यासः । अग्नयः । प्रवणेभिः । सऽजोषसः । जुषन्ताम् । यज्ञम् । अद्रुहः । अनमीवाः । इषः । महीः ॥ ४ ॥

पदार्थः—(पुरीष्यासः) पुरीषेषु पालकेषु पृथिव्यादिषु व्यापकत्वेन भवाः (अग्नयः) पावका इव वर्त्तमानाः (प्रवणेभिः) गमनादिभिः । अत्रान्येषामपीत्याद्यचो दीर्घः (सजोषसः) समानप्रीतिसेवनाः (जुषन्ताम्) सेवन्ताम् (यज्ञम्) सङ्गतिमयम् (अद्रुहः) द्वेषरहिताः (अनमीवाः) नीरोगाः (इषः) अन्नानि (महीः) महतीर्वाचः । महीति वाङ्ना० निघं० १ । ११ ॥ ४ ॥

अन्वयः—हे विद्वांसो भवन्तः पुरीष्यासोऽग्नय इव सजोषसोऽद्रुहोऽनमीवाः सन्तो प्रवणेभिर्यज्ञमिषो महीश्च जुषन्ताम् ॥ ४ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यथाऽग्न्यादयः पदार्थाः परस्परं मिलितास्सन्तोऽनेकानि कार्य्याणि साध्नुवन्ति तथैव सखायोऽरोगास्सन्तो विद्वांसो धनधान्यैश्वर्यं विद्याश्च प्राप्नुवन्तु ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे विद्वानो आप लोग (पुरीष्यासः) पालक पृथिवी आदि पदार्थों में व्यापकभाव से वर्त्तमान (अग्नयः) अग्नियों के सदृश तेजयुक्त (सजोषसः) तुल्य प्रीति के निर्वाहक (अद्रुहः) द्वेषरहित (अनमीवाः) रोग से रहित हुए (प्रवणेभिः) गमन आदिकों से (यज्ञम्) मेलरूप यज्ञ (इषः) अन्न और (महीः) श्रेष्ठ वाणियों का (जुषन्ताम्) सेवन करो ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे अग्नि आदि पदार्थ परस्पर मिल कर अनेक कार्य्यों को सिद्ध करते हैं वैसे ही मित्रभाव से वर्त्तमान रोग से रहित हुए विद्वान् लोग धनधान्य ऐश्वर्य्य और विद्या को प्राप्त होवें ॥ ४ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

इळा॑मग्ने पुरु॒दंसं॑ स॒निं गोः श॑श्वत्त॒मं हव॑माना॒य साध । स्यान्नः॑ सू॒नुस्तन॑यो वि॒जावाग्ने॒ सा ते॑ सुम॒तिर्भू॑त्व॒स्मे ॥ ५ ॥ २२ ॥

इळा॑म् । अग्ने॑ । पु॒रु॒ऽदंस॑म् । स॒निम् । गोः । श॒श्व॒त्ऽत॒मम् । हव॑मानाय । सा॒ध॒ । स्यात् । नः॒ । सू॒नुः । तन॑यः । वि॒जाऽवा॑ । अग्ने॑ । सा । ते॒ । सु॒ऽम॒तिः । भू॒तु॒ । अ॒स्मे इति॑ ॥५॥२२॥

पदार्थः—(इळाम्) पृथिवीम् (अग्ने) अग्निरिव विद्याप्रकाशक (पुरुदंसम्) बहुकर्माणम् (सनिम्) याचमानम् (गोः) वाचः (शश्वत्तमम्) अनादिनं लक्ष्यम् (हवमानाय) प्रशंसमानाय (साध) (स्यात्) भवेत् (नः) अस्माकम् (सूनुः) अपत्यम् (तनयः) विद्याविस्तारकः (विजावा) सत्याऽसत्ययोर्विभाजकः (अग्ने) (सा) (ते) तव (सुमतिः) सुष्ठुप्रज्ञा (भूतु) भवतु (अस्मे) अस्मभ्यम् ॥ ५ ॥

अन्वयः—हे अग्ने त्वं हवमानायेळां पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं नोऽस्मभ्यं साध। हे अग्ने येन नस्तनयो विजावा सूनुः स्यात्सा ते सुमतिरस्मे भूतु ॥ ५ ॥

भावार्थः—विद्वान् विद्यामादित्सवे विद्यां साध्नुयात्सर्वतो गुणान् गृह्णीयादिति ॥ ५ ॥

अस्मिन्सूक्तेऽग्निगुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिर्वेद्या ॥

इति द्वाविंशं सूक्तं द्वाविंशो वर्गश्च समाप्तः ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के सदृश विद्या के प्रकाश करने वाले विद्वान् आप (हवमानाय) प्रशंसा करने वाले के लिये (इळाम्) पृथिवी (पुरुदंसम्) बहुत कर्म कर्त्ता (सनिम्) याचनाकारक (गोः) वाणी (शश्वत्तमम्) अनादि से वर्त्तमान चिन्ह को हम लोगों के लिये (साध) सिद्ध करिये। हे (अग्ने) तेजस्वी पुरुष जिस से (नः) हम लोगों का (तनयः) विद्याविस्तार कर्त्ता (विजावा) सत्य और असत्य का विभागकारक (सूनुः) पुत्र (स्यात्) हो तथा (सा) वह (ते) आप की (सुमतिः) उत्तम बुद्धि (अस्मे) हम लोगों के लिये (भूतु) होवै ॥ ५ ॥

भावार्थः—विद्वान् पुरुष विद्या ग्रहण करने की इच्छा करने वाले पुरुष के लिये विद्या को सिद्ध करे तथा सब से गुणों का ग्रहण करे ॥ ५ ॥

इस सूक्त में अग्नि के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह बाईशवां सूक्त और बाईशवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चर्चस्य त्रयोविंशतितमस्य सूक्तस्य । देवश्रवा देववातश्च भारतावृषी अग्निर्देवता । १ विराट् त्रिष्टुप् । २ । ३ । ४ । ५ निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अथाग्निद्वाराशिल्पविद्योपदिश्यते ॥

अब पांच वाले तेईशवें सूक्त का प्रारम्भ है उस के प्रथम मन्त्र से अग्नि के द्वारा शिल्प विद्या का उपदेश किया है ॥

निर्मथितः सुधित आ सधस्थे युवा कविरध्वरस्य प्रणेता । जूर्यत्स्वग्निरजरो वनेष्वत्रा दधे अमृतं जातवेदाः ॥ १ ॥

निःऽमथितः । सुऽधितः । आ । सधऽस्थे । युवा । कविः । अध्वरस्य । प्रऽनेता । जूर्यत्ऽसु । अग्निः । अजरः । वनेषु । अत्र । दधे । अमृतम् । जातऽवेदाः ॥ १ ॥

पदार्थः—(निर्मथितः) नितरां विलोडितः (सुधितः) सुष्ठु धृतः (आ) (सधस्थे) समानस्थाने (युवा) विभाजकः (कविः) क्रान्तदर्शनः (अध्वरस्य) अहिंसामयस्य शिल्पव्यवहारस्य (प्रणेता) प्रेरकः (जूर्यत्सु) वेगवत्सु (अग्निः) पावकः (अजरः) नित्यः (वनेषु) रश्मिषु (अत्र) अस्मिन् । अत्र ऋचितुनुघेति दीर्घः (दधे) दधाति (अमृतम्) उदकम् (जातवेदाः) जातानि वेदांसि धनानि यस्मात्सः ॥ १ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यस्सधस्थे निर्मथितः सुधितो युवा कविः प्रणेताऽजरो जातवेदा अग्निर्जूर्यत्सु वनेष्वध्वरस्या दधेऽत्रामृतं च स सर्वोपायैर्वेदितव्यः ॥ १ ॥

भावार्थः—हे मनुष्या कलायन्त्रादियुक्तेषु यानेषु नितरां विलोडितश्चालितोऽग्निः सर्वेभ्यो यानानि वेगेन गमयतीति वित्त ॥१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (सधस्थे) तुल्य स्थान में (निर्मथितः) अत्यन्त मथा अर्थात् प्रदीप्त किया गया (सुधितः) उत्तम प्रकार धारित (युवा) विभागकर्ता (कविः) उत्तम दर्शन सहित (प्रणेता) प्रेरणाकारक (अजरः) नित्य (जातवेदाः) धनों की उत्पत्ति करने वाला (अग्निः) अग्नि (जूर्यत्सु) वेगयुक्त (वनेषु) किरणों में (अध्वरस्य) अहिंसारूप शिल्पव्यवहार को (आदधे) धारण करता है (अत्र) इस शिल्पविद्या में (अमृतम्) जल को भी धारण करता वह अग्नि सम्पूर्ण उपायों से जानने योग्य है ॥१॥

भावार्थः—हे मनुष्यो कलायन्त्र आदिकों से युक्त वाहनों में अत्यन्त मथित होकर चलाया गया अग्नि सकल जनों के लिये वाहनों को वेगपूर्वक चलाता है यह जानना चाहिये ॥ १ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

अमन्थिष्टां भारता रेवदग्निं देवश्रवा देववातः सुदक्षम्। अग्ने विपश्य बृहताभि रायेषां नो नेता भवतादनु द्यून् ॥ २ ॥

अमन्थिष्टाम् । भारता । रेवत् । अग्निम् । देवऽश्रवाः । देवऽवातः । सुदक्षम् । अग्ने । वि । पश्य । बृहता । अभि । राया । इषाम् । नः । नेता । भवतात् । अनु । द्यून् ॥२॥

पदार्थः—(अमन्थिष्टाम्) मथ्नीताम् (भारता) धारकपोषकौ (रेवत्) धनवत् (अग्निम्) पावकम् (देवश्रवाः) देवान् यः शृणोति सः (देववातः) देवो दिव्यो वातः प्रेरको यस्य सः

(सुदक्षम्) सुष्ठुबलम् (अग्ने) अग्निरिव दर्शकः (वि) (पश्य) समीक्षस्व (बृहता) महता (अभि) (राया) (इषाम्) अन्नादीनाम् (नः) अस्मभ्यम् (नेता) नयनकर्त्ता (भवतात्) भवेत् (अनु) (द्यून्) अनुकूलान् दिवसान् ॥ २ ॥

अन्वयः—हे अग्ने यथा भारता सुदक्षमग्निममन्थिष्टां तथा देवश्रवा देववातोऽनुद्यून् रेवदग्निं व्यमथ्नीयात् । यो नो नेता भवतात्स त्वं बृहता रायेषामभि विपश्य ॥ २ ॥

भावार्थः—हे मनुष्या यथा शिल्पविद्याध्येत्रध्यापकौ पदार्थैः क्रयविक्रयात् श्रीमन्तो भवन्ति तथैव यूयमपि भवत ॥ २ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के सदृश प्रकाशयुक्त जैसे (भारता) धारणकर्त्ता और पालनकर्त्ता पुरुष (सुदक्षम्) श्रेष्ठ बल (अग्निम्) अग्नि का (अमन्थिष्टाम्) मन्थन करो वैसे (देवश्रवाः) विद्वानों के वचन श्रोता (देववातः) श्रेष्ठ प्रेरणाकारक से प्रेरित (अनु, द्यून्) अनुकूल दिवस (रेवत्) धन के तुल्य अग्नि का मन्थन करें जो (नः) हम लोगों के लिये (नेता) सुमार्ग में अग्रणी (भवतात्) होवे वह आप (बृहता) बड़े (राया) धन से (इषाम्) अन्न आदिकों के मध्य में (अभि) (वि,पश्य) सब प्रकार कृपादृष्टि से देखिये ॥ २ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो जैसे शिल्पविद्या के पढ़ने पढ़ाने वाले लोग पदार्थों के क्रयविक्रय से धनवान् होते हैं वैसे ही आप लोग भी होइये ॥ २ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

दश क्षिपः पूर्व्यं सीमजीजनन्त्सुजातं मातृषु प्रियम् । अग्निं स्तुहि दैववातं देवश्रवो यो जनानामसद्वशी ॥ ३ ॥

दर्श । क्षिपः । पूर्व्यम् । सीम् । अजीजनन् । सुऽजातम् । मातृषु । प्रियम् । अग्निम् । स्तुहि । दैवऽवातम् । देवश्रवः । यः । जनानाम् । असत् । वशी ॥ ३ ॥

पदार्थः-(दश) दशसङ्ख्याकाः (क्षिपः) प्रक्षेपिका अङ्गुलयः (पूर्व्यम्) पूर्वैर्निष्पादितम् (सीम्) सर्वतः (अजीजनन्) जनयन्ति (सुजातम्) सुष्ठुप्रसिद्धम् (मातृषु) नदीषु। मातर इति नदीनाम निघं० १। १२ (प्रियम्) कमनीयम् (अग्निम्) पावकम् (स्तुहि) प्रशंस (दैववातम्) देवैर्विज्ञातानां सम्बन्धिनम् (देवश्रवः) यो देवेभ्यो विद्वद्भ्यः शृणोति तत्सम्बुद्धौ (यः) (जनानाम्) मनुष्याणाम् (असत्) भवेत् (वशी) जितेन्द्रियः ॥ ३ ॥

अन्वयः—हे देवश्रवो भवान् यथा दश क्षिपो मातृषु प्रियं सुजातं दैववातं पूर्व्यमग्निं सीमजीजनन् तथा त्वं स्तुहि। यो जनानां वश्यसत्तंश्च प्रशंस ॥ ३ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—हे मनुष्या यथा कराङ्गुलिभिर्बहूनि कार्य्याणि सिद्ध्यन्ति तथैवाग्न्यादिभिर्बहूनि कार्य्याणि यूयं साधुत ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे (देवश्रवः) विद्वानों के लिये उपकार श्रोता आप जैसे (दश) दश संख्यायुक्त (क्षिपः) फैलने वाली अंगुलियां (मातृषु) नदियों में (प्रियम्) कामना करने योग्य (सुजातम्) उत्तम प्रकार सिद्ध (दैववातम्) विद्वानों से जाने हुओं का सम्बन्धी (पूर्व्यम्) प्राचीन जनों से उत्पन्न (अग्निम्) अग्नि को (सीम्) सब प्रकार (अजीजनन्) उत्पन्न करते हैं

वैसे आप (स्तुहि) स्तुति करो और (यः) जो (जनानाम्) मनुष्यों के मध्य में (वशी) इन्द्रियजित् (असत्) होवे उस की प्रशंसा करो ॥ ३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो जैसे हाथों की अंगुलियों से बहुत कार्य्य सिद्ध होते हैं वैसे ही अग्नि आदिकों से बहुत कार्य्यों को आप लोग सिद्ध करो ॥ ३ ॥

पुनर्मनुष्याः किं कुर्युरित्याह ॥

फिर मनुष्य क्या करें इस वि० ॥

नि त्वा दधे वर आ पृथिव्या इळायास्पदे सुदिनत्वे अह्नाम्। दृषद्वत्यां मानुष आपयायां सरस्वत्यां रेवदग्ने दिदीहि ॥ ४ ॥

नि । त्वा । दधे । वरे । आ । पृथिव्याः । इळायाः । पदे । सुदिनऽत्वे । अह्नाम् । दृषत्ऽवत्याम् । मानुषे । आपयायाम् । सरस्वत्याम् । रेवत् । अग्ने । दिदीहि ॥ ४ ॥

पदार्थः—(नि) (त्वा) त्वाम् (दधे) (वरे) उत्तमे व्यवहारे (आ) समन्तात् (पृथिव्याः) भूमेरन्तरिक्षस्य वा (इळायाः) वाचः (पदे) प्रापणीये स्थाने (सुदिनत्वे) शोभनानां दिनानां भावे (अह्नाम्) दिवसानाम् (दृषद्वत्याम्) बहवो दृषदो विद्यन्ते यस्याम् (मानुषे) मननशीले (आपयायाम्) प्राणव्यापिकायाम् (सरस्वत्याम्) विज्ञानवत्यां वाचि (रेवत्) प्रशस्तधनेन तुल्यम् (अग्ने) पावकवद्विद्वन् (दिदीहि) प्रकाशय ॥४॥

अन्वयः—हे अग्ने अहं यथा त्वा पृथिव्या वर इळायास्पदेऽह्नां सुदिनत्वे दृषद्वत्यामापयायां सरस्वत्यां मानुषे रेवन्निदधे तथा त्वं मामादिदीहि ॥ ४ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—मनुष्याः सखायो भूत्वाऽन्योऽन्यस्मिन् विद्याधर्मसभ्यतासुखानि वर्द्धयेयुः ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के सदृश तेजस्वी विद्वान् पुरुष मैं जैसे (त्वा) आप को (पृथिव्याः) भूमि वा अन्तरिक्ष (वरे) उत्तम व्यवहार और (इळायाः) वाणी के (पदे) प्राप्त होने योग्य स्थान में (अह्नाम्) दिवसों के (सुदिनत्वे) उत्तम दिनों में (दृषद्वत्याम्) प्रस्थरयुक्त (आपयायाम्) प्राणों में व्यापक (सरस्वत्याम्) विज्ञान वाली वाणी और (मानुषे) मननशील में (रेवत्) श्रेष्ठ धन के तुल्य (नि) (दधे) धारण किया वैसे मननकर्ता आप मुझ को (आ) (दिदीहि) प्रकाशित करो ॥ ४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—मनुष्यों को चाहिये कि परस्पर मित्रभाव से वर्त्तमान करके विद्याधर्म सज्जनता और सुखों को बढ़ावैं ॥ ४ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

इळामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध । स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥ ५ ॥ २३ ॥

इळाम् । अग्ने । पुरुऽदंसम् । सनिम् । गोः । शश्वत्ऽतमम् । हवमानाय । साध । स्यात् । नः । सूनुः । तनयः । विजाऽवा । अग्ने । सा । ते । सुऽमतिः । भूतु । अस्मे इति ॥ ५ ॥ २३ ॥

पदार्थः—(इळाम्) प्रशंसनीयां वाचम् (अग्ने) पावकवद्विद्याप्रकाशक (पुरुदंसम्) बहुशुभकर्माणम् (सनिम्) विद्यादिशुभगुणदानम् (गोः) उत्तमवाचः (शश्वत्तमम्) अनादि-

भूतं विज्ञानम् (हवमानाय) आददानाय (साध) संसाध्नुहि (स्यात्) (नः) अस्माकम् (सूनुः) अपत्यवच्छिष्यः (तनयः) सुखविस्तारकः (विजावा) विशेषेण सर्वेषां सुखजनकः (अग्ने) सुपरीक्षक (सा) (ते) (सुमतिः) (भूतु) (अस्मे) अस्मासु ॥ ५ ॥

अन्वयः-हे अग्ने त्वं हवमानायेळां गोः शश्वत्तमं पुरुदंसं सनिं साध यतो नो विजावा सुनुस्तनयः स्यात् । हे अग्ने या ते सुमतिर्भूतु साऽस्मे स्यात् ॥ ५ ॥

भावार्थः-मनुष्यैः परस्परान् प्रति शुभगुणग्रहणादानोपदेशाः कर्त्तव्यः स्वसन्तानानां विद्यासुशिक्षाविज्ञानानि सततं वर्द्धनीयानीति ॥ ५ ॥

अत्राग्निविद्वन्मनुष्यगुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिर्वेद्या ॥

इति त्रयोविंशतितमं सूक्तं त्रयोविंशतितमश्च वर्गः समाप्तः ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के सदृश विद्या के प्रकाशकारी आप (हवमानाय) ग्रहण करने के लिये (इळाम्) प्रशंसायुक्त वाणी को और (गोः) उत्तम वाणी के (शश्वत्तमम्) अनादि विज्ञान तथा (पुरुदंसम्) बहुत शुभ कर्मों के (सनिम्) विद्या आदि उत्तम गुणों के दान को (साध) सिद्ध करो जिस से (नः) हम लोगों का (विजावा) विशेष करके सम्पूर्ण जनों का सुखोत्पादक (सूनुः) पुत्र के सदृश शिष्य (तनयः) सुख का विस्तारकारक (स्यात्) होवे । हे (अग्ने) उत्तम प्रकार परीक्षा लेने में निपुण विद्वन् जो (ते) आप की (सुमतिः) उत्तम बुद्धि (भूतु) होवे (सा) वह (अस्मे) हम लोगों में होवे ॥ ५ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि परस्पर जनों के प्रति शुभ गुणों के के ग्रहण और दान का उपदेश दें और अपने सन्तानों को विद्या सुशिक्षा और विज्ञानों को निरन्तर बढ़ावें ॥ ५ ॥

इस सूक्त में अग्नि और विद्वान् मनुष्यों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह तेईशवां सूक्त और तेईशवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चर्चस्य चतुर्विंशतितमस्य सूक्तस्य विश्वामित्र ऋषिः । अग्निर्देवता । १ निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः । २ निचृद्गायत्री । ३ । ४ । ५ गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अथ राजधर्मविषयमाह ॥

अब पांच ऋचा वाले चौबीशवें सूक्त का प्रारम्भ है उस के प्रथम मन्त्र से राजधर्मविषय का उपदेश करते हैं ॥

अग्ने सहस्व पृतना अभिमातीरपास्य । दुष्टरस्तरन्नरातीर्वर्चो धा यज्ञवाहसे ॥ १ ॥

अग्ने । सहस्व । पृतनाः । अभिऽमातीः । अप । अस्य । दुस्तरः । तरन् । अरातीः । वर्चः । धाः । यज्ञऽवाहसे ॥१॥

पदार्थः—(अग्ने) वह्निवद्दुष्टानां दाहक (सहस्व) अभिभव तिरस्कुरु । सह अभिभव इत्यस्य प्रयोगः (पृतनाः) शत्रुसेनाः (अभिमातीः) अभिमानयुक्तान् दुष्टान् विघ्नकारिणः (अप) (अस्य) दूरी कुरु (दुष्टरः) दुःखेन तरितुमुल्लङ्घयितुं जेतुं योग्यः

वैदिकयन्त्रालय प्रयाग के पुस्तकों का सूचीपत्र

और संक्षिप्त नियम ।

(१) मूल्य टीक भेज कर मंगावें (२) टीक भेजने वालों को १०) रु० वा इस से अधिक पर २०) रु० सैकड़ा के हिसाब से कमीशन के पुस्तक अधिक भेजे जांय गे (३) डाक महसूल वेदभाष्य छोड़ कर सब से अलग लिया जायगा । ५) रु० वा इस से अधिक के पुस्तक ग्राहक की आज्ञानुसार रजिस्टरी भेजे जायंगे (५) मूल्य नीचे लिखे पते से भेजें ॥

पुस्तक	मू०	डा०
ऋग्वेदभाष्य अं० १—११७	२८)	
यजुर्वेद भाष्य सम्पूर्ण	२८)	
ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका	मू०	डा०
बिना जिल्द की	२)	=)
„ जिल्द की	२॥)	।)
वर्णोच्चारणशिक्षा	/)	-)॥
सन्धिविषय	।=)॥	-)॥
नामिक	।=)॥	-)॥
कारकीय	।/)॥	-)॥
सामासिक	।=)॥	-)॥
स्त्रैणताद्धित	१=)	/)
अव्ययार्थ	=)॥	-)॥
सौवर	=)॥	-)॥
आख्यातिक	१॥)	=)॥
पारिभाषिक	=)॥	-)॥
धातुपाठ	।=)	-)॥
गणपाठ	।/)	-)॥
उणादिकोष	॥=)	/)
निघण्टु	।=)	-)॥
अष्टाध्यायीमूल	।/)॥	-)॥
संस्कृतवाक्यप्रबोध	=)	-)॥
व्यवहारभानु	=)	-)॥

पुस्तक	मू०	डा०
भ्रमोच्छेदन	)॥	-)॥
अनुभ्रमोच्छेदन	)॥	-)॥
मेलाचांदापुर	/)	-)॥
आर्य्योद्देश्यरत्नमाला	/)	-)॥
गोकरुणानिधि	/)	-)॥
स्वामीनारायणमतखण्डन		
„ संस्कृतगुजराती	/)	-)॥
„ उक्त गुजराती	/)	-)॥
वेदविरुद्धमतखण्डन	=)	-)॥
स्वमन्तव्याऽमन्तव्यप्रकाश	)॥	-)॥
शास्त्रार्थ फीरोज़ाबाद	=)	-)॥
शास्त्रार्थकाशी	/)	-)॥
आर्य्याभिविनय	।)	/)
„ जिल्द की	।=)	/)
वेदान्तिध्वान्तनिवारण	=)	)॥
भ्रान्तिनिवारण	/)।	-)॥
पञ्चमहायज्ञविधि	=)॥	-)॥
„ जिल्द की	।=)॥	/)
सत्यार्थप्रकाश	२।)॥	=)॥
„ जिल्द का	२॥)	।)
आर्य्यसमाज के नियमोपनियम	-)।	-)॥

मेनेजर—वैदिकयन्त्रालय—प्रयाग

रसीद मूल्य वेदभाष्य

बालगोविन्द जी दफतर पोस्टमास्टर जेनरल प्रयाग	१)
राना श्यामसिंह जी रईस ताजपुर ज़िला बिजनौर	८)
साहब मजिष्ट्रेट प्रयाग	१४)
बाबू गुलाबचन्द लाल एकौंटेंट पी॰ डबल्यू॰ डी॰ रामपुर	२५।=)
बाबू केरीराम जी जमादार ४ गोरखा बकसो गुरदासपुर	५)
	६२।=)

ऋग्वेदभाष्यम्

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मितम्

संस्कृतार्य्यभाषाभ्यां समन्वितम् ॥

अस्यैकैकाङ्कस्य प्रतिमासं मूल्यम् भारतवर्षान्तर्गतदेशान्तर-
प्रापणमूल्येन सहितम् ।=) अङ्कद्वयस्यैकीकृतस्य ॥=)
वार्षिकं मूल्यम् ८)

इस ग्रंथ के प्रतिमास एक एक अंक का मूल्य भरतखंड के भीतर डांक
महसूल सहित ।≠) एक साथ छपे हुए दो अंकों के ॥≠)
और वार्षिक मूल्य ८)

यस्य सज्जनमहाशयस्यास्य ग्रन्थस्य जिघृक्षा भवेत् स प्रयागनगरे वैदिक-
यन्त्रालयप्रबन्धकर्त्तुः समीपे वार्षिकमूल्यप्रेषणेन प्रतिमासं
मुद्रितावङ्कौ प्राप्स्यति ॥

जिस सज्जन महाशय की इस ग्रन्थ के लेने की इच्छा हो वह प्रयाग नगरमें वैदिकयन्त्रालयमैनेजर
के समीप वार्षिक मूल्य भेजने से प्रतिमास के छपे हुए दोनों अङ्कों को प्राप्त कर सकता है ।

पुस्तक (१५०, १५१) अंक (१२४, १२५)

अयं ग्रन्थः प्रयागनगरे वैदिकयन्त्रालये मुद्रितः ॥

संवत् १९४७ वैशाखशुक्ल

वेदभाष्यसम्बन्धी विशेषनियम ॥

[१] यह "ऋग्वेदभाष्य" मासिक छपता है। एक मास में बत्तीस २ पृष्ठ के एक साथ छपे हुए दो अङ्क १ वर्ष में २४ अङ्क "ऋग्वेदभाष्य" के भेजे जाते हैं॥

[२] वेदभाष्य का मूल्य बाहर और नगर के ग्राहकों से एक ही लिया जायगा अर्थात् डाकव्यय से कुछ न्यूनाधिक न होगा ॥

[३] इस वर्तमान बारहवें वर्ष के लिये जो ११४--११५ अङ्क से प्रारंभ होकर ११६ । ११७ पर पूरा होगा । वार्षिक मूल्य ८) रु० हैं ।

[४] पीछे के ग्यारह वर्षमें जो वेदभाष्य छप चुका है उस का मूल्य यह है:—

[क] "ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका" विना जिल्द की ३)

स्वर्णाक्षरयुक्त जिल्द की ३॥)

[ख] ऋग्वेदभाष्य ११२ अङ्क तक ३७॥)

[५] वेदभाष्य का अङ्क प्रत्येक मास की पहिली तारीख को डाक में डाला जाता है। जो किसी का अङ्क डाक की भूल से न पहुंचे तो इस के उत्तर दाता प्रबंधकर्त्ता न होंगे। परन्तु दूसरे मास के अङ्क भेजने से प्रथम जो ग्राहक अङ्क न पहुंचने की सूचना दे देंगे तो उन को विना दाम दूसरा अङ्क भेज दिया जायगा इस अवधि के व्यतीत हुए पीछे अङ्क दाम देने से मिलेंगे एक अङ्क ।) दो अङ्क ॥) तीन अङ्क १) देने से मिलेंगे॥

[६] दाम जिस को जिस प्रकार से सुबीता हो भेजें परन्तु मनीआर्डर द्वारा भेजना ठीक होगा। टिकट डाक के अधन्नी वाले लिये जा सकते हैं परन्तु एक रुपये पीछे आध आना बट्टे का अधिक लिया जायगा। टिकट आदि मूल्यवान् वस्तु रजिस्टरी पत्रों में भेजना चाहिये॥

[७] जो लोग पुस्तक लेने से अनिच्छुक हों, वे अपनी ओर जितना चाहता हो भेज दें और पुस्तक के न लेने से प्रबन्धकर्त्ता को सूचित कर दें जबतक ग्राहक का पत्र न आवेगा तबतक पुस्तक बराबर भेजा जायगा और दाम लिये जावेंगे।

[८] बिके हुए पुस्तक पीछे नहीं लिये जायंगे ॥

[९] जो ग्राहक एक स्थान से दूसरे स्थान में जावें वे अपने पुराने और नये पते से प्रबन्धकर्त्ता को सूचित करें। जिस में पुस्तक ठीक ठीक पहुंचता रहे ॥

[१०] "वेदभाष्य" सम्बन्धी रुपया, और पत्र प्रबन्धकर्त्ता वैदिकयन्त्रालय प्रयाग (इलाहाबाद) के नाम से भेजें ॥

(तरन्) उल्लङ्घयन् (अरातीः) शत्रून् (वर्चः) अन्नम् । वर्च इति अन्नना० निघं० २।७ (धाः) धेहि (यज्ञवाहसे) यज्ञस्य प्रापकाय॥१॥

अन्वयः—हे अग्ने त्वं पृतनाः सहस्व अभिमातीरपास्य । दुष्टरस्त्वमरातीस्तरन् यज्ञवाहसे वर्चो धाः ॥ १ ॥

भावार्थः—राजपुरुषैः स्वप्रजासेना बलवतीः कृत्वा दुष्टाञ्छत्रून्निवार्य्य प्रजावर्द्धनाय धनविद्योन्नतिः सततं कर्त्तव्या ॥ १ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य दुष्ट जनों के दाहकर्त्ता वीर पुरुष आप (पृतनाः) शत्रुओं की सेनाओं का (सहस्व) तिरस्कार करो (अभिमातीः) अभिमान युक्त विघ्नकारी दुष्टों को (अपास्य) दूर करो (दुष्टरः) कठिनता से उल्लंघन करने योग्य आप और (अरातीः) शत्रुओं को (तरन्) उलंघन करते हुए (यज्ञवाहसे) यज्ञ के प्राप्त कराने वाले के लिये (वर्चः) अन्न को (धाः) धारण करिये ॥ १ ॥

भावार्थः—राजपुरुषों को चाहिये कि अपनी प्रजा और सेनाओं को बलयुक्त कर और दुष्ट शत्रुओं को राज्य से पृथक् करके प्रजा की वृद्धि के लिये धन और विद्या की निरन्तर उन्नति करें ॥ १ ॥

अथ विद्वद्भिः कथमन्येषामुन्नतिः कार्य्येत्याह ॥

अब विद्वानों को कैसे दूसरों की उन्नति करनी चाहिये इस वि० ॥

अग्न॒ इळा॒ समि॑ध्यसे वी॒तिहो॑त्रो॒ अम॑र्त्यः ।

जु॒षस्व॒ सू नो॑ अध्व॒रम् ॥ २ ॥

अग्ने॑ । इळा॑ । सम् । इ॒ध्य॒से॒ । वी॒तिऽहो॑त्रः । अम॑र्त्यः ।

जु॒षस्व॑ । सु । नः॒ । अ॒ध्व॒रम् ॥ २ ॥

पदार्थः—(अग्ने) अग्निवद्विद्याप्रकाशयुक्त (इळा) सुशिक्षिता स्तोतुमर्हा वाक् (सम्) सम्यक् (इध्यसे) प्रकाश्यसे

(वीतिहोत्रः) वीतीनां शुभगुणव्याप्तानां विद्यानां होत्रं स्वीकरणं यस्य सः (अमर्त्यः) आत्मत्वेन मरणधर्मरहितः (जुषस्व) सेवस्व (सु) । अत्र निपातस्य चेति दीर्घः (नः) अस्माकम् (अध्वरम्) अहिंसादिव्यवहारयुक्तं यज्ञम् ॥ २ ॥

अन्वयः—हे अग्नेऽमर्त्यो वीतिहोत्रस्त्वं येळास्ति यया त्वं समिध्यसे तया सह नोऽध्वरं सु जुषस्व ॥ २ ॥

भावार्थः—विद्वद्भिर्येन स्वेषां वृद्धिर्भवेत् तेनैवान्येषामपि उन्नतिः कार्य्या ॥ २ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य विद्या के प्रकाश से युक्त पुरुष (अमर्त्यः) आत्मरूप से मरणधर्मरहित (वीतिहोत्रः) उत्तम गुणों से पूरित विद्याओं के स्वीकारकारी आप जो (इळा) उत्तम प्रकार शिक्षित स्तुति करने योग्य वाणी है और जिस से आप (सम्) (इध्यसे) उत्तम प्रकार प्रकाशित हो उस के साथ (नः) हम लोगों के (अध्वरम्) अहिंसा आदि व्यवहार से युक्त यज्ञ का (सु, जुषस्व) अच्छे प्रकार सेवन करो ॥ २ ॥

भावार्थः—विद्वानों को चाहिये कि जिस से अपनी वृद्धि हो उसी से अन्य जनों की उन्नति करें ॥ २ ॥

पुना राजधर्मविषयमाह ॥

फिर राजधर्म वि० ॥

अग्ने द्युम्नेन जागृवे सहसः सूनवाहुत । एदं बर्हिः सदो मम ॥ ३ ॥

अग्ने । द्युम्नेन । जागृवे । सहसः । सूनो इति । आहुऽत । आ । इदम् । बर्हिः । सदः । मम ॥ ३ ॥

पदार्थः-(अग्ने) प्रकाशयुक्त राजन् (द्युम्नेन) यशस्विना धनेन (जागृवे) जागरूक (सहसः) बलवतः (सूनो) पुत्र दुष्टानां हिंसक (आहुत) समन्तात्कृताह्वान (आ) (इदम्) वर्त्तमानम् (बर्हिः) अतीवोत्तमम् (सदः) स्थित्यर्हमासनम् (मम) ॥ ३ ॥

अन्वयः—हे जागृवे सहसः सूनावाहुताऽग्ने द्युम्नेन सह वर्त्तमानस्त्वं ममेदं बर्हिः सद आजुषस्व ॥ ३ ॥

भावार्थः—ये राजपुरुषा यशोबलयुक्ता राजधर्मे जागरूका न्यायाधीशाः स्युस्तेऽखण्डितं राज्यं पालयितुं शक्नुयुः ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे (जागृवे) राजधर्म के उत्तम प्रकार निर्वाहक (सहसः) बलवान् के (सूनो) पुत्र दुष्टों के नाशकर्त्ता (आहुत) चारों ओर से पुकारे गये (अग्ने) प्रतापयुक्त राजन् (द्युम्नेन) यशकारक धन के सहित विराजमान आप (मम) मेरे (इदम्) इस वर्त्तमान (बर्हिः) अत्यन्त श्रेष्ठ (सदः) बैठने योग्य आसन का (आ, जुषस्व) अच्छे प्रकार सेवन करो ॥ ३ ॥

भावार्थः—जो राजपुरुष यश बलयुक्त राजधर्म में कुशल न्यायाधीश हों वे अखण्डित राज्य की पालना कर सकें ॥ ३ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

अग्ने विश्वेभिरग्निभिर्देवेभिर्महया गिरः । यज्ञेषु य उ चायवः ॥ ४ ॥

अग्ने । विश्वेभिः । अग्निऽभिः । देवेऽभिः । महय । गिरः । यज्ञेषु । ये । ऊं इति । चायवः ॥ ४ ॥

पदार्थः—(अग्ने) विद्वन् (विश्वेभिः) समग्रैः (अग्निभिः) अग्निभिरिव वर्त्तमानैः (देवेभिः) दिव्यगुणकर्मस्वभावैर्विद्वद्भिः (महय) पूजय । अत्र संहितायामिति दीर्घः (गिरः) सुशिक्षिता वाचः (यज्ञेषु) सङ्गन्तव्येषु व्यवहारेषु (ये) (उ) (चायवः) सत्कर्त्तारः ॥ ४ ॥

अन्वयः–हे अग्ने ये यज्ञेषु चायवस्स्युस्तानेवाग्निभिरिव विश्वेभिर्देवेभिस्सह महय उ एषां गिरः सत्कुरु ॥ ४ ॥

भावार्थः—ये राजजना अत्र जगत्युत्तमानि कर्म्माणि कुर्युस्ते सर्वैः सत्कर्त्तव्या ये च दुष्टानि तेऽपमाननीयास्स्युः ॥ ४ ॥

पदार्थः–हे (अग्ने) विद्वन् पुरुष (ये) जो पुरुष (यज्ञेषु) संगति के योग्य व्यवहारों में (चायवः) सत्कार योग्य हों उन का ही (अग्निभिः) अग्नियों के सदृश तेजयुक्त (विश्वेभिः) सम्पूर्ण (देवेभिः) श्रेष्ठ गुण कर्म स्वभावयुक्त विद्वानों के साथ (महय) सत्कार करो (उ) और उन्हीं लोगों की(गिरः) उत्तम प्रकार शिक्षायुक्त वाणियों का प्रमाण मानो ॥ ४ ॥

भावार्थः—जो राजपुरुष इस संसार में उत्तम कार्य्यों के कर्त्ता हों उन का सब लोग सत्कार करें और जो दुष्ट कर्म करते हों उन का अपमान करें॥४॥

अथ विद्वद्विषयमाह ॥

अब विद्वान् के वि० ॥

अग्ने दा दाशुषे रयिं वीरवन्तं परीणसम् ।
शिशीहि नः सूनुमतः ॥ ५ ॥ २४ ॥

अग्ने । दाः । दाशुषे । रयिम् । वीरऽवन्तम् । परीणसम् । शिशीहि । नः । सूनुऽमतः ॥ ५ ॥ २४ ॥

पदार्थः—(अग्ने) (दाः) देहि (दाशुषे) सर्वेषां सुखदात्रे (रयिम्) धनम् (वीरवन्तम्) बहवो वीरा यस्मिँस्तम् (परीणसम्) बहुविधम् । परीणस इति बहुनाम निघं० ३ । १ (शिशीहि) तीक्ष्णान् सम्पादय । अत्र वाच्छन्दसीति विकरणस्य श्लुरन्येषामपि दृश्यत इति दीर्घश्च (नः) अस्मान् (सूनुमतः) पुत्रयुक्तान् ॥५॥

अन्वयः—हे अग्ने यथा त्वं दाशुषे परीणसं वीरवन्तं रयिन्दास्तथैव सूनुमतो नोऽस्माञ्छिशीहि ॥ ५ ॥

भावार्थः—ये विद्याधनदातारः स्युस्तान्प्रत्येवं वाच्यं भवन्तोऽस्मान्सर्वथा वर्द्धयन्त्विति ॥ ५ ॥

अत्राग्निराजविद्वद्गुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति वेद्यम् ॥

इति चतुर्विंशतितमं सूक्तं स एव वर्गश्च समाप्तः ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के सदृश तेजयुक्त विद्वान् पुरुष जैसे आप (दाशुषे) सब के सुखदाता जन के लिये (परीणसम्) बहुत प्रकारयुक्त (वीरवन्तम्) बहुत वीरों से विशिष्ट (रयिम्) धन को (दाः) दीजिये और वैसे ही (सूनुमतः) पुत्रयुक्त (नः) हम लोगों को (शिशीहि) प्रबल कीजिये ॥ ५ ॥

भावार्थः—जो विद्या और धन के दाता विद्वान् हों उन के प्रति ऐसा कहना चाहिये कि आप लोग हम लोगों की सब प्रकार वृद्धि करो ॥ ५ ॥

इस सूक्त में अग्नि, राजा और विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह चौवीशवां सूक्त और चौवीशवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चर्चस्य पञ्चविंशतितमस्य सूक्तस्य विश्वामित्र ऋषिः । १ । २ । ३ । ४ अग्निर्देवता । ५ इन्द्राग्नीदेवते । १ निचृदनुष्टुप् । २ अनुष्टुप्छन्दः । ऋषभः स्वरः । ३ । ४ । ५ भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अथ सूर्याग्निदृष्टान्तेन विद्वत्कृत्यमाह ॥

अब पांच ऋचा वाले पच्चीशवें सूक्त का प्रारम्भ है इस के प्रथम मन्त्र से सूर्यरूप अग्नि के दृष्टान्त से विद्वानों का कर्त्तव्य कहते हैं ॥

अग्ने॑ दि॒वः सू॒नुर॑सि॒ प्रचे॑ता॒स्तना॑ पृथि॒व्या उ॒त विश्व॒वे॑दाः । ऋध॑ग्दे॒वाँ इ॒ह य॑जा चिकित्वः ॥ १ ॥

अग्ने॑ । दि॒वः । सू॒नुः । अ॒सि॒ । प्रऽचे॑ताः । तना॑ । पृ॒थि॒व्याः । उ॒त । वि॒श्वऽवे॑दाः । ऋध॑क् । दे॒वान् । इ॒ह । य॒ज॒ । चि॒कि॒त्वः॒ ॥ १ ॥

पदार्थः—(अग्ने) विद्वन् (दिवः) विद्युतः (सूनुः) सूर्य्यः (असि) (प्रचेताः) प्रकृष्टज्ञानयुक्तो विज्ञापको वा (तना) विस्तारकः (पृथिव्याः) अन्तरिक्षस्य (उत) अपि (विश्ववेदाः) यो विश्वं धनं विन्दति सः (ऋधक्) स्वीकारे (देवान्) विदुषो दिव्यगुणान् वा (इह) अस्मिन्संसारे (यज) सङ्गमय । अत्र द्व्यचोतस्तिङ इति दीर्घः (चिकित्वः) विज्ञानवन् ॥ १ ॥

अन्वयः—हे चिकित्वोऽग्ने यथा दिवः सूनुः सूर्य्य इव प्रचेताः पृथिव्यास्तना उत विश्ववेदा असि स त्वमिह देवानृधग्यज ॥ १ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यथा सूर्य्यस्सर्वेषां मूर्त्तिमद्द्रव्याणां प्रकाशकोऽस्ति तथा विद्वांसो विद्वत्प्रियाश्चेह सर्वेषामात्मनां प्रकाशका भवन्ति ॥ १ ॥

पदार्थः—हे (चिकित्वः) विज्ञानवान् (अग्ने) विद्वन् पुरुष जैसे (दिवः) बिजुली से (सूनुः) सूर्य्य के समान तेजस्वी (प्रचेताः) उत्तम विज्ञानयुक्त वा विज्ञानदाता (पृथिव्याः) अन्तरिक्ष के (तना) विस्तारक (उत) और भी (विश्ववेदाः) धनदाता (असि) हो वह आप (इह) इस संसार में (देवान्) विद्वान् वा उत्तम गुणों को (ऋधक्) स्वीकार करने में (यज) संयुक्त कीजिये ॥ १ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे सूर्य्य संपूर्ण स्वरूप वाले द्रव्यों का प्रकाशक है वैसे विद्वान् और विद्वानों से प्रेमकारी पुरुष इस संसार में सर्वजनों के आत्माओं के प्रकाशक होते हैं ॥ १ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

अ॒ग्निः स॑नोति वी॒र्या॑णि वि॒द्वान्त्स॒नोति॒ वाज॑म॒मृता॑य॒ भूष॑न् । स नो॑ दे॒वाँ एह व॑हा पुरुक्षो ॥२॥

अ॒ग्निः । स॒नोति॒ । वी॒र्या॑णि । वि॒द्वान् । स॒नोति॑ । वाज॑म् । अ॒मृता॑य । भूष॑न् । सः । नः॒ । दे॒वान् । आ । इ॒ह । व॒ह॒ । पु॒रु॒क्षो॒ इति॑ पुरुऽक्षो ॥ २ ॥

पदार्थः—(अग्निः) पावक इव (सनोति) विभजति (वीर्याणि) बलानि (विद्वान्) (सनोति) ददाति (वाजम्) विज्ञानम् (अमृताय) मोक्षस्याऽविनाशसुखप्राप्तये (भूषन्) (सः) (नः) अस्मान् (देवान्) (आ) समन्तात् (इह) अस्मिन्संसारे (वह) प्रापय (पुरुक्षो) पुरूणि क्षुधोऽन्नादीनि यस्य तत्संबुद्धौ । क्षुदित्यन्ननाम निघं० २ । ७ ॥ २ ॥

अन्वयः—हे पुरुक्षो यो विद्वान् भवान् यथाग्निर्वीर्य्याणि सनोति तथा सोऽमृताय नोऽस्मान्देवानिह भूषन्वाजं सनोति तानस्माना वह ॥ २ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यथा सूर्यो मूर्तान्पदार्थान्सुभूषयति तथैव विद्वांसो विद्यासुशिक्षासभ्यताभिः सर्वान्मनुष्यान् सुभूषयेयुः ॥ २ ॥

पदार्थः—हे (पुरुक्षो) अतिशय अन्न आदि से युक्त जो (विद्वान्) विद्यावान् पुरुष आप जैसे (अग्निः) अग्नि के सदृश (वीर्य्याणि) पराक्रमों का (सनोति) धारण करने वाले वैसे (सः) वह (अमृताय) नाशरहित मोक्ष सुख की प्राप्त के लिये (नः) हम (देवान्) विद्वानों को (इह) इस संसार में (भूषन्) शोभित करते हुए (वाजम्) विज्ञान को (सनोति) देता है उन प्रकाशित करने वाले पुरुष को हम लोगों के लिये (आ) (वह) अच्छे प्रकार प्राप्त करो ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे सूर्य्य आकार वाले पदार्थों को उत्तम प्रकार शोभित करता है वैसे ही विद्वान् लोग विद्या उत्तम शिक्षा और सभ्यता से सम्पूर्ण मनुष्यों को शोभित करें ॥ २ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

अ॒ग्निर्द्यावा॑पृथि॒वी वि॒श्वज॑न्ये॒ आ भा॑ति दे॒वी

अ॒मृते॒ अमू॑रः । क्षय॒न्वाजैः॑ पुरु॒श्च॒न्द्रो नमो॑भिः॥३॥

अ॒ग्निः । द्यावा॑पृथि॒वी इति॑ । वि॒श्वज॑न्ये॒ इति॑ वि॒श्वऽज॑न्ये । आ । भा॒ति॒ । दे॒वी इति॑ । अ॒मृते॒ इति॑ । अमू॑रः । क्षय॑न् । वाजैः॑ । पु॒रु॒ऽच॒न्द्रः । नमः॑ऽभिः ॥ ३ ॥

पदार्थः—(अग्निः) सूर्यो विद्युद्वा (द्यावापृथिवी) प्रकाशभूमी (विश्वजन्ये) सर्वस्य जनयित्र्यौ (आ) समन्तात् (भाति) प्रकाशयति (देवी) दिव्यगुणकर्मस्वभावयुक्ते (अमृते) कारणरूपेण नाशरहिते (अमूरः) मूढत्वादिदोषरहितः (क्षयन्)

निवासयन् (वाजैः) विज्ञानवेगादिभिः (पुरुश्चन्द्रः) पुरुर्बहुश्चन्द्र आह्लादो यस्य सः (नमोभिः) अन्नैः सह सत्कारैर्वा ॥ ३ ॥

अन्वयः—हे विद्वन्यथा पुरुश्चन्द्रो वाजैर्नमोभिः सह क्षयन्नग्निर्विश्वजन्ये देवी अमृते द्यावापृथिवी आभाति तथाऽमूरः सन् सर्वान् सज्जनान्स्वविद्याविनयाभ्यां सर्वतः प्रकाशय ॥ ३ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—ये पृथिवीवत् क्षमान्विताः सूर्यवत्सत्याऽसत्यप्रकाशका मूढान् बोधयन्तः सर्वान्मनुष्यान्धार्मिकान्कुर्वन्ति त एव सत्कर्तव्या भवन्ति ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् जन जैसे (पुरुश्चन्द्रः) बहुत आनन्दकारक (वाजैः) विज्ञान वेग आदिकों से (नमोभिः) अन्न वा सत्कारों के साथ (क्षयन्) निवास करने वाला (अग्निः) सूर्य्य वा बिजुली रूप अग्नि (विश्वजन्ये) सब के उत्पादक (देवी) उत्तम गुण कर्म स्वभावयुक्त (अमृते) कारणरूप से नाशरहित (द्यावापृथिवी) प्रकाश और भूमि को (आ) सब ओर से (भाति) प्रकाशित करता है वैसे (अमूरः) मूढता आदि दोषों से रहित हो कर सम्पूर्ण सज्जनों को अपनी विद्या और विनय से सब प्रकार प्रकाशित करो ॥ ३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो लोग पृथिवी के सदृश क्षमाशील, सूर्य्य के सदृश सत्य असत्य के प्रकाशकर्त्ता, मूढ लोगों को उपदेश दाता और सब लोगों को धार्मिक करते हैं उन लोगों का ही सत्कार करना चाहिये ॥ ३ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

अग्न इन्द्रश्च दाशुषो दुरोणे सुतावतो यज्ञमिहोप यातम् । अमर्धन्ता सोमपेयाय देवा ॥४॥

अग्ने । इन्द्रः । च । दाशुषः । दुरोणे । सुतऽवतः । यज्ञम् ।
इह । उप । यातम् । अमर्धन्ता । सोमऽपेयाय । देवा ॥४॥

पदार्थः—(अग्ने) (इन्द्रः) परमैश्वर्य्यकारको विद्युदग्निः (च) वायुः (दाशुषः) विद्यासुखस्य दातुः (दुरोणे) गृहे (सुतावतः) ऐश्वर्य्ययुक्तस्य (यज्ञम्) विद्वत्सत्कारादिमयं व्यवहारम् (इह) अस्मिन्त्संसारे (उप) (यातम्) प्राप्नुतम् (अमर्धन्ता) सर्वान् शोषयन्तौ (सोमपेयाय) ऐश्वर्यप्राप्तये (देवा) दिव्यगुणयुक्तौ ॥ ४ ॥

अन्वयः—हे अग्ने विद्वन्यथाऽमर्धन्ता देवा इन्द्रो वायुश्च सोमपेयाय सुतावतो दाशुषो दुरोणे यज्ञमिहोपयातं तथैव त्वमुप याहि अध्यापकोपदेशकौ चोपयातम् ॥ ४ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यत्र वायुविद्युद्वद्वर्त्तमानावविद्याविनाशकौ विद्याप्रकाशकौ धर्मोपदेष्टारावध्यापकोपदेशकौ स्यातां तत्र सर्वाणि सुखानि वर्धेरन् ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य विद्या से प्रकाशित विद्वान् पुरुष जैसे (अमर्धन्ता) सब को सुखाते हुये (देवा) श्रेष्ठ गुणों से युक्त पुरुष (इन्द्रः) अत्यन्त ऐश्वर्यकारक बिजुली संबन्धी अग्नि (च) और पवन तथा (सोमपेयाय) ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये (सुतावतः) ऐश्वर्य से युक्त (दाशुषः) विद्यासम्बन्धी सुख के दाता (दुरोणे) गृह में (यज्ञम्) विद्वान् सत्कार आदि स्वरूप व्यवहार को (इह) इस संसार में (उप) (यातम्) प्राप्त हों और वैसे आप भी प्राप्त होइये और अध्यापक तथा उपदेशक भी प्राप्त हों ॥ ४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०— जहां वायु और बिजुली के तुल्य वर्त्तमान अविद्या के विनाश और विद्या के प्रकाशकर्त्ता धर्म के उपदेशकर्त्ता अध्यापक और उपदेशक होवें वहां सम्पूर्ण सुख बढ़ैं ॥ ४ ॥

विद्वद्भिः परमात्मवज्जगदानन्दनीयमित्याह ॥

विद्वानों को परमात्मा के तुल्य जगत् को आनन्दित करना चाहिये इस वि०॥

अग्ने॑ अ॒पां समि॑ध्यसे दुरो॒णे नित्यः॑ सूनो सहसो जातवेदः । स॒धस्था॑नि म॒हय॑मान ऊ॒ती ॥ ५ ॥ २५॥

अग्ने॑ । अ॒पाम् । सम् । इ॒ध्य॒से॒ । दु॒रो॒णे । नित्यः॑ । सू॒नो॒ इति॑ । स॒ह॒सः॒ । जा॒त॒ऽवे॒दः॒ । स॒ध॒ऽस्था॑नि । म॒हय॑मानः । ऊ॒ती ॥ ५ ॥ २५ ॥

पदार्थः—(अग्ने) वह्निरिव वर्त्तमान (अपाम्) प्राणानां मध्ये (सम्) (इध्यसे) प्रकाश्यसे (दुरोणे) निवासस्थाने गृहे (नित्यः) स्वस्वरूपेणाऽविनाशी (सूनो) अपत्यमिव वर्त-मान अविद्याहिंसक वा (सहसः) बलवतः (जातवेदः) जात-प्रज्ञान (सधस्थानि) समानस्थानानि (महयमानः) पूज्यमानः (ऊती) ऊत्या रक्षणाद्यया क्रियया ॥ ५ ॥

अन्वयः—हे सहसस्सूनो जातवेदोऽग्ने नित्यो महयमानो यस्त्व-मूती अपां मध्ये सूर्य्य इव दुरोणे समिध्यसे तेन भवता सर्वेषां मनुष्याणां सधस्थान्यात्मानश्च विद्याधर्मविनयैः प्रकाशनीयाः ॥ ५ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यथा नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावः सच्चिदानन्दादिलक्षणः परमात्मा सर्वं जगदुत्पाद्य संरक्ष्यानन्दयति तथैवाप्तैर्विद्वद्भिस्सर्वमिदं जगदानन्दयितव्यमिति ॥ ५ ॥

अत्राग्निविद्वद्गुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिर्वेद्या ॥

इति पञ्चविंशतितमं सूक्तं स एव वर्गश्च समाप्तः ॥

पदार्थः—हे (सहसः) बलवान् के (सूनो) पुत्र के तुल्य वर्त्तमान वा अविद्या के नाशकारक (जातवेदः) सम्पूर्ण उत्पन्न पदार्थों के ज्ञाता (अग्ने) अग्नि के सदृश तेजस्वी (नित्यः) अपने स्वरूप से नाशरहित (महयमानः) पूजने अर्थात् आदर करने योग्य जो आप (ऊती) रक्षण आदि क्रिया से (अपाम्) प्राणों के मध्य में सूर्य के सदृश (दुरोणे) रहने के स्थान गृह में (सम्) (इध्यसे) प्रकाशित होते उन आप को चाहिये कि सम्पूर्ण मनुष्यों के (सधस्थानि) तुल्य स्थानों और आत्माओं को विद्या धर्म्म विनय से प्रकाशित करें ॥ ५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभावयुक्त और सच्चित् आनन्द आदि लक्षण विशिष्ट परमात्मा सम्पूर्ण जगत् को उत्पन्न और रक्षित कर आनन्दित करता है वैसे ही सत्यवक्ता विद्वान् पुरुषों को चाहिये कि सम्पूर्ण इस संसार को आनन्द युक्त करें ॥ ५ ॥

इस सूक्त में अग्नि और विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह पच्चीशवां सूक्त और पच्चीशवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

अथ नवर्चस्य षड्विंशतितमस्य सूक्तस्य १ । ६ । ८ । ९ विश्वामित्रः । ७ आत्मा ऋषिः । १ । ३ वैश्वानरः । ४ । ६ मरुतः । ७ । ८ अग्निरात्मा वा । ९ विश्वामित्रोपाध्यायो देवता । १ । २ । ३ । ४ । ५ । ६ जगती छन्दः । निषादः स्वरः । ७ । ८ । ९ त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अथाग्न्यादिना विद्वद्भिः किं साध्यमित्याह ॥

अब नव ऋचा वाले छब्बीशवें सूक्त का प्रारम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में अग्नि आदि से विद्वान् क्या सिद्ध करें इस वि० ॥

वैश्वानरं मनसाग्निं निचाय्या हविष्मन्तो अनुषत्यं स्वर्विदम्। सुदानुन्देवं रथिरं वसूयवो गीर्भी रण्वं कुशिकासो हवामहे ॥ १ ॥

वैश्वानरम्। मनसा। अग्निम्। निऽचाय्य। हविष्मन्तः। अनुऽसत्यम्। स्वःऽविदम्। सुऽदानुम्। देवम्। रथिरम्। वसुऽयवः। गीःऽभिः। रण्वम्। कुशिकासः। हवामहे ॥१॥

पदार्थः—(वैश्वानरम्) विश्वेषां नराणां प्रकाशकम् (मनसा) विज्ञानेन (अग्निम्) पावकम् (निचाय्य) निश्चयं कारयित्वा । अत्र संहितायामिति दीर्घः (हविष्मन्तः) बहूनि हवींषि दातव्यानि विद्यन्ते येषान्ते (अनुषत्यम्) सत्यस्यानुकूलम् (स्वर्विदम्) स्वः सुखं विन्दति येन तम् (सुदानुम्) शोभनानान्दातारम् (देवम्) प्रकाशकम् (रथिरम्) रथा रमणीयानि यानानि भवन्ति यस्मिँस्तम् (वसुयवः) ये वसूनि युवन्ति मिश्रयन्ति ते ।

अत्रान्येषामपीत्युकारदीर्घः (गीर्भिः) वाग्भिः (रणवम्) शब्दायमानम् (कुशिकासः) उपदेशकाः (हवामहे) गृह्णीयाम ॥१॥

अन्वयः-हे मनुष्या यथा कुशिकासो हविष्मन्तो वसुयवो वयं मनसा निचाय्य स्वर्विदं रणवं रथिरमनुषत्यं सुदानुं देवं वैश्वानरमग्निं हवामहे तथा यूयमप्येनं गीर्भिः स्वीकुरुत ॥ १ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यथा मनुष्या अग्नेर्गुणकर्मस्वभावान्निश्चित्य कार्याणि साध्नुवन्ति तथैव पृथिव्यादीनां गुणकर्मस्वभावनिश्चयोपकाराभ्यां कार्य्याणि साध्नुवन्तु ॥ १ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (कुशिकासः) उपदेशक जन (हविष्मन्तः) देने योग्य वस्तुओं से युक्त (वसुयवः) धन इकट्ठा करने में तत्पर हम लोग (मनसा) विज्ञान से (निचाय्य) निश्चय करा कर (स्वर्विदम्) धन की प्राप्ति कराने वाले (रणवम्) शब्द करते हुए (रथिरम्) सुन्दर वाहनों से युक्त (अनुषत्यम्) सत्य के अनुकूल (सुदानुम्) उत्तम पदार्थों के देने वाले (देवम्) प्रकाशकारक (वैश्वानरम्) सम्पूर्ण मनुष्यों के प्रकाश कर्ता (अग्निम्) अग्नि को (हवामहे) ग्रहण करते हैं वैसे आप लोग भी इस अग्नि का (गीर्भिः) वाणियों से स्वीकार करें ॥ १ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे मनुष्य अग्नि के गुणकर्मस्वभावों का निश्चय करके कार्य्यों को सिद्ध करते हैं वैसे ही पृथिवी आदि पदार्थों के गुणकर्मस्वभावों के निश्चय और उपकार से कार्य्यों को सिद्ध करो॥१॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि०॥

तं शुभ्रमग्निमवसे हवामहे वैश्वानरं मातरिश्वानमुक्थ्यम् । बृहस्पतिं मनुषो देवतातये विप्रं श्रोतारमतिथिं रघुष्यदम् ॥ २ ॥

तम् । शुभ्रम् । अग्निम् । अवसे । हवामहे । वैश्वानरम् । मातरिश्वानम् । उक्थ्यम् । बृहस्पतिम् । मनुषः । देवऽतातये । विप्रम् । श्रोतारम् । अतिथिम् । रघुऽस्यदम् ॥२॥

पदार्थः-(तम्) (शुभ्रम्) भास्वरम् (अग्निम्) विद्युदादिस्वरूपं वह्निम् (अवसे) रक्षणाद्याय (हवामहे) स्वीकुर्महे (वैश्वानरम्) विश्वेषु नायकेषु विराजमानम् (मातरिश्वानम्) यो मातरि वायौ श्वसिति तम् (उक्थ्यम्) प्रशंसितुं योग्यम् (बृहस्पतिम्) बृहतां पृथिव्यादीनां पालकम् (मनुषः) मननधर्माणः (देवतातये) दिव्यगुणप्राप्तये (विप्रम्) मेधाविनम् (श्रोतारम्) (अतिथिम्) पूजनीयमनित्यास्थितिं विद्वांसम् (रघुष्यदम्) यो रघु लघु स्यन्दति तम् ॥ २ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या मनुषो देवतातये रघुष्यदं विप्रं श्रोतारमतिथिमिव यमवसे मातरिश्वानमुक्थ्यं बृहस्पतिं वैश्वानरं शुभ्रमग्निं हवामहे तं यूयमपि विजानीत ॥ २ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यथा पूर्णविद्योऽतिथिः श्रोतॄन् ज्ञानसम्पन्नान्करोति तथैव वह्निः शिल्पिभ्यः पुष्कलधनानि निष्पादयति॥२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (मनुषः) मनन कर्ता (देवतातये) उत्तम गुणों की प्राप्ति के लिये (रघुष्यदम्) शीघ्रगामी (विप्रम्) बुद्धिमान् (श्रोतारम्) वेदशास्त्र आदि सुनने वाले को (अतिथिम्) अतिथि के तुल्य जिस को (अवसे) रक्षण आदि के लिये (मातरिश्वानम्) वायु में श्वासकारी (उक्थ्यम्) प्रशंसा करने योग्य (बृहस्पतिम्) पृथिवी आदि पदार्थों के धारक (वैश्वानरम्) राजा आदि में विराजमान (शुभ्रम्) प्रकाशमान (अग्निम्) बिजुली आदि स्वरूप अग्नि का (हवामहे) स्वीकार करते हैं (तम्) उस को आप लोग भी जानो ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे पूर्ण विद्वान् अतिथि जन श्रोता जनों को ज्ञान युक्त करता है उसी प्रकार अग्नि शिल्पी जनों के लिये अत्यन्त धनों को उत्पन्न करता है ॥ २ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

अश्वो न क्रन्दञ्जनिभिः समिध्यते वैश्वानरः कुशिकेभिर्युगेयुगे । स नो अग्निः सुवीर्य्यं स्वश्व्यं दधातु रत्नममृतेषु जागृविः ॥ ३ ॥

अश्वः । न । क्रन्दन् । जनिऽभिः । सम् । इध्यते । वैश्वानरः । कुशिकेभिः । युगेऽयुगे । सः । नः । अग्निः । सुऽवीर्य्यम् । सुऽअश्व्यम् । दधातु । रत्नम् । अमृतेषु । जागृविः ॥ ३ ॥

पदार्थः—(अश्वः) तुरङ्गः (न) इव (क्रन्दन्) शब्दायमानः (जनिभिः) जनयित्रीभिर्वडवाभिः (सम्) (इध्यते) प्रदीप्यते (वैश्वानरः) विश्वेषां नराणां प्रकाशकः (कुशिकेभिः) शब्दायमानैः (युगेयुगे) वर्षेवर्षे (सः) (नः) अस्मभ्यम् (अग्निः) पावकः (सुवीर्यम्) शोभनं वीर्य्यं बलं यस्मात् तत् (स्वश्व्यम्) शोभनेस्वश्वेषु साधुम् (दधातु) (रत्नम्) धनम् (अमृतेषु) हिरण्यादिषु धनेषु । अमृत इति हिरण्यनाम० निघं० १ । २ (जागृविः) जागरूकः ॥ ३ ॥

अन्वयः—हे मनुष्यो यो वैश्वानरो जागृविरग्निर्जनिभिः सह क्रन्दन्नश्वो न कुशिकेभिर्युगेयुगे समिध्यते स नः सुवीर्यं स्वश्व्य ममृतेषु रत्नं दधातु तं यूयमपि संप्रयुङ्ग्ध्वम् ॥ ३ ॥

भावार्थः—अत्रोपमावाचकलु०—यदि मनुष्यैरग्निर्यानचालनादिकार्य्येषु संप्रयुज्यते तर्ह्ययं किं किं धनादिवस्तु नोन्नयेत् ॥३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (वैश्वानरः) सम्पूर्ण मनुष्यों का प्रकाशकर्त्ता (जागृविः) जागरणशील (अग्निः) अग्नि (जनिभिः) उत्पन्न करने वाली घोड़ियों के साथ (क्रन्दन्) शब्द करते हुए (अश्वः) घोड़े के (न) तुल्य (कुशिकेभिः) शब्द करने वालों से (युगेयुगे) प्रत्येक वर्ष में (सम्) (इध्यते) प्रदीप्त होता है (सः) वह (नः) हम लोगों के लिये (सुवीर्यम्) उत्तम बल करने वाले (स्वश्व्यम्) उत्तम घोड़ों से युक्त (अमृतेषु) सुवर्ण आदि धनों में (रत्नम्) धन को (दधातु) धारण करता है उस का आप लोग भी संप्रयोग करो ॥ ३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलु०—जो मनुष्य लोग अग्नि को वाहन के चालन आदि कार्यों में संप्रयुक्त करते हैं तो यह अग्नि किस २ धन आदि वस्तु की वृद्धि न करै अर्थात् सब वस्तुओं की वृद्धि कर सकता है ॥३॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

प्र यन्तु वाजास्तविषीभिरग्नयः शुभे संमिश्लाः पृषतीरयुक्षत । बृहदुक्षो मरुतो विश्ववेदसः प्र वेपयन्ति पर्वताँ अदाभ्याः ॥ ४ ॥

प्र । यन्तु । वाजाः । तविषीभिः । अग्नयः । शुभे । सम्ऽमिश्लाः । पृषतीः । अयुक्षत । बृहत्ऽउक्षः । मरुतः । विश्वऽवेदसः । प्र । वेपयन्ति । पर्वतान् । अदाभ्याः ॥ ४ ॥

पदार्थः—(प्र) (यन्तु) गच्छन्तु (वाजाः) वेगवन्तः (तविषीभिः) बलादिभिः सह (अग्नयः) पावकाः (शुभे)

उदके । शुभमित्युदकना० निघं० १ । १२ (संमिश्लाः) संमिश्राः संयुक्ताः (पृषतीः) सेचननिमित्ता गतीः (अयुक्त) संयुङ्ग्ध्वम् (बृहदुक्षः) बृहदुक्षः सेचनं येभ्यस्ते (मरुतः) वायवः (विश्ववेदसः) यैर्विश्वं विन्दति ते (प्र) (वेपयन्ति) कंपयन्ति (पर्वतान्) शैलानिवोच्छ्रितान् मेघान् (अदाभ्याः) हिंसितुमनर्हाः ॥ ४ ॥

अन्वयः—हे वीरा यूयं तविषीभिः सह यथा वाजा अग्नयः विश्ववेदसो बृहदुक्षो मरुतश्च शुभे संमिश्लाः पृषतीः प्रयन्तु अदाभ्याः पर्वतान्प्रवेपयन्ति तथा यूयमपि सखायस्सन्तोऽरीन् कंपयत बलसैन्यादिकमयुक्त ॥ ४ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यथा जले मिलिताः पृथिव्यग्निवायवो वर्त्तन्ते तथैव ये सेनायां सखायो भूत्वा वर्त्तन्ते तेषां ध्रुवो विजयो भवति ॥४॥

पदार्थः—हे वीरो आप लोग (तविषीभिः) पराक्रम आदिकों के साथ जैसे (वाजाः) वेग वाले (अग्नयः) अग्नि (विश्ववेदसः) संपूर्ण धनों से युक्त (बृहदुक्षः) अतिशयसेचनकारक (मरुतः) वायु (शुभे) जल में (संमिश्लाः) अच्छे प्रकार मिली हुई वा सुन्दर प्रयुक्त (पृषतीः) सेचन में कारण (प्र) (यन्तु) प्राप्त होवैं और (अदाभ्याः) नहीं मारने योग्य हो कर (पर्वतान्)पर्वतों के सदृश ऊंचे मेघों को (प्र) (वेपयन्ति) कंपाते हैं वैसे आप लोग भी परस्पर मित्र हो कर शत्रुओं को कंपाओ और बल युक्त सेना का सञ्चय करो ॥ ४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे जल में मिले हुए पृथिवी अग्नि वायु वर्त्तमान हैं वैसे ही जो लोग सेना में मित्र हो कर वर्त्तमान उन का निश्चय विजय होता है ॥ ४ ॥

पुनर्वाय्वादिना किं साध्यमित्याह ॥

फिर वायु आदि से क्या सिद्ध करना चाहिये इस वि० ॥

अ॒ग्निश्रि॑यो म॒रुतो॑ वि॒श्वकृ॑ष्टय॒ आ त्वे॒षमु॒ग्रमव॑ ईमहे व॒यम् । ते स्वा॒निनो॑ रु॒द्रिया॑ व॒र्षनि॑र्णिजः सिं॒हा न हे॒षक्र॑तवः सु॒दान॑वः ॥ ५ ॥ २६ ॥

अ॒ग्नि॒ऽश्रि॒यः । म॒रुतः॑ । वि॒श्वऽकृ॑ष्टयः । आ । त्वे॒षम् । उ॒ग्रम् । अवः॑ । ई॒म॒हे॒ । व॒यम् । ते । स्वा॒निनः॑ । रु॒द्रियाः॑ । व॒र्षऽनि॑र्निजः । सिं॒हाः । न । हे॒षऽक्र॑तवः । सु॒ऽदान॑वः ॥५॥२६॥

पदार्थः—(अग्निश्रियः) अग्निना श्रीः शोभा धनं येषां ते (मरुतः) वायवः (विश्वकृष्टयः) विश्वा कृष्टिर्येभ्यस्ते (आ) (त्वेषम्) प्रकाशम् (उग्रम्) कठिनम् (अवः) रक्षणादिकम् (ईमहे) याचामहे (वयम्) (ते) (स्वानिनः) बहवः स्वानाः शब्दा विद्यन्ते येभ्यस्ते (रुद्रियाः) रुद्रेऽग्नौ भवाः (वर्षनिर्णिजः) वर्षस्य वृष्टेः शोधकाः पोषका वा (सिंहाः) व्याघ्राः (न) इव (हेषक्रतवः) हेषाः शब्दाः क्रतवः प्रज्ञाः क्रिया वा येषान्ते (सुदानवः) सुष्ठुदानं येभ्यस्ते ॥ ५ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यथा वयं ये विश्वकृष्टयोऽग्निश्रियः स्वानिनो मरुत रुद्रिया वर्षनिर्णिजो सिंहा न शब्दायन्ते यान् हेषक्रतवः सुदानवो वयमेमहे ते समन्ताद्याचनीयास्तेभ्यो वयमुग्रं त्वेषमुग्रमव ईमहे॥५॥

भावार्थः—अत्रोपमालं०—मनुष्यैर्विद्वत्सङ्गेन धीमद्भिर्भूत्वा वाय्वादिपदार्थविद्या याचनीया सिंह इव पराक्रमश्च धरणीयः ॥ ५ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (वयम्) हम लोग जो (विश्वकृष्टयः) सम्पूर्ण सृष्टि के उत्पन्न कर्त्ता (अग्निश्रियः) अग्नि से धनयुक्त (स्वानिनः) अतिशय शब्दों से विशिष्ट (रुद्रियाः) अग्नि में उत्पन्न होने वाले (वर्षनिर्णिजः) वृष्टि के पवित्र करने वा पुष्ट करने वाले (मरुतः) वायुदल (सिंहाः) व्याघ्रों के (न) सदृश शब्द करते जिन को (हेषक्रतवः) शब्दरूप बुद्धि वा क्रिया वाले (सुदानवः) उत्तम दानकारक हम लोग (आ, ईमहे) अच्छे प्रकार याचना करते हैं (ते) वे सब प्रकार मांगने योग्य हैं उन से हम लोग (उग्रम्) कठिन(त्वेषम्) प्रकाश और कठिन (अवः) रक्षण आदि की याचना करते हैं ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—मनुष्यों को चाहिये कि विद्वान् लोगों के सङ्ग से बुद्धिमान् होकर वायु आदि की सम्बन्धिनी पदार्थविद्या की प्रार्थना करें और सिंह के समान पराक्रम को धारण करें ॥ ५ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

व्रातंव्रातं गणंगणं सुशस्तिभिरग्नेर्भामं मरुतामोजं ईमहे। पृषदश्वासो अनवभ्रराधसो गन्तारो यज्ञं विदथेषु धीराः ॥ ६ ॥

व्रातम्ऽव्रातम् । गणम्ऽगणम् । सुशस्तिऽभिः । अग्नेः । भामम् । मरुताम् । ओजः । ईमहे । पृषत्ऽअश्वासः । अनवभ्रऽराधसः । गन्तारः । यज्ञम् । विदथेषु । धीराः ॥ ६ ॥

पदार्थः—(व्रातंव्रातम्) वर्त्तमानं वर्त्तमानम् (गणंगणम्) समूहं समूहम् (सुशस्तिभिः) शोभनाभिः स्तुतिभिः (अग्नेः) पावकात् (भामम्) तेजः (मरुताम्) वायूनां सकाशात् (ओजः) बलम् (ईमहे) (पृषदश्वासः) पृषतः सेचका

अश्वा वेगादयो गुणा येषु ते (अनवभ्रराधसः) अनवभ्रमविनाशि राधो येषांस्ते (गन्तारः) (यज्ञम्) सङ्गतिकरणम् (विदथेषु) विज्ञानादिषु (धीराः) ध्यानवन्तः ॥ ६ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या पृषदश्वासोऽनवभ्रराधसो गन्तारो वायव इव सुशस्तिभिः सह वर्त्तमाना धीरा विद्वांसो विदथेषु यज्ञमग्नेर्भामं मरुतां सकाशादोजोऽन्येषां पदार्थानां व्रातंव्रातं गणंगणं याचन्ते तथैव वयमेतत्सर्वमीमहे ॥ ६ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—ये मनुष्या अग्निवाय्वादिपदार्थेभ्यः कार्य्यसमूहं साध्नुवन्ति ते विद्वांसः सन्ति ॥ ६ ॥

पदार्थ:—हे मनुष्यो (पृषदश्वासः) सेचनकर्त्ता और वेग आदि गुण युक्त (अनवभ्रराधसः) अविनाशी धनों के दाता (गन्तारः) प्राप्त होने वाले पवनों के तुल्य (सुशस्तिभिः) सुन्दरस्तुतियों के साथ वर्त्तमान (धीराः) ध्यान वाले विद्वान् पुरुष (विदथेषु) विज्ञान आदिकों में (यज्ञम्) मेल करने और (अग्नेः) अग्नि से उत्पन्न (भामम्) तेज को (मरुताम्) पवनों के समीप से (ओजः) बल और अन्य पदार्थों के (व्रातंव्रातम्) वर्त्तमान वर्त्तमान (गणंगणम्) समूह समूह की याचना करते हैं वैसे ही हम लोग इस सब की (ईमहे) याचना करते हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ:—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो मनुष्य अग्नि वायु आदि पदार्थों से कार्य्यों के समूह को साधते हैं वे विद्वान् कहाते हैं ॥ ६ ॥

पुनर्विद्युद्वन्मनुष्यैर्वर्त्तितव्यमित्युपदिश्यते ॥

फिर मनुष्यों को बिजुली के तुल्य वर्त्तना चाहिये इस वि० ॥

अग्निरस्मि जन्मना जातवेदा घृतं मे चक्षुरमृतं म आसन् । अर्कस्त्रिधातू रजसो विमानोऽजस्रो घर्मो हविरस्मि नाम ॥ ७ ॥

अ॒ग्निः। अ॒स्मि॒। जन्म॑ना। जा॒तऽवे॑दाः। घृ॒तम्। मे॒। चक्षुः॑। अ॒मृत॑म्। मे॒। आ॒सन्। अ॒र्कः। त्रि॒ऽधातुः॑। रज॑सः। वि॒ऽमानः॑। अज॑स्रः। घ॒र्मः। ह॒विः। अ॒स्मि॒। नाम॑॥७॥

पदार्थः—(अग्निः) पावक इव (अस्मि)(जन्मना) (जातवेदाः) जातवित्तः (घृतम्) प्रदीप्तम् (मे) मम (चक्षुः) चष्टे नेनेक्ति नेत्रेन्द्रियम् (अमृतम्) अमृतात्मकरसम् (मे) मम (आसन्) आस्ये (अर्कः) वज्रो विद्युद्वा। अर्क इति वज्रना० निघं० २। २० (त्रिधातुः) त्रयो धातवो यस्मिन्सः (रजसः) लोकसमूहस्य (विमानः) विविधं मानं यस्य सः (अजस्रः) निरन्तरं गन्ता (घर्मः) प्रदीप्तो दिवसकरः (हविः) (अस्मि) (नाम) प्रसिद्धौ ॥ ७ ॥

अन्वयः-हे मनुष्या यथाग्निरिव जन्मना जातवेदा अहमस्मि मे चक्षुर्घृतं प्रदीप्तं म आसन्नमृतं भवेत्। यथा रजसो विमानो त्रिधातुरर्कोऽजस्रो घर्मो हविरस्ति तथा नामाहमस्मि ॥ ७ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—मनुष्यैर्विद्युद्वत्कार्य्यसिद्धिधारणं रोगविनाशकाऽऽहारकरणं शत्रुनिवारणं च कर्त्तव्यं येन विद्युत्फलमाप्नुयात् ॥ ७ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (अग्निः) अग्नि के सदृश (जन्मना) जन्म से (जातवेदाः) ज्ञान युक्त मैं (अस्मि) वर्त्तमान हूं (मे) मेरा (चक्षुः) नेत्र इन्द्रिय (घृतम्) प्रकाशमान (मे) मेरे (आसन्) मुख में (अमृतम्) अमृत स्वरूप रस हो जैसे (रजसः) लोक समूह का (विमानः) अनेक प्रकार के मान सहित (त्रिधातुः) तीन धातुओं से युक्त (अर्कः) वज्र वा

बिजुली (अजस्रः) निरन्तर चलने वाला (घर्मः) प्रदीप्त सूर्य्य (हविः) हवन सामग्री है वैसे ही (नाम) प्रसिद्ध मैं (अस्मि) हूं ॥ ७ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—मनुष्यों को चाहिये कि बिजुली के सदृश कार्य्य सिद्धि का धारण रोग का नाशकारक भोजन करना और शत्रुओं का निवारण करैं तो बिजुली का फल प्राप्त होवै ॥ ७ ॥

अथ के शुद्धा जना इत्याह ॥

अब शुद्ध मनुष्य कौन हैं इस वि० ॥

त्रिभिः पवित्रैरपुपोद्ध्य१र्कं हृदा मतिं ज्योति-रनु प्रजानन् । वर्षिष्ठं रत्नमकृत स्वधाभिरादिद् द्यावापृथिवी पर्य्यपश्यत् ॥ ८ ॥

त्रिऽभिः । पवित्रैः । अपुपोत् । हि । अर्कम् । हृदा । मतिम् । ज्योतिः । अनु । प्रऽजानन् । वर्षिष्ठम् । रत्नम् । अकृत । स्वधाभिः । आत् । इत् । द्यावापृथिवी इति । परि । अपश्यत् ॥ ८ ॥

पदार्थः—(त्रिभिः) शरीरवाङ्मनोभिः (पवित्रैः) (अपुपोत्) पवित्रं कुर्य्यात् (हि) (अर्कम्) सुसंस्कृतमन्नम् । अर्क इत्यन्नना० निघं० । २ । ७ (हृदा) हृदयेन (मतिम्) प्रज्ञाम् (ज्योतिः) प्रकाशम् (अनु) (प्रजानन्) प्रकर्षेण बुद्ध्यमानः (वर्षिष्ठम्) अतिशयेन वृद्धम् (रत्नम्) रमणीयं धनम् (अकृत) कुर्य्यात् (स्वधाभिः) अन्नादिभिः (आत्) (इत्) एव (द्यावापृथिवी) प्रकाशान्तरिक्षे (परि) सर्वतः (अपश्यत्) पश्येत् ॥ ८ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यस्त्रिभिः पवित्रैर्हृदा अर्कमपुपोद्धि ज्योतिर्मतिमनु प्रजानन्स्वधाभिर्वर्षिष्ठं रत्नमकृत स आदिद् द्यावापृथिवी पर्य्यपश्यत् तमेव यूयं सेवध्वम् ॥ ८ ॥

भावार्थः—त एव शुद्धा मनुष्या ये पवित्रां प्रज्ञां प्राप्यान्यान् मनुष्यान् विद्याविनयाभ्यां सन्तोष्य श्रियायुन्नतिं संसाध्नुयुः ॥ ८ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (त्रिभिः) शरीर वाणी और मन से (पवित्रैः) पवित्र करने में कारण तेजों और (हृदा) हृदय से (अर्कम्) उत्तम प्रकार संस्कार किये अन्न को (अपुपोत्) पवित्र करे (हि) जिस से (ज्योतिः) प्रकाश तथा (मतिम्) बुद्धि को (अनु) (प्रजानन्) अनुकूल जानता हुआ (स्वधाभिः) अन्न आदिकों से (वर्षिष्ठम्) अतिशय वृद्धियुक्त (रत्नम्) सुन्दर धन को (अकृत) करे वह (आत्) (इत्) अनन्तर ही (द्यावापृथिवी) प्रकाश और अन्तरिक्ष को (परि) सब प्रकार (अपश्यत्) देखै ॥८॥

भावार्थः—वे ही शुद्ध मनुष्य हैं जो कि उत्तम बुद्धि को प्राप्त होकर अन्य मनुष्यों को विद्या और विनयों से सन्तुष्ट करके लक्ष्मी आदि की उन्नति सिद्ध करें ॥ ८ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

शतधा॑रमुत्समक्षी॑यमाणं विप॒श्चितं॑ पि॒तरं॒ वक्त्वा॑नाम्। मेळिं॒ मद॑न्तं पि॒त्रोरु॒पस्थे॒ तं रो॑दसी पिपृतं स॒त्यवा॑चम् ॥ ९ ॥ २७ ॥

श॒तऽधा॑रम्। उत्स॑म्। अक्षी॑यमाणम्। वि॒पः॒ऽचितं॑म्। पि॒तर॑म्। वक्त्वा॑नाम्। मे॒ळिम्। मद॑न्तम्। पि॒त्रोः। उ॒पऽस्थे॑। तम्। रो॒द॒सी॒ इति॑। पि॒पृ॒तम्। स॒त्यऽवा॑चम् ॥ ९ ॥ २७ ॥

पदार्थः—(शतधारम्) शतधा धारा सुशिक्षिता वाग् यस्य तम् (उत्सम्) कूपमिव (अक्षीयमाणम्) विद्याविज्ञानागाधमक्षीणविद्यम् (विपश्चितम्) विद्वांसम् (पितरम्) पितृवद्वर्त्तमानम् (वक्त्वानाम्) वक्तुं समुचितानां वाक्यानाम् (मेळिम्) सुशिक्षितां वाचम् (मदन्तम्) स्तुवन्तम् (पित्रोः) जनकजनन्योः (उपस्थे) समीपे (तम्) (रोदसी) भूमिसूर्य्यौ (पिपृतम्) पालयतः । अत्र पुरुषव्यत्ययः (सत्यवाचम्) सत्या वाग् यस्य तम् ॥ ९ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या उत्समिवाक्षीयमाणं शतधारं पितरं वक्त्वानां वक्तारं मेळिं मदन्तं सत्यवाचं विपश्चितं यं पित्रोरुपस्थे रोदसी पिपृतं पालयतस्तं सेवध्वम् ॥ ९ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—योऽपरिमितविद्यो गम्भीरप्रज्ञः पृथिवीवत् क्षमावानादित्यवच्छुद्धान्तःकरणो विद्वान्नृषु पितृवद्वर्त्तेत तमेव सर्वे स्वात्मवत्सेवन्ताम् ॥ ९ ॥

अत्र विद्वदग्निवायुगुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिर्वेद्या ॥ ९ ॥

इति षड्विंशतितमं सूक्तं सप्तविंशो वर्गश्च समाप्तः ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (उत्सम्) कूप के सदृश (अक्षीयमाणम्) विद्या के विज्ञान से थाहरहित पूर्ण विद्यायुक्त (शतधारम्) सैकड़ों प्रकार की उत्तम शिक्षा सहित वाणी वाले (पितरम्) पिता के तुल्य वर्त्तमान (वक्त्वानाम्) कहने को इकट्ठे किये गये वाक्यों के वक्ता (मेळिम्) उत्तम प्रकार शिक्षित वाणी और (मदन्तम्) स्तुतिकारक (सत्यवाचम्) सत्य वाणी युक्त जिस (विपश्चितम्) विद्वान् पुरुष को (पित्रोः) पिता माता के (उपस्थे) समीप में (रोदसी) भूमि सूर्य्य (पिपृतम्) पालते हैं उस ही की सब लोग अपने आत्मा के तुल्य सेवा करो ॥ ९ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो पूर्ण विद्वान् अतिसूक्ष्म बुद्धि युक्त पृथिवी के सदृश क्षमाशील सूर्य्य के सदृश अन्तःकरण से शुद्ध विद्वान् मनुष्यों में पिता के सदृश वर्त्ताव रक्खे उसी की सब लोग अपने आत्मा के तुल्य सेवा करें ॥ ९ ॥

इस सूक्त में विद्वान् अग्नि और वायु के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त में कहे अर्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह छब्बीसवां सूक्त और सत्ताईशवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चदशर्चस्य सप्तविंशतितमस्य सूक्तस्य विश्वामित्र ऋषिः । १ ऋतवोऽग्निर्वा । २ । १५ अग्निर्देवता । १ । ७ । ८ । ९ । १० । १४ । १५ । निचृद्गायत्री । २ । ३ । ६ । ११ । १२ गायत्री । ४ । ५ । १३ विराट् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अथ विद्वद्भिः किं कार्यमित्याह ॥

अब पन्द्रह ऋचा वाले सत्ताईशवें सूक्त का प्रारम्भ है उस के प्रथम मन्त्र से विद्वानों को क्या करना चाहिये इस वि० ॥

प्र वो॒ वाजा॑ अ॒भिद्य॑वो ह॒विष्म॑न्तो घृ॒ताच्या॑ ।
दे॒वाञ्जि॑गाति सुम्न॒युः ॥ १ ॥

प्र । वः॒ । वाजाः॑ । अ॒भिऽद्य॑वः । ह॒विष्म॑न्तः । घृ॒ताच्या॑ ।
दे॒वान् । जि॒गा॒ति॒ । सु॒म्न॒ऽयुः ॥ १ ॥

पदार्थः—(प्र) (वः) युष्माकम् (वाजाः) विज्ञानादयः पदार्थाः (अभिद्यवः) अभितः प्रकाशमानाः (हविष्मन्तः) बहूनि हवींषि देयानि वस्तूनि विद्यन्ते येषु ते (घृताच्या) या घृतमुदकमञ्चति प्राप्नोति तया रात्र्या (देवान्) (जिगाति) स्तौति (सुम्नयुः) य आत्मनः सुम्नं सुखमिच्छुः ॥ १ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या ये वोऽभिद्यवो हविष्मन्तो वाजा घृताच्या सह वर्त्तन्ते तैर्युक्तो यः सुम्नयुर्देवान् प्रजिगाति तांस्तं च यूयं प्राप्नुत ॥ १ ॥

भावार्थः—यथा दिवसे पदार्थाः शुष्का भवन्ति तथैव रात्रावार्द्रा जायन्ते तथैव ये स्वकीयाः पदार्थास्तेऽन्येषां येऽन्येषां ते स्वकीयाः सन्तीति सुखेच्छया विद्वत्सङ्गः कर्त्तव्यः ॥ १ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (वः) आप लोगों के (अभिद्यवः) चारों ओर से प्रकाशमान (हविष्मन्तः) बहुतसी देने योग्य वस्तुओं से युक्त (वाजाः) विज्ञान आदि पदार्थ (घृताच्या) जल को प्राप्त होने वाली रात्रि के सहित वर्त्तमान हैं उन से युक्त जो (सुम्नयुः) अपने सुख का अभिलाषी (देवान्) विद्वानों की (प्र,जिगाति) उत्तम प्रकार स्तुति करता है उन विद्वानों और स्तुतिकारक उस पुरुष को आप लोग प्राप्त होओ ॥ १ ॥

भावार्थः—जैसे दिन में पदार्थ सूखते और रात्रि में गीले होते हैं उसी प्रकार जो अपने पदार्थ हैं वे औरों के और जो औरों के हैं वे अपने हैं इस प्रकार सुख की इच्छा से विद्वानों का संग करना चाहिये ॥ १ ॥

पुनरग्निना किं सिध्यतीत्याह ॥

फिर अग्नि से क्या सिद्ध होता है इस वि० ॥

ईळे अग्निं विपश्चितं गिरा यज्ञस्य साधनम् ।
श्रुष्टीवानं धितावानम् ॥ २ ॥

ईळे । अग्निम् । विपःऽचितम् । गिरा । यज्ञस्य । साधनम् । श्रुष्टीऽवानम् । धितऽवानम् ॥ २ ॥

पदार्थः—(ईळे) स्तौमि (अग्निम्) पावकमिव वर्त्तमानम् (विपश्चितम्) पण्डितम् (गिरा) वाण्या (यज्ञस्य) (साधनम्) सिद्धिकरम् (श्रुष्टीवानम्) आशुगन्तारं गमयितारं वा (धितावानम्) पदार्थानां धारकम् ॥ २ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यथाऽहं गिरा यज्ञस्य साधनं श्रुष्टीवानं धितावानमग्निमिव विपश्चितमीळे तथा भवन्तः स्तुवन्तु ॥ २ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यथा सङ्गतस्य व्यवहारस्य सिद्धयेऽग्निर्मुख्योऽस्ति तथैव धर्मार्थकामविद्याप्राप्तये विद्वान् प्रधानोऽस्तीति मन्तव्यम् ॥ २ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे मैं (गिरा) वाणी से (यज्ञस्य) अहिंसारूप यज्ञ की (साधनम्) सिद्धि करने (श्रुष्टीवानम्) शीघ्र चलने वा चलाने वाले (धितावानम्) पदार्थों के धारण कर्त्ता (अग्निम्) अग्नि के सदृश तेजस्वी (विपश्चितम्) पण्डित विद्वान् की (ईळे) स्तुति करता हूं वैसे आप लोग भी स्तुति करें ॥ २ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे किसी पदार्थ के जोड़ने आदि व्यवहार की सिद्धि के लिये अग्नि मुख्योपकारी है वैसे ही धर्म अर्थ काम और विद्या की प्राप्ति के लिये विद्वान् जन मुख्य है ऐसा जानना चाहिये ॥ २ ॥

विदुषां सङ्गः कर्त्तव्य इत्याह ॥

विद्वानों का संग सब को करना चाहिये इस वि० ॥

अग्ने शकेम ते वयं यमं देवस्य वाजिनः । अति द्वेषांसि तरेम ॥ ३ ॥

अग्ने। शकेम। ते। वयम्। यमम्। देवस्य। वाजिनः। अति। द्वेषांसि। तरेम॥ ३॥

पदार्थः—(अग्ने) पावकवत्पवित्रपुरुषार्थिन् (शकेम) शक्नुयाम। अत्र विकरणव्यत्ययेन शः (ते) तव (वयम्) (यमम्) सुनियमम् (देवस्य) विदुषः (वाजिनः) विज्ञानवतः (अति) उल्लङ्घने (द्वेषांसि) द्वेषयुक्तानि कर्म्माणि (तरेम) पारं गच्छेम॥३॥

अन्वयः—हे अग्ने त्वं यथा वयं वाजिनो देवस्य ते यमं प्राप्तुं शकेम द्वेषांस्यतितरेम तथा विधेहि॥ ३॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—जिज्ञासुभिर्विद्वांस एवं प्रार्थनीया यथा वयं सुनियमान्प्राप्य द्वेषादीनि दुर्व्यसनान्युल्लङ्घयेम तथाऽस्माकमुपरि कृपा विधेया॥ ३॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के सदृश पवित्र पुरुषार्थी पुरुष आप जैसे (वयम्) हम लोग (वाजिनः) विज्ञान युक्त (देवस्य) विद्वान् (ते) आप के (यमम्) उत्तम नियम को प्राप्त होने के लिये (शकेम) समर्थ हों और (द्वेषांसि) द्वेषयुक्त कर्मों के (अति) (तरेम) पार पहुंचें ऐसा यत्न करो॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—मोक्ष आदि की जिज्ञासाकारक पुरुषों को चाहिये कि विद्वान् पुरुषों की ऐसे प्रार्थना करें कि जिस प्रकार हम लोग उत्तम नियमों को प्राप्त हो कर द्वेष आदि दुष्ट व्यसनों के पार जांय ऐसी हम लोगों के ऊपर कृपा करिये॥ ३॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी वि०॥

समिध्यमानो अध्वरे३ऽग्निः पावक ईड्यः। शोचिष्केशस्तमीमहे॥ ४॥

सम्ऽइ॒ध्यमा॑नः । अ॒ध्व॒रे । अ॒ग्निः । पा॒व॒कः । ईड्यः॑ ।
शो॒चिःऽकै॑शः । तम् । ई॒म॒हे॒ ॥ ४ ॥

पदार्थः—(समिध्यमानः) सम्यक्प्रदीप्यमानः (अध्वरे) अहिंसामये यज्ञे (अग्निः) विद्युदिव (पावकः) पवित्रकर्त्ता (ईड्यः) स्तोतुमर्हः (शोचिष्केशः) शोचींषि तेजांसि केशा इव यस्य सः (तम्) (ईमहे) याचामहे ॥ ४ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या योऽध्वरे समिध्यमानः शोचिष्केशः पावकोऽग्निरिवेड्यो भवेत्तं वयमीमहे यूयमप्येतं सेवध्वम् ॥ ४ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यथाऽस्मिन् जगत्यग्निरेव सर्वेभ्यो महानस्त्येतद्विद्या याचनीयास्ति तथैव विद्वांसः सर्वेषु महान्तश्चैतद्विद्याप्राप्तये याचनीयाः सन्ति ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (अध्वरे) अहिंसा रूप यज्ञ में (समिध्यमानः) उत्तम रीति से प्रकाशमान (शोचिष्केशः) केशों के सदृश तेजों से युक्त (पावकः) पवित्र करने वाला (अग्निः) बिजुली के सदृश (ईड्यः) स्तुति करने योग्य होवे (तम्) उस की हम लोग (ईमहे) याचना करते हैं आप लोग भी इस का सेवन करिये ॥ ४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे इस संसार में अग्निरूप पदार्थ ही सम्पूर्ण पदार्थों से श्रेष्ठ है इस लिये इस अग्नि विषयिणी विद्या की प्रार्थना करनी योग्य है वैसे ही विद्वान् लोग सम्पूर्ण मनुष्यों में श्रेष्ठ और उन की विद्या प्राप्ति के लिये प्रार्थना करनी चाहिये ॥ ४ ॥

विद्वांसोऽग्निवत्कार्याणि साध्नुवन्तीत्याह ॥

विद्वान् लोग अग्नि के तुल्य कार्यसाधक होते हैं इस वि० ॥

पृ॒थुपा॑जा॒ अम॑र्त्यो घृ॒तनि॑र्णि॒क्स्वाहु॑तः । अ॒ग्नि-
र्य॒ज्ञस्य॑ हव्य॒वाट् ॥ ५ ॥ २८ ॥

पृथुऽपाजाः। अमर्त्यः। घृतऽनिर्णिक्। सुऽआहुतः।
अग्निः। यज्ञस्य। हव्यऽवाट्॥ ५॥ २८॥

पदार्थः—(पृथुपाजाः) पृथु विस्तीर्णं पाजो बलं यस्य सः (अमर्त्यः) स्वस्वरूपेण नित्यः (घृतनिर्णिक्) आज्योदकयोः शोधकः (स्वाहुतः) सुष्ठुमानेन कृताऽऽह्वानः (अग्निः) वह्निरिव (यज्ञस्य) राजपालनादिव्यवहारस्य (हव्यवाट्) यो हव्यानि प्राप्तव्यानि वस्तूनि वहति प्रापयति सः॥ ५॥

अन्वयः—हे मनुष्या यूयं यः पृथुपाजा अमर्त्यो यज्ञस्य हव्यवाड् घृतनिर्णिगग्निरिव स्वाहुतो भवेत्तं विद्वांसं सततं सेवध्वम्॥५॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यथा साधनोपसाधनैरुपचरितोऽग्निः कार्य्याणि साध्नोति तथैव सेवया सन्तोषिता विद्वांसो विद्यादिसिद्धिं सम्पादयन्ति॥ ५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो आप लोग जो (पृथुपाजाः) विस्तार सहित बलयुक्त (अमर्त्यः) अपने स्वरूप से नाशरहित (यज्ञस्य) राज्यपालन आदि व्यवहार के (हव्यवाट्) प्राप्त होने योग्य वस्तुओं को धारण करने वाले (घृतनिर्णिक्) जल और घी के शोधने वाले (अग्निः) अग्नि के सदृश (स्वाहुतः) अच्छे प्रकार आदर पूर्वक पुकारे गये उस विद्वान् पुरुष की निरन्तर सेवा करो॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे साधन और उपसाधनों से उपकार में लाया गया अग्नि कार्य्यों को सिद्ध करता है वैसे ही सेवा से संतुष्टता को प्राप्त किये विद्वान् लोग विद्या आदि की सिद्धि को सम्पादन करते हैं॥५॥

पुनर्मनुष्याः किं कुर्युरित्याह॥
फिर मनुष्य क्या करें इस वि०॥

तं सबाधो यतस्रुच इत्था धिया यज्ञवन्तः।
आ चक्रुरग्निमूतये॥ ६॥

तम् । सऽबाधः । यतऽस्रुचः । इत्था । धिया । यज्ञऽवन्तः । आ । चक्रुः । अग्निम् । ऊतये ॥ ६ ॥

पदार्थः-(तम्) (सबाधः) दुर्व्यसनानां बाधेन सह ये वर्त्तन्ते (यतस्रुचः) यता उद्यताः स्रुचः कर्मसाधनानि यैस्ते (इत्था) अनेन प्रकारेण (धिया) प्रज्ञया कर्मणा वा (यज्ञवन्तः) प्रशस्ता यज्ञाः प्रयत्ना येषान्ते (आ) (चक्रुः) कुर्युः (अग्निम्) पावकमिव विद्वांसम् (ऊतये) रक्षणाद्याय ॥ ६ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यथा सबाधो यतस्रुचो यज्ञवन्तो जना धियोतयेऽग्निमिव विद्वांसमाचक्रुस्तमित्था यूयं सेवध्वम् ॥ ६ ॥

भावार्थः-हे मनुष्या यथा प्रज्ञाकर्मकुशला सद्व्यवहारान्साध्नुवन्ति तथैव जिज्ञासवो विद्वांसं प्रसाद्य शुभान् गुणान् प्राप्नुवन्तु॥६॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (सबाधः) दुष्ट व्यसनों के नाश कर्त्ता (यतस्रुचः) उद्योग युक्त कर्म साधनों के सहित (यज्ञवन्तः) प्रशंसा करने योग्य प्रयत्न करने वाले जन (धिया) बुद्धि वा कर्म से (ऊतये) रक्षण आदि के लिये (अग्निम्) अग्नि के सदृश तेजस्वी विद्वान् पुरुष को (आ) (चक्रुः) आदर करते हैं वैसे (तम्) उस विद्वान् पुरुष की (इत्था) इसी प्रकार आप लोग भी सेवा करें ॥६॥

भावार्थः—हे मनुष्यो जैसे बुद्धि और कर्म में चतुर पुरुष उत्तम व्यवहारों को सिद्ध करते हैं वैसे ही धर्म आदि को जानने की इच्छा युक्त पुरुष विद्वान् जन को प्रसन्न करके उत्तम गुणों को ग्रहण करें ॥ ६ ॥

पुनर्विद्यार्थिनः किं कुर्युरित्याह ॥

फिर विद्यार्थी क्या करें इस वि० ॥

होता देवो अमर्त्यः पुरस्तादेति मायया । विदथानि प्रचोदयन् ॥ ७ ॥

होता । देवः । अमर्त्यः । पुरस्तात् । एति । मायया ।
विदथानि । प्रऽचोदयन् ॥ ७ ॥

पदार्थः—(होता) दाता (देवः) दिव्यगुणकर्मस्वभावः (अमर्त्यः) मरणधर्मरहितः (पुरस्तात्) प्रथमतः (एति) गच्छति (मायया) प्रज्ञया (विदथानि) विज्ञानानि (प्रचोदयन्) प्रज्ञापयन् ॥ ७ ॥

अन्वयः—हे जिज्ञासवो यथाऽमर्त्यो होता देवः पुरस्तान्मायया सह विदथानि प्रचोदयन् युष्मानेति तथैतं यूयमपि प्राप्नुत ॥ ७ ॥

भावार्थः—हे विद्यार्थिनो योऽध्यापको युष्मभ्यं निष्कपटतया विद्यादिशुभगुणान् प्रदाय सुशिक्षयेत्तं यूयमप्यात्मवत्सेवध्वम् ॥ ७ ॥

पदार्थः—हे धर्मआदि को जानने की इच्छा करने वाले पुरुषो जैसे (अमर्त्यः) मरणधर्म से रहित (होता) देने वाला (देवः) उत्तम गुण कर्म स्वभाव युक्त पुरुष (पुरस्तात्) पहिले से (मायया) उत्तम बुद्धि के साथ (विदथानि) विज्ञानों का (प्रचोदयन्) प्रचार करता हुआ आप लोगों को (एति) प्राप्त होता है वैसे उस को आप लोग भी प्राप्त होइये ॥ ७ ॥

भावार्थः—हे विद्यार्थी जनो जो अध्यापक पुरुष आप लोगों के लिये कपट त्याग के विद्या आदि उत्तम गुणों को देकर उत्तम शिक्षा देवै उस की आप लोग भी अपने आत्मा के तुल्य सेवा करो ॥ ७ ॥

पुनर्विद्वदितरे किं कुर्युरित्याह ॥
फिर विद्वानों से भिन्न जन क्या करें इस वि० ॥

वाजी वाजेषु धीयतेऽध्वरेषु प्र णीयते । विप्रो यज्ञस्य साधनः ॥ ८ ॥

वाजी । वाजेषु । धीयते । अध्वरेषु । प्र । नीयते ।
विप्रः । यज्ञस्य । साधनः ॥ ८ ॥

पदार्थः—(वाजी) वेगवान् वह्निः (वाजेषु) विज्ञानक्रियामयेषु (धीयते) ध्रियते (अध्वरेषु) मित्रत्वादिगुणयुक्तव्यवहारेषु विधियज्ञेषु वा (प्र) (नीयते) प्राप्यते (विप्रः) मेधावी (यज्ञस्य) सद्व्यवहारस्य (साधनः) यः साध्नोति सः ॥ ८ ॥

अन्वयः—हे जिज्ञासवो यथर्त्विग्भिर्वाजेष्वध्वरेषु यज्ञस्य साधनो वाजी वेगयुक्तोऽग्निर्धीयते तथा विप्रः प्रणीयते ॥ ८ ॥

भावार्थः—हे मनुष्या यथाऽग्निहोत्रादिक्रियामयेषु यज्ञेषु प्राधान्येनाऽग्निराश्रीयते तथैव विद्याविनयसुशिक्षाव्यवहारेषु विद्वानाश्रयितव्यः ॥ ८ ॥

पदार्थः—हे धर्म आदि की जिज्ञासा करने वाले पुरुषो जैसे ऋत्विजों से (वाजेषु) विज्ञान और क्रिया स्वरूप (अध्वरेषु) मित्रता आदि गुण युक्त व्यवहारों वा यज्ञों में (यज्ञस्य) उत्तम व्यहार का (साधनः) सिद्धि कर्त्ता (वाजी) वेगयुक्त अग्नि (धीयते) धारण किया जाता है वैसे (विप्रः) बुद्धिमान् (प्र) (नीयते) प्राप्त किया जाता है ॥ ८ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो जैसे अग्निहोत्र आदि क्रिया स्वरूप यज्ञों में मुख्यभाव से अग्नि का आश्रय किया जाता है वैसे ही विद्या विनय और उत्तम शिक्षा के व्यवहारों में विद्वान् का आश्रय करना चाहिये ॥ ८ ॥

पुनर्विद्वांसः किं कुर्युरित्याह ॥

फिर विद्वान् लोग क्या करें इस वि० ॥

धिया चक्रे वरेण्यो भूतानां गर्भमा दधे । दक्षस्य पितरं तना ॥ ९ ॥

धिया । चक्रे । वरेण्यः । भूतानाम् । गर्भम् । आ । दधे । दक्षस्य । पितरम् । तना ॥ ९ ॥

पदार्थः—(धिया) श्रेष्ठया प्रज्ञया शिक्षया वा (चक्रे) कुर्य्यात् (वरेण्यः) वरितुमर्होऽतिश्रेष्ठः (भूतानाम्) प्राणिनाम् (गर्भम्) विद्यादिसद्गुणस्थापनाख्यम् (आ) समन्तात् (दधे) दधेत (दक्षस्य) चतुरस्य विद्यार्थिनः (पितरम्) पितृवत्पालकम् (तना) विस्तृतया ॥ ९ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यो वरेण्यस्तना धिया दक्षस्य पितरं भूतानां गर्भमादधे विद्यावृद्धिं चक्रे तमात्मवत्सेवध्वम् ॥ ९ ॥

भावार्थः—यथा पतिः पत्न्यां गर्भं धारयित्वोत्तमान्यपत्यान्युत्पादयति तथैव विद्वांसो मनुष्याणां बुद्धौ विद्यागर्भं स्थापयित्वोत्तमान् व्यवहारान् जनयेयुः ॥ ९ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (वरेण्यः) आदर करने योग्य अति श्रेष्ठ पुरुष (तना) विस्तारयुक्त (धिया) श्रेष्ठ बुद्धि वा शिक्षा से (दक्षस्य) चतुर विद्यार्थी पुरुष के (पितरम्) पिता के सदृश पालनकर्त्ता (भूतानाम्) प्राणियों के (गर्भम्) विद्या आदि उत्तम गुणों की स्थिति करने रूप गर्भ को (आ) (दधे) सब प्रकार धारण करै और विद्या संबन्धी वृद्धि को (चक्रे) करै तो उस की अपने आत्मा के सदृश सेवा करो ॥ ९ ॥

भावार्थः—जैसे पति अपनी स्त्री में गर्भ को धारण कर के श्रेष्ठ सन्तानों को उत्पन्न करता है वैसे ही विद्वान् लोग मनुष्यों की बुद्धि में विद्या सम्बन्धी गर्भ की स्थिति करके उत्तम व्यवहारों को उत्पन्न करैं ॥ ९ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

नि त्वां दधे वरेण्यं दक्षस्येळा सहस्कृत ।

अग्ने सुदीतिमुशिजम् ॥ १० ॥

नि। त्वा। दधे। वरेण्यम्। दक्षस्य। इळा। सहःऽकृत। अग्ने। सुऽदीतिम्। उशिजम्॥ १०॥

पदार्थः—(नि) निश्चये (त्वा) त्वाम् (दधे) दधेय (वरेण्यम्) स्वीकर्त्तुं योग्यम् (दक्षस्य) बलस्य (इळा) प्रशंसितेनोपदेशेन सुसंस्कृतेनाऽन्नादिना वा (सहस्कृत) सहो बलं कृतं येन तत्सम्बुद्धौ (अग्ने) पावक इव वर्त्तमान (सुदीतिम्) सुष्ठुविज्ञानप्रकाशयुक्तम् (उशिजम्) सद्गुणप्रचारं कामयमानम्॥ १०॥

अन्वयः—हे सहस्कृताऽग्ने यथाऽहमिळा दक्षस्य वरेण्यं सुदीतिमुशिजं त्वा निदधे तथैव त्वं मां विद्यानिधिं सम्पादय॥ १०॥

भावार्थः—यथा विद्यार्थिनोऽध्यापकानामिच्छानुकूलानि कर्माणि कृत्वा प्रसन्नान्रक्षन्ति तथैवाऽध्यापका विद्यार्थिनामिच्छानुकूलाञ्छुभान्गुणान्दत्वा प्रसादयन्तु॥ १०॥

पदार्थः—हे (सहस्कृत) बलकारक (अग्ने) अग्नि के सदृश तेज युक्त पुरुष जैसे मैं (इळा) उत्तम उपदेश वा उत्तम प्रकार संस्कार युक्त अन्न आदि से (दक्षस्य) पराक्रम के (वरेण्यम्) स्वीकार करने योग्य (सुदीतिम्) उत्तम विज्ञान के प्रकाश से युक्त (उशिजम्) उत्तम गुणों के प्रचार की कामना करने वाले (त्वा) आप को (नि) निश्चय से (दधे) धारण करूं वैसे ही आप मुझ को विद्या का पात्र करो॥ १०॥

भावार्थः—जैसे विद्यार्थी जन अध्यापक लोगों की इच्छा के अनुसार कर्म्मों को कर प्रसन्न रखते हैं वैसे ही अध्यापक लोग विद्यार्थियों की इच्छा के अनुकूल उत्तम गुणों को देकर प्रसन्न करें॥ १०॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

अ॒ग्निं य॒न्तुरं॑म॒प्तुरं॑मृ॒तस्य॒ योगे॑ व॒नुषः॑ । विप्रा॑ वाजैः॒ समि॑न्धते ॥ ११ ॥

अ॒ग्निम् । य॒न्तुर॑म् । अ॒प्ऽतुर॑म् । ऋ॒तस्य॑ । योगे॑ । व॒नुषः॑ । विप्राः॑ । वाजैः॑ । सम् । इ॒न्ध॒ते॒ ॥ ११ ॥

पदार्थः—(अग्निम्) पावकमिव वर्त्तमानम् (यन्तुरम्) यन्तारम् । अत्र यमधातोर्बाहुलकात्तुरः प्रत्ययः (अप्तुरम्) योऽपः प्राणान् जलानि वा तारयति प्रेरयति तम् (ऋतस्य) सत्यस्य (योगे) (वनुषः) याचकाः (विप्राः) मेधाविनः (वाजैः) विज्ञानादिभिः (सम्) (इन्धते) सम्यक् प्रदीपयेयुः ॥ ११ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यथा वनुषो विप्रा ऋतस्य योगे वाजैर्यन्तुरमप्तुरमग्निं समिन्धते तथैव सर्वैर्विद्याः प्रकाशनीयाः ॥ ११ ॥

भावार्थः—यदा विदुषां सङ्गो भवेत्तदा सुविज्ञानस्यैव प्रश्नसमाधानाभ्यां याचना कार्य्या अस्मात्परो लाभोऽन्यो नैव मन्तव्यः ॥ ११ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (वनुषः) याचना करने वाले (विप्राः) बुद्धिमान् जन (ऋतस्य) सत्य के (योगे) योग में (वाजैः) विज्ञान आदिकों से (यन्तुरम्) प्राप्तिकारक (अप्तुरम्) प्राण वा जलों की प्रेरणा कर्त्ता (अग्निम्) अग्नि के सदृश तेजस्वी को (सम्) (इन्धते) उत्तम प्रकार प्रदीप्त करैं वैसे ही सम्पूर्ण जनों से विद्या प्रकाश करने योग्य हैं ॥ ११ ॥

भावार्थः—जिस समय विद्वान् पुरुषों का सङ्ग होवै उस समय उत्तम विज्ञान ही की प्रश्न उत्तरों से याचना करनी चाहिये इस से अधिक लाभ, और न समझना चाहिये ॥ ११ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

ऊर्जो नपा॑तमध्व॒रे दी॑दि॒वांस॒मुप॒ द्यवि॑ । अ॒ग्नि-
मी॑ळे क॒विक्र॑तुम् ॥ १२ ॥

ऊ॒र्जः । नपा॑तम् । अ॒ध्व॒रे । दी॒दि॒ऽवांस॑म् । उप॑ । द्यवि॑ ।
अ॒ग्निम् । ई॒ळे॒ । क॒विऽक्र॑तुम् ॥ १२ ॥

पदार्थः—(ऊर्जः) बलात् (नपातम्) विनाशरहितम् (अध्वरे) सङ्गते संसारे (दीदिवांसम्) प्रदीप्यमानम् (उप) (द्यवि) प्रकाशे (अग्निम्) वह्निवद् वर्त्तमानम् (ईळे) स्तौमि (कविक्रतुम्) कवीनां विदुषां क्रतुः प्रज्ञा कर्म वा क्रतुवत् यस्य सः तम् ॥१२॥

अन्वयः—हे मनुष्या यं द्य्व्यध्वरेऽग्निमिव वर्त्तमानमूर्जो नपातं कविक्रतुं दीदिवांसं विद्वांसमुपेळे तथैतं यूयमपि प्रशंसत ॥ १२॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यथा यज्ञेऽग्निः प्रकाशमानो विराजते तथैव विद्याप्रकाशके व्यवहारे विद्वांसः प्रकाशन्ते ॥ १२ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जिस को (द्यवि) प्रकाश तथा (अध्वरे) मेल को प्राप्त संसार में (अग्निम्) अग्नि के सदृश तेज युक्त (ऊर्जः) बल से (नपातम्) विनाशरहित (कविक्रतुम्) विद्वानों की बुद्धि वा कर्म को यत्न समझने वाला (दीदिवांसम्) प्रकाशमान विद्वान् पुरुष के (उप) समीप (ईळे) स्तुति करता हूं वैसे इस की आप लोग भी प्रशंसा करो ॥ १२ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे यज्ञ में अग्नि प्रकाशमान होकर शोभित होता है वैसे ही विद्या के प्रकाश कर्त्ता व्यवहार में विद्वान् जन प्रकाशित होते हैं ॥ १२ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

ईळेन्यो नमस्यस्तिरस्तमांसि दर्शतः । सम- ग्निरिध्यते वृषा ॥ १३ ॥

ईळेन्यः । नमस्यः । तिरः । तमांसि । दर्शतः । सम् । अग्निः । इध्यते । वृषा ॥ १३ ॥

पदार्थः—(ईळेन्यः) ईळितुं स्तोतुमर्हः (नमस्यः) सत्कर्त्तुं योग्यः (तिरः) तिरस्कुर्वन् (तमांसि) रात्रीः (दर्शतः) द्रष्टुं योग्यः (सम्) सम्यक् (अग्निः) अग्निरिव प्रकाशमानः (इध्यते) प्रदीप्यते (वृषा) वर्षकः ॥ १३ ॥

अन्वयः—हे मनुष्यास्तमांसि तिरः तिरस्कुर्वन्नग्निरिव वृषा दर्शत ईळेन्यो नमस्यः समिध्यते तं यूयं सततं भजत ॥ १३ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यथा सूर्य्यस्तमो निहत्य प्रकाशं जनयति तथैवाप्ता विद्वांसोऽविद्यां हत्वा विद्यां प्रकाशयन्ति ॥ १३ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (तमांसि) रात्रियों के (तिरः) तिरस्कार करने वाले (अग्निः) अग्नि के सदृश प्रकाशमान (वृषा) वृष्टि कर्त्ता (दर्शतः) देखने (ईडेन्यः) स्तुति करने और (नमस्यः) सत्कार करने योग्य पुरुष (सम्) उत्तम प्रकार (इध्यते) प्रकाशित किया जाता है उस का आप निरन्तर आदर करो ॥ १३ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जैसे सूर्य्य अन्धकार को दूर कर प्रकाश उत्पन्न करता है वैसे ही यथार्थ वक्ता विद्वान् लोग अविद्या का नाश और विद्या का प्रकाश करते हैं ॥ १३ ॥

पुनर्मनुष्याः किं कुर्युरित्याह ॥
फिर मनुष्य क्या करें इस वि० ॥

वृषो अग्निः समिध्यतेऽश्वो न देववाहनः। तं हविष्मन्त ईळते ॥ १४ ॥

वृषोऽइति। अग्निः। सम्। इध्यते। अश्वः। न। देवऽवाहनः। तम्। हविष्मन्तः। ईळते ॥ १४ ॥

पदार्थः—(वृषः) वर्षकः (अग्निः) पावकः (सम्, इध्यते) सम्यक् प्रकाश्यते (अश्वः) आशुगामी तुरङ्गः (न) इव (देववाहनः) यो देवान् दिव्यान् वेगादिगुणान् वाहयति प्रापयति सः (तम्) (हविष्मन्तः) बहूनि हवींष्यादानानि येषान्ते (ईळते) स्तुवन्ति ॥ १४ ॥

अन्वयः—यो वृषो देववाहनोऽग्निरश्वो न समिध्यते तं हविष्मन्त ईळते ॥ १४ ॥

भावार्थः—हे मनुष्या यथा बलिष्ठा वेगवन्तोऽश्वा यानं सद्यो गमयन्ति तथैवाऽग्निरस्तीति वेद्यम्। यथाऽस्य गुणान् विद्वांसो जानन्ति तथैव यूयमपि जानीत ॥ १४ ॥

पदार्थः—जो (वृषः) वृष्टिकर्त्ता (देववाहनः) उत्तम वेग आदि गुणों को प्राप्त कराने वाला (अग्निः) अग्नि (अश्वः) शीघ्र चलनेवाले घोड़े के (न) सदृश (सम्) (इध्यते) प्रकाशित किया जाता है (तम्) उस की (हविष्मन्तः) बहुत शीघ्र ग्रहण करने योग्य वस्तुओं से युक्त पुरुष (ईळते) स्तुति करते हैं ॥ १४ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो जैसे बल, और वेग से युक्त घोड़े वाहन को शीघ्र ले चलते हैं वैसे ही अग्नि को भी समझना चाहिये और जैसे इस अग्नि के गुणों को विद्वान् लोग जानते हैं वैसे आप लोग भी जानिये ॥ १४ ॥

पुनरध्ययनाऽध्यापनविषयमाह ॥

फिर पढ़ने पढ़ाने के वि० ॥

वृषणं त्वा वयं वृषन्वृषणः समिधीमहि । अग्ने दीद्यतं बृहत् ॥ १५ ॥ ३० ॥

वृषणम् । त्वा । वयम् । वृषन् । वृषणः । सम् । इधीमहि । अग्ने । दीद्यतम् । बृहत् ॥ १५ ॥ ३० ॥

पदार्थः—(वृषणम्) सुखवर्षयितारम् (त्वा) त्वाम् (वयम्) (वृषन्) बलिष्ठ (वृषणः) बलिष्ठान् (सम्) सम्यक् (इधीमहि) प्रकाशयेम (अग्ने) वह्निवत्प्रकाशक (दीद्यतम्) प्रकाशकं विज्ञानम् (बृहत्) महत् ॥ १५ ॥

अन्वयः—हे वृषन्नग्ने यथा त्वं बृहद्दीद्यतं प्रकाशयसि तथैव वयं वृषणं त्वाऽन्यान् वृषणश्च समिधीमहि ॥ १५ ॥

भावार्थः—हे अध्यापकाऽध्येतारो भवद्भिर्विरोधं विहाय प्रीतिं जनयित्वा परस्परेषामुन्नतिर्विधेया यतो विद्यादिसद्गुणप्रकाशेन सर्वे मनुष्या बलिष्ठा न्यायकारिणश्च स्युरिति ॥ १५ ॥

अत्र वह्निविद्वद्गुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिर्वेद्या ॥ १५ ॥

इति सप्तविंशतितमं सूक्तं त्रिंशो वर्गश्च समाप्तः ॥

पदार्थः—हे (वृषन्) बलयुक्त (अग्ने) अग्नि के सदृश प्रकाशकर्त्ता जन जैसे आप (बृहत्) बड़े (दीद्यतम्) प्रकाशकर्त्ता विज्ञान को प्रकाशित करते हैं वैसे ही (वयम्) हम लोग (वृषणम्) सुखवृष्टिकारक (त्वा) आप और अन्य जनों को (वृषणः) बलयुक्त (सम्) उत्तम प्रकार (इधीमहि) प्रकाशित करें ॥ १५ ॥

भावार्थः—हे पढ़ाने और पढ़ने वाले पुरुषो आप लोगों को चाहिये कि विरोध को त्याग और प्रीति को उत्पन्न करके परस्पर की वृद्धि करो जिस से विद्या आदि उत्तम गुणों के प्रकाश से सम्पूर्ण मनुष्य बलयुक्त और न्यायकारी होवैं ॥ १५ ॥

इस सूक्त में अग्नि और विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त में कहे अर्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह सत्ताईशवां सूक्त और तीशवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

अथषड्‌चस्याष्टविंशतितमस्य सूक्तस्य विश्वामित्र ऋषिः । अग्निर्देवता । १ गायत्री । २ । ६ निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः । ३ स्वराडुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः । ४ त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ५ निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अथाग्निविद्वद्विषयमाह ॥

अब छः ऋचा वाले अट्ठाईशवें सूक्त का प्रारम्भ है उस के प्रथम मन्त्र से अग्नि और विद्वानों का वर्णन करते हैं ॥

अग्ने जुषस्व नो हविः पुरोळाशं जातवेदः । प्रातःसावे धियावसो ॥ १ ॥

अग्ने । जुषस्व । नः । हविः । पुरोळाशम् । जातऽवेदः । प्रातःऽसावे । धियावसो इति धियाऽवसो ॥ १ ॥

पदार्थः—(अग्ने) वह्निरिव वर्त्तमान (जुषस्व) सेवस्व (नः) अस्माकम् (हविः) अत्तुम् योग्यम् (पुरोडाशम्) संस्कृतान्नविशेषम्

(जातवेदः) जातप्रज्ञान (प्रातःसावे) प्रातःसवने (धियावसो) यो धिया प्रज्ञया सुकर्मणा वा वासयति तत्सम्बुद्धौ ॥ १ ॥

अन्वयः—हे धियावसो जातवेदोऽग्ने यथाऽग्निः प्रातःसावे नो हविः पुरोडाशं सेवते तथैव तत् त्वं जुषस्व ॥ १ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—हे मनुष्या यथा प्रातरग्निहोत्रादिषु वेद्यां निहितोऽग्निर्घृतादिकं संसेव्यान्तरिक्षे प्रसार्य सुखयति तथैव ब्रह्मचर्ये प्रवृत्ता विद्यार्थिनो विद्याविनयौ सङ्गृह्य जगति प्रसार्य सर्वान् सुखयेयुः ॥ १ ॥

पदार्थः—हे (धियावसो) उत्तम बुद्धि वा उत्तम गुणों के प्रचारकर्त्ता (जातवेदः) सकल उत्पन्न पदार्थों के ज्ञाता (अग्ने) अग्नि के सदृश तेजस्वी पुरुष जैसे अग्नि (प्रातःसावे) प्रातःकाल के अग्निहोत्र आदि कर्म में (नः) हमारे (हविः) भक्षण करने योग्य (पुरोडाशम्) मन्त्रों से संस्कारयुक्त अन्न विशेष का सेवन करते हैं वैसे इस का आप (जुषस्व) सेवन करो ॥ १ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो जैसे प्रातःकाल अग्निहोत्र आदि कर्मों में वेदी में स्थापित किया गया अग्नि घृत आदि का सेवन तथा उस को अन्तरिक्ष में फैलाय के जनों को सुख देता है वैसे ही ब्रह्मचर्य्यधर्म्म में वर्त्तमान विद्यार्थी जन विद्या और विनय का ग्रहण कर संसार में उन का प्रचार करके सकल जनों को सुख देवें ॥ १ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

पुरोळा अंग्ने पचतस्तुभ्यं वा घा परिष्कृतः । तं जुंषस्व यविष्ठ्य ॥ २ ॥

पुरोळाः । अग्ने । पचतः । तुभ्यम् । वा । घ । परिऽकृतः । तम् । जुषस्व । यविष्ठ्य ॥ २ ॥

पदार्थः—(पुरोळाः) यो विधिना संस्कृतः (अग्ने) पावकवद्वर्त्तमान (पचतः) पाकं कुर्वन्। अत्र पच धातोरौणादिकोऽतच्प्रत्ययः (तुभ्यम्) (वा) पक्षान्तरे (घ) एव। अत्र निपातस्य चेति दीर्घः (परिष्कृतः) सर्वतः शुद्धः संपादितः (तम्) (जुषस्व) (यविष्ठ्य) यविष्ठ्येष्वतिशयेन युवसु कुशलस्तत्सम्बुद्धौ ॥ २ ॥

अन्वयः—हे यविष्ठ्याग्नेऽग्निरिव यस्तुभ्यं पुरोडाः पचतो वा परिष्कृतोऽस्ति तं घ जुषस्व ॥ २ ॥

भावार्थः—यथा भोजनप्रियः स्वार्थानि सुसंस्कृतान्यन्नादीनि निष्पाद्य भुक्त्वाऽऽनन्दी जायते तथैव सुसंस्कृतानि हवींषि प्राप्याऽग्निः सर्वानानन्दयति ॥ २ ॥

पदार्थः—हे (यविष्ठ्य) अतिशय युवा पुरुषों में चतुर (अग्ने) अग्नि के सदृश तेजस्वी जन जो (तुभ्यम्) आप के लिये (पुरोळाः) वेद विधि से संस्कारयुक्त (पचतः) पाककर्त्ता हुआ (वा) अथवा (परिष्कृतः) सब प्रकार शुद्ध किया गया है (तम्) उस की (घ) ही (जुषस्व) सेवा करो ॥ २ ॥

भावार्थः—जैसे भोजन में प्रीतिकर्त्ता पुरुष अपने लिये उत्तम प्रकार संस्कारयुक्त अन्न आदि पदार्थों को सिद्ध और उन का भोजन करके आनन्दयुक्त होता है वैसे ही उत्तम प्रकार संस्कारयुक्त हवन की सामग्री को प्राप्त होकर अग्नि सम्पूर्ण जनों को आनन्द देता है ॥ २ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

अग्ने वीहि पुरोळाशमाहुतं तिरोअह्न्यम् ।
सहसः सूनुरस्यध्वरे हितः ॥ ३ ॥

अग्ने । वीहि । पुरोळाशम् । आऽहुतम् । तिरःऽअह्न्यम् ।
सहसः । सूनुः । असि । अध्वरे । हितः ॥ ३ ॥

पदार्थः—(अग्ने) पावक इव वर्त्तमान (वीहि) प्राप्नुहि (पुरोडाशम्) अनेकविधसंस्कारैर्निष्पादितम् (आहुतम्) समन्तात्प्रदत्तम् (तिरोअह्न्यम्) तिरश्चीनेऽह्नि भवं साधु वा (सहसः) बलस्य बलवतो वायोर्वा (सूनुः) अपत्यमिव (असि) (अध्वरे) दयामये व्यवहारे (हितः) हितकारी ॥ ३ ॥

अन्वयः—हे अग्ने त्वं पावक इव तिरोअह्न्यमाहुतं पुरोडासं वीहि यतस्त्वं सहसः सूनुरिवाऽध्वरे सर्वेषां हितोऽसि तस्मात्सत्कर्त्तव्याऽसि ॥ ३ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यथाऽग्निर्वायोर्जातः सन् मूर्त्तं द्रव्यं दग्ध्वा विभजति तथैव विद्यापवित्रोऽविद्याव्यवहारं दग्ध्वा सत्याऽसत्यं विभजति ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के सदृश तेजस्वी पुरुष आप अग्नि के तुल्य (तिरोअह्न्यम्) दिन के प्रथम भाग में उत्पन्न वा उत्तम (आहुतम्) चारों ओर से दिये गये (पुरोडाशम्) अनेक प्रकारों के संस्कारों से युक्त अन्न को (वीहि) प्राप्त होइये जिस से आप (सहसः) बल वा बलवान् वायु के (सूनुः) पुत्र के तुल्य (अध्वरे) दयारूप व्यवहार में सब के (हितः) हितकारी (असि) वर्त्तमान हैं इस कारण से सत्कार करने योग्य हैं ॥ ३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे अग्नि वायु से उत्पन्न हो कर स्वरूपवान् द्रव्य को भस्म करके विभाग करता है वैसे ही विद्या से पवित्रात्मा पुरुष अविद्या के व्यवहार को भस्म अर्थात् दूर करके सत्य और असत्य का विभाग करता है ॥ ३ ॥

अथ के सुखिनो भवन्तीत्याह ॥

अब कौन मनुष्य सुखी होते हैं इस वि० ॥

माध्यंन्दिने सवंने जातवेदः पुरोडाशंमिह कंवे जुषस्व । अग्ने यह्वस्य तवं भागधेयं न प्र मिनन्ति विदथेषु धीराः ॥ ४ ॥

माध्यंन्दिने । सवंने । जातऽवेदः । पुरोडाशंम् । इह । कवे । जुषस्व । अग्ने । यह्वस्यं । तवं । भागऽधेयंम् । न । प्र । मिनन्ति । विदथेषु । धीराः ॥ ४ ॥

पदार्थः—(माध्यन्दिने) मध्यादिनसम्बन्धिनि (सवने) होमादिकर्मणि (जातवेदः) उत्पन्नविज्ञान (पुरोडाशम्) सुसंस्कृतमन्नादिकम् (इह) अस्मिन्संसारे (कवे) प्राप्तप्रज्ञ (जुषस्व) (अग्ने) पावक इव वर्त्तमान (यह्वस्य) महतः। यह्व इति महन्ना० निघं० ३ । ३ (तव) (भागधेयम्) भाग्यम् (न) निषेधे (प्र) (मिनन्ति) प्रहिंसन्ति (विदथेषु) विज्ञानेषु सङ्ग्रामेषु वा (धीराः) योगिनः ॥ ४ ॥

अन्वयः—हे जातवेदः कवेऽग्ने त्वमिह ये धीरा यह्वस्य तव विदथेषु भागधेयं न प्रमिनन्ति तच्छित्तया सहितस्सन्माध्यन्दिने सवनेऽग्निरिव पुरोडाशं जुषस्व ॥ ४ ॥

भावार्थः—ये मनुष्याः प्रातर्मध्याह्नसवने कृत्वा सुसंस्कृतान्नं मितं भुञ्जते त एव भाग्यशालिनः सन्तो महत्सुखं निश्चितं विजयं च प्राप्नुवन्ति ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे (जातवेदः) विज्ञान से युक्त (कवे) उत्तम बुद्धिमान् (अग्ने) अग्नि के सदृश तेजयुक्त आप (इह) इस संसार में जो (धीराः) योगी जन (यह्वस्य) श्रेष्ठ (तव) आप के (विदथेषु) विज्ञान वा संग्रामों में (भागधेयम्) भाग्य को (न) नहीं (प्र) (मिनन्ति) नाश करते हैं उस शिक्षा से सहित हो कर (माध्यन्दिने) दिन के मध्य समय के (सवने) होम आदि कर्म में अग्नि के सदृश (पुरोडाशम्) उत्तम प्रकार संस्कारयुक्त अन्न आदि का (जुषस्व) सेवन करो ॥ ४ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य प्रातःकाल तथा दिन के मध्यभाग समय के होमों को करके उत्तम प्रकार छौंकने आदि से संस्कारयुक्त नित्य नियमित अन्न का भोजन करते हैं वे ही भाग्यशाली होकर बड़े सुख और निश्चित विजय को प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

अग्ने॑ तृ॒तीये॒ सव॑ने॒ हि कानि॑षः पु॒रो॒डाशं॑ सहसः सू॒नवाहु॑तम् । अथा॑ दे॒वेष्व॑ध्व॒रं विप॒न्यया॒ धा रत्न॑वन्तम॒मृते॑षु जागृ॑विम् ॥ ५ ॥

अग्ने॑ । तृ॒तीये॑ । सव॑ने । हि । कानि॑षः । पु॒रो॒डाश॑म् । स॒ह॒सः॒ । सू॒नो॒ इति॑ । आऽहु॑तम् । अथ॑ । दे॒वेषु॑ । अ॒ध्व॒रम् । वि॒प॒न्यया॑ । धाः॒ । रत्न॑ऽवन्तम् । अ॒मृते॑षु । जागृ॑विम् ॥५॥

पदार्थः—(अग्ने) विद्युदिव बलिष्ठ (तृतीये) (सवने) (हि) यतः (कानिषः) कमनीयस्य (पुरोडाशम्) रोगनिवारकमन्नम् (सहसः) बलवतः (सूनो) अपत्य (आहुतम्) समन्तात्स्वीकृतम् (अथ) । अत्र निपातस्य चेति दीर्घः (देवेषु) विद्वत्सु

दिव्यगुणेषु वा (अध्वरम्) अहिंसादिलक्षणं धर्म्यं व्यवहारम् (विपन्यया) विशेषेण स्तुतया प्रशंसितया प्रज्ञया क्रियया वा (धाः) धेहि (रत्नवन्तम्) वहूनि रत्नानि विद्यन्ते यस्मिँस्तम् (अमृतेषु) नाशरहितेषु जगदीश्वरादिषु पदार्थेषु (जागृविम्) जागरूकम् ॥५॥

अन्वयः—हे कानिष सहसः सूनोऽग्ने त्वं हि विपन्यया तृतीये सवनेऽथ देवेष्वमृतेषु जागृविं रत्नवन्तमाहुतमध्वरं पुरोडाशं च धाः॥५॥

भावार्थः—ये परमेश्वरादीनां पदार्थानां विज्ञानेनाहिंसादिलक्षणे व्यवहारे वर्त्तित्वा युक्ताहारविहाराः सन्त ऐश्वर्य्यमुन्निनीषन्ति ते सर्वतः सुखिनो जायन्ते ॥ ५ ॥

पदार्थः—हे (कानिष:) कामना करने योग्य (सहसः) बलयुक्त के (सूनो) पुत्र (अग्ने) बिजुली के सदृश बलयुक्त आप (हि) जैसे (विपन्यया) विशेष करके स्तुतियुक्त प्रशंसा सहित बुद्धि वा क्रिया से (तृतीये) तीसरे समय के (सवने) होम आदि कर्म में (अथ) और (देवेषु) विद्वान् वा उत्तम गुणों में (अमृतेषु) नाशरहित जगदीश्वर आदि पदार्थों में (जागृविम्) जागने वाले (रत्नवन्तम्) बहुत रत्नों से विशिष्ट (आहुतम्) सब प्रकार स्वीकार किये गये (अध्वरम्) अहिंसा आदि स्वरूप धर्मयुक्त व्यवहार और (पुरोडाशम्) रोग के दूर करने वाले अन्न को (धाः) धारण करो ॥५॥

भावार्थः—जो लोग परमेश्वर आदि पदार्थों के विज्ञान से अहिंसा आदि व्यवहार में वर्त्तमान नियम पूर्वक भोजन विहारयुक्त हो कर ऐश्वर्य की वृद्धि करने की इच्छा करते हैं वे सब प्रकार सुखी होते हैं ॥ ५ ॥

पुनर्विद्वांसः कथं वर्त्तन्त इत्याह ।

फिर विद्वान् लोग कैसा वर्त्ताव करते इस वि० ॥

अग्ने॑ वृधा॒न आहु॑तिं पुरो॒ळाशं॑ जातवेदः । जु॒षस्व॑ ति॒रोअ॑ह्न्यम् ॥ ६ ॥ ३१ ॥

अग्ने॑ । वृ॒धा॒नः । आऽहु॑तिम् । पु॒रो॒डाश॑म् । जा॒त॒ऽवे॒दः॒ ।
जु॒षस्व॑ । ति॒रःऽअ॑ह्न्यम् ॥ ६ ॥ ३१ ॥

पदार्थः-(अग्ने) पावक इव वर्त्तमान (वृधानः) वर्धमानः (आहुतिम्) (पुरोडाशम्) सुसंस्कृतमन्नादिकम् (जातवेदः) जातेषु विद्यमान (जुषस्व) (तिरोअह्न्यम्) तिरःस्वहस्सु साधुम् ॥६॥

अन्वयः—हे जातवेदोऽग्ने यथा वृधानोऽग्निराहुतिं तिरोअह्न्यं पुरोडाशं सेवते तथैतं त्वं जुषस्व ॥ ६ ॥

भावार्थः—यथा विद्युत्सर्वत्राऽभिव्याप्य सर्वान् मूर्तान् पदार्थान् सेवते प्रसिद्धा सती वर्धते तथैव विद्यासु व्यापका विद्वांसो धर्मं सेवमाना वर्धन्त इति ॥ ६ ॥

अत्राग्निविद्वद्गुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिर्वेद्या ॥

इत्येकोनत्रिंशत्तमं सूक्तमेकाधिकत्रिंशो वर्गश्च समाप्तः ॥

पदार्थः—हे (जातवेदः) संपूर्ण उत्पन्न हुए पदार्थों में व्यापक (अग्ने) अग्नि के सदृश तेजस्वी जैसे (वृधानः) बढ़ा हुआ अग्नि (आहुतिम्) चारों ओर अग्नि में छोड़े गये (तिरोअह्न्यम्) प्रातःकाल किये गये (पुरोडाशम्) उत्तम प्रकार संस्कारयुक्त अन्न आदि का सेवन करते हैं वैसे उस की आप (जुषस्व) सेवा करो ॥ ६ ॥

भावार्थः—जैसे बिजुली सब स्थानों में व्याप्त हो कर सम्पूर्ण मूर्तिमान् पदार्थों का सेवन करती है वा प्रसिद्ध हुई बढ़ती है वैसे ही विद्याओं में व्यापक विद्वान् जन धर्म की सेवा करते हुए वृद्धि को प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥

इस सूक्त में अग्नि और विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह अट्ठाईशवां सूक्त और इक्तीशवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

अथैकोनत्रिंशत्तमस्य षोडशर्चस्य सूक्तस्य विश्वामित्र ऋषिः ।
१–४ । ६–१६ अग्निः । ५ ऋत्विज अग्निर्वा देवता । १
निचृदनुष्टुप् । ४ विराडनुष्टुप् । १० । १२ भुरिगनुष्टुप्
छन्दः । गान्धारः स्वरः । २ भुरिक् पङ्क्तिः । १३
स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ३ ।
५ । ६ त्रिष्टुप् । ७ । ८ । ९ । १६
निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ।
११ । १५ जगती छन्दः ।
निषादः स्वरः ॥

अथ विद्युदग्निवायुभ्यां विद्वांसः किं किं साधयन्तीत्याह ॥

अब तृतीय मण्डल में सोलहऋचा वाले उनतीशवें सूक्त का प्रारम्भ है उस के प्रथम मंत्र से विद्युत् अग्नि और वायु से विद्वान् लोग किस २ कार्य को सिद्ध करते हैं इस वि० ॥

अस्तीदमधिमन्थनमस्ति प्रजननं कृतम् । एतां विश्पत्नीमा भराग्निं मन्थाम पूर्वथा ॥ १ ॥

अस्ति । इदम् । अधिऽमन्थनम् । अस्ति । प्रऽजननम् । कृतम् । एताम् । विश्पत्नीम् । आ । भर । अग्निम् । मन्थाम । पूर्वऽथा ॥ १ ॥

पदार्थः—(अस्ति) (इदम्) (अधिमन्थनम्) उपरिस्थं मन्थनम् (अस्ति) (प्रजननम्) प्रकटनम् (कृतम्) (एताम्) (विश्पत्नीम्) प्रजायाः पालिकाम् (आ) (भर) समन्ताद्धर (अग्निम्) (मन्थाम) (पूर्वथा) पूर्वैरिव ॥ १ ॥

अन्वयः—हे विद्वन् यदीदमधिमन्थनमस्ति यच्च प्रजननं कृतमस्ति ताभ्यामेतां विश्पत्नीं वयं पूर्वथाऽग्निं मन्थामेवाऽऽभर ॥ १ ॥

भावार्थः—ये मनुष्या उपर्य्यधस्थाभ्यां मन्थनाभ्यां सङ्घर्षणेन विद्युतमग्निं जनयेयुस्ते प्रजापालिकां शक्तिं लभन्ते यथा पूर्वैः शिल्पिभिः क्रिययाऽग्न्यादिविद्या संपादिता भवेत्तेनैव प्रकारेण सर्व इमां सङ्गृह्णीयुः ॥ १ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् पुरुष जो (इदम्) यह (अधिमन्थनम्) ऊपर के भाग में वर्त्तमान मथने का वस्तु (अस्ति) विद्यमान है और जो (प्रजननम्) प्रकट होना (कृतम्) किया (अस्ति) है उन दोनों से (एताम्) इस (विश्पत्नीम्) प्रजा जनों के पालन करने वाली को हम लोग (पूर्वथा) प्राचीन जनों के तुल्य (अग्निम्) विद्युत् को (मन्थाम) मन्थन करैं और (आ) (भर) सब ओर से आप लोग ग्रहण करो ॥ १ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य ऊपर और नीचे के भाग में स्थित मथने की वस्तुओं के द्वारा घिसने से बिजुलीरूप अग्नि को उत्पन्न करैं वे प्रजाओं के पालन करने वाले सामर्थ्य को प्राप्त होते हैं और जैसे पूर्व काल के कारीगरों ने शिल्पक्रिया से अग्निआदि सम्बन्धिनी विद्या की सिद्धि कियी हो उस हीं प्रकार से सम्पूर्ण जन इस अग्निविद्या को ग्रहण करैं ॥ १ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

अरण्योर्निहितो जातवेदा गर्भइव सुधितो गर्भिणीषु । दिवेदिव ईड्यो जागृवद्भिर्हविष्मद्भिर्मनुष्येभिरग्निः ॥ २ ॥

अरण्योः । निऽहितः । जातऽवेदाः । गर्भःऽइव । सुऽधितः गर्भिणीषु । दिवेऽदिवे । ईड्यः । जागृवत्ऽभिः । हविष्मत्ऽभिः । मनुष्येभिः । अग्निः ॥ २ ॥

पदार्थः—(अरण्योः) उपर्य्यधस्थयोः साधनयोः (निहितः) स्थितः (जातवेदाः) जातेषु सर्वेषु पदार्थेषु विद्यमानोऽग्निः (गर्भइव) यथा गर्भस्तथा (सुधितः) सुष्ठु धृतः (गर्भिणीषु) गर्भा विद्यन्ते यासु तासु (दिवेदिवे) प्रतिदिनम् (ईड्यः) अध्यन्वेषणीयः (जागृवद्भिः) अविद्याऽऽलस्यनिद्रा विहाय विद्यापुरुषार्थादिकं प्राप्तैः (हविष्मद्भिः) बहूनि हवींष्यादत्तानि साधनानि यैस्तैः (मनुष्येभिः) मननशीलैः (अग्निः) वह्निः ॥ २ ॥

अन्वयः—यैर्हविष्मद्भिर्जागृवद्भिर्मनुष्येभिररण्योर्निहितो गर्भिणीषु गर्भ इव स्थितो दिवेदिवे ईड्यो जातवेदा अग्निः सुधितस्ते भाग्यवन्तो विज्ञेयाः ॥ २ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालं०—ये मनुष्याः सृष्टिक्रमेण विद्यमानानग्न्यादिपदार्थान्प्रतिदिनं परीक्षयेयुस्ते कुतो दरिद्रा भवेयुः ॥ २ ॥

पदार्थः—जिन (हविष्मद्भिः) बहुत साधनों के ग्रहण करने तथा (जागृवद्भिः) अविद्या आलस्य और निद्रा त्याग विद्या और पुरुषार्थ आदि को प्राप्त होने और (मनुष्येभिः) मनन करने वाले पुरुषों ने (अरण्योः) ऊपर और नीचे के भाग में वर्त्तमान साधनों के मध्य में (निहितः) स्थित (गर्भिणीषु) गर्भवती स्त्रियों में (गर्भइव) जैसे गर्भ रहता वैसे वर्त्तमान (दिवेदिवे) प्रतिदिन (ईड्यः) खोजने योग्य (जातवेदाः) उत्पन्न हुए सम्पूर्ण पदार्थों में वर्त्तमान (अग्निः) अग्नि (सुधितः) उत्तम प्रकार धारण किया उन पुरुषों को भाग्यशाली जानना चाहिये ॥ २ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जो मनुष्य सृष्टि के क्रम से वर्त्तमान अग्नि आदि पदार्थों की प्रतिदिन परीक्षा करें करावें तो वे क्यों दरिद्र होवें ॥ २ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥
फिर उसी वि० ॥

उत्तानायामवं भरा चिकित्वान्सद्यः प्रवीता वृषणं जजान। अरुषस्तूपो रुशंदस्य पाज इळायास्पुत्रो वयुनेऽजनिष्ट ॥ ३ ॥

उत्तानायाम् । अवं । भर । चिकित्वान् । सद्यः । प्रऽवीता । वृषणम् । जजान । अरुषऽस्तूपः । रुशंत् । अस्य । पाजः । इळायाः । पुत्रः । वयुने । अजनिष्ट ॥ ३ ॥

पदार्थः—(उत्तानायाम्) सरलतया शयानो मनुष्य इव वर्त्तमानायां भूमौ (अव) (भर) धर । अत्र द्व्यचोतस्तिङ इति दीर्घः (चिकित्वान्) प्राज्ञः (सद्यः) (प्रवीता) प्रकर्षेण व्याप्ता विद्युत् (वृषणम्) वर्षकं सूर्य्यम् (जजान) जनयति (अरुषस्तूपः) येऽरुष्षु मर्मसु सीदन्ति तेषु प्रशंसितः (रुशत्) हिंसन् (अस्य) जगतः (पाजः) बलम् (इडायाः) वाण्याः । इडेति वाङ्ना० निघं० १ । ११ (पुत्रः) पुत्रवद्वर्त्तमानः (वयुने) विज्ञाने (अजनिष्ट) जायते ॥ ३ ॥

अन्वयः-हे विद्वन् चिकित्वांस्त्वमुत्तानायां या प्रवीता वृषणं जजान तामवभर । योऽरुषस्तूपोस्य पाजो रुशदिडायास्पुत्रो वयुनेऽजनिष्ट तं सद्योऽवभर ॥ ३ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—ये मनुष्याः पुत्रं जननीव वह्निविद्यां धरन्ति ते स्वबलं वर्धयित्वा विज्ञानं जनयन्ति। यदा अधोऽग्निरुपरिजलं संस्थाप्य वायुना प्रदीपन्ति तदा वह्निजलाभ्यां बहूनि कार्याणि निर्वर्त्तितुं शक्नुवन्ति॥ ३॥

पदार्थः—हे विद्वान् पुरुष (चिकित्वान्) बुद्धिमान् आप (उत्तानायाम्) सीधेपन से सोते हुए मनुष्य के तुल्य वर्त्तमान भूमि में जो (प्रवीता) बहुत व्याप्त बिजुली (वृषणम्) वृष्टिकर्त्ता सूर्य को (जजान) उत्पन्न करती है उस को (अत्र) (भर) धारण करो और जो (अरुषस्तूपः) मर्मस्थलों में क्लेशदायकों में प्रशंसायुक्त (अस्य) इस संसार के (पाजः) बल के (रुशत्) नाशकारक (इडायाः) वाणी के (पुत्रः) पुत्र के सदृश स्थित (वयुने) विज्ञान में (अजनिष्ट) उत्पन्न होता है उस को (सद्यः) शीघ्र धारण करो॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो मनुष्य पुत्र को माता के तुल्य अग्निविद्या को धारण करते हैं वे अपना बल बढ़ा कर विज्ञान को उत्पन्न करते हैं और जब नीचे के भाग में अग्नि ऊपर जल स्थित करके वायु से प्रज्वलित करते हैं तब अग्नि और जल द्वारा बहुत से कार्य सिद्ध कर सकते हैं॥ ३॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी वि०॥

इळायास्त्वा पदे वयं नाभा पृथिव्या अधि।
जातवेदो नि धीमह्यग्ने हव्याय वोढवे॥ ४॥

इळायाः। त्वा। पदे। वयम्। नाभा। पृथिव्याः। अधि। जातऽवेदः। नि। धीमहि। अग्ने। हव्याय। वोढवे॥४॥

पदार्थः—(इडायाः) पृथिव्याः (त्वा) तम् (पदे) प्राप्ते (वयम्) (नाभा) मध्ये (पृथिव्याः) अन्तरिक्षस्य (अधि)

उपरि (जातवेदः) जातवित्तम् (नि) (धीमहि) नितरां धरेम (अग्ने) अग्निम् । अत्र सर्वत्र पुरुषव्यत्ययः (हव्याय) प्रशंसनीयाय (वोढवे) वाहनाय ॥ ४ ॥

अन्वयः—हे विद्वांसो यथा वयमिडाया अधि पदे पृथिव्या नाभा हव्याय वोढवे त्वा तं जातवेदोऽग्ने जातवेदसमग्निं निधीमहि तथैव यूयमपि निधत्त ॥ ४ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—य इमं वह्निं पृथिव्या उपर्य्यन्तरिक्षस्य मध्ये सुपरीक्ष्ययानादिचालनायाऽग्निं निदधाति ते निधिमन्तो भवन्ति ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् जनो जैसे (वयम्) हम लोग (इडायाः) पृथिवी के (अधि) ऊपर (पदे) प्राप्त होने पर (पृथिव्याः) अन्तरिक्ष के (नाभा) मध्य में (हव्याय) प्रशंसा करने योग्य (वोढवे) वाहन के लिये (त्वा) उस (जातवेदः) धनों के उत्पन्न कर्त्ता (अग्ने) अग्नि को (नि) (धीमहि) उत्तम प्रकार धारण करें वैसे ही आप लोग भी धारण करो ॥ ४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो लोग इस अग्नि को पृथिवी के ऊपर और अन्तरिक्ष के मध्य में उत्तम प्रकार परीक्षा ले के वाहन आदि चलाने के लिये अग्नि को धारण करते हैं वे धनयुक्त होते हैं ॥ ४ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

मन्थता नरः कविमद्वयन्तं प्रचेतसममृतं सुप्रतीकम् । यज्ञस्य केतुं प्रथमं पुरस्तादग्निं नरो जनयता सुशेवम् ॥ ५ ॥ ३२ ॥

मन्थत । नरः । कविम् । अद्वयन्तम् । प्रऽचेतसम् । अमृतम् । सुऽप्रतीकम् । यज्ञस्य । केतुम् । प्रथमम् । पुरस्तात् । अग्निम् । नरः । जनयत । सुऽशेवम् ॥ ५ ॥ ३२ ॥

पदार्थः—(मन्थत) मन्थनं कुरुत । अत्र संहितायामिति दीर्घः (नरः) नायकाः (कविम्) क्रान्तदर्शनम् (अद्वयन्तम्) अद्वयमिवाचरन्तम् (प्रचेतसम्) प्रकर्षेण संज्ञापकम् (अमृतम्) स्वरूपेण नाशरहितम् (सुप्रतीकम्) सुष्ठुप्रतीतिकरम् (यज्ञस्य) (केतुम्) ध्वज इव विज्ञापकम् (प्रथमम्) प्रख्यातम् (पुरस्तात्) प्रथमतः (अग्निम्) पावकम् (नरः) नेतारः (जनयत)। अत्र संहितायामिति दीर्घः (सुशेवम्) शोभनं निधिमिव वर्त्तमानम् ॥ ५ ॥

अन्वयः—हे नरो यूयं कविमद्वयन्तं प्रचेतसममृतं सुप्रतीकमग्निं मन्थत। हे नरो यज्ञस्य केतुं प्रथमं सुशेवमग्निं पुरस्ताज्जनयत ॥५॥

भावार्थः—ये मनुष्या मथित्वाग्निं जनयित्वा कार्य्याणि साद्धुमिच्छन्ति ते सकलैश्वर्यसंपन्ना जायन्ते ॥ ५ ॥

पदार्थः—हे (नरः) नायको आप लोग (कविम्) तेजस्वी स्वरूप युक्त (अद्वयन्तम्) अपने केवल रूप से रहित के सदृश आचरण करते हुए (प्रचेतसम्) अतिशय प्रकट कर्त्ता (अमृतम्) अपने स्वरूप से नाशरहित (सुप्रतीकम्) उत्तम प्रकार विश्वास कर्त्ता (अग्निम्) अग्नि का (मन्थत) मन्थन करो । हे (नरः) प्रधान पुरुषो (यज्ञस्य) अहिंसारूप यज्ञ के (केतुम्) पताका के सदृश जानने वाले (प्रथमम्) प्रसिद्ध (सुशेवम्) सुन्दर द्रव्य पात्र के सदृश अग्नि को (पुरस्तात्) प्रथम से उत्पन्न करें ॥ ५ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य मथ कर अग्नि को उत्पन्न करके कार्य्यों को सिद्ध करने की इच्छा करते हैं वे संपूर्ण ऐश्वर्य्ययुक्त होते हैं ॥ ५ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

यदी मन्थन्ति बाहुभिर्वि रोचतेऽश्वो न वाज्यरुषो वनेष्वा । चित्रो न यामन्नश्विनोरनिवृतः परि वृणक्त्यश्मनस्तृणा दहन् ॥ ६ ॥

यदि । मन्थन्ति । बाहुऽभिः । वि । रोचते । अश्वः । न । वाजी । अरुषः । वनेषु । आ । चित्रः । न । यामन् । अश्विनोः । अनिवृतः । परि । वृणक्ति । अश्मनः । तृणा । दहन् ॥ ६ ॥

पदार्थः—(यदि) । अत्र निपातस्य चेति दीर्घः (मन्थन्ति) विलोडयन्ति (बाहुभिः) (वि) (रोचते) विशेषेण प्रकाशते (अश्वः) उत्तमस्तुरङ्गः (न) इव (वाजी) वेगवान् (अरुषः) मर्मसु स्थितः (वनेषु) किरणेषु (आ) (चित्रः) अद्भुतः (न) इव (यामन्) यामनि (अश्विनोः) सूर्य्याचन्द्रमसोः (अनिवृतः) निरन्तरः (परि) सर्वतः (वृणक्ति) छिनत्ति (अश्मनः) पाषाणस्य मेघस्य वा (तृणा) तृणानि घासविशेषान् (दहन्) भस्मीकुर्वन् ॥ ६ ॥

अन्वयः—ये मनुष्या बाहुभिर्यद्यग्निं मन्थन्ति तर्हि स वनेष्वरुषो वाज्यश्वो न व्यारोचतेऽश्विनोरनिवृतस्सन् यामँश्चित्रो न तृणा दहन्नश्मनः परि वृणक्ति तमित्थं सर्व उद्घाटयन्तु ॥ ६ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालं०—घर्षणेन जातबलोऽग्निः काष्ठादीनि दहन्नश्ववद्वेगवान् भवन्नद्भुतानि कार्य्याणि साध्नोतीति वेद्यम् ॥ ६ ॥

पदार्थः—जो मनुष्य (बाहुभिः) बाहुओं से (यदि) यदि अग्नि को (मन्थन्ति) मन्थते हैं तो वह (वनेषु) किरणों में (अरुषः) मर्मस्थलों में

वर्त्तमान (वाजी) वेग युक्त (अश्वः) उत्तम घोड़े के (न) सदृश (वि) (आ, रोचते) विशेषभाव से प्रकाशित होता है (अश्विनोः) सूर्य्य चन्द्रमा के मध्य में (अनिवृतः) निरन्तर प्राप्त (यामन्) रात्रि में (चित्रः) अद्भुत के (न) तुल्य (तृणा) घास विशेषों को (दहन्) भस्म करता हुआ (अश्मनः) पत्थर वा मेघ का (परि) सब प्रकार (वृणक्ति) छेदन करता है उस को इस प्रकार सब लोग प्रकट करें ॥ ६ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालं०—घिसने से बल युक्त हुआ अग्नि काष्ठ आदि को जलाना और घोड़े के तुल्य वेगवान् होता हुआ अद्भुत काय्यों को सिद्ध करता है यह जानना चाहिये ॥ ६ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

जातो अग्नी रोचते चेकितानो वाजी विप्रः कविशस्तः सुदानुः । यं देवास ईड्यं विश्वविदं हव्यवाहमदधुरध्वरेषु ॥ ७ ॥

जातः । अग्निः । रोचते । चेकितानः । वाजी । विप्रः । कविऽशस्तः । सुऽदानुः । यम् । देवासः । ईड्यम् । विश्वऽविदम् । हव्यऽवाहम् । अदधुः । अध्वरेषु ॥ ७ ॥

पदार्थः—(जातः) प्रकटः सन् (अग्निः) पावकः (रोचते) प्रदीप्यते (चेकितानः) प्रज्ञापकः (वाजी) वेगवान् (विप्रः) मेधावी (कविशस्तः) कविभिः प्रशंसितः (सुदानुः) सुष्ठुदाता (यम्) (देवासः) विद्वांसः (ईड्यम्) स्तोतुं योग्यम् (विश्वविदम्) यः समग्रं विन्दति तम् (हव्यवाहम्) हव्यानां वोढारम् (अदधुः) दधीरन् (अध्वरेषु) संगतिमयेषु व्यवहारेषु ॥ ७ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या देवासोऽध्वरेषु यमीड्यं विश्वविदं हव्यवाहमग्निमदधुः स चेकितानः सुदानुः कविशस्तो विप्र इव जातो वाज्यग्नी रोचते ॥ ७ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यदि विद्युद्विद्यां साध्नुयुस्तर्हीयमाप्तविद्वद्वत्सत्यानि योग्यानि कार्य्याणि साध्नुयात् ॥ ७ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (देवासः) विद्वान् लोग (अध्वरेषु) मेलकरनेरूप व्यवहारों में (यम्) जिस (ईड्यम्) स्तुति करने योग्य (विश्वविदम्) सम्पूर्ण वस्तुओं के ज्ञाता (हव्यवाहम्) हवन करने योग्य पदार्थों के धारणकर्त्ता अग्नि को (अदधुः) धारण करें वह (चेकितानः) उत्तम कार्य्यों का जताने (सुदानुः) उत्तम प्रकार देने वाला और (कविशस्तः) उत्तम पुरुषों से प्रशंसित हुए (विप्रः) बुद्धिमान् के सदृश (जातः) प्रकटता को प्राप्त (वाजी) वेगयुक्त (अग्निः) अग्नि (रोचते) प्रकाशित होता है ॥ ७ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जो बिजुली संबन्धी विद्या को सिद्ध करें तो यह विद्या यथार्थवक्ता विद्वान् पुरुष के तुल्य सत्य और योग्य कार्य्यों को सिद्ध करे ॥ ७ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥
फिर उसी वि० ॥

सीद॑ होतः॒ स्व उ॑ लो॒के चि॑कि॒त्वान्त्सा॒दया॑ य॒ज्ञं सु॑कृ॒तस्य॒ योनौ॑ । दे॒वा॒वीर्दे॒वान्ह॒विषा॑ यजा॒स्यग्ने॑ बृ॒हद्यज॑माने॒ वयो॑ धाः ॥ ८ ॥

सीद॑ । हो॒त॒रिति॑ । स्वे । ऊँ इति॑ । लो॒के । चि॒कि॒त्वान् । सा॒दय॑ । य॒ज्ञम् । सु॒ऽकृ॒तस्य॑ । योनौ॑ । दे॒व॒ऽअ॒वीः । दे॒वान् । ह॒विषा॑ । य॒जा॒सि॒ । अग्ने॑ । बृ॒हत् । यज॑माने । वयः॑ । धाः॒ ॥ ८ ॥

पदार्थः—(सीद) आस्व (होतः) सुखप्रदातः (स्वे) स्वकीये (उ) वितर्के (लोके) दर्शने (चिकित्वान्) ज्ञानवान् (सादय) स्थापय । अत्र संहितायामिति दीर्घः (यज्ञम्) धर्म्यव्यवहारम् (सुकृतस्य) सुष्ठुनिष्पादितस्य (योनौ) कारणे गृहे वा (देवावीः) यो देवानवति सः (देवान्) दिव्यान् गुणान् विदुषो वा (हविषा) दानेन (यजासि) यजेः (अग्ने) पावकवद्वर्त्तमान (बृहत्) महत् (यजमाने) संगतधर्म्यव्यवहारकर्त्तरि (वयः) जीवनं धनादिकं वा (धाः) धेहि ॥ ८ ॥

अन्वयः—हे होतरग्नेऽग्निरिव त्वं स्वे लोके सीद चिकित्वान्त्सन् सुकृतस्य योनौ यज्ञं सादय देवावीः सन् हविषा देवान् यजास्यु यजमाने बृहद्वयो धाः ॥ ८ ॥

भावार्थः—यथाऽग्निहोत्रादिशिल्पादिसंगन्तव्ये व्यवहारेसं प्रयुक्तोऽग्निर्दिव्यान् गुणान् प्रकटयति तथैव विदुषा धर्म्यैः कर्मभिः संप्रयुज्य दिव्यानि सुखानि जगति प्रसारणीयानि ॥ ८ ॥

पदार्थः—हे (होतः) सुख देने वाले (अग्ने) अग्नि के सदृश तेजस्वी पुरुष आप (स्वे) अपने (लोके) दर्शन में (सीद) वर्त्तमान हो (चिकित्वान्) ज्ञान युक्त हो कर (सुकृतस्य) पुण्य कर्म के (योनौ) कारण वा स्थान में (यज्ञम्) धर्मसम्बन्धी व्यवहार को (सादय) स्थित करो (देवावीः) विद्वानों की रक्षा कर्त्ता (हविषा) दान से (देवान्) उत्तम गुण वा विद्वान् पुरुषों को (यजासि) यज्ञ करै वा स्वीकार करै (उ) यह तर्क है कि (यजमाने) योग्य धर्मसम्बन्धी व्यवहार के कर्त्ता पुरुष में (बृहत्) बड़े (वयः) जीवन वा धर्म आदि को (धाः) धारण करै ॥ ८ ॥

भावार्थः—जैसे अग्निहोत्र आदि वा शिल्प आदि संगति के योग्य व्यवहार में संयुक्त किया गया अग्नि उत्तम गुणों को प्रकट करता है वैसे ही विद्वान् पुरुष को चाहिये कि धर्मसम्बन्धी कर्मों से युक्त करके उत्तम सुखों को संसार में फैलावै ॥८॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

कृणोत धूमं वृषणं सखायोऽस्रेधन्त इतन वाजमच्छं । अयमग्निः पृतनाषाट् सुवीरो येन देवासो असहन्त दस्यून् ॥ ९ ॥

कृणोत । धूमम् । वृषणम् । सखायः । अस्रेधन्तः । इतन । वाजम् । अच्छं । अयम् । अग्निः । पृतनाषाट् । सुऽवीरः । येन । देवासः । असहन्त । दस्यून् ॥ ९ ॥

पदार्थः—(कृणोत) कुरुत (धूमम्) वाष्पाख्यम् (वृषणम्) जलेन सुसिक्तम् (सखायः) सुहृदः सन्तः (अस्रेधन्तः) अक्षीणोत्साहाः (इतन) प्राप्नुत (वाजम्) अन्नवेगविज्ञानादिकम् (अच्छ) सम्यक् (अयम्) (अग्निः) विद्युदिव (पृतनाषाट्) यः पृतनाः सेनाः सहते (सुवीरः) शोभना वीरा यस्य (येन) सह (देवासः) विद्वांसः शूराः (असहन्त) सहन्ते (दस्यून्) अतिदुष्टकर्मकारिणः ॥ ९ ॥

अन्वयः—हे विद्वांसो यूयमस्रेधन्तः सखायः सन्तो वृषणं धूमं कृणोत वाजमच्छेतन योऽयमग्निरिव पृतनाषाट् सुवीरोऽस्ति येन सह देवासो दस्यूनसहन्त तमितन ॥ ९ ॥

भावार्थः—हे विद्वांसः काष्ठाग्निजलसंयोगजेन धूमेनाऽनेकानि कार्य्याणि परस्परं सुहृदो भूत्वा साध्नुत यथा धार्मिका विद्वांसः शूरा दस्यून् हत्वा राजानो भवन्ति तथैवायमग्निः संप्रयुक्तः सन् दारिद्र्यादीन्हत्वाऽसंख्यं धनं निष्पादयतीति ॥ ९ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् जनो आप लोग (अस्रेधन्तः) उत्साह से पूरित (सखायः) मित्र हुए (वृषणम्) जल से अच्छे प्रकार सींचे गये (धूमम्) भाफ को (कृणोत) करो (वाजम्) अन्न वेग और विज्ञान आदि को (अच्छ) उत्तम प्रकार (इतन) प्राप्त होओ तो (अयम्) यह (अग्निः) बिजुली के सदृश तेजस्वी (पृतनाषाट्) सेनाओं के सहित वर्त्तमान (सुवीरः) श्रेष्ठ वीरों से युक्त और (येन) जिस पुरुष के साथ (देवासः) विद्वान् वा शूर लोग (दस्यून्) अति दुष्ट कर्म करने वाले जनों को (असहन्त) सहते हैं उस को प्राप्त होइये ॥ ९ ॥

भावार्थः—हे विद्वान् जनो काष्ठ अग्नि और जल के संयोग से उत्पन्न हुए धूम से अनेक कार्य्यों को परस्पर मित्रभाव के साथ सिद्ध करो जैसे धर्म-पूर्वक वर्त्ताव रखने वाले विद्यायुक्त शूरवीर पुरुष दुष्टकर्मकारियों का नाश कर के राजा होते हैं वैसे ही यह अग्नि उत्तम प्रकार यंत्र आदि से युक्त किया गया दारिद्र्य आदि को नाश करके अनगिनती धन को उत्पन्न करता है ॥९॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

अयं ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातो अरोचथाः । तं जानन्नग्न आ सीदाथा नो वर्धया गिरः ॥ १० ॥ ३३ ॥

अयम् । ते । योनिः । ऋत्वियः । यतः । जातः । अरोचथाः । तम् । जानन् । अग्ने । आ । सीद । अर्थ । नः । वर्धय । गिरः ॥ १० ॥ ३३ ॥

पदार्थः—(अयम्) अग्न्यादिपदार्थविद्याविज्ञानाधिष्ठानम् (ते) तव (योनिः) सुखगृहम् (ऋत्वियः) य ऋतूनर्हति सः (यतः) (जातः) प्रकटः सन् (अरोचथाः) रोचस्व (तम्) (जानन्)

(अग्ने) पावक इव (आ) (सीद) स्थिरो भव (अथ) आनन्तर्य्ये । अत्र निपातस्यचेति दीर्घः (नः) अस्माकम् (वर्धय) उन्नय । अत्र संहितायामिति दीर्घः (गिरः) विद्यासुशिक्षायुक्ता वाचः ॥ १० ॥

अन्वयः—हे अग्ने विद्वन् यस्तेऽयमृत्वियो योनिरस्ति यतो जातः सन्नरोचथास्तं जानन्त्राऽऽसीद । अथ नो गिरो वर्धय ॥१०॥

भावार्थः—मनुष्यैर्येन येन कर्मणा शरीरात्मैश्वर्य्याणां वृद्धिः स्यात्तत्कर्म सदाचरणीयम् ॥ १० ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के सदृश तेजस्वी विद्वान् पुरुष जो (ते) आप का (अयम्) यह अग्नि आदि पदार्थ विद्या के ज्ञान का आधार (ऋत्वियः) समयों के योग्य (योनिः) सुख का घर है (यतः) जहां से (जातः) प्रकट हुआ (अरोचथाः) प्रकाशित हो (तम्) उसको (जानन्) जानते हुए यहां (आ) (सीद) स्थिर होइये और (अथ) इस के अनन्तर (नः) हम लोगों की (गिरः) विद्या और उत्तम शिक्षायुक्त वाणियों की (वर्धय) उन्नति कीजिये ॥ १० ॥

भावार्थः—मनुष्यों को उचित है कि जिस जिस कर्म से शरीर आत्मा और ऐश्वर्य्यों की वृद्धि हो वह वह कर्म सब काल में करें ॥ १० ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

तनूनपादुच्यते गर्भ आसुरो नराशंसो भवति यद्विजायते । मातरिश्वा यदमिमीत मातरि वातस्य सर्गो अभवत्सरीमणि ॥ ११ ॥

तनूऽनपात् । उच्यते । गर्भः । आसुरः । नराशंसः । भवति । यत् । विऽजायते । मातरिश्वा । यत् । अमिमीत । मातरि । वातस्य । सर्गः । अभवत् । सरीमणि ॥ ११ ॥

पदार्थः-(तनूनपात्) यस्य तनूर्व्याप्तिर्न पतति (उच्यते) (गर्भः) अन्तःस्थः (आसुरः) असुरे प्रकाशरूपरहिते वायौ भवः (नराशंसः) यं नरा आशंसन्ति (भवति) (यत्) यः (विजायते) विशेषेणोत्पद्यते (मातरिश्वा) यो वायौ श्वसिति सः (यत्) यः (अमिमीत) निर्मीयते (मातरि) आकाशे (वातस्य) वायोः (सर्गः) उत्पत्तिः (अभवत्) भवेत् (सरीमणि) गमनाख्ये व्यवहारे ॥ ११ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यद्यस्तनूनपादुच्यते आसुरो गर्भो नराशंसो भवति मातरिश्वा विजायते यद्यो वातस्य मातरि सर्गोऽमिमीत सरीमण्यभवत्सोऽग्निस्सर्वैर्वेदितव्यः ॥ ११ ॥

भावार्थः—ये मनुष्या वाय्वग्नीभ्यां कार्य्याणि सृजन्ति ते सुखैः संसृष्टा भवन्ति ॥ ११ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यत्) जो (तनूनपात्) सर्वत्र व्यापक (उच्यते) कहा जाता है (आसुरः) प्रकटरूप से रहित वायु से उत्पन्न (गर्भः) मध्य में वर्त्तमान (नराशंसः) मनुष्यों से प्रशंसित (भवति) होता है (मातरिश्वा) वायु में श्वास लेने वाला (विजायते) विशेषभाव से उत्पन्न होता है और (यत्) जो (वातस्य) वायुसम्बन्धी (मातरि) आकाश में (सर्गः) उत्पत्ति (अमिमीत) रची जाती है (सरीमणि) गमनरूप व्यवहार में (अभवत्) होवै वह अग्नि सम्पूर्ण जनों से जानने योग्य है ॥ ११ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य वायु और अग्नि से कार्य्यों को सिद्ध करते हैं वे सुखों से संयुक्त होते हैं ॥ ११ ॥

वैदिकयन्त्रालय प्रयाग के पुस्तकों का सूचीपत्र

और संक्षिप्त नियम ।

(१) मूल्य रोक भेज कर मंगावें (२) रोक भेजने वालों को १०) रु० वा इस से अधिक पर २०) रु० सैकड़ा के हिसाब से कमीशन के पुस्तक अधिक भेजे जांय गे (३) डाक महसूल वेदभाष्य छोड़ कर सब से अलग लिया जायगा । ५) रु० वा इस से अधिक के पुस्तक ग्राहक की आज्ञानुसार रजिस्टरी भेजे जांय गे (४) मूल्य नीचे लिखे पते से भेजें ॥

ऋग्वेदभाष्य अं० १—१२५		४५)
यजुर्वेद भाष्य सम्पूर्ण		१८)
ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका	मू०	डा०
विना जिल्द की	२)	=)
„ जिल्द की	२॥)	।)
वर्णोच्चारणशिक्षा	-)	-)॥
सन्धिविषय	।=)॥	-)॥
नामिक	।=)॥	-)॥
कारकीय	।-)॥	-)॥
सामासिक	।=)॥	-)॥
स्त्रैणताद्धित	१=)	-)
अव्ययार्थ छपता है		
सौवर	=)॥	-)॥
आख्यातिक	१॥)	=)॥
पारिभाषिक	=)॥	-)॥
धातुपाठ	।=)	-)॥
गणपाठ	।-)	-)॥
उणादिकोष	॥=)	-)
निघण्टु	।=)	-)॥
अष्टाध्यायीमूल छपता है		
संस्कृतवाक्यप्रबोध	=)	-)॥
व्यवहारभानु	=)	-)॥

	मू०	डा०
भ्रमोच्छेदन	)॥	-)॥
अनुभ्रमोच्छेदन	)॥	-)॥
मेलाचांदापुर	-)	-)॥
आर्योद्देश्यरत्नमाला	-)	-)॥
गोकरुणानिधि	-)	-)॥
स्वामीनारायणमतखण्डन		
„ संस्कृतगुजराती	-)	-)॥
„ उक्त गुजराती	-)	-)॥
वेदविरुद्धमतखण्डन	=)	-)॥
स्वमन्तव्याऽमन्तव्यप्रकाश	)॥	-)॥
शास्त्रार्थ फीरोज़ाबाद	=)	-)॥
शास्त्रार्थकाशी	-)	-)॥
आर्याभिविनय	।)	-)
„ जिल्द की	।=)	-)
वेदान्तिध्वान्तनिवारण	-)	)॥
भ्रान्तिनिवारण	-)।	-)॥
पञ्चमहायज्ञविधि	=)॥	-)॥
„ जिल्द की	।=)॥	-)
सत्यार्थप्रकाश छपता है		

आर्य्यसमाज के नियमोपनियम .

मेनेजर—वैदिकयन्त्रालय—प्रयाग

रसीद मूल्यवेदभाष्य

भगवन्त सिंह जी पी० डबल्यू डी०	टोंक	५।=)
दीनानाथ जी गंगोली	धारवाड़	१०)
पंडित मोहनलाल विष्णुलाल जी पंड्या गणेशगंज	लखनऊ	८।=)

ऋग्वेदभाष्यम्

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मितम्

संस्कृतार्य्यभाषाभ्यां समन्वितम् ॥

अस्यैकैकाङ्कस्य प्रतिमासं मूल्यम् भारतवर्षान्तर्गतदेशान्तर-
प्रापणमूल्येन सहितम् ।=) अङ्कद्वयस्यैकीकृतस्य ॥=)
वार्षिकं मूल्यम् ८)

इस ग्रंथ के प्रतिमास एक एक अंक का मूल्य भरतखंड के भीतर डांक-
महसूल सहित ।=) एक साथ छपे हुए दो अंकों के ॥=)
और वार्षिक मूल्य ८)

यस्य सज्जनमहाशयस्यास्य ग्रन्थस्य जिघृक्षा भवेत् स प्रयागनगरे वैदिक-
यन्त्रालयप्रबन्धकर्त्तुः समीपे वार्षिकमूल्यप्रेषणेन प्रतिमासं
मुद्रितावङ्कौ प्राप्स्यति ॥

जिस सज्जन महाशय को इस ग्रन्थ के लेने की इच्छा हो वह प्रयाग नगरमें वैदिकयन्त्रालयमैनेजर
के समीप वार्षिक मूल्य भेजने से प्रतिमास के छपे हुए दोनों अङ्कों को प्राप्त कर सकता है।

पुस्तक (१५२, १५३) अङ्क (१३६, १३७)

अयं ग्रन्थः प्रयागनगरे वैदिकयन्त्रालये मुद्रितः ॥

संवत् १९४७ ज्येष्ठ शुक्ल

वेदभाष्यसम्बन्धी विशेषनियम ॥

[१] यह "ऋग्वेदभाष्य" मासिक छपता है । एक मास में बत्तीस २ पृष्ठ के एक साथ छपे हुए दो अङ्क १ वर्ष में २४ अङ्क "ऋग्वेदभाष्य" के भेजे जाते हैं ॥

[२] वेदभाष्य का मूल्य बाहर और नगर के ग्राहकों से एक ही लिया जायगा अर्थात् डाकव्यय से कुछ न्यूनाधिक न होगा ॥

[३] इस वर्तमान तेरहवें वर्ष के कि जो १३३--१३४ अङ्क से प्रारंभ हो कर १५६ । १५७ पर पूरा होगा । वार्षिक मूल्य ८) रु० हैं ।

[४] पीछे के ग्यारह वर्षमें जो वेदभाष्य छप चुका है उस का मूल्य यह है:—

[क] "ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका" विना जिल्द को ३)

स्वर्णाक्षरयुक्त जिल्द को ३॥)

[ख] ऋग्वेदभाष्य ११२ अङ्क तक ३७॥॥)

[५] वेदभाष्य का अङ्क प्रत्येक मास की पहिली तारीख को डाक में डाला जाता है । जो किसी का अङ्क डाक की भूल से न पहुंचे तो इस के उत्तर दाता प्रबन्धकर्त्ता न होंगे । परन्तु दूसरे मास के अङ्क भेजने से प्रथम जो ग्राहक अङ्क न पहुंचने की सूचना दे देंगे तो उन को विना दाम दूसरा अङ्क भेज दिया जायगा इस अवधि के व्यतीत हुए पीछे अङ्क दाम देने से मिलेंगे एक अङ्क ।॥) दो अङ्क ॥॥) तीन अङ्क १) देने से मिलेंगे ॥

[६] दाम जिस को जिस प्रकार से सुबीता हो भेजे परन्तु मनीआर्डर द्वारा भेजना ठीक होगा । टिकट डाक के अधन्नी वाले लिये जा सकते हैं परन्तु एक रुपये पीछे आध आना बट्टे का अधिक लिया जायगा । टिकट आदि मूल्यवान् वस्तु रजिस्टरी पत्री में भेजना चाहिये ॥

[७] जो लोग पुस्तक लेने से अनिच्छुक हों, वे अपनी ओर जितना रुपया हो भेज दें और पुस्तक के न लेने से प्रबन्धकर्त्ता को सूचित कर दें जबतक ग्राहक का पत्र न आवेगा तबतक पुस्तक बराबर भेजा जायगा और दाम लेलिये जायंगे।

[८] बिके हुए पुस्तक पीछे नहीं लिये जायंगे ॥

[९] जो ग्राहक एक स्थान से दूसरे स्थान में जांय वे अपने पुराने और नये पते से प्रबन्धकर्त्ता को सूचित करें । जिस में पुस्तक ठीक ठीक पहुंचता रहे ।

[१०] "वेदभाष्य" सम्बन्धी रुपया, और पत्र प्रबन्धकर्त्ता वैदिकयन्त्रालय प्रयाग (इलाहाबाद) के नाम से भेजें ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥
फिर उसी वि० ॥

सुनिर्मथा निर्मथितः सुनिधा निहितः कविः ।
अग्ने स्वध्वरा कृणु देवान्देवयते यज ॥ १२ ॥

सुनिःऽमथा । निःऽमथितः । सुऽनिधा । निऽहितः । कविः ।
अग्ने । सुऽअध्वरा । कृणु । देवान् । देवऽयते । यज ॥ १२ ॥

पदार्थः—(सुनिर्मथा) शोभनेन मन्थनेन (निर्मथितः) नितरां विलोडितः (सुनिधा) शोभने निधाने । अत्र डेराकारादेशः (निहितः) धृतः (कविः) क्रान्तदर्शनः (अग्ने) पावकइव विद्वन् (स्वध्वरा) शोभनान्यहिंसादीनि कर्माणि येषु व्यवहारेषु (कृणु) (देवान्) दिव्यगुणान् (देवयते) देवान् कामयमानाय (यज) देहि ॥ १२ ॥

अन्वयः—हे अग्ने यथा सुनिर्मथा निर्मथितः सुनिधा निहितः कविरग्निर्बहूनि कार्य्याणि सङ्गमयति तथैव स्वध्वरा देवान् कृणु एतान् देवयते यज ॥ १२ ॥

भावार्थः—यथा विद्यया निर्मितेषु कलायन्त्रेषु स्थापितोऽग्निर्निमन्थनेन घर्षणेन च वेगादिगुणान् जनयित्वा बहूनि कार्य्याणि साध्नोति तथैवोत्तमानि कर्माणि कृत्वा दिव्यान् भोगान् प्राप्नुवन्तु ॥ १२ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के सदृश तेजस्वी विद्वान् पुरुष जैसे (सुनिर्मथा) सुन्दर मथने के वस्तु से (निर्मथितः) अत्यन्त मथा (सुनिधा) उत्तम आधार वस्तु में (निहितः) धरा गया (कविः) और सर्वत्र दीख पड़ने वाला अग्नि बहुत से कार्य्यों को सिद्ध करता है वैसे ही (स्वध्वरा) उत्तम अहिंसा

आदि कर्मों से युक्त (देवान्) उत्तम गुणों को (कृणु) धारण करो और इन (देवयते) उत्तम गुणों की कामना करते हुए पुरुष के लिये उन गुणों को (यज) दीजिये ॥ १२ ॥

भावार्थः—जैसे विद्या से रचे हुए कलायन्त्रों में रक्खा गया अग्नि अत्यन्त मथने और घिसने से वेग आदि गुणों को उत्पन्न कर बहुत से कार्य्यों को सिद्ध करता है वैसे ही उत्तम कर्म्मों को करके श्रेष्ठ गुणों को प्राप्त होओ ॥ १२ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

अजीजनन्नमृतं मर्त्यासोऽस्रेमाणं तरणिं वीळुजम्भम्। दश स्वसारो अग्रुवः समीचीः पुमांसं जातमभि सं रभन्ते ॥ १३ ॥

अजीजनन् । अमृतम् । मर्त्यासः । अस्रेमाणम् । तरणिम् । वीळुऽजम्भम् । दश । स्वसारः अग्रुवः । सम्ऽईचीः । पुमांसम् । जातम् । अभि । सम् । रभन्ते ॥ १३ ॥

पदार्थः—(अजीजनन्) जनयन्ति (अमृतम्) नाशरहितम् (मर्त्यासः) मनुष्याः (अस्रेमाणम्) अक्षयम् (तरणिम्) अध्वनां तारकम् (वीडुजम्भम्) वीडु बलवज्जम्भो मुखमिव ज्वाला यस्य तम् (दश) (स्वसारः) भगिन्य इव वर्त्तमाना अङ्गुलयः । स्वसार इत्यङ्गुलिना० निघं० २ । ५ । (अग्रुवः) या अग्रे गच्छन्ति ताः (समीचीः) याः सम्यगञ्चन्ति ताः (पुमांसम्) पुरुषार्थयुक्तं नरम् (जातम्) प्रसिद्धम् (अभि) आभिमुख्ये (सम्) सम्यक् (रभन्ते) प्रवर्त्तयन्ति ॥ १३ ॥

अन्वयः-यथा अग्रुवः समीचीर्दश स्वसारो जातं पुमांसमभि संरभन्ते तथा मर्त्यासो वीळुजम्भं तरणिमस्रेमाणममृतमग्निमजीजनन् ॥ १३ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०-यथा कराऽङ्गुलयः परस्परं संहिता देहधारिणं मनुष्यं कर्मसु प्रवर्त्तयन्ति तथैव विद्वांसो वह्निं क्रियासु नियोजयन्ति ॥ १३ ॥

पदार्थः—जैसे (अग्रुवः) आगे चलने वाली (समीचीः) उत्तम प्रकार मिली हुई (दश) दश संख्या परिमित (स्वसारः) बहिनों के समान वर्त्तमान अङ्गुलियां (जातम्) प्रसिद्ध (पुमांसम्) पुरुषार्थ से युक्त मनुष्य को (अभि) सम्मुख (सम्) उत्तम प्रकार (रभन्ते) प्रवृत्त करती हैं वैसे (मर्त्यासः) मनुष्य (वीळुजम्भम्) मुख के सदृश ज्वाला से शोभित (तरणिम्) मार्गों से यत्न द्वारा इष्ट स्थान में पहुंचाने वाला (अस्रेमाणम्) नाश रहित (अमृतम्) नित्य अग्नि को (अजीजनन्) उत्पन्न करते हैं ॥ १३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे हाथों की अङ्गुलियां परस्पर मिली हुई शरीरधारी मनुष्य को कार्य्यों में प्रवृत्त करती हैं वैसे ही विद्वान् पुरुष अग्नि को क्रिया में लगाते अर्थात् उस के द्वारा कार्य्य सिद्ध करते हैं ॥ १३ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

प्र स॒प्त होता॑ सन॒काद॑रोचत मा॒तुरु॒पस्थे॒ यद॒शो॑च॒दूध॑नि । न नि मि॑षति सु॒रणो॑ दि॒वेदि॑वे॒ यदसु॑रस्य ज॒ठरा॒दजा॑यत ॥ १४ ॥

प्र । सप्तऽहोता । सनकात् । अरोचत । मातुः । उपऽस्थे ।
यत् । अशोचत् । ऊधनि । न । नि । मिषति । सुऽरणः ।
दिवेऽदिवे । यत् । असुरस्य । जठरात् । अजायत ॥ १४ ॥

पदार्थः—(प्र) (सप्तहोता) सप्त प्राणा होतार आदातारो यस्य (सनकात्) सनातनात्कारणात् (अरोचत) प्रकाशते (मातुः) वायोः (उपस्थे) समीपे (यत्) यः (अशोचत्) दीप्यते (ऊधनि) रात्रौ । अत्र वर्णव्यत्ययेन सस्य नः । ऊध इति रात्रिना० निघं० १ । ७ (न) (नि) नितराम् (मिषति) सिञ्चति (सुरणः) शोभनो रणः सङ्ग्रामो यस्मात्सः (दिवेदिवे) प्रतिदिनम् (यत्) यस्मात् (असुरस्य) रूपरहितस्य वायोः (जठरात्) मध्यात् (अजायत) जायते ॥ १४ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यः सप्तहोताग्निः सनकाज्जातो मातुरुपस्थे प्रारोचत यद्य ऊधन्यशोचद्यः सुरणो दिवेदिवे न निमिषति यद्यो-ऽसुरस्य जठरादजायत तं यथावद्विजानीत ॥ १४ ॥

भावार्थः—योऽग्निः शोषको वायुनिमित्तः प्रकृत्याख्यात्कारणा-ज्जातोऽस्ति तं विज्ञाय बहून् व्यवहारान्सर्वे प्रकाशयन्तु ॥ १४ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (सप्तहोता) सात प्राणों से ग्रहण करने योग्य अग्नि (सनकात्) अनादि परम्परा से सिद्ध कारण से उत्पन्न हुआ (मातुः) वायु के (उपस्थे) समीप में (प्रारोचत) प्रकाशित होता है (यत्) जो (ऊधनि) रात्रि में (अशोचत्) प्रकाशित होता है और जो (सुरणः) श्रेष्ठ युद्ध का साधन (दिवेदिवे) प्रतिदिन (न) (नि) अत्यन्त (मिषति) नहीं सींचता है (यत्) जो (असुरस्य) रूप से रहित वायु के (जठरात्) मध्य से (अजायत) उत्पन्न होता है उस को अच्छे प्रकार जानो ॥ १४ ॥

भावार्थः—जो अग्नि अन्न आदि को शुष्क करनेवाला वायु रूप कारण से प्रसिद्ध प्रकृति नामक कारण से उत्पन्न हुआ है उस को जान कर बहुत से व्यवहारों को सकल जन प्रसिद्ध करें॥ १४॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥
फिर उसी वि०॥

अमित्रायुधो मरुतामिव प्रयाः प्रथमजा ब्रह्मणो विश्वमिद्विदुः। द्युम्नवद्ब्रह्म कुशिकास एरिर एकएको दमे अग्निं समीधिरे॥ १५॥

अमित्रऽयुधः। मरुताम्ऽइव। प्रऽयाः। प्रथमऽजाः। ब्रह्मणः। विश्वम्। इत्। विदुः। द्युम्नऽवत्। ब्रह्म। कुशिकासः। आ। ईरिरे। एकःऽएकः। दमे। अग्निम्। सम्। ईधिरे॥ १५॥

पदार्थः—(अमित्रायुधः) अमित्रेषु शत्रुषु प्रक्षिप्तान्यायुधानि यैस्ते (मरुतामिव) मनुष्याणामिव (प्रयाः) ये सद्यः प्रयान्ति ते (प्रथमजाः) प्रथमात्कारणाज्जाताः (ब्रह्मणः) परमात्मनः (विश्वम्) सर्वं जगत् (इत्) एव (विदुः) (द्युम्नवत्) प्रशस्तकीर्त्तिमत् (ब्रह्म) बृहद्धनम् (कुशिकासः) उत्कर्षं प्राप्ताः (आ) (ईरिरे) प्राप्नुवन्ति (एकएकः) जनः (दमे) गृहे (अग्निम्) (सम्) (ईधिरे) प्रदीपयेयुः॥ १५॥

अन्वयः—हे मनुष्या ये मरुतामिवाऽमित्रायुधः प्रयाः प्रथमजाः कुशिकास एकएको दमेऽग्निं समीधिरे ये च ब्रह्मणो विश्वं विदुस्त इदेव द्युम्नवद्ब्रह्मेरिरे॥ १५॥

भावार्थः—अत्रोपमालं०—यथा वायवः सर्वत्र विजयिनोऽग्न्यादिप्रदीपका विश्वव्यापिनः सर्वान् जीवयित्वाऽऽनन्दयन्ति तथैवाग्न्यादिपदार्थविद्यायुक्ताः सर्वानानन्दयन्ति ॥ १५ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (मरुतामिव) मनुष्यों के सदृश (अमित्रायुधः) शत्रुओं के ऊपर शस्त्र चलाने (प्रयाः) शीघ्र चलने वाले (प्रथमजाः) प्रथम कारण से उत्पन्न (कुशिकासः) उच्च पदवी को प्राप्त (एकएकः) प्रत्येक जन (दमे) गृह में (अग्निम्) अग्नि को (सम्) (ईधिरे) प्रज्वलित करैं और जो (ब्रह्मणः) परमात्मा के (विश्वम्) सम्पूर्ण जगत् को (विदुः) जानते हैं वे (इत्) ही (द्युम्नवत्) उत्तम यश युक्त (ब्रह्म) बहुत धन को (आ, ईरिरे) प्राप्त होते हैं ॥ १५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जैसे पवन सम्पूर्ण स्थानों में प्रबलता से प्राप्त होने अग्नि आदि पदार्थों को प्रज्वलित करने और संसार में व्यापक होने वाले सम्पूर्ण जीवों के प्राणों की रक्षा करके आनन्द देते हैं वैसे ही अग्नि आदि पदार्थों की विद्यायुक्त पुरुष सम्पूर्ण जनों के लिये आनन्द देते हैं ॥१५॥

अथ केषां निश्चलमैश्वर्यं जायत इत्याह ॥

अब किन पुरुषों को निश्चल ऐश्वर्य प्राप्त होता इस वि० ॥

यद॒द्य त्वा॑ प्रय॒ति य॒ज्ञे अ॒स्मिन् होत॑श्चिकि॒त्वोऽवृ॑णीमही॒ह। ध्रु॒वम॑या ध्रु॒वमु॒ताश॑मिष्ठाः प्रजा॒नन्वि॒द्वाँ उप॑ याहि॒ सोम॑म् ॥ १६ ॥ ३४ ॥ २ ॥ १ ॥

यत्। अ॒द्य। त्वा॒। प्र॒ऽय॒ति। य॒ज्ञे। अ॒स्मिन्। होत॒रिति॑। चि॒कि॒त्वः॒। अवृ॑णीमहि। इ॒ह। ध्रु॒वम्। अ॒याः॒। ध्रु॒वम्। उ॒त। अ॒श॒मि॒ष्ठाः॒। प्र॒ऽजा॒नन्। वि॒द्वान्। उप॑। या॒हि॒। सोम॑म् ॥ १६ ॥ ३४ ॥ १ ॥ २ ॥

पदार्थः—(यत्) ये (अद्य) इदानीम् (त्वा) त्वाम् (प्रयति) प्रयत्नसाध्ये (यज्ञे) संङ्गन्तव्ये व्यवहारे (अस्मिन्) (होतः) साधनोपसाधनानामादातः (चिकित्वः) विज्ञानवन् (अवृणीमहि) वृणुयाम (इह) अस्मिन्संसारे (ध्रुवम्) निश्चलम् (अयाः) यजेः । अत्र लङ् मध्यमैकवचने शपो लुक् श्वेतवाहादित्वात्पदान्ते डस् (ध्रुवम्) (उत) अपि (अशमिष्ठाः) शमयेः (प्रजानन्) विद्वान् (उप) (याहि) प्राप्नुहि (सोमम्) ऐश्वर्य्यम् ॥१६॥

अन्वयः—हे चिकित्वो होतो यद्ये वयमद्यास्मिन्प्रयति यज्ञे यं त्वाऽवृणीमहि स त्वमिहध्रुवमशमिष्ठा उताऽपि प्रजानन् ध्रुवमयाः विद्वाँस्संस्त्वं सोममुपयाहि ॥ १६ ॥

भावार्थः—येऽस्मिन्संसारे प्रयत्नेन सृष्टिपदार्थविद्याक्रमं जानन्ति ते सततमुपयोगं ग्रहीतुं शक्नुवन्ति तेषां ध्रुवमैश्वर्यं भवतीति ॥१६॥

अत्राग्निवायुविद्वद्गुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिर्वेद्या॥

इति तृतीयाष्टके प्रथमोऽध्यायश्चतुस्त्रिंशत्तमो वर्गश्च तृतीयमण्डले द्वितीयोऽनुवाक एकोनत्रिंशत्तमं सूक्तं च समाप्तम् ॥

पदार्थः—हे (चिकित्वः) विज्ञानयुक्त (होतः) साधन जो मुख्य कारण उपसाधन अर्थात् सहायि कारणों के ग्रहण कर्त्ता (यत्) जो हम लोग (अद्य) इस समय (अस्मिन्) इस (प्रयति) प्रयत्न से सिद्ध और (यज्ञे) ऐकमत्य होने योग्य व्यवहार में जिन (त्वा) आप को (अवृणीमहि) स्वीकार करें वह आप (इह) इस संसार में (ध्रुवम्) दृढ़ स्थिर (अशमिष्ठाः) शान्ति करो (उत) और भी (प्रजानन्) विज्ञानयुक्त हुए (ध्रुवम्) निश्चल धर्म को (अयाः) संगत कीजिये (विद्वान्) विद्वान् पुरुष आप (सोमम्) ऐश्वर्य्य को (उप) (याहि) प्राप्त होइये ॥ १६ ॥

भावार्थः—जो लोग इस संसार में प्रयत्न से सृष्टि के पदार्थों के विद्या क्रम को जानते हैं वे निरन्तर उन पदार्थों से उपकार ग्रहण कर सक्ते हैं उन के निश्चय से ऐश्वर्य होता है ॥ १६ ॥

इस सूक्त में अग्नि वायु और विद्वान् के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त में कहे अर्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह उनतीसवां सूक्त द्वितीय अनुवाक और चौतीशवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्याणां श्रीपरमविदुषां विरजानन्दसरस्वतीस्वामिनां शिष्येण परमहंसपरिव्राजकाचार्येण श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिनानिर्मिते संस्कृतार्यभाषाभ्यां विभूषिते सुप्रमाणयुक्त ऋग्वेदभाष्ये तृतीयाष्टकस्य प्रथमाध्यायः समाप्तः ॥

अथ तृतीयाष्टके द्वितीयाऽध्यायारम्भः ॥

——:-*-:-*-:-*-:——

ओ३म् विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव ।
यद्भ॒द्रं तन्न॒ आसु॑व ॥ १ ॥

अथ द्वाविंशर्चस्य त्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य विश्वामित्र ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ । २ । ९ । १० । ११ । १४ । १७ । २० निचृत्त्रिष्टुप् । ५ । ६ । ८ । १३ । १९ । २१ । २२ त्रिष्टुप् । १२ । १५ विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ३ । ४ । ७ । १६ । १८ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अथ विदुषः कृत्यमुपदिश्यते ॥

अब तृतीयाष्टक के द्वितीय अध्याय और तीसरे मण्डल में बाईस ऋचा वाले तीशवें सूक्त का प्रारम्भ है उस के पहिले मन्त्र से विद्वान् के कर्त्तव्य का उपदेश करते हैं ॥

इ॒च्छन्ति॑ त्वा सो॒म्यास॒ः सखा॑यः सु॒न्वन्ति॒ सोम॒ं दध॑ति॒ प्रयां॑सि । तिति॑क्षन्ते अ॒भिश॑स्ति॒ जना॑ना॒मिन्द्र॒ त्वदा कश्च॒न हि प्र॑के॒तः ॥ १ ॥

इ॒च्छन्ति॑ । त्वा॒ । सो॒म्यास॑ः । सखा॑यः । सु॒न्वन्ति॑ । सोम॑म् । दध॑ति । प्रयां॑सि । तिति॑क्षन्ते । अ॒भिऽश॑स्तिम् । जना॑नाम् । इन्द्र॑ । त्वत् । आ । कः । च॒न । हि । प्र॒ऽके॒तः ॥१॥

पदार्थः—(इच्छन्ति) (त्वा) त्वाम् (सोम्यासः) (सखायः) (सुन्वन्ति) निष्पादयन्ति (सोमम्) परमैश्वर्य्यम् (दधति) (प्रयांसि) कमनीयानि वस्तूनि (तितिक्षन्ते) सहन्ते (अभिशस्तिम्) अभितो हिंसाम् (जनानाम्) मनुष्याणाम् (इन्द्र) परमैश्वर्यप्रद (त्वत्) तव सकाशात् (आ) (कः) (चन) कश्चिदपि (हि) यतः (प्रकेतः) प्रकृष्टा केतः प्रज्ञा यस्य सः ॥ १ ॥

अन्वयः—हे इन्द्र ये सोम्यासः सखायस्त्वेच्छन्ति ते सोमं सुन्वन्ति प्रयांसि दधति जनानामभिशस्तिमा तितिक्षन्ते हि यतस्त्वदन्यः कश्चन प्रकेतो नास्ति तस्मादेतान्सर्वदा रक्ष ॥ १ ॥

भावार्थः—ये सुहृदो भूत्वा प्रयत्नेनैश्वर्यमिच्छन्ति ते सुखदुःखनिन्दादिकं सोढ्वा विद्वत्सङ्गं कृत्वाऽऽनन्दं वर्धयेयुः ॥ १ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) परमऐश्वर्य के दाता जो (सोम्यासः) परस्पर स्नेह रस के वर्द्धक (सखायः) मित्र भाव से वर्त्तमान (त्वा) आप की (इच्छन्ति) इच्छा करते हैं वे (सोमम्) परमऐश्वर्य को (सुन्वन्ति) सिद्ध करते (प्रयांसि) कामना करने योग्य वस्तुओं को (दधति) धारण करते और (जनानाम्) मनुष्य लोगों की (अभिशस्तिम्) चारों ओर से हिंसा को (आ) (तितिक्षन्ते) सहते हैं (हि) जिस से (त्वत्) आप से अन्य (कः) (चन) कोई भी पुरुष (प्रकेतः) उत्तम बुद्धि वाला नहीं है इस से इन मनुष्यों की सर्वदा रक्षा कीजिये ॥ १ ॥

भावार्थः—जो लोग परस्पर मित्रभाव से वर्त्ताव करते हुए प्रयत्न के साथ ऐश्वर्य की इच्छा करते हैं वे सुख दुःख निन्दा आदि को सह और विद्वानों का संग करके आनन्द को बढ़ावें ॥ १ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

न ते दूरे परमा चिद्रजांस्या तु प्र याहि ह-
रिवो हरिभ्याम् । स्थिराय वृष्णे सवना कृतेमा
युक्ता ग्रावाणः समिधाने अग्नौ ॥ २ ॥

न । ते । दूरे । परमा । चित् । रजांसि । आ । तु । प्र ।
याहि । हरिऽवः । हरिऽभ्याम् । स्थिराय । वृष्णे । सवना ।
कृता । इमा । युक्ताः । ग्रावाणः । सम्ऽइधाने । अग्नौ ॥२॥

पदार्थः—(न) निषेधे (ते) तव (दूरे)(परमा) परमाण्युत्कृ-ष्टानि (चित्) अपि (रजांसि) लोकस्थानानि (आ) (तु) (प्र) (याहि) (हरिवः) प्रशस्ताऽश्वयानयुक्त (हरिभ्याम्) अश्वाभ्याम् (स्थिराय) (वृष्णे) बलाय (सवना) ऐश्वर्य-साधकानि कर्माणि (कृता) कृतानि (इमा) इमानि (युक्ताः) उद्युक्ताः (ग्रावाणः) मेघाः । ग्रावाण इति मेघना० निघं० १ । १० (समिधाने) प्रदीप्यमाने (अग्नौ) वह्नौ ॥ २ ॥

अन्वयः—हे हरिवस्त्वं हरिभ्यां प्रयाह्येवं कृते परमा रजांसि ते दूरे न भविष्यन्ति यदि समिधानेऽग्नौ स्थिराय वृष्णे कृतेमा सवना कुर्य्यास्तदा तु युक्ता ग्रावाणश्चिद्बहवो भवेयुः ॥ २ ॥

भावार्थः—यदि मनुष्याः शीघ्रगाम्यश्वैर्देशान्तरं जिगमिषेयुस्तर्हि सर्वं सनीडमेवास्ति । यदि नियमेन वह्निं प्रज्वाल्य तत्र हविर्जुहुयु-स्तर्हि वर्षापि सुगमैवास्तीति ज्ञेयम् ॥ २ ॥

पदार्थः—हे (हरिवः) उत्तम घोड़ों के वाहनों से युक्त आप (हरिभ्याम्) घोड़ों से (प्र) (आ, याहि) आइये ऐसा करने से (परमा) उत्तम (रजांसि) लोकों के स्थान (ते) आप के (दूरे) दूर (न) नहीं होंगे जो (समिधाने) हवन करने योग्य प्रदीप्त किये जाते हुए (अग्नौ) अग्नि में (स्थिराय) दृढ़ (वृष्णे) बलवान् के लिये (कृता) किये गये (इमा) इन (सवना) ऐश्वर्य वृद्धि के साधक कर्मों को करो तो (नु) तो (युक्ताः) उद्यत (ग्रावाणः) मेघ (चित्) भी बहुत से होवें ॥ २ ॥

भावार्थः—मनुष्य यदि शीघ्र चलने वाले घोड़ों से देशान्तर जाने की इच्छा करें तो सब समीप ही है। यदि नियम से अग्नि को प्रज्वलित कर उस में होम करें तो वर्षा होना सुगम ही जानो ॥ २ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

इन्द्रः॑ सुशि॒प्रो म॒घवा॒ तरु॑त्रो म॒हाव्रा॑तस्तुवि॒कूर्मि॒र्ऋघा॑वान्। यदु॒ग्रो धा बा॑धि॒तो मर्त्ये॑षु॒ क्व१॒॑त्या ते॑ वृषभ वी॒र्या॑णि ॥ ३ ॥

इन्द्रः॑। सु॒ऽशि॒प्रः। म॒घऽवा॑। तरु॑त्रः। म॒हाऽव्रा॑तः। तु॒वि॒ऽकू॒र्मिः। ऋघा॑वान्। यत्। उ॒ग्रः। धाः। बा॒धि॒तः। मर्त्ये॑षु। क्व॑। त्या। ते॒। वृ॒ष॒भ॒। वी॒र्या॑णि ॥ ३ ॥

पदार्थः—(इन्द्रः) परमैश्वर्ययुक्तः (सुशिप्रः) शोभनहनुनासिकः (मघवा) परमपूजितधनयुक्तः (तरुत्रः) दुःखेभ्यस्तारकः (महाव्रातः) महान्तो व्राता व्रतेषु कुशला जनाः सखायो यस्य सः (तुविकूर्मिः) तुविर्बहुविधः कूर्मिः कर्मयोगो यस्य सः

(ऋघावान्) य ऋन् शत्रून् घ्नन्ति ते वा बहवः शूरा विद्यन्ते यस्य । अत्र हनधातोर्वर्णव्यत्ययेन हस्य घो नलोपश्च (यत्) यानि (उग्रः) तेजस्विस्वभावः (धाः) धेहि (बाधितः) विलोडितः (मर्त्येषु) (क्व) कस्मिन् (त्या) तानि (ते) तव (वृषभ) बलिष्ठ (वीर्याणि) वीरेषु साधूनि बलानि ॥ ३ ॥

अन्वयः—हे वृषभ मर्त्येषु बाधितः उग्रः सन् यद्यानि दुःखनिवारणानि धास्ते तव त्या वीर्याणि क्व सन्ति । एवं सुशिप्रो मघवा तरुत्रो महाव्रातस्तुविकूर्मिर्ऋघावानिन्द्रस्त्वं भवेः ॥ ३ ॥

भावार्थः—यदा मनुष्यस्यानेकविधा बाधाः समुत्थिताः स्युस्तदाऽनेकानुपायान्युञ्जीत । एवं पुरुषार्थेन विघ्नानि निवार्य श्रीबले सततं वर्धनीये ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे (वृषभ) बलिष्ठ (मर्त्येषु) मनुष्यों में (बाधितः) पीड़ित (उग्रः) तेजस्वी स्वभाव से युक्त (यत्) जो दुःख दूर करने वाले हैं उन को (धाः) धारण करो (ते) आप के (त्या) वे (वीर्य्याणि) वीर पुरुषों में हुए योग्य बल (क्व) किस में हैं इस प्रकार (सुशिप्रः) सुन्दर ठोढ़ी और नासिकायुक्त (मघवा) अत्यन्त श्रेष्ठ धन से युक्त (तरुत्रः) दुःखों से छुड़ाने वाला (महाव्रातः) सत्य आदि व्रतों में श्रद्धालु पुरुषों का मित्र (तुविकूर्मिः) बहुत प्रकार के कर्मों के आरम्भ में उत्साही (ऋघावान्) शत्रुओं के नाशकर्त्ता बहुत से शूरवीरों के सहित वर्त्तमान (इन्द्रः) अत्यन्त ऐश्वर्य्य से युक्त आप होवैं ॥ ३ ॥

भावार्थः—जब मनुष्य के अनेक प्रकार की पीड़ायें प्रकट हों तब बहुत से उपायों को युक्त करें इस प्रकार पुरुषार्थ से विघ्नों को दूर करके शोभा और बल निरन्तर बढ़ाने योग्य हैं ॥ ३ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥
फिर उसी वि० ॥

त्वं हि ष्मा च्यावयन्नच्युतान्येको वृत्रा चरसि जिघ्नमानः । तव द्यावापृथिवी पर्वतासोऽनु व्रताय निमितेव तस्थुः ॥ ४ ॥

त्वम् । हि । स्म । च्यवयन् । अच्युतानि । एकः । वृत्रा । चरसि । जिघ्नमानः । तव । द्यावापृथिवी इति । पर्वतासः । अनु । व्रताय । निमिताइव । तस्थुः ॥ ४ ॥

पदार्थः—(त्वम्) राजन् (हि) (स्म) एव । अत्र निपातस्य चेति दीर्घः (च्यावयन्) प्रचालयन् निपातयन् (अच्युतानि) अक्षीणानि शत्रुसैन्यानि (एकः) असहायः (वृत्रा) मेघावयवरूपाणि घनानि (चरसि) (जिघ्नमानः) हनन् सन् (तव) (द्यावापृथिवी) प्रकाशभूमी (पर्वतासः) पर्वताकारा मेघाः (अनु) (व्रताय) सत्यभाषणादिकर्मणे तच्छीलाय वा (निमितेव) नितरां मितानीव (तस्थुः) तिष्ठन्ति ॥ ४ ॥

अन्वयः-हे राजन् त्वमेको ह्यच्युतानि च्यावयन् स्म चरसि यथा सूर्यस्य सम्बन्धे द्यावापृथिवी पर्वतासो वृत्रा निमितेव तस्थुस्तथैवानुव्रताय शत्रून् जिघ्नमानो भवेस्तर्हि ते तव ध्रुवो विजयः स्यात् ॥ ४ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालं०—यथा सूर्यो नियमेन वर्त्तित्वा निवारणीयानि निवार्य्य रक्षणीयानि रक्षति तथैव भवान् प्रतिषेद्धव्यान् शत्रून्प्रतिषेध्य प्रजाः सततं रक्षेत् ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे राजन् (त्वम्) आप (एकः) सहाय के विना स्वयं बलवान् (हि) जिस से (अच्युतानि) प्रबल शत्रुओं की सेनाओं को (च्यावयन्) भय से गिराते हुए (स्म) ही (चरसि) वर्त्तमान हैं जैसे सूर्य के सम्बन्ध में (द्यावापृथिवी) प्रकाश और भूमि (पर्वतासः) पर्वत के सदृश बड़े २ मेघ और (वृत्रा) मेघों के टुकड़े रूप वद्दल (निमितेव) जैसे निरन्तर प्रमाण किये हुए पदार्थ वैसे (तस्थुः) स्थिर होते हैं वैसे ही (अनु) (व्रताय) सत्यभाषण आदि कर्म वा उत्तम स्वभाव के लिये शत्रुओं का (जिघ्रमानः) नाश कर्त्ता होओ तो (ते) आप का निश्चय से विजय होवै ॥ ४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जैसे सूर्य नियम पूर्वक वर्त्तमान हो के निवारण करने योग्य पदार्थों का निवारण करके रक्षा करने योग्य पदार्थों की रक्षा करता है वैसे ही आप वर्जने योग्य शत्रुओं का वर्जन करके प्रजाओं की निरन्तर रक्षा कीजिये ॥ ४ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥
फिर उसी वि० ॥

उताभये पुरुहूत श्रवोभिरेको दृळहमवदो वृत्रहा सन् । इमे चिदिन्द्र रोदसी अपारे यत्संगृभ्णा मघवन्काशिरित्ते ॥ ५ ॥ १ ॥

उत । अभये । पुरुऽहूत । श्रवःऽभिः । एकः । दृळहम् । अवदः । वृत्रऽहा । सन् । इमे इति । चित् । इन्द्र । रोदसी इति । अपारेऽइति । यत् । सम्ऽगृभ्णाः । मघऽवन् । काशिः । इत् । ते ॥ ५ ॥ १ ॥

पदार्थः—(उत) अपि (अभये) भयरहिते व्यवहारे (पुरुहूत) बहुभिः प्रशंसित (श्रवोभिः) अनेकविधैः श्रवणैः (एकः) असहायः (दृळम्) (अवदः) वदेः (वृत्रहा) सूर्यवत् (सन्) (इमे) (चित्) अपि (इन्द्र) सूर्यवद्वर्त्तमान (रोदसी)

द्यावापृथिवी (अपारे) अविद्यमानाऽवधी (यत्) या (सङ्गृभ्णाः) सङ्गृह्णीयाः (मघवन्) बहुधनयुक्त (काशिः) न्यायविनयादि-शुभगुणप्रदीप्तिः (इत्) एव (ते) तव ॥ ५ ॥

अन्वयः—हे पुरहूत मघवन्निन्द्र त्वमेकस्सन्नभये श्रवोभिः सह दृढमवद उतापि यथा वृत्रहा सूर्य्यश्चिदिमेऽपारे रोदसी सङ्गृह्णाति तथा भूतः सन् यद्या ते काशिरस्ति तामित्सङ्गृभ्णाः ॥ ५ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—राजपुरुषैरनेकोपायैः प्रजासु निर्भ-यता संपादनीया सूर्य्यवन्न्यायविद्या प्रकाशनीया ॥ ५ ॥

पदार्थः—हे (पुरुहूत) बहुत जनों से प्रशंसित (मघवन्) बहुत धन से युक्त (इन्द्र) सूर्य्य के तुल्य प्रकाशमान आप (एकः) बिना सहाय स्वयं बलवान् (सन्) हुए (अभये) भय से रहित व्यवहार में (श्रवोभिः) अनेक प्रकार के सुनने योग्य वचनों के सहित (दृढम्) निश्चय (अवदः) बोलैं (उत) और भी जैसे (वृत्रहा) सूर्य्य (चित्) भी (इमे) इन (अपारे) अवधि रहित (रोदसी) अन्तरिक्ष और पृथिवी को प्राप्त होता है वैसे हो कर (यत्) जो (ते) आप के (काशिः) न्याय विनय आदि उत्तम गुणों का प्रकाश है उस को (इत्) ही (सङ्गृभ्णाः) ग्रहण करैं ॥ ५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु० राजा के पुरुषों को चाहिये कि अनेक प्रकार के उपायों से प्रजाओं में उपद्रवों से भय का नाश और सूर्य के तुल्य न्यायविद्या का प्रकाश करैं ॥ ५ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

प्र सू त इन्द्र प्रवता हरिभ्यां प्र ते वज्रः प्रमृ-णन्नेतु शत्रून् । जहि प्रतीचो अनूचः पराचो विश्वं सत्यं कृणुहि विष्टमस्तु ॥ ६ ॥

प्र । सु । ते । इन्द्र । प्रऽवता । हरिऽभ्याम् । प्र । ते । वज्रः । प्रऽमृणन् । एतु । शत्रून् । जहि । प्रतीचः । अनूचः । पराचः । विश्वम् । सत्यम् । कृणुहि । विष्टम् । अस्तु ॥६॥

पदार्थः—(प्र) (सु) (ते) तव (इन्द्र) सूर्य्यइव वर्त्त-मान (प्रवता) अर्वाचीनेन मार्गेण (हरिभ्याम्) सुशिक्षिताभ्यामश्वाभ्याम् (प्र) (ते) तव (वज्रः) किरण इव शस्त्रसमूहः (प्रमृणन्) प्रकर्षेण हिंसन् (एतु) प्राप्नोतु (शत्रून्) दुष्टकर्म-कर्तॄन् (जहि) हिंधि (प्रतीचः) पश्चात् स्थितान् (अनूचः) कपटेनानुकूलान् (पराचः) पराग्भूतान् दूरस्थान् (विश्वम्) (सत्यम्) (कृणुहि) (विष्टम्) व्याप्तम् (अस्तु) ॥ ६ ॥

अन्वयः—हे इन्द्र हरिभ्यां युक्ते रथे प्रवता मार्गेण भवान् वज्र इव शत्रून्प्रमृणन्प्रैतु । एवं ते विजयो भवति त्वं प्रतीचोऽनूचः पराचः शत्रून्प्रजहि विश्वं सत्यं सुकृणुहि यतो विष्टं चास्तु एवं ते सत्कीर्त्तिः प्रवर्त्तेत ॥ ६ ॥

भावार्थः—ये मनुष्या दुष्टाचारिणो मनुष्यादिप्राणिनो निरुध्य सत्यं प्रवर्त्तयेयुस्ते सुखेनानन्दमाप्नुयुः ॥ ६ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) सूर्य के सदृश प्रकाशमान (हरिभ्याम्) उत्तम प्रकार शिक्षायुक्त घोड़ों से युक्त रथ में (प्रवता) उत्तम मार्ग से आप जैसे (वज्रः) किरणों के सदृश शस्त्रों का समूह और (शत्रून्) दुष्ट कर्म करने वालों को (प्रमृणन्) अत्यन्त नाश करते हुए (प्र, एतु) प्राप्त हूजिये इस प्रकार (ते) आप का विजय होता है आप (प्रतीचः) पीछे वर्त्तमान (अनूचः) और कपट से अनुकूल अर्थात् (पराचः) दूर स्थल में विराजमान शत्रुओं को (प्र) (जहि) हिंसा करो तथा (विश्वम्) संपूर्ण (सत्यम्) सत्य को (सुकृणुहि) अच्छे प्रकार बढ़ाओ जिस से वह (विष्टम्) व्याप्त (अस्तु) हो ॥ ६ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य दुष्ट आचरण करने वाले मनुष्य आदि प्राणियों का निवारण करके सत्य का प्रचार करें वे सुख से आनन्द भोगते हैं ॥ ६ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

यस्मै धायुरदधा मर्त्यायाभक्तं चिद्भजते गेह्यं १ सः। भद्रा त इन्द्र सुमतिर्घृताची सहस्रदाना पुरुहूत रातिः ॥ ७ ॥

यस्मै। धायुः। अदधाः। मर्त्याय। अभक्तम्। चित्। भजते। गेह्यम्। सः। भद्रा। ते। इन्द्र। सुऽमतिः। घृताची। सहस्रऽदाना। पुरुऽहूत। रातिः ॥ ७ ॥

पदार्थः—(यस्मै) (धायुः) यो दधाति सः (अदधाः) दध्याः (मर्त्याय) मनुष्याय (अभक्तम्) विभागरहितम् (चित्) अपि (भजते) सेवते (गेह्यम्) गृहेषु गृहेषु भवम् (सः) (भद्रा) कल्याणकरी (ते) तव (इन्द्र) सुखप्रदातः (सुमतिः) शोभना प्रज्ञा (घृताची) सुखप्रदा रात्रीव (सहस्रदाना) असंख्यप्रदाना (पुरुहूत) बहुभिः सेवित (रातिः) दानक्रिया ॥७॥

अन्वयः—हे पुरुहूतेन्द्र भवान् यस्मै मर्त्यायाऽभक्तं गेह्यं भजते यस्मै धायुश्चिदपि सुखमदधास्तस्य ते या घृताचीव भद्रा सुमतिः सहस्रदाना रातिरस्ति तां स कुर्य्यात् ॥ ७ ॥

भावार्थः—ये मनुष्या पितृपैतामहं धनादिकमभक्तं सेवेरन् अन्योऽन्यस्य दोषाँस्त्यक्त्वा गुणान् गृह्णीयुस्ते कल्याणभाजो भवेयुः ॥७॥

पदार्थः-(पुरुहूत) (इन्द्र) सुख के दाता आप (यस्मै) जिस (मर्त्याय) मनुष्य के लिये (अभक्तम्) विभाग से रहित (गेह्यम्) गृह गृह में उत्पन्न हुए धन की (भजते) सेवा करते हैं जिस के लिये (धायुः) उत्तम पदार्थों के धारण कर्त्ता (चित्) भी आप सुख को (अदधाः) धारण करैं उन (ते) आप की जो (घृताची) सुख देने वाली रात्रि के सदृश (भद्रा) कल्याण करने वाली (सुमतिः) उत्तम बुद्धि और (सहस्रदाना) असंख्य दान जिस्में दिये जाते हों ऐसी (रातिः) दान सम्बन्धनी क्रिया है उस को (सः) वह स्वीकार करै ॥ ७ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य पिता और पितामह का धन आदि जो कि नहीं बटा हुआ उस की रक्षा वा सेवा करें और परस्पर दोषों को त्याग के गुणों का ग्रहण करैं वे कल्याण के भागी होवैं ॥ ७ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

सहदानुं पुरुहूत क्षियन्तमहस्तमिन्द्र सं पिणक्कुणारुम् । अभि वृत्रं वर्धमानं पियारुमपादमिन्द्र तवसा जघन्थ ॥ ८ ॥

सहऽदानुम् । पुरुऽहूत । क्षियन्तम् । अहस्तम् । इन्द्र । सम् । पिणक् । कुणारुम् । अभि । वृत्रम् । वर्धमानम् । पियारुम् । अपादम् । इन्द्र । तवसा । जघन्थ ॥ ८ ॥

पदार्थः-(सहदानुम्) दानेन सह वर्त्तमानम् (पुरुहूत) बहुभिः प्रशंसित (क्षियन्तम्) निवसन्तम् (अहस्तम्) अविद्यमानम् (इन्द्र) सूर्य्यवद्वर्त्तमान (सम्) सम्यक् (पिणक्) पिंष्याः (कुणारुम्) शब्दायमानम् (अभि) आभिमुख्ये (वृत्रम्)

मेघम् (वर्धमानम्) (पियारुम्) पीयमानम् (अपादम्) पादरहितम् (इन्द्र) दुषानां विदारक (तवसा) बलेन (जघन्थ) जह्याः ॥८॥

अन्वयः—हे पुरुहूतेन्द्र यथा सूर्य्यः सह दानुं क्षियन्तमहस्तं कुणारुं वर्धमानं पियारुमपादं वृत्रं मेघमभिपिनाष्टि तथा शत्रून् भवान् संपिणक्। हे इन्द्र त्वं तवसा दुष्टान् जघन्थ ॥ ८ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यथा सूर्य्यो मेघाकर्षणवर्षणाभ्यां सर्वं जगत्पाति तथैव दुष्टानां घातेन श्रेष्ठानां धारणेन च सर्वाः प्रजाः पालनीयाः ॥ ८ ॥

पदार्थः—हे (पुरुहूत) बहुत जनों से प्रशंसित अर्थात् यश को प्राप्त (इन्द्र) सूर्य्य के सदृश तेजस्वी जैसे (सहदानुम्) दान से युक्त (क्षियन्तम्) रहते हुए (अहस्तम्) अविद्यमान (कुणारुम्) शब्द करते और (वर्द्धमानम्) बढ़ते हुए (पियारुम्) पियेगये (अपादम्) पादों से हीन (वृत्रम्) मेघ को (अभि) सन्मुख पीसता है वैसे शत्रुओं का आप (सम्, पिणक्) नाश करो और (इन्द्र) हे दुष्टों को विदीर्ण करने वाले आप (तवसा) बल से दुष्ट पुरुषों का (जघन्थ) नाश करें ॥ ८ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे सूर्य्य मेघों के आकर्षण और वर्षाने से सम्पूर्ण जगत् को पालता है वैसे ही दुष्टों के नाश करने और श्रेष्ठ पुरुषों के धारण करने से राजा को सम्पूर्ण प्रजाओं की पालना करनी चाहिये ॥८॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

नि सा॒मना॑मिषि॒रामि॑न्द्र॒ भूमिं॑ म॒हीम॑पा॒रां सद॑ने ससत्थ। अस्त॑भ्नाद् द्यां वृ॑ष॒भो अ॒न्तरि॑क्षम॒र्षन्त्वाप॒स्त्वये॒ह प्रसू॑ताः ॥ ९ ॥

नि । सामनाम् । इषिराम् । इन्द्र । भूमिम् । महीम् । अपाराम् । सदने । ससत्थ । अस्तभ्नात् । द्याम् । वृषभः । अन्तरिक्षम् । अर्षन्तु । आपः । त्वया । इह । प्रऽसूताः ॥९॥

पदार्थः—(नि) (सामनाम्) प्रशस्तानि सामानि विद्यन्ते यस्यां ताम् (इषिराम्) बहुपदार्थप्रापिकाम् (इन्द्र) सवितेव राजन् (भूमिम्) बहवः पदार्था भवन्ति यस्यां ताम् (महीम्) परिमाणेन महतीम् (अपाराम्) पाररहिताम् (सदने) स्थाने (ससत्थ) सीद (अस्तभ्नात्) स्तभ्नाति (द्याम्) (वृषभः) वर्षकः (अन्तरिक्षम्) आकाशं वा (अर्षन्तु) प्राप्नुवन्तु (आपः) जलानि (त्वया) (इह) (प्रसूताः)॥ ९ ॥

अन्वयः—हे इन्द्र राजँस्त्वं यथा वृषभो द्यामस्तभ्नात्तथा सामनामिषिरां महीमपारां भूमिं प्राप्येह सदने निससत्थ त्वया प्रसूता आपोऽन्तरिक्षमर्षन्तु ॥ ९ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यथा सूर्यो नियमेन प्रकाशं भूमिं च धरति तथैव न्यायेन राज्यं राजा धरेत् । सदैव प्रजासु बलानि वर्धयेत् ॥ ९ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) सूर्य्य के तुल्य प्रकाश से युक्त राजन् आप जैसे (वृषभः) वृष्टिकर्त्ता सूर्य (द्याम्) अन्तरिक्ष को (अस्तभ्नात्) पुष्टता से धारण कर्त्ता है वैसे (सामनाम्) उत्तम उपमाओं से युक्त (इषिराम्) बहुत पदार्थों की प्राप्ति कराने वाली (महीम्) बड़े परिमाण से युक्त (अपाराम्) जिस का पार नहीं (भूमिम्) जिस में बहुत पदार्थ होते हैं उस भूमि को प्राप्त हो कर (इह) इस (सदने) स्थान में (नि, ससत्थ) बैठो (त्वया) आप से (प्रसूताः) प्रेरित हुए (आपः) जल (अन्तरिक्षम्) आकाश को (अर्षन्तु) प्राप्त होवैं ॥९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे सूर्य्य नियम पूर्वक प्रकाश और भूमि को धारण करता है वैसे ही न्याय से राजा राज्य को धारण करे और सब काल में प्रजाओं में ही बल बढ़ाया करे॥ ९॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी वि०॥

अलातृणो बल इन्द्र व्रजो गोः पुरा हन्तोर्भयमानो व्यार। सुगान्पथो अकृणोन्निरजे गाः प्रावन्वाणीः पुरुहूतं धमन्तीः॥ १०॥ २॥

अलातृणः। बलः। इन्द्र। व्रजः। गोः। पुरा। हन्तोः। भयमानः। वि। आर। सुऽगान्। पथः। अकृणोत्। निःऽअजे। गाः। प्र। आवन्। वाणीः। पुरुऽहूतम्। धमन्तीः॥१०॥२॥

पदार्थः—(अलातृणः) योऽलं तृणाति सः (बलः) बलवान् (इन्द्र) परमैश्वर्य्यप्रापक (व्रजः) यो व्रजति गच्छेत् सः (गोः) पृथिव्याः (पुरा) (हन्तोः) हन्तुम् (भयमानः) भयं प्राप्तः। अत्र व्यत्ययेन शानच् (वि, आर) विशेषेण गच्छति (सुगान्) सुखेन गच्छति येषु तान् (पथः) मार्गान् (अकृणोत्) कुर्य्यात् (निरजे) नितरां गमनाय (गाः) या गच्छन्ति ताः (प्र) (आवन्) प्रकर्षेण रक्षन्ति (वाणीः) सुशिक्षिता वाचः (पुरुहूतम्) बहुभिः प्रशंसितम् (धमन्तीः) शब्दयन्त्यः॥१०॥

अन्वयः—हे इन्द्र अलातृणो बलो व्रजो भयमानोभवान् सुगान्पथोव्यार यः पुरा गोर्हन्तोरकृणोद्या पुरुहूतं धमन्तीर्वाणीर्गाः प्रावन्तं ताश्च निरजे व्यार॥ १०॥

भावार्थः—मनुष्यैः सदैवाऽधर्माचरणाद्भीत्वा धर्म्ये प्रवर्त्तितव्यं दुर्व्यसनानि हत्वा धर्म्यमार्गेण गन्तव्यम् ॥ १० ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) श्रेष्ठ ऐश्वर्य्य के दाता (अलातृणः) सम्पूर्ण संसार के प्रलयकर्त्ता (बलः) बलयुक्त (व्रजः) चलने वाले (भयमानः) भय को प्राप्त होते हुए आप (सुगान्) सुख से जिन में मनुष्य आदि चलैं ऐसे (पथः) मार्गों को (वि) (आर) विशेष कर के प्राप्त होइये जो (पुरा) प्रथम (गोः) पृथिवी का (हन्तोः) नाश करने को (अकृणोत्) क्रिया करै वा जो (पुरुहूतम्) बहुतों से प्रशंसायुक्त (धमन्तीः) शब्द करती हुई (वाणीः) उत्तम प्रकार शिक्षायुक्त (गाः) चलने वाली वाणी (प्र) (आवन्) अतिशय रक्षा करतीं हैं उस को और उन को (निरजे) अत्यन्त चलने के लिये विशेष करके प्राप्त हो इये ॥ १० ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि सदा ही अधर्म के आचरण से डरके धर्म में प्रवृत्त हों और बुरे व्यसनों को त्याग के धर्मयुक्त मार्ग से चलें ॥१०॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

एको॑ द्वे वसु॑मती समी॒ची इन्द्र॒ आ प॑प्रौ पृथि॒वीमु॒त द्याम् । उ॒तान्तरि॑क्षाद॒भि नः॑ समी॒क इ॒षो र॒थीः स॒युजः॑ शूर॒ वाजा॑न् ॥ ११ ॥

एकः॑ । द्वे इति॑ । वसु॑मती॒ इति॒ वसु॑ऽमती । स॒मी॒ची इति॑ स॒म्ऽई॒ची । इन्द्रः॑ । आ । प॒प्रौ । पृ॒थि॒वीम् । उ॒त । द्याम् । उ॒त । अ॒न्तरि॑क्षात् । अ॒भि । नः॒ । स॒म्ऽई॒के । इ॒षः । र॒थीः । स॒ऽयुजः॑ । शू॒र॒ । वाजा॑न् ॥ ११ ॥

पदार्थः—(एकः) असहायः (द्वे) (वसुमती) बह्वो वसवो विद्यन्ते ययोस्ते (समीची) ये सम्यगञ्चतः समानं प्राप्नुतस्ते (इन्द्रः) विद्युत् (आ) (पप्रौ) प्राति (पृथिवीम्) अन्तरिक्षं भूमिं वा (उत) अपि (द्याम्) प्रकाशम् (उत) अपि (अन्तरिक्षात्) मध्यस्थादवकाशात् (अभि) आभिमुख्ये (नः) अस्मभ्यम् (समीके) समीपे (इषः) इच्छाः (रथीः) प्रशस्तरथयुक्तः (सयुजः) ये समानं युञ्जते त (शूर) दुष्टानां हिंसक (वाजान्) अन्नादीन् ॥ ११ ॥

अन्वयः—हे शूर यथैको रथीरिन्द्रो द्वे समीची वसुमती पृथिवीमुतद्यां चापप्रौ समीकेऽन्तरिक्षात्सयुजो नोऽस्मभ्यमिष उत वाजानभि पप्रुः ते सर्वैः सत्कर्त्तव्याः ॥ ११ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—ये भूमिवत्प्रजाधारका विद्युद्वत्परमैश्वर्यप्रदाः प्रजाजनाः स्युस्ते सर्वं राज्यं रक्षितुं शक्नुयुः ॥ ११ ॥

पदार्थः—हे (शूर) दुष्टजनों के नाशकारक जैसे (एकः) सहाय रहित अकेली (रथीः) प्रशंसनीय रथरूप वाहन के सहित (इन्द्रः) बिजुली (द्वे) दो (समीची) समानता को प्राप्त (वसुमती) बहुत धनों से युक्त (पृथिवीम्) अन्तरिक्ष वा भूमि को (उत) और भी (द्याम्) प्रकाश को (आ) (पप्रौ) पूर्ण करती (समीके) समीप में (अन्तरिक्षात्) मध्य में वर्त्तमान अवकाश से (सयुजः) तुल्यता के साथ परस्पर मिले हुए मित्र जन (नः) हम लोगों के लिये (इषः) इच्छाओं को (उत) और (वाजान्) अन्न आदि वस्तुओं को (अभि) सब ओर से पूर्ण करते वे संपूर्ण जनों से सत्कार करने योग्य हैं ॥११॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो भूमि के सदृश प्रजाओं के धरण करने और बिजुली के सदृश अतिउत्तम ऐश्वर्य्य के देने वाले प्रजाजन हों वे सम्पूर्ण राज्य की रक्षा कर सकें ॥ ११ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

दिशः सूर्यो न मिनाति प्रदिष्टा दिवेदिवे हर्यश्वप्रसूताः । सं यदानळध्वन आदिदश्वैर्विमोचनं कृणुते तत्त्वस्य ॥ १२ ॥

दिशः । सूर्यः । न । मिनाति । प्रऽदिष्टाः । दिवेऽदिवे । हर्यश्वऽप्रसूताः । सम् । यत् । आनट् । अध्वनः । आत् । इत् । अश्वैः । विऽमोचनम् । कृणुते । तत् । तु । अस्य ॥ १२ ॥

पदार्थः—(दिशः) पूर्वाद्याः (सूर्यः) सविता (न) इव (मिनाति) (प्रदिष्टाः) याः प्रदिश्यन्ते ताः (दिवेदिवे) प्रतिदिनम् (हर्यश्वप्रसूताः) हरयो हरणशीला अश्वाः किरणा यस्य तेन प्रसूता जनिताः (सम्) (यत्) (आनट्) व्याप्नोति (अध्वनः) मार्गान् (आत्) आनन्तर्ये (इत्) एव (अश्वैः) तुरङ्गैः (विमोचनम्) (कृणुते) करोति (तत्) (तु) (अस्य) ॥ १२ ॥

अन्वयः—यः सूर्यो न दिवेदिवे हर्यश्वप्रसूता प्रदिष्टा दिशो मिनाति । आद्यद्योऽश्वैरध्वनः समानट् विमोचनं कृणुते तदित्त्वस्य भूषणमिति वेद्यम् ॥ १२ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालं०—यन्मनुष्या विद्याकुसंस्कारदुःखानि विमोच्य सूर्योऽन्धकारमिवाऽन्यायं निवर्त्य सर्वासु दिक्षु कीर्त्तिं प्रसारयन्ति तदेवैषां कर्त्तव्यं कर्माऽस्ति ॥ १२ ॥

पदार्थः—जो (सूर्यः) सूर्य्य के (न) तुल्य (दिवेदिवे) प्रतिदिन (हर्यश्वप्रसूताः) हरण शील किरणों वाले से उत्पन्न (प्रदिष्टाः) सूचना से

दिखाई गई (दिशः) दिशाओं को (मिनाति) अलग २ करता है (आत्) अनन्तर (यत्) जो (अश्वैः) घोड़ों से (अध्वनः) मार्गों को (सम्) (आनट्) व्याप्त होता तथा (विमोचनम्) त्याग (छुड़ाने) करता है (तत्, इत्) वही (तु) तो (अस्य) इस का भूषण है ऐसा जानना चाहिये॥ १२ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जो पुरुष अविद्या दुष्ट संस्कार और दुःखों को त्याग के जैसे सूर्य अन्धकार को दूर करता है वैसे अन्याय को दूर करके सम्पूर्ण दिशाओं में यश को फैलाते हैं यही इन का कर्त्तव्य कर्म है॥ १२॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी वि०॥

दिदृक्षन्त उषसो यामन्नक्तोर्विवस्वत्या महिं चित्रमनीकम्। विश्वे जानन्ति महिना यदागादिन्द्रस्य कर्म सुकृता पुरूणि॥ १३॥

दिदृक्षन्ते। उषसः। यामन्। अक्तोः। विवस्वत्याः। महिं। चित्रम्। अनीकम्। विश्वे। जानन्ति। महिना। यत्। आ। अगात्। इन्द्रस्य। कर्म। सुऽकृता। पुरूणि॥ १३॥

पदार्थः—(दिदृक्षन्ते) द्रष्टुमिच्छन्ति (उषसः) प्रभातान् (यामन्) यामनि मार्गे (अक्तोः) रात्रेः (विवस्वत्याः) या विवस्वति साध्व्यः (महि) महत् (चित्रम्) अद्भुतम् (अनीकम्) सैन्यम् (विश्वे) सर्वे (जानन्ति) (महिना) महिम्ना। अत्र छान्दसो वर्णलोपो वेति नलोपः (यत्) ये (आ) समन्तात् (अगात्) प्राप्नुयात् (इन्द्रस्य) विद्युतः (कर्म) कर्माणि (सुकृता) सुष्ठुकृतानि (पुरूणि) बहूनि॥ १३॥

अन्वयः—यद्ये विश्वे मनुष्या विवस्वत्या उषसोऽक्तोर्यामन् दिदृक्षन्ते महिना महि चित्रमनीकं जानन्तीन्द्रस्य पुरूणि सुकृता कर्म दिदृक्षन्ते तान्य आगात्स सुखी स्यात् ॥ १३ ॥

भावार्थः—ये परीक्षकाः प्रातरुत्थाय प्रयत्नेन व्यवहारान्साध्नुवन्ति तेऽत्र ज्ञानविशेषा पूज्यन्ते बलं च लभन्ते ॥ १३ ॥

पदार्थः—(यत्) जो (विश्वे) संपूर्ण मनुष्य (विवस्वत्याः) सूर्य मण्डल के निमित्त व्यवहार वाली (उषसः) प्रभात वेलाओं को (अक्तोः) रात्रि के (यामन्) मार्ग में (दिदृक्षन्ते) देखने की इच्छा करते हैं (महिना) महिमा से (महि) बड़ी (चित्रम्) अद्भुत (अनीकम्) सेना को (जानन्ति) जानते हैं (इन्द्रस्य) बिजुली के (पुरूणि) बहुत (सुकृता) उत्तम प्रकार किये गये (कर्म) कर्मों को देखने की इच्छा करते हैं उन को जो (आ, अगात्) प्राप्त हो वह सुखी होवे ॥ १३ ॥

भावार्थः—जो परीक्षक लोग प्रातःकाल उठ के प्रयत्न से व्यवहारों को सिद्ध करते हैं वे इस संसार में ज्ञान विशेष से प्रतिष्ठा को प्राप्त और बल से युक्त होते हैं ॥ १३ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

महि ज्योतिर्निहितं वक्षणास्वामा पक्वं चरति बिभ्रती गौः । विश्वं स्वाद्म सम्भृतमुस्रियायां यत्सीमिन्द्रो अदधाद्भोजनाय ॥ १४ ॥

महि । ज्योतिः । निऽहितम् । वक्षणासु । आमा । पक्वम् । चरति । बिभ्रती । गौः । विश्वम् । स्वाद्म । सम्ऽभृतम् । उस्रियायाम् । यत् । सीम् । इन्द्रः । अदधात् । भोजनाय ॥ १४ ॥

पदार्थः—(महि) महत् (ज्योतिः) तेजः (निहितम्) स्थितम् (वक्षणासु) वहमानासु नदीषु। वक्षणा इति नदीना० निघं० १।१३ (आमा) आमानि (पक्वम्) (चरति) गच्छति (बिभ्रती) धरन्ती (गौः) या गच्छति सा (विश्वम्) सर्वम् (स्वाद्म) अतिस्वादुमत् (सम्भृतम्) सम्यग्धृतं पोषितं वा (उस्रियायाम्) पृथिव्याम् (यत्) या (सीम्) सर्वतः (इन्द्रः) विद्युत् (अदधात्) दधाति (भोजनाय) पालनायाऽभ्यवहरणाय वा॥ १४॥

अन्वयः—यथा गौर्वक्षणास्वामा पक्वं बिभ्रती चरति यदत्र महि निहितं ज्योतिरुस्रियायां विश्वं स्वाद्म सम्भृतं चरति स इन्द्रो भोजनाय सर्वं सीमदधादिति सर्वैर्वेद्यम्॥ १४॥

भावार्थः—या विद्युद्भूम्यब्वाय्वन्तरिक्षेषु तद्विकारेषु पदार्थेषु च व्याप्य सर्वं धृत्वा पालयति तस्या विद्यां सर्वे स्वीकुर्वन्तु॥ १४॥

पदार्थः—(यत्) जो (गौः) चलने वाली (वक्षणासु) बहती हुई नदियों में (आमा) कच्चे वा (पक्वम्) पके हुए को (बिभ्रती) धारण करती हुई (चरति) चलती है जो इस संसार में (महि) बड़ा (निहितम्) स्थित (ज्योतिः) तेज वा (उस्रियायाम्) पृथिवी में (विश्वम्) संपूर्ण (स्वाद्म) अतिस्वादु वाले (सम्भृतम्) उत्तम प्रकार, धारण वा पोषण किये हुए पदार्थ को प्राप्त होती है वह (इन्द्रः) बिजुली (भोजनाय) पालन वा भोजन के लिये सब को (सीम्) सब ओर से (अदधात्) धारण करती है यह सब जनों को जानना चाहिये॥ १४॥

भावार्थः—जो बिजुली भूमि जल वायु और अन्तरिक्ष तथा उन के विकारों और पदार्थों में व्यापक हो और सब को धारण कर पालन करती है उस की विद्या को सब लोग धारण वा स्वीकार करें॥ १४॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

इन्द्र दृह्य यामकोशा अभूवन्यज्ञाय शिक्ष गृणते सखिभ्यः । दुर्मायवो दुरेवा मर्त्यासो निषङ्गिणो रिपवो हन्त्वासः ॥ १५ ॥ ३ ॥

इन्द्र । दृह्य । यामऽकोशाः । अभूवन् । यज्ञाय । शिक्ष । गृणते । सखिऽभ्यः । दुःमायवः । दुःऽएवाः । मर्त्यासः । निषङ्गिणः । रिपवः । हन्त्वासः ॥ १५ ॥ ३ ॥

पदार्थः—(इन्द्र) विद्यैश्वर्यप्रद (दृह्य) वर्द्धस्व । अत्र विकरणव्यत्ययेन श्यन् (यामकोशाः) यान्ति येषु ते यामा मार्गास्तेषां कोशा यामकोशाः (अभूवन्) भवन्ति (यज्ञाय) सङ्गतिविज्ञानाय (शिक्ष) विद्यां देहि (गृणते) स्तुवते (सखिभ्यः) मित्रेभ्यः (दुर्मायवः) दुष्टो मायुः प्रक्षेपो येषान्ते (दुरेवाः) ये दुष्टं यन्ति ते (मर्त्यासः) मनुष्याः (निषङ्गिणः) बहवो निषङ्गाः शास्त्रविशेषा विद्यन्ते येषान्ते (रिपवः) शत्रवः (हन्त्वासः) हन्तुं योग्याः ॥ १५ ॥

अन्वयः—हे इन्द्र ये यामकोशा अभूवन् तेभ्यः सखिभ्यो यज्ञाय गृणते च त्वं शिक्ष ये दुर्मायवो दुरेवा हन्त्वासो निषङ्गिणो रिपवो मर्त्यासः स्युस्तान् हत्वा दृह्य ॥ १५ ॥

भावार्थः—मनुष्यैः सर्वदा सर्वथा श्रेष्ठानां रक्षणं विद्यासुशिक्षादानं दुष्टाचाराणां हननं च कृत्वा सदैव वर्धनीयम् ॥ १५ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) विद्या और ऐश्वर्य के दाता जो (यामकोशाः) मार्गों के रोकने वाले (अभूवन्) होते हैं उन (सखिभ्यः) मित्रों तथा (यज्ञाय) सङ्गति जन्य विशेष ज्ञान और (गृणते) स्तुति करने वाले के अर्थ आप (शिक्षा) विद्या दान कीजिये जो (दुर्मायवः) बुरे प्रकार फेंकने वा (दुरेवाः) दुष्ट कर्म को पहुचाने वाले (हन्त्वासः) मारने के योग्य (निषङ्गिणः) बहुत विशेष शस्त्रों वाले (रिपवः) शत्रु (मर्त्यासः) मनुष्य हों उन का नाश करके (वृध) बढ़िये ॥ १५ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि सर्वदा सब प्रकार श्रेष्ठ पुरुषों की रक्षा विद्या और शिक्षा का दान और दुष्ट आचरण वालों का नाश करके सदैव बढ़ें ॥ १५ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

सं घोषः शृण्वेऽवमैरमित्रैर्जही न्येष्वशनिं तपिष्ठाम् । वृश्चेमधस्ताद्वि रुजा सहस्व जहि रक्षो मघवन्रन्धयस्व ॥ १६ ॥

सम् । घोषः । शृण्वे । अवमैः । अमित्रैः । जहि । नि । एषु । अशनिम् । तपिष्ठाम् । वृश्च । ईम् । अधस्तात् । वि । रुज । सहस्व । जहि । रक्षः । मघऽवन् । रन्धयस्व ॥ १६ ॥

पदार्थः—(सम्) सम्यक् (घोषः) वाणीः । घोष इति वाङ्ना० निघं० १ । ११ (शृण्वे) (अवमैः) अधमैः (अमित्रैः) शत्रुभिः (जहि)। अत्र द्व्यचोतस्तिङ इति दीर्घः (नि) (एषु) (अशनिम्) वज्रम् (तपिष्ठाम्*) अतिशयेन तप्ताम् (वृश्च) छिन्धि (ईम्) सततम् (अधस्तात्) अधो निपात्य (वि)

(रुज) रुग्णान् कुरु। अत्र द्व्यचोतस्तिङ इति दीर्घः (सहस्व) (जहि) (रक्षः) दुष्टस्वभावं प्राणिनम् (मघवन्) बहुधनयुक्त (रन्धयस्व) ताडयस्व ॥ १६ ॥

अन्वयः—हे मघवन्नहमवमैरमित्रैः यः घोषस्तं संशृण्वे तांस्त्वं जहि। एषु तपिष्ठामशनिं प्रक्षिप्यैतान् निवृश्च। एतानधस्तात्कृत्वं विरुज दुःखं सहस्व रक्षो जहि पापिनो रन्धयस्व ॥ १६ ॥

भावार्थः—हे वीरा या वाणी शत्रुभिः क्रियेत तां श्रुत्वाऽभीत्वैतेषामुपरि शस्त्राणि प्रक्षिप्य विच्छिन्नान् कुरुत अनेनैश्वर्यवन्तो भवत॥१६॥

पदार्थः—हे (मघवन्) बहुत धनों से युक्त मैं (अवमैः) नीच (अमित्रैः) शत्रुओं जो (घोषः) घोर वाणी उस को (सम्) बहुत (शृण्वे) सुनता हूं इस से उन को आप (जहि) मारिये और (एषु) इन शत्रुओं में (तपिष्ठाम्) अतिशय तपते हुए (अशनिम्) वज्र को फेंक के इन को (नि, वृश्च) उत्तम प्रकार विनाश कीजिये और इन को (अधस्तात्) नीचे गिराय के (ईम्) निरन्तर (वि) (रुज) रोगग्रस्त कीजिये और दुःख को (सहस्व) सहिये (रक्षः) दुष्ट स्वभाव वाले प्राणी का (जहि)नाश कीजिये और पापी लोगों को (रन्धयस्व) ताड़िये ॥१६॥

भावार्थः—हे वीरपुरुषो जो वाणी शत्रुओं से उच्चारण की जाय उस को सुन उन के सन्मुख जा और उन के ऊपर शस्त्रों का प्रहार करके उन्हें छिन्न भिन्न करो इस से ऐश्वर्य वाले होओ ॥ १६ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

उद्वृह रक्षः सहमूलमिन्द्र वृश्चा मध्यं प्रत्यग्रं शृणीहि। आ कीवतः सललूकं चकर्थ ब्रह्मद्विषे तपुंषिं हेतिमस्य ॥ १७ ॥

उत् । वृह । रक्षः । सहऽमूलम् । इन्द्र । वृश्च । मध्यम् ।
प्रति । अग्रम् । शृणीहि । आ । कीवतः । सललूकम् । चकर्थ ।
ब्रह्मऽद्विषे । तपुषिम् । हेतिम् । अस्य ॥ १७ ॥

पदार्थः—(उत्) उत्कृष्टे (वृह) वर्धस्व (रक्षः) दुष्टाचारम् (सहमूलम्) मूलेन सह वर्तमानम् (इन्द्र) दुष्टानां विदारक (वृश्च) छिन्धि । अत्र द्व्यचोतस्तिङ इति दीर्घः (मध्यम्) मध्ये भवम् (प्रति) (अग्रम्) अग्रभागम् (शृणीहि) हिन्धि (आ) (कीवतः) कियतः । अत्र वर्णव्यत्ययेन यस्य स्थाने वः (सललूकम्) सम्यक् लुब्धम् (चकर्थ) कृन्त (ब्रह्मद्विषे) यो ब्रह्म परमात्मानं वेदं वा द्वेष्टि तस्मै (तपुषिम्) प्रतापयुक्तम् (हेतिम्) वज्रम् (अस्य) एतस्योपरि ॥ १७ ॥

अन्वयः—हे इन्द्र त्वमुद्वृह सहमूलं रक्षो वृश्चास्योपरि तपुषिं हेतिं प्रक्षिप्यास्य मध्यमग्रं च प्रतिशृणीहि ब्रह्मद्विषे वर्त्तमानं सललूकं कीवतश्चाऽऽचकर्थ ॥ १७ ॥

भावार्थः—मनुष्यैः कदाचिदपि धार्मिकाणामुपरि शस्त्रप्रहारो नैव कार्यो न च शस्त्रैर्हननेन विना दुष्टास्त्यक्तव्याः। एवं कृते सति सर्वतो सुखस्य वृद्धिः स्यात् ॥ १७ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) दुष्ट पुरुषों के नाशकर्त्ता आप (उत्) उत्तमता के साथ (वृह) सुख वृद्धि करो (सहमूलम्) जड़सहित (रक्षः) बुरे आचार को (वृश्च) तोड़ो (अस्य) इस के ऊपर (तपुषिम्) प्रतापयुक्त (हेतिम्) वज्र को फेंक के इस के (मध्यम्) मध्य में उत्पन्न हुए और (अग्रम्) अग्रभाग के (प्रति) प्रति (शृणीहि) नाश करो तथा (ब्रह्मद्विषे) ब्रह्म परमात्मा वा वेद के लिये वर्त्तमान (सललूकम्) अच्छी तरह लोभी (कीवतः) कितनों को (आ) (चकर्थ) सब प्रकार काटो ॥ १७ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि कभी भी धार्मिक पुरुषों के ऊपर शस्त्रों का प्रहार न करैं और दुष्ट पुरुषों को शस्त्रों से मारे विना न छोड़ैं ऐसा करने से सब प्रकार सुख की वृद्धि होवे ॥ १७ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

स्वस्तयै वाजिभिश्च प्रणेतः संयन्महीरिष आसत्सि पूर्वीः । रायो वन्तारो बृहतः स्यामास्मे अस्तु भर्ग इन्द्र प्रजावान् ॥ १८ ॥

स्वस्तये । वाजिऽभिः । च । प्रऽनेतरिति प्रऽनेतः । सम् । यत् । महीः । इषः । आऽसत्सि । पूर्वीः । रायः । वन्तारः । बृहतः । स्याम । अस्मे इति । अस्तु । भर्गः । इन्द्र । प्रजाऽवान् ॥ १८ ॥

पदार्थः—(स्वस्तये) सुखाय (वाजिभिः) तुरङ्गैरिव वेगवद्भिरग्न्यादिभिः (च) (प्रणेतः) यः सत्याऽसत्ये प्रणयति तत्सम्बुद्धौ (सम्) (यत्) यः (महीः) महतीः (इषः) इच्छाः (आसत्सि) समन्तात्सीदसि । अत्र बहुलं छन्दसीति शपो लुक् (पूर्वीः) पूर्वैः प्राप्ताः (रायः) धनानि (वन्तारः) विभाजकाः (बृहतः) महतः (स्याम) भवेम (अस्मे) अस्माकम् (अस्तु) भवतु (भर्गः) ऐश्वर्य्यम् (इन्द्र) परमैश्वर्य्ययुक्त (प्रजावान्) बह्व्यः प्रजा विद्यन्ते यस्मिन् सः ॥ १८ ॥

अन्वयः—हे प्रणेतरिन्द्र यद्यस्त्वं वाजिभिरन्यैः साधनैश्च पूर्वीर्महीरिष समासत्सि ये बृहतो वन्तारो रायः सन्ति तेऽस्मे स्वस्तये सन्तु । प्रजावान् भर्गश्च तानि प्राप्य वयं सुखिनः स्याम ॥ १८ ॥

भावार्थः—ये मनुष्याः सुखाय बहूनि साधनानि समादधति ते ऐश्वर्यं प्राप्य मोदन्ते ॥ १८ ॥

पदार्थः—हे (प्रणेतः) सत्य और असत्य के निश्चयकारक (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य से युक्त (यत्) जो आप (वाजिभिः) घोड़ों के सदृश वेग युक्त अग्नि आदि पदार्थों तथा और साधनों से (पूर्वीः) पूर्व जनों से प्राप्त (महीः) बड़ी (इषः) इच्छाओं से (सम्) (आससि) सब प्रकार वर्त्तमान हैं (जो) (बृहतः) बड़े (वन्तारः) विभाग करने वाले (रायः) धन हैं वे (अस्मै) हम लोगों के (स्वस्तये) सुख के लिये (अस्तु) होवैं (प्रजावान्) बहुत प्रजाओं से युक्त (भगः) ऐश्वर्य और उन को प्राप्त हो कर हम लोग सुखी (स्याम) होवैं ॥ १८ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य लोग सुख के लिये बहुत से साधनों को एकत्र करते वे ऐश्वर्य को प्राप्त हो के आनन्द को प्राप्त होते हैं ॥ १८ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

आ नो भर भगमिन्द्र द्युमन्तं नि ते देष्णस्य धीमहि प्ररेके। ऊर्वइव पप्रथे कामो अस्मे तमा पृण वसुपते वसूनाम् ॥ १९ ॥

आ। नः। भर। भगम्। इन्द्र। द्युऽमन्तम्। नि। ते। देष्णस्य। धीमहि। प्रऽरेके। ऊर्वःऽइव। पप्रथे। कामः। अस्मे इति। तम्। आ। पृण। वसुऽपते। वसूनाम् ॥ १९ ॥

पदार्थः—(आ) समन्तात् (नः) अस्मभ्यम् (भर) धर (भगम्) सेवनीयमैश्वर्य्यम् (इन्द्र) सुखप्रदातः (द्युमन्तम्) प्रशस्ता द्यौः प्रकाशो विद्यते यस्मिँस्तम् (नि) (ते) तव (देष्णस्य)

दातुः (धीमहि) धरेम (प्ररेके) प्रकृष्टा रेका शङ्का यस्मिँस्त-स्मिन् व्यवहारे (ऊर्वइव) प्राप्तेन्धनोऽग्निरिव (पप्रथे) प्रथताम् (कामः) इच्छा (अस्मे) अस्मभ्यम् (तम्) (आ) (पृण) पूर्णं कुरु (वसुपते) धनानां पालक (वसूनाम्) धनानाम् ॥१९॥

अन्वयः—हे वसूनां वसुपत इन्द्र यस्य देष्णस्य ते प्ररेके वयं निधीमहि स त्वं नो द्युमन्तं भगमाभर । योऽस्मे काम ऊर्वइव पप्रथे तमा पृण ॥ १९ ॥

भावार्थः—स एव मनुष्य आप्तोऽस्ति यस्य सर्वस्वं परोपकाराय भवति नात्र शङ्कास्ति ॥ १९ ॥

पदार्थः—हे (वसूनाम्) धनों के (वसुपते) धनपालक (इन्द्र) सुख के दाता जिस (देष्णस्य) देने वाले (ते) आप के (प्ररेके) उत्तम शंका-युक्त व्यवहार में हम लोग (नि) (धीमहि) धारण करें वह आप (नः) हम लोगों के लिये (द्युमन्तम्) उत्तम प्रकाश युक्त (भगम्) सेवन करने योग्य ऐश्वर्य्य को (आ) सब प्रकार (भर) धारण करो और जो (अस्मे) हम लोगों के लिये (कामः) इच्छा (ऊर्वइव) इन्धन युक्त अग्नि के सदृश (पप्रथे) वृद्धि को प्राप्त होवे (तम्) उस को (आ) (पृण) पूर्ण करो ॥ १९ ॥

भावार्थः—वही मनुष्य यथार्थवक्ता है जिस का सर्वस्व दूसरे पुरुषादि के उपकार के लिये होता है इस विषय में कोई शंका नहीं है ॥ १९ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

इ॒मं कामं॑ मन्दया॒ गोभि॒रश्वै॑श्च॒न्द्रव॑ता॒ राध॑सा प॒प्रथ॑श्च । स्व॒र्य॒वो॑ म॒तिभि॒स्तुभ्यं॒ विप्रा॒ इन्द्रा॑य॒ वाहः॑ कुशि॒कासो॑ अक्रन् ॥ २० ॥

इमम् । कामम् । मन्दय । गोभिः । अश्वैः । चन्द्रऽवता । राधसा । पप्रथः । च । स्वःऽयवः । मतिऽभिः । तुभ्यम् । विप्राः । इन्द्राय । वाहः । कुशिकासः । अक्रन् ॥ २० ॥

पदार्थः—(इमम्) प्रत्यक्षतया वर्त्तमानम् (कामम्) अभिलाषाम् (मन्दय) हर्षय । अत्र संहितायामिति दीर्घः (गोभिः) धेनुभिः (अश्वैः) तुरङ्गैः (चन्द्रवता) बहूनि चन्द्राणि सुवर्णादीनि धनानि विद्यन्ते यस्मिंस्तेन (राधसा) धनेन (पप्रथः) प्रख्यापय (च) (स्वर्य्यवः) य आत्मनः स्वः सुखं कामयन्ते ते (मतिभिः) मननशीलैर्मनुष्यैः सह (तुभ्यम्) (विप्राः) मेधाविनः (इन्द्राय) ऐश्वर्य्याय (वाहः) ये वहन्ति ते (कुशिकासः) शब्दायमानाः (अक्रन्) कुर्युः ॥ २० ॥

अन्वयः—हे विद्वंस्त्वं गोभिरश्वैश्चन्द्रवता राधसा च पप्रथः । इमं कामं पूरय यथा स्वर्यवो वाहः कुशिकासो विप्रा मतिभिः सह तुभ्यमिन्द्रायेनं काममक्रंस्तांस्त्वं मन्दय ॥ २० ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—हे मनुष्या ये युष्मानभिलाषापूरकत्वेनानन्दयेयुस्तान् भवन्तोऽप्यानन्दयन्तु ॥ २० ॥

पदार्थः—हे विद्वान् पुरुष आप (गोभिः) गौओं (अश्वैः) घोड़ों (च) और (चन्द्रवता) बहुत सुवर्ण आदि धन जिस में हैं ऐसे (राधसा) धन से (पप्रथः) प्रसिद्ध करो (इमम्) प्रत्यक्ष भाव से वर्त्तमान इस (कामम्) अभिलाषा को पूर्ण करो जैसे (स्वर्य्यवः) अपने सुख की कामना करने वाले (वाहः) स्तुतियों के धारण कर्त्ता (कुशिकासः) शब्द करते हुए (विप्राः) बुद्धिमान् लोग (मतिभिः) विचारशील मनुष्यों के साथ (तुभ्यम्) आप के तथा (इन्द्राय) ऐश्वर्य्य के लिये उक्त अभिलाषा को (अक्रन्) करैं उन को आप (मन्दय) आनन्दित कीजिये ॥ २० ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो जो लोग आप लोगों को अभिलाषा पूर्ण करने से आनन्द देवैं उन को आप लोग भी आनन्द देवैं ॥२०॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

आ नो गोत्रा दर्दृहि गोपते गाः समस्मभ्यं सनयो यन्तु वाजाः । दिवक्षा असि वृषभ सत्यशुष्मोऽस्मभ्यं मघवन्बोधि गोदाः ॥ २१ ॥

आ । नः । गोत्रा । दर्दृहि । गोऽपते । गाः । सम् । अस्मभ्यम् । सनयः । यन्तु । वाजाः । दिवक्षाः । असि । वृषभ । सत्यऽशुष्मः । अस्मभ्यम् । सु । मघऽवन् । बोधि । गोऽदाः ॥ २१ ॥

पदार्थः—(आ) समन्तात् (नः) अस्माकम् (गोत्रा) गोत्राणि कुलानि (दर्दृहि) अत्यन्तं वर्धय (गोपते) भूपते (गाः) पृथिवीः (सम्) (अस्मभ्यम्) (सनयः) संभक्तयः (यन्तु) प्राप्नुवन्तु (वाजाः) विज्ञानान्नादिप्रदा व्यवहाराः (दिवक्षाः) ये दिवं विज्ञानप्रकाशादिकमक्षन्ति व्याप्नुवन्ति (असि) (वृषभ) बलिष्ठ (सत्यशुष्मः) सत्यबलः (अस्मभ्यम्) (सु) (मघवन्) बहुपूजितधनयुक्त (बोधि) (गोदाः) यो गा वाण्यादीन् ददाति सः ॥ २१ ॥

अन्वयः—हे वृषभ मघवन् यतस्त्वं गोदाः सत्यशुष्मोऽसि तस्मादस्मभ्यं सुबोधि । हे गोपते यथाऽस्मभ्यं सनयो दिवक्षा वाजाः संयन्तु तथैव त्वं नो गोत्रा गाश्चा दर्दृहि ॥ २१ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यदि सत्याचारसुशीला विद्वांसो मनुष्याणामुपदेष्टारः स्युस्तर्हि तेषां किमपि सुखमप्राप्तमरक्षणीयं न स्यात् ॥ २१ ॥

पदार्थः—हे (वृषभ) बलवान् (मघवन्) बहुत श्रेष्ठ धन से युक्त जिस से आप (गोदाः) वाणी आदि के दाता (सत्यशुष्मः) सत्य बल वाले (असि) हैं इस से (अस्मभ्यम्) हम लोगों के लिये (सु) (बोधि) आनन्द-दायक हूजिये हे (गोपते) भूमि के स्वामी जैसे (अस्मभ्यम्) हम लोगों के लिये (सनयः) संविभाग करने के योग्य (दिवक्षाः) विज्ञान रूप प्रकाश आदि से पूरित (वाजाः) विज्ञान और अन्न आदि के प्राप्त कराने वाले व्यवहार (सम्) (यन्तु) प्राप्त होवैं वैसे ही आप (नः) हम लोगों के (गोत्रा) कुलों और (गाः) पृथिवियों को (आ) सब प्रकार (दर्द्दहि) अत्यन्त वृद्धि कीजिये ॥ २१ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो सत्य आचरण करने वाले विद्वान् लोग मनुष्यों के उपदेशकारक होवैं तो उन जनों का कुछ भी सुख अप्राप्त और अरक्ष्य न होवै ॥ २१ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ । शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥ २२ ॥

शुनम् । हुवेम । मघऽवानम् । इन्द्रम् । अस्मिन् । भरे । नृऽतमम् । वाजऽसातौ । शृण्वन्तम् । उग्रम् । ऊतये । समत्ऽसु । घ्नन्तम् । वृत्राणि । सम्ऽजितम् । धनानाम् ॥ २२ ॥

पदार्थः—(शुनम्) ज्ञानवृद्धम् (हुवेम) प्रशंसेम (मघवानम्) बहुधनवन्तम् (इन्द्रम्) दातारम् (अस्मिन्) (भरे) बिभ्रति धनानि यस्मिंस्तस्मिन् (नृतमम्) अतिशयेन नृषूत्तमम् (वाजसातौ) वाजान्धनाद्यान् पदार्थान् सनन्ति विभजन्ति यस्मिंस्तस्मिन् सङ्ग्रामे । वाजसाताविति सङ्ग्रामना० निघं० २ । १७ (उग्रम्) तेजस्विस्वभावम् (ऊतये) रक्षणाद्याय (समत्सु) सङ्ग्रामेषु (घ्नन्तम्) हिंसन्तम् (वृत्राणि) आवरका घना इव शत्रुसैन्यानि (संजितम्) सम्यग्जयशीलम् (धनानाम्) श्रियाम्॥२२॥

अन्वयः—हे मनुष्या यमस्मिन् भरे वाजसातौ शुनं मघवानं नृतमं शृण्वन्तमुग्रं समत्सु वृत्राणि घ्नन्तं धनानां संजितमिन्द्रं वयं हुवेम तं यूयमूतय आह्वयत ॥ २२ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—हे मनुष्या यूयं शरीरात्मबलाभ्यां प्रवृद्धमसङ्ख्यधनप्रदं नरोत्तमं शत्रूणां विजेतारं धर्मिष्ठे साधुं दुष्टेष्वत्युग्रं पालकं स्वामिनं स्वोपरि मत्वा सततं सुखयतेति ॥२२॥

अत्रेन्द्रविद्वत्कृत्यवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिर्वेद्या ॥

इति त्रिंशत्तमं सूक्तं चतुर्थो वर्गश्च समाप्तः ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जिस को (अस्मिन्) इस संग्राम में कि (भरे) जिस में धनों को धारण करते और (वाजसातौ) धन आदि पदार्थों का विभाग करते हैं (शुनम्) ज्ञान से वृद्ध (मघवानम्) बहुत धन से युक्त (नृतमम्) अत्यन्त ही मनुष्यों में उत्तम (शृण्वन्तम्) सम्पूर्ण अर्थी अर्थात् मुद्दई और प्रत्यर्थी अर्थात् मुद्दाले के न्याय करने के लिये वचनों के श्रोता (उग्रम्) तेजः

स्वभाव वाले पुरुष को (समत्सु) संग्रामों में (वृत्राणि) घेरने वाली मेघों के सदृश शत्रुओं की सेनाओं के (घ्नन्तम्) नाश कर्त्ता और (धनानाम्) लक्ष्मियों के (संजितम्) उत्तम प्रकार जीतने वा (इन्द्रम्) देने वाले की हम लोग (हुवेम) प्रशंसा करें उसका आप लोग भी (ऊतये) रक्षा आदि के लिये आह्वान करें ॥ २२ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो आप लोग शरीर और आत्मबल से बढ़े असंख्य धन के देने और मनुष्यों में उत्तम शत्रुओं के जीतने वाले धर्मिष्ठ पुरुष में नम्रस्वभाव और दुष्ट पुरुषों में तीव्रस्वभाव युक्त पालनकर्त्ता स्वामी को अपने ऊपर नियत करके निरन्तर सुख को प्राप्त हूजिये ॥ २२ ॥

इस सूक्त में इन्द्र और विद्वान् के कृत्य का वर्णन होने से इस सूक्त में कहे अर्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह तीशवां सूक्त और चौथा वर्ग समाप्त हुआ ॥

अथ द्वाविंशत्यृचस्यैकाऽधिकत्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य । विश्वामित्रः कुशिको वा ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ । १४ । १६ विराट् पङ्क्तिः । ३ । ६ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः २ । ५ । ९ । १५ । १७ । १८ । १९ । २० निचृत्त्रिष्टुप् । ४ । ७ । ८ । १० । १२ । २१ । २२ । त्रिष्टुप् । ११ । १३ स्वराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अथवह्निविषयमाह ॥

अब तृतीय मण्डल में बाईस ऋचावाले ३१ में सूक्त का प्रारम्भ है उस के पहिले मन्त्र में अग्नि के गुणों का वि० ॥

शास॒द्वह्नि॑र्दुहि॒तुर्न॒प्त्यं॑ गा॒द्वि॒द्वाँ ऋ॒तस्य॒ दीधि॑तिं सप॒र्यन् । पि॒ता यत्र॑ दुहि॒तुः सेक॑मृ॒ञ्जन्त्सं श॒ग्म्ये॑न॒ मन॑सा दध॒न्वे ॥ १ ॥

शासंत् । वह्निः । दुहितुः । नप्त्यंम् । गात् । विद्वान् । ऋतस्यं । दीधितिम् । सपर्यन् । पिता । यत्रं । दुहितुः । सेकंम् । ऋञ्जन् । सम् । शग्म्येन । मनंसा । दधन्वे ॥१॥

पदार्थः—(शासत्) शिष्यात् (वह्निः) वोढा (दुहितुः) कन्यायाः (नप्त्यम्) नप्तरि भवम् । अत्र छान्दसो वर्णलोपो वेति रलोपः (गात्) प्राप्नुयात् (विद्वान्) यो वेदितव्यं वेत्ति (ऋतस्य) सत्यस्य (दीधितिम्) धर्त्तारम् (सपर्यन्) सेवमानः (पिता) जनकः (यत्र) यस्मिन् व्यवहारे (दुहितुः) दूरे हितायाः कन्यायाः (सेकम्) सेचनम् (ऋञ्जन्) संसाध्नुवन् (सम्) (शग्म्येन) शग्मेषु सुखेषु भवेन । शग्ममिति सुखनाम निघं० ३ । ६ (मनसा) अन्तःकरणेन (दधन्वे) प्रीणाति ॥ १ ॥

अन्वयः—हे विद्वन् यत्र पिता वह्निर्दुहितुः सेकमृञ्जन् गात्तत्र विद्वानृतस्य दीधितिं सपर्यन् दुहितुर्नप्त्यं शासदतः शग्म्येन मनसा संदधन्वे ॥ १ ॥

भावार्थः—हे मनुष्या यथा पितुः सकाशात्कन्योत्पद्यते तथैव सूर्य्यादुषा उत्पद्यते यथा पतिर्भार्यायां गर्भं दधाति तथैव कन्यावद्वर्त्तमानायामुषसि सूर्यः किरणाख्यं वीर्य्यं दधाति तेन दिवसरूपमपत्यमुत्पद्यते ॥ १ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् पुरुष (यत्र) जिस व्यवहार में (पिता) उत्पन्नकर्त्ता (वह्निः) वाहन करने अर्थात् व्यवहार में चलाने वाला (दुहितुः) कन्या के (सेकम्) सेचन को (ऋञ्जन्) सिद्ध करता हुआ (गात्) प्राप्त होवै उस व्यवहार में (विद्वान्) जानने योग्य व्यवहार का ज्ञाता (ऋतस्य)

सत्य के (दीधितिम्) धारण कर्त्ता की (सपर्य्यन्) सेवा करता हुआ (दुहितुः) दूर में हितकारिणी कन्या के (नप्त्यम्) नाती में उत्पन्न हुए को (शासत्) शिक्षा देवै इस से (शग्म्येन) सुखों में वर्त्तमान (मनसा) अन्तःकरण से (सम्, दधन्वे) सम्यक् प्रसन्न होता है ॥ १ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो जैसे पिता के समीप से कन्या उत्पन्न होती है वैसे ही सूर्य्य से प्रातःकाल की वेला प्रकट होती है और जैसे पति अपनी स्त्री में गर्भ को धारण करता है वैसे कन्या के सदृश वर्त्तमान प्रातःकाल की वेला में सूर्य्य किरणरूप वीर्य्य को धारण करताहै उस से दिवसरूप पुत्र उत्पन्न होता है ॥ १ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

न जामये तान्वो रिक्थमारैक् चकार गर्भं सनितुर्निधानम् । यदी मातरो जनयन्त वह्निमन्यः कर्त्ता सुकृतोरन्य ऋन्धन् ॥ २ ॥

न । जामये । तान्वः । रिक्थम् । अरैक् । चकार । गर्भम् । सनितुः । निऽधानम् । यदि । मातरः । जनयन्त । वह्निम् । अन्यः । कर्त्ता । सुऽकृतोः । अन्यः । ऋन्धन् ॥ २ ॥

पदार्थः—(न) (जामये) जामात्रे (तान्वः) तन्वः । अत्रान्येषामपीत्याद्यचो दीर्घः (रिक्थम्) धनम् । ऋक्थमिति धननाम निघं० २ । १० (अरैक्) ऋणक्ति (चकार) (गर्भम्) (सनितुः) विभाजकस्य (निधानम्) नितरां दधाति यस्मिँस्तम् (यदि)। अत्र निपातस्य चेति दीर्घः (मातरः) मान्यस्य कर्त्र्यः (जनयन्त) जनयन्ति (वह्निम्) प्रापकम् (अन्यः) (कर्त्ता) (सुकृतोः) यौ शोभनं कुरुतस्तयोः (अन्यः) (ऋन्धन्) साध्नुवन् ॥ २ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यो जामये तान्वो रिक्थं नारैक् सनितुर्निधानं गर्भं चकार अन्यो वह्निमिव यद्यन्य ऋन्धन्त्सुकृतोः कर्त्ता भवेत्तं मातरो जनयन्त ॥ २ ॥

भावार्थः—यथा माताऽपत्यानि जनयित्वा वर्धयति तथैव वह्निं जनयित्वा वर्धयेत् तथैव जायापत्यानि वर्धयेत् ॥ २ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (जामये) जामाता के लिये (तान्वः) सूक्ष्म (रिक्थम्) धन को (न,आरैक्) नहीं देता जिस ने (सनितुः) विभागकर्त्ता के (निधानम्) निरन्तर धारण करता है उस (गर्भम्) गर्भ को (चकार) किया (अन्यः) अन्य जन (वह्निम्) पहुंचाने वाले को जैसे वैसे (यदि) जो (अन्यः) अन्य (ऋन्धन्) सिद्ध करता हुआ (सुकृतोः) उत्तम कर्मकारियों का (कर्त्ता) कर्त्ता पुरुष है उस को (मातरः) आदर की करने वाली (जनयन्त) उत्पन्न करती है ॥ २ ॥

भावार्थः—जैसे माता सन्तानों को उत्पन्न कर उन की वृद्धि करती है वैसे ही अग्नि को उत्पन्न करके उस की वृद्धि करै और वैसे ही प्रत्येक स्त्री सन्तानों की वृद्धि करै ॥ २ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

अग्निर्जज्ञे जुह्वा३ रेजमानो महस्पुत्राँ अरुषस्य प्रयक्षे । महान् गर्भो मह्या जातमेषां मही प्रवृद्धर्यश्वस्य यज्ञैः ॥ ३ ॥

अग्निः । जज्ञे । जुह्वा । रेजमानः । महः । पुत्रान् । अरुषस्य । प्रऽयक्षे । महान् । गर्भः । महि । आ । जातम् । एषाम् । मही । प्रऽवृत् । हरिऽअश्वस्य । यज्ञैः ॥ ३ ॥

पदार्थः—(अग्निः) (जज्ञे) जायते (जुह्वा) साधनोपसाधनयुक्तया क्रियया (रेजमानः) कम्पमानः (महः) महतः (पुत्रान्) सन्तानान् (अरुषस्य) अहिंसकस्य (प्रयक्षे) प्रकर्षेण यष्टुं सङ्गन्तुम् (महान्) महागुणविशिष्टः (गर्भः) स्तोतुमर्हः (महि) महान्तम् (आ) समन्तात् (जातम्) (एषाम्) (मही) महती वाक् (प्रवृत्) यः प्रवर्त्तते सः (हर्यश्वस्य) हरयो हरणशीला अश्वा यस्य (यज्ञैः) सङ्गतैः कर्मभिः ॥ ३ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यथेन्धनेन जुह्वाऽग्निर्जज्ञे तथा रेजमानो महान् गर्भो जायते । अरुषस्य महः पुत्रान्प्रयक्षे जज्ञे प्रवृत्सन् हर्यश्वस्य यज्ञैर्महीर्जज्ञ एषां मह्या जातं यूयं विजानीत ॥ ३ ॥

भावार्थः—यथा शमीगर्भाद्वह्निः प्रादुर्भवन् महान्ति कार्य्याणि करोति तथैव सत्पुत्राः सर्वाण्युत्तमानि कर्माणि कुर्वन्ति तस्माद्ब्रह्मचर्यादिसंस्कारेणैव सन्तानाः सत्कर्त्तव्याः ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे इन्धन और (जुह्वा) साधन और उप साधनों से युक्त क्रिया से (अग्निः) अग्नि (जज्ञे) उत्पन्न होता है वैसे (रेजमानः) कंपता हुआ (महान्) बड़े उत्तम गुणों से युक्त (गर्भः) स्तुति करने योग्य पदार्थ उत्पन्न होता है और (अरुषस्य) नहीं हिंसा करने वाले के (महः) श्रेष्ठ (पुत्रान्) सन्तानों के (प्रयक्षे) अत्यन्त यजन अर्थात् संगम करने को उत्पन्न होता है (प्रवृत्) प्रवृत्त होने वाला (हर्यश्वस्य) जिस के हरणशील घोड़े उस के (यज्ञैः) योग्य कर्मों से (मही) श्रेष्ठ वाणी उत्पन्न होती है (एषाम्) इन सबों के (महि) बड़े (आ, जातम्) अच्छे प्रकार उत्पन्न कर्म को तुम जानो॥३॥

भावार्थः—जैसे शमीनामक काष्ठ के मध्य से अग्नि प्रकट हो कर बड़े २ कार्य्यों को सिद्ध करता है वैसे ही सुपात्र पुत्र सम्पूर्ण उत्तम कर्मों को करते हैं इससे ब्रह्मचर्य्य आदि संस्कारों के ही द्वारा सन्तानों को श्रेष्ठ बनाना चाहिये॥३॥

पुनः सूर्यरूपोऽग्निः कीदृश इत्याह ॥

फिर सूर्य रूप अग्नि कैसा है इस वि० ॥

अभि जैत्रीरसचन्त स्पृधानं महि ज्योतिस्तमसो निरजानन् । तं जानतीः प्रत्युदायन्नुषासः पतिर्गवामभवदेक इन्द्रः ॥ ४ ॥

अभि । जैत्रीः । असचन्त । स्पृधानम् । महि । ज्योतिः । तमसः । निः । अजानन् । तम् । जानतीः । प्रति । उत् । आयन् । उषसः । पतिः । गवाम् । अभवत् । एकः । इन्द्रः ॥ ४ ॥

पदार्थः—(अभि) आभिमुख्ये (जैत्रीः) जयशीलाः (असचन्त) समवयन्ति (स्पृधानम्) स्पर्द्धमानम् (महि) महत् (ज्योतिः) प्रकाशः (तमसः) अन्धकारस्य (निः) नितराम् (अजानन्) जानीयुः (तम्) (जानतीः) ज्ञानवत्यः (प्रति) (उत्)(आयन्) आयान्त्युद्यन्ति प्रति यन्ति वा (उषासः) प्रभातान् (पतिः) स्वामी (गवाम्) किरणानाम् (अभवत्) भवेत् (एकः) असहायः (इन्द्रः) ॥ ४ ॥

अन्वयः—ये जैत्रीरभ्यसचन्त तमसो महि ज्योतिः स्पृधानं निरजानन् तं जानतीरुषास इव प्रत्युदान् य एक इन्द्रो गवां पतिरभवत्तमभ्यसचन्त ॥ ४ ॥

भावार्थः—यथाऽन्धकाराज्ज्योतिः पृथग्भूत्वाऽन्धकारं निवर्त्तयति तथा विद्याऽविद्यां हन्ति यथैकः सूर्य्यः सर्वेषां किरणानां समत्वेन पालकोऽस्ति तथैव समभावमाश्रित्य राजा प्रजाः पालयेत् ॥ ४ ॥

पदार्थः—जो (जैत्रीः) जीतने वाले (अभि) सन्मुख (असचन्त) अनुसार चलते हैं (तमसः) अन्धकार के (महि) बड़े (ज्योतिः) प्रकाशरूप (स्पृधानम्) पदार्थों के साथ किरणों के संघर्ष करने वाले सूर्य को (निः) निरन्तर (अजानन्) जानैं (तम्) उस को (जानतीः) जानने वाली (उषासः) प्रातःकाल की वेलाओं के तुल्य (प्रति) (उत्) (आयन्) उद्योग करें वा प्राप्त हों जो (एकः) सहाय रहित (इन्द्रः) सूर्य्य (गवाम्) किरणों का (पतिः) स्वामी (अभवत्) होवे उस के अनुसार चलते हैं ॥४॥

भावार्थः—जैसे अन्धकार से ज्योति पृथक् हो कर अन्धकार को दूर करती है वैसे ही अविद्या से पृथक् हुई विद्या अविद्या का नाश करती है और जैसे एक सूर्य्य संपूर्ण किरणों का एकसाथ ही पालन करता है वैसे ही समभाव का आश्रय करके राजा प्रजाओं का पालन करै ॥ ४ ॥

अथ विद्वत्सङ्गेन किं जायत इत्याह ॥

अब विद्वान् के सङ्ग से क्या होता है इस वि० ॥

वीळौ सतीरभि धीरा अतृन्दन्प्राचाहिन्वन्मनसा सप्त विप्राः । विश्वामविन्दन्पथ्यामृतस्य प्रजानन्नित्ता नमसा विवेश ॥ ५ ॥ ५ ॥

वीळौ । सतीः । अभि । धीराः । अतृन्दन् । प्राचा । अहिन्वन् । मनसा । सप्त । विप्राः । विश्वाम् । अविन्दन् । पथ्याम् । ऋतस्य । प्रऽजानन् । इत् । ता । नमसा । आ । विवेश ॥५॥५॥

पदार्थः—(वीळौ) प्रशंसनीये बले (सतीः) विद्यमानाः प्रकृतीः (अभि) (धीराः) ध्यानवन्तः (अतृन्दन्) हिंस्युः (प्राचा) प्राक्तनने (अहिन्वन्) वर्धयन्ति (मनसा) अन्तःकरणेन (सप्त) पञ्च प्राणा बुद्धिर्मनश्च (विप्राः) मेधाविनः (विश्वाम्) सर्वाम् (अविन्दन्) लभन्ते

(पथ्याम्) पथि साध्वीं क्रियाम् (ऋतस्य) सत्यस्य (प्रजानन्) (इत्) एव (तानि) (नमसा) (आ) (विवेश) आविश ॥५॥

अन्वयः—हे मनुष्या यथा धीरा विप्राः प्राचा मनसा सप्त सती रभ्यहिन्वन्ननृतमतृन्दन्नृतस्य वीळौ विश्वां पथ्यामविन्दन् तथा त्वं ता नमसा प्रजानन्निदा विवेश ॥ ५ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यथा युक्त्या सेवितानि प्राणान्तःकरणानि दुःखत्यागाय सुखलाभाय च प्रभवन्ति तथैव विद्वत्सङ्गादीनि कर्म्माणि दुःखानि निवार्य सुखानि जनयन्ति ॥ ५ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (धीराः) उत्तम विचारयुक्त (विप्राः) बुद्धिमान् लोग (प्राचा) प्राचीन (मनसा) अन्तःकरण से (सप्त) पांच प्राण बुद्धि और मन तथा (सतीः) वर्त्तमान प्रकृतियों को (अभि) (अहिन्वन्) बढ़ाते हैं और मिथ्या का (अतृन्दन्) नाश करें तथा (ऋतस्य) सत्य के (वीळौ) प्रशंसनीय बल में (विश्वाम्) सम्पूर्ण (पथ्याम्) मर्य्यादा के योग्य क्रिया को (अविन्दन्) प्राप्त होते हैं वैसे आप (ताः) उन को (नमसा) स्तुति से (प्रजानन्) जानते हुए (इत्) ही (आ) (विवेश) शुभ कर्म में प्रवेश कीजिये ॥ ५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे युक्ति से सेवन किये हुए प्राण और अन्तःकरण दुःख के त्याग और सुख के लाभ के लिये समर्थ होते हैं वैसे ही विद्वानों के संग आदि कर्म दुःखों को निवृत्त करा के सुखों को उत्पन्न कराते हैं॥५॥

का स्त्री सुखदात्री भवतीत्याह ॥

कौन स्त्री सुख देने वाली होती है इस वि० ॥

विदद्यदी सरमा रुग्णमद्रेर्महि पाथः पूर्व्यं सध्र्यक्कः । अग्रं नयत्सुपद्यक्षराणामच्छा रवं प्रथमा जानती गात् ॥ ६ ॥

विदत् । यदि । सरमा । रुग्णम् । अद्रेः । महि । पाथः ।
पूर्व्यम् । सध्र्यक् । कः । अग्रम् । नयत् । सुऽपदी ।
अक्षराणाम् । अच्छ । रवम् । प्रथमा । जानती । गात् ॥ ६ ॥

पदार्थः—(विदत्) लभेत (यदि) । अत्र निपातस्य चेति दीर्घः (सरमा) या सरान् गतिमतः पदार्थान् मिनोति सा (रुग्णम्) रोगाविष्टम् (अद्रेः) मेघस्य (महि) महत् (पाथः) अन्नमुदकं वा (पूर्व्यम्) पूर्वैः कृतं निष्पादितम् (सध्र्यक्) यत्सहाञ्चति (कः) करोति (अग्रम्) (नयत्) नयति (सुपदी) शोभनाः पादा यस्याः सा सुपदी (अक्षराणाम्) वर्णानाम् (अच्छ) सम्यक् । अत्र निपातस्य चेति दीर्घः (रवम्) शब्दम् (प्रथमा) आदिमा (जानती) (गात्) प्राप्नुयात् ॥ ६ ॥

अन्वयः—हे विदुषि स्त्रि यदि सुपदी भवती सरमा सत्यद्रेः सध्र्यक् पूर्व्यं महि पाथो विदद्रुग्णमौषधेन रोगं कोऽक्षराणामग्रं रवमच्छ नयत्प्रथमा जानती गात्तर्हि सर्वं सुखं प्राप्नुयात् ॥ ६ ॥

भावार्थः—या स्त्री विद्युद्दृद्याप्तविद्या संस्कारोपस्करादिकर्मसु विचक्षणा सुभाषिणी सरलस्वभावा स्यात्सा वृष्टिरिव सुखप्रदा भवति ॥ ६ ॥

पदार्थः—हे बुद्धिमती स्त्री (यदि) जो (सुपदी) उत्तम पादों वाली आप (सरमा) चलने वाले पदार्थों के नापने वाली हुई (अद्रेः) मेघ के (सध्र्यक्) एक साथ प्रकट (पूर्व्यम्) प्राचीन जनों से किये गये (महि) बड़े (पाथः) अन्न वा जल को (विदत्) प्राप्त होवें (रुग्णम्) रोगों से घिरे हुए को औषध से रोगरहित (कः) करनी (अक्षराणाम्) अक्षरों के (अग्रम्)

श्रेष्ठ (रवम्) शब्द को (अच्छ) उत्तम प्रकार (नयत्) प्राप्त करती है (प्रथमा) पहिली (जानती) जानती हुई (गात्) प्राप्त होवै तो सम्पूर्ण सुख को प्राप्त होवै ॥ ६ ॥

भावार्थः—जो स्त्री बिजुली के सदृश विद्याओं में व्याप्त संस्कार और उपस्कार अर्थात् उद्योग आदि कर्म्मों में चतुर उत्तम रीति से बोलने तथा नम्र स्वभाव रखने वाली होवै वह वृष्टि के सदृश सुख देने वाली होती है ॥ ६ ॥

पुनः कः पुमान् सुखदो भवतीत्याह ॥

फिर कौन पुरुष सुख देने वाला होता है इस वि० ॥

अगच्छदु विप्रतमः सखीयन्नसूदयत्सुकृते गर्भमद्रिः । ससान मर्यो युवभिर्मखस्यन्नथाभवदङ्गिराः सद्यो अर्चन् ॥ ७ ॥

अगच्छत् । ऊँ इति । विप्रऽतमः । सखिऽयन् । असूदयत् । सुऽकृते । गर्भम् । अद्रिः । ससान । मर्यः । युवऽभिः । मखस्यन् । अथ । अभवत् । अङ्गिराः । सद्यः । अर्चन् ॥ ७ ॥

पदार्थः—(अगच्छत्) प्राप्नुयात् (उ) वितर्के (विप्रतमः) अतिशयेन मेधावी (सखीयन्) आत्मनः सखायमिच्छन् (असूदयत्) सूदयत् क्षरयेत् (सुकृते) सुष्ठु कृतेऽनुष्ठिते (गर्भम्) गर्भमिव वर्त्तमानं जलसमुदायम् (अद्रिः) मेघः (ससान) सनति विभजति (मर्य्यः) मनुष्यः (युवभिः) प्राप्तयुवाऽवस्थैः (मखस्यन्) आत्मनो मखं यज्ञमिच्छन् (अथ) आनन्तर्ये (अभवत्) भवेत् (अङ्गिराः) अङ्गेषु रसवद्वर्त्तमानः (सद्यः) शीघ्रम् (अर्चन्) सत्कुर्वन् ॥ ७ ॥

अन्वयः—यो मर्यो युवभिः सह वर्त्तमानो सखीयन् मखस्यन्नथाङ्गिराः सद्योऽर्चन् विप्रतमस्तां भार्य्यामगच्छत् सोऽद्रिर्गर्भमिव सुकृतेऽभवत् सत्याऽसत्ये ससान उ दुष्कृतमसूदयत् ॥ ७ ॥

भावार्थः—यो ब्रह्मचर्येण विद्यासुशिक्षे सङ्गृह्य युवा सन् स्वतुल्यया कन्यया सह सुहृद्भावं प्रीतिं प्राप्य तां सत्कुर्वन्नुपयच्छेत्स मेघाज्जगदिव सर्वाणि सुखानि प्राप्नुयात् ॥ ७ ॥

पदार्थः—जो (मर्य्यः) मनुष्य (युवभिः) युवावस्थापन्न पुरुषों के सहित वर्त्तमान (सखीयन्) मित्र को चाहता वा (मखस्यन्) आत्मसम्बन्धी यज्ञ करने की इच्छा करता हुआ (अथ) उस के अनन्तर (अङ्गिराः) शरीरों में रस के सदृश वर्त्तमान (सद्यः) शीघ्र (अर्चन्) सत्कार करता हुआ (विप्रतमः) अत्यन्त बुद्धिमान् पुरुष उस स्त्री के समीप (अगच्छत्) प्राप्त होवै वह पुरुष (अद्रिः) मेघ जैसे (गर्भम्) गर्भ को वैसे (सुकृते) उत्तम कर्म के करने में उद्यत (अभवत्) होवे तथा सत्यासत्य का (ससान) विभाग करता है (उ) और भी निकृष्ट कर्म को (असूदयत्) नाश करै ॥ ७ ॥

भावार्थः—जो ब्रह्मचर्य्य से विद्या और उत्तम शिक्षा को ग्रहण करके युवा पुरुष अपने तुल्य कन्या के साथ सुहृद्भाव और प्रीति को प्राप्त हो के उस को सत्कार करता हुआ विवाहे वह पुरुष जैसे मेघ से संसार सुख को प्राप्त होत है वैसे सुख को प्राप्त होवै ॥ ७ ॥

पुनः के सुखिनो भवन्तीत्याह ॥

फिर कौन सुखी होते हैं इस वि० ॥

सतःसंतः प्रतिमानं पुरोभूर्विश्वा वेद जनिमा हन्ति शुष्णम् । प्र णो दिवः पदवीर्गव्युरर्चन्त्सखा सखीँरमुञ्चन्निरवद्यात् ॥ ८ ॥

सतःऽसतः । प्रतिऽमानम् । पुरःऽभूः । विश्वा । वेद । जनिम । हन्ति । शुष्णम् । प्र । नः । दिवः । पदऽवीः । गव्युः । अर्चन् । सखा । सखीन् । अमुञ्चत् । निः । अव-द्यात् ॥ ८ ॥

पदार्थः—(सतःसतः) विद्यमानस्य विद्यमानस्य (प्रतिमानम्) परिमाणसाधकम् (पुरोभूः) यः पुरस्ताद्भावयति सः (विश्वा) सर्वाणि (वेद) जानाति (जनिमा) जन्मानि (हन्ति) (शुष्णम्) शोककरं दुःखम् (प्र) (नः) अस्माकम् (दिवः) प्रकाशस्य (पदवीः) प्रतिष्ठाः (गव्युः) आत्मनो गां वाणीमिच्छुः (अर्चन्) सत्कुर्वन् (सखा) सुहृत्सन् (सखीन्) सुहृदः (अमुञ्चत्) मुच्यात् (निः) (अवद्यात्) निन्द्यादधर्म्यादाचरणात् ॥ ८ ॥

अन्वयः-हे मनुष्या यः पुरोभूः सतःसतः प्रतिमानं विश्वा जनिमा वेद शुष्णं हन्ति स गव्युर्नो दिवः पदवीः प्रयच्छेत्सखीनर्चन् सखा सन्नवद्यान्निरमुञ्चत्सोऽतुलं सुखमाप्नुयात् ॥ ८ ॥

भावार्थः—त एव मनुष्याः सुखिनो भवन्ति ये कार्य्यकारणरूपां सृष्टिं विदित्वा सर्वेषां सखायो भूत्वा सर्वान् पापाचरणात्पृथक्कृत्य धर्माचरणे प्रवर्त्तयेयुः । त एव सत्यसुहृदः सन्तीति ॥ ८ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो पुरुष (पुरोभूः) पहिले से चिताता (सतःसतः) विद्यमान विद्यमान के (प्रतिमानम्) परिमाण के साधक को वा (विश्वा) संपूर्ण (जनिमा) उत्पन्न हुए पदार्थों को (वेदः) जानता और (शुष्णम्) शोककारक दुःख को (हन्ति) नाश करता है वह (गव्युः) अपने को विद्या चाहने वाला (नः) हम लोगों के (दिवः) प्रकाश की (पदवीः) प्रतिष्ठाओं को

(प्र) प्राप्त करै (सखीन्) मित्रों का (अर्चन्) सत्कार करता हुआ (सखा) मित्र हो कर (अवद्यात्) धर्मरहित आचरण से (निः) निरन्तर (अमुञ्चत्) पृथक करै वह अत्यन्त सुख को प्राप्त हो ॥ ८ ॥

भावार्थः—वे ही मनुष्य सुखी होते हैं जो कार्य्यकारणरूप सृष्टि को जान और संपूर्ण जनों के मित्र हों सम्पूर्ण जनों को पाप के आचरण से पृथक् करके धर्म के आचरण में प्रवृत्त करें वेही सत्य मित्र हैं ॥ ८ ॥

अथ मोक्षमिच्छुभिः किं कार्यमित्याह ॥

अब मोक्ष की इच्छा करने वालों को क्या करना चाहिये इस वि० ॥

नि ग॑व्यता मन॑सा सेदुर॒र्कैः कृ॑ण्वा॒नासो॑ अमृ॒तत्वाय॑ गा॒तुम् । इ॒दं चि॒न्नु सद॑नं॒ भूर्ये॑षां॒ येन॒ मासाँ॒ असि॑षासन्नृ॒तेन॑ ॥ ९ ॥

नि । ग॒व्यता । मन॑सा । सेदुः । अ॒र्कैः । कृ॒ण्वा॒नासः॑ । अ॒मृ॒त॒ऽत्वाय॑ । गा॒तुम् । इ॒दम् । चि॒त् । नु । सद॑नम् । भूरि॑ । ए॒षा॒म् । येन॑ । मासा॑न् । असि॑सासन् । ऋ॒तेन॑ ॥ ९ ॥

पदार्थः—(नि) नित्यम् (गव्यता) आत्मनो गौरिवाचरता (मनसा) अन्तःकरणेन (सेदुः) प्राप्नुयुः (अर्कैः) अर्चनीयैर्विद्वद्भिः सह (कृण्वानासः) कुर्वन्तः (अमृतत्वाय) अमृतस्य मोक्षस्य भावाय (गातुम्) प्रशंसितां भूमिम् । गातुरिति पृथिवीना० निघं० १ । १ (इदम्) (चित्) अपि (नु) सद्यः (सदनम्) सीदन्ति यत्र तत् (भूरि) बहु (एषाम्) वर्त्तमानानाम् (येन) (मासान्) चैत्रादीन् (असिषासन्) विभक्तुमिच्छन्तु (ऋतेन) सत्याचरणेन ॥ ९ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यथा कृण्वानासो गव्यता मनसार्कैः सहाऽमृतत्वाय गातुं निसेदुरिदं चिद्भूरि सदनं सेदुर्येनर्त्तेन मासानसिषासँस्तेनैषां कल्याणं नु जायते ॥ ९ ॥

भावार्थः—यदि मनुष्या मोक्षमिच्छेयुस्तर्हि तैर्विद्वत्सङ्गधर्माऽनुष्ठानं कृत्वाऽधर्मत्यागं विधाय सद्योन्तःकरणात्मशुद्धिःसम्पादनीया॥ ९॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जैसे (कृण्वानासः) करते हुए जन (गव्यता) अपनी वाणी के सदृश (मनसा) अन्तःकरण से (अर्कैः) सत्कार करने योग्य विद्वानों के साथ (अमृतत्वाय) मोक्ष के होने के लिये (गातुम्) प्रशंसा युक्त भूमि को (नि, सेदुः) प्राप्त होवैं तथा (इदम्) इस (चित्) भी (भूरि) बहुत (सदनम्) प्राप्त होने योग्य स्थान को प्राप्त होवैं (येन) जिस (ऋतेन) सत्य आचरण से (मासान्) चैत्र आदि महीनों के (असिषासन्) विभाग करने की इच्छा करैं उस से (एषाम्) इन पुरुषों का कल्याण (नु) शीघ्र होता है ॥९॥

भावार्थः—जो मनुष्य लोग मोक्ष की इच्छा करैं तो विद्वानों का संग धर्म का अनुष्ठान और अधर्म का त्याग करके शीघ्र ही अन्तःकरण और आत्मा की शुद्धि करैं ॥ ९ ॥

पुनर्विद्वांसः किं कुर्युरित्याह ॥
फिर विद्वान् लोग क्या करें इस वि० ॥

संपश्यमाना अमदन्नभि स्वं पयः प्रत्नस्य रेतसो दुघानाः । वि रोदसी अतपद्घोष एषां जाते निःष्ठामदधुर्गोषु वीरान् ॥ १० ॥ ६ ॥

समऽपश्यमानाः । अमदन् । अभि । स्वम् । पयः । प्रत्नस्य । रेतसः । दुघानाः । वि । रोदसी इति । अतपत् । घोषः । एषाम् । जाते । निःऽस्थाम् । अदधुः । गोषु । वीरान् ॥ १० ॥ ६ ॥

पदार्थः—(संपश्यमानाः) सम्यक्प्रेक्षमाणाः (अमदन्) आनन्दन्ति (अभि) आभिमुख्ये (स्वम्) स्वकीयम् (पयः) दुग्धम् (प्रत्नस्य) प्राक्तनस्य (रेतसः) वीर्यस्य (दुघानाः) प्रपूरयन्तः (वि) (रोदसी) द्यावापृथिव्यौ (अतपत्) तपति (घोषः) वाणी (एषाम्) विदुषाम् (जाते) (निःष्ठाम्) नितरां स्थितानाम् (अदधुः) दधीरन् (गोषु) पृथिव्यादिषु (वीरान्) प्राप्तशुभगुणान् ॥ १० ॥

अन्वयः—ये स्वं संपश्यमानाः प्रत्नस्य रेतसः पयो दुघाना अभ्यमदन्नेषां निःष्ठां घोषः सूर्यो रोदसी इव दुष्टान्व्यतपत्ते जातेऽस्मिञ्जगति गोषु वीरानदधुः ॥ १० ॥

भावार्थः—ये विचारशीला धार्मिका विद्वांसः स्वकीयं सनातनमात्मसामर्थ्यं वर्धयेयुः सर्वेभ्यः सत्याऽसत्ये उपदिश्य दुष्टतां निवार्य्य श्रेष्ठतां धारयेयुस्त एव शूरवीराः सन्तीति वेद्यम् ॥ १० ॥

पदार्थः—जो लोग (स्वम्) अपने को (संपश्यमानाः) उत्तम प्रकार देखते और (प्रत्नस्य) प्राचीन (रेतसः) वीर्य के (पयः) दुग्ध को (दुघानाः) पूर्ण करते हुए (अभि) सन्मुख (अमदन्) आनन्द करते हैं (एषाम्) इन (निःष्ठाम्) उत्तम प्रकार स्थित विद्वानों की (घोषः) वाणी सूर्य्य जैसे (रोदसी) अन्तरिक्ष पृथिवी को वैसे दुष्ट पुरुषों को (वि) (अतपत्) तपाती है वे पुरुष (जाते) उत्पन्न हुए इस संसार में (गोषु) पृथिवी आदिकों में (वीरान्) उत्तम गुणों से युक्त पुरुषों को (अदधुः) धारण किया करें ॥१०॥

भावार्थः—जो उत्तम विचार करने वाले धार्मिक विद्वान् पुरुष अपने अनादि काल सिद्ध सामर्थ्य को बढ़ावैं सब लोगों के लिये सत्य और असत्य का उपदेश कर दुष्टता को दूर कर और श्रेष्ठता का धारण करैं वे ही शूरवीर होते हैं यह जानना चाहिये ॥ १० ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

स जातेभिर्वृत्रहा सेदु हव्यैरुदुस्रिया असृजदिन्द्रो अर्कैः । उरूच्यस्मै घृतवद्भरन्ती मधु स्वाद्म दुदुहे जेन्या गौः ॥ ११ ॥

सः । जातेभिः । वृत्रऽहा । सः । इत् । ऊं इति । हव्यैः । उत् । उस्रियाः । असृजत् । इन्द्रः । अर्कैः । उरूची । अस्मै । घृतऽवत् । भरन्ती । मधु । स्वाद्म । दुदुहे । जेन्या । गौः ॥ ११ ॥

पदार्थः—(सः) (जातेभिः) उत्पन्नैः सह (वृत्रहा) मेघस्य हन्ता सूर्य्य इव (सः) (इत्) एव (उ) (हव्यैः) आदातुमर्हैः (उत्) (उस्रियाः) गावः किरणाः (असृजत्) सृजति (इन्द्रः) परमैश्वर्य्यहेतुः (अर्कैः) अर्चनीयैर्मनुष्यैः सह (उरूची) योरूणि बहून्यञ्चति सा (अस्मै) (घृतवत्) घृतमाज्यमुदकं वा प्रशस्तं विद्यते यस्मिँस्तत् (भरन्ती) धरन्ती (मधु) मधुरगुणोपेतम् (स्वाद्म) स्वादिष्ठम् (दुदुहे) दुह्यते (जेन्या) जेतुं योग्या (गौः) पृथिवी ॥ ११ ॥

अन्वयः—यो वृत्रहेन्द्र उस्रिया उदसृजदिवार्कैर्हव्यैर्जातेभिः सह पदार्थानसृजत्स इत्सुखमाप्नोति । या उरूची घृतवत्स्वाद्म मधु भरन्ती जेन्या गौरस्मै दुदुहे तां स उ विद्यात् ॥ ११ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यथा सूर्य्यः स्वप्रकाशेन सर्वानुत्पन्नान् सृष्टिपदार्थान् प्रकाशयति तथैव विद्वान् विज्ञानेन सर्वान् विदित्वा सर्वत्र प्रकाशयेत् ॥ ११ ॥

पदार्थः—जो (वृत्रहा) मेघ के नाश कर्त्ता सूर्य्य के सदृश (इन्द्रः) अतिश्रेष्ठ ऐश्वर्य्य का कारण (उस्रियाः) वाणियों को किरणों के सदृश (उत्, असृजत्) उत्पन्न करता है (अर्कैः) आदर करने योग्य मनुष्यों (हव्यैः) ग्रहण करने के योग्य पदार्थों और (जातेभिः) उत्पन्न हुए व्यवहारों के साथ पदार्थों को (असृजत्) उत्पन्न करता है (स इत्) वही सुख को प्राप्त होता है जो (उरूची) बहुतों का सत्कार करती (घृतवत्) घृत वा जल उत्तमता युक्त (स्वाद्म) स्वादिष्ठ (मधु) मीठे गुण से युक्त पदार्थ को (भरन्ती) धारण करती हुई (जेन्या) जीतने योग्य (गौः) पृथिवी (अस्मै) उस ऐश्वर्य्य के लिये (दुदुहे) दुही जाती है उस को वह पुरुष (उ) ही जाने ॥ ११ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे सूर्य्य अपने प्रकाश से सम्पूर्ण उत्पन्न हुए सृष्टि के पदार्थों का प्रकाश करता है वैसे ही विद्वान् पुरुष विज्ञान से सम्पूर्ण पदार्थों को जान कर उस का सर्वत्र प्रकाश करे ॥ ११ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

पित्रे चिच्चक्रुः सदनं समस्मै महि त्विषीमत्सुकृतो वि हि ख्यन् । विष्कभ्नन्तः स्कम्भनेना जनित्री आसीना ऊर्ध्वं रभसं वि मिन्वन् ॥१२॥

पित्रे । चित् । चक्रुः । सदनम् । सम् । अस्मै । महि । त्विषिऽमत् । सुऽकृतः । वि । हि । ख्यन् । विऽस्कभ्नन्तः । स्कम्भनेन । जनित्री इति । आसीनाः । ऊर्ध्वम् । रभसम् । वि । मिन्वन् ॥ १२ ॥

पदार्थः—(पित्रे) पालकाय (चित्) अपि (चक्रुः) कुर्य्युः (सदनम्) स्थानम् (सम्) (अस्मै) (महि) महत् (त्विषीमत्)

बह्वयोऽस्त्वपयो दीप्तयो विद्यन्ते यस्मिँस्तत् । अत्राऽन्येषामपीति दीर्घः (सुकृतः) ये शोभनानि धर्म्याणि कर्माणि कुर्वन्ति ते (वि) (हि) यतः (ख्यन्) प्रकाशयन्ति (विष्कभ्नन्तः) ये विशेषेण स्कभ्नन्ति धरन्ति ते (स्कम्भनेन) धारणेन । अत्र संहितायामिति दीर्घः (जनित्री) मातृवत्सर्वेषां महत्तत्त्वादीनामुत्पादिका (आसीनाः) स्थिराः (ऊर्ध्वम्) (रभसम्) वेगम् (वि) (मिन्वन्) विशेषेण प्रक्षिपन्ति ॥ १२ ॥

अन्वयः—ये सुकृतो विष्कभ्नन्तो महत्तत्त्वादीनां जनित्री प्रकृतिरिवासीनाः स्कम्भनेनोर्ध्वं रभसं विमिन्वन् विद्यां विख्यन् हि चिदप्यस्मै पित्रे त्विषीमन्महि सदनं संवक्रुस्ते कृतकृत्या विद्वांसः स्युः ॥ १२ ॥

भावार्थः—यथा विभ्व्याः प्रकृतेः सकाशान्महत्तत्त्वादीनि निर्म्माय जगत्सर्वं जगदीश्वरो विदधाति तथैव विद्वांसः पितृवद्वर्त्तमानाः सन्तः सर्वार्थं सुखं विदधति पदार्थविद्यां साक्षात्कृत्योपदिशन्ति च ॥ १२ ॥

पदार्थः—जो (सुकृतः) उत्तम धर्म सम्बन्धी कर्म करने और (विष्कभ्नन्तः) विशेष करके धारण करने वाले महत्तत्त्व अर्थात् बुद्धि आदि की (जनित्री) उत्पन्न करने वाली प्रकृति के सदृश (आसीनाः) स्थिर (स्कम्भनेन) धारण करने से (ऊर्ध्वम्) ऊंचे (रभसम्) वेग को (वि) (मिन्वन्) विशेष करके फेंकते और विद्या को (वि) (ख्यन्) प्रकाश करते वा (हि) जिस कारण (चित्) ही (अस्मै) इस (पित्रे) पालन करने वाले के लिये (त्विषीमत्) बहुत कान्तियों से युक्त (महि) बड़े (सदनम्) स्थान को (सम्) (वक्रुः) सम्पन्न करें वे कृतकृत्य विद्वान् होवैं ॥ १२ ॥

भावार्थः—जैसे व्यापक प्रकृति के द्वारा महत्तत्व आदि को रच कर सम्पूर्ण जगत् को ईश्वर रचता है वैसे ही विद्वान् जन पिता के सदृश वर्त्तमान हो कर सम्पूर्ण जनों के लिये सुख धारण करते और पदार्थविद्या का प्रत्यक्ष अभ्यास करके शिक्षा देते हैं ॥ १२ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

मही यदि धिषणा शिश्नथे धात्सद्योवृधं विभ्वं रोदस्योः । गिरो यस्मिन्ननवद्याः समीचीर्विश्वा इन्द्राय तविषीरनुत्ताः ॥ १३ ॥

मही । यदि । धिषणा । शिश्नथे । धात् । सद्यःऽवृधम् । विऽभ्वम् । रोदस्योः । गिरः । यस्मिन् । अनवद्याः । सम्ऽईचीः । विश्वाः । इन्द्राय । तविषीः । अनुत्ताः ॥ १३ ॥

पदार्थः—(मही) अतीव सत्कर्त्तव्या (यदि) (धिषणा) प्रगल्भा वाक् (शिश्नथे) श्नथति हिनस्ति । अत्र व्यत्ययेनात्मनेपदम् (धात्) दधाति (सद्योवृधम्) यः सद्यो वर्धयति तम् (विभ्वम्) व्यापकम् (रोदस्योः) द्यावापृथिव्योः (गिरः) वाण्यः (यस्मिन्) (अनवद्याः) अनिन्द्याः (समीचीः) याः समानं सत्यमञ्चन्ति ताः (विश्वाः) अखिलाः (इन्द्राय) परमैश्वर्य्याय (तविषीः) बलयुक्ताः (अनुत्ताः) आनुकूल्येन धृताः ॥ १३ ॥

अन्वयः—हे विद्वांसो भवद्भिर्यदि मही धिषणा वाग्रोदस्योर्मध्ये सद्योवृधं विभ्वं धात्तर्हीयमविद्यां शिश्नथे सा सङ्ग्राह्या यस्मिन्ननवद्याः समीचीस्तविषीरनुत्ता विश्वा गिर इन्द्राय प्रभवेयुस्स व्यवहारः सदा सेवनीयः ॥ १३ ॥

भावार्थः—ये विद्वांसो विविधविद्यायुक्ता वाचो धृत्वा विभुं परमात्मानं ज्ञातुमिच्छेयुस्ते परमैश्वर्य्यं लभेरन् ॥ १३ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् जनो आप लोगों से (यदि) जो (मही) अत्यन्त सत्कार करने योग्य (धिषणा) प्रगल्भ अर्थात् नहीं रुकने वाली वाणी (रोदस्योः) अन्तरिक्ष और पृथिवी के मध्य में (सद्योवृधम्) शीघ्र वृद्धिकारक (विभ्वम्) व्यापक को (धात्) धारण करती है तो इस अविद्या का (शिश्नथे) नाश करती है (यस्मिन्) जिस में (अनवद्याः) निन्दारहित (समीचीः) सत्य को धारण करने वाली (तविषीः) बलयुक्त (अनुत्ताः) अनुकूलता से धारण की गई (विश्वाः) सम्पूर्ण (गिरः) वाणियां (इन्द्राय) परम ऐश्वर्य्य के लिये समर्थ होवें वह व्यवहार सदा सेवन करने योग्य है ॥ १३ ॥

भावार्थः—जो विद्वान् लोग अनेक प्रकार की विद्याओं से युक्त वाणियों को धारण करके व्यापक परमात्मा के जानने की इच्छा करें वे बड़े ऐश्वर्य को प्राप्त होवें ॥ १३ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥
फिर उसी वि० ॥

मह्या तें सुख्यं वंश्मि शुक्तीरा वृत्रघ्ने नियुतों यन्ति पूर्वीः । महिं स्तोत्रमव आगंन्म सूरेरस्माकं सु मंघवन्बोधि गोपाः ॥ १४ ॥

महि । आ । ते । सख्यम् । वश्मि । शक्तीः । आ । वृत्रऽघ्ने । निऽयुतः । यन्ति । पूर्वीः । महि । स्तोत्रम् । अवः । आ । अगन्म । सूरेः । अस्माकम् । सु । मघऽवन् । बोधि । गोपाः ॥ १४ ॥

पदार्थः—(महि) महत्पूजनीयम् (आ) (ते) तव (सख्यम्) मित्रस्य भावम् (वश्मि) कामये (शक्तीः) सामर्थ्यानि (आ) (वृत्रघ्ने) यः सूर्यो मेघं वृत्रं हन्ति तद्वद्वर्त्तमानाय (नियुतः)

निश्चिताः (यन्ति) प्राप्नुवन्ति (पूर्वीः) प्राचीनाः सनातन्यः (महि) महत् (स्तोत्रम्) स्तोतुमर्हम् (अवः) रक्षणादिकम् (आ) (अगन्म) प्राप्नुयाम (सूरेः) परमविदुषः (अस्माकम्) मध्ये वर्त्तमानस्य (सु) शोभने (मघवन्) परमपूजितधनयुक्त (बोधि) बुध्यस्व (गोपाः) रक्षकः ॥ १४ ॥

अन्वयः-हे मघवन्नहं ते महि सख्यमावश्मि विद्वांसो यस्मै वृत्रघ्न इव वर्त्तमानाय तुभ्यं पूर्वीर्नियुतः शक्तीरायन्ति तस्यास्माकं मध्ये वर्त्तमानस्य सूरेस्तव सकाशान्महि स्तोत्रमवो वयमागन्म त्वमस्माकं गोपाः सन्सुबोधि ॥ १४ ॥

भावार्थः—मनुष्यैर्विद्वद्भिः सह मैत्रीं विधाय सामर्थ्यं पूर्णं कृत्वा न्यायेन सर्वान् संरक्ष्य सूर्य्यस्य प्रकाश इव जगति विद्याबोधः प्रकाशनीयः ॥ १४ ॥

पदार्थः—हे (मघवन्) अत्यन्त श्रेष्ठ धनयुक्त पुरुष मैं (ते) आप के (महि) अतिआदर करने योग्य (सख्यम्) मित्रभाव की (आ, वश्मि) अच्छी कामना करता हूं विद्वान् जन जिस (वृत्रघ्ने) मेघ के नाशकर्ता सूर्य्य के तुल्य वर्त्तमान आप के लिये (पूर्वीः) अनादि काल से सिद्ध (नियुतः) निश्चित (शक्तीः) सामर्थ्यों को (आ) (यन्ति) प्राप्त होते हैं उस (अस्माकम्) हम लोगों के मध्य में वर्त्तमान (सूरेः) परमोत्तम विद्वान् आप के समीप से (महि) बड़े (स्तोत्रम्) स्तुति करने के योग्य (अवः) रक्षा आदि को हम लोग (आ, अगन्म) प्राप्त होवैं आप हम लोगों की (गोपाः) रक्षाकर्त्ता हुए (सु) (बोधि) जानिये ॥ १४ ॥

भावार्थः—मनुष्य लोगों को चाहिये कि विद्वान् जनों के साथ मित्रता कर सामर्थ्य पूर्ण कर और न्याय से संपूर्ण जनों की रक्षा करके सूर्य्य के प्रकाश के सदृश संसार में विद्या के बोध का प्रकाश करैं ॥ १४ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

महि क्षेत्रं पुरुश्चन्द्रं विविद्वानादित्सखिंभ्यश्चरथं समैरत् । इन्द्रो नृभिरजनद्दीद्यानः साकं सूर्य्यमुषसं गातुमग्निम् ॥ १५ ॥ ७ ॥

महि । क्षेत्रम् । पुरु । चन्द्रम् । विविद्वान् । आत् । इत् । सखिऽभ्यः । चरथम् । सम् । ऐरत् । इन्द्रः । नृऽभिः । अजनत् । दीद्यानः । साकम् । सूर्य्यम् । उपसम् । गातुम् । अग्निम् ॥ १५ ॥ ७ ॥

पदार्थः—(महि) महत् (क्षेत्रम्) क्षियन्ति निवसन्ति पदार्था यस्मिंस्तत् (पुरु) बहु (चन्द्रम्) सुवर्णम् । अत्र ह्रस्वाच्चन्द्रोत्तरपदे मन्त्र इति सुडागमः (विविद्वान्) वेत्ता (आत्) (इत्) एव (सखिभ्यः) मित्रेभ्यः (चरथम्) आगमनं विज्ञानं वा (सम्) सम्यक् (ऐरत्) प्रेरयेत् । अत्र व्यत्ययेन परस्मैपदं बहुलं छन्दसीति शपो लुङ् न (इन्द्रः) विद्युदिव सुखप्रदो दुःखविदारकः (नृभिः) नायकैः (अजनत्) जनयेत् (दीद्यानः) देदीप्यमानः (साकम्) सह (सूर्य्यम्) सवितारम् (उषसम्) प्रभातम् (गातुम्) वाणीं भूमिं वा (अग्निम्) भौमं पावकम् ॥ १५ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यो विविद्वान् दीद्यान इन्द्र इव सखिभ्य इन्महि पुरुश्चन्द्रं क्षेत्रं चरथं च समैरदान्नृभिः साकं सूर्य्यमुषसं गातुमग्निमजनत्तं सदा सत्कुरुत ॥ १५ ॥

भावार्थः—यथा विद्यया सुसंप्रयुक्ता विद्युत्सूर्य्यभूमिपावकाः प्रातरादिसमय ऐश्वर्य्यं जनयित्वा सखीन् सुखयन्ति तथैव विद्वांसो मनुष्यादीन्प्राणिनः सुखयन्तु ॥ १५ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (विविद्वान्) ज्ञाता और (दीद्यानः) प्रकाशमान (इन्द्रः) बिजुली के सदृश सुख का वर्द्धक और दुःख का नाशक (सखिभ्यः) मित्रों के लिये (इत्) ही (महि) बड़ा (पुरु) बहुत (चन्द्रम्) सुवर्ण (क्षेत्रम्) पदार्थों का आधार (चरथम्) गमन वा विज्ञान की (सम्) (ऐरत्) प्रेरणा करे (आत्) उस के अनन्तर (नृभिः) प्रधान जनों के (साकम्) साथ (सूर्य्यम्) सूर्य्य (उषसम्) प्रातःकाल (गातुम्) वाणी वा भूमि और (अग्निम्) अग्नि को (अजनत्) उत्पन्न करे उस का सदा सत्कार करो ॥१५॥

भावार्थः—जैसे विद्या से युक्त बिजुली सूर्य्य भूमि और अग्नि प्रातःकालादि समय में ऐश्वर्य को उत्पन्न कर मित्रों को सुख देते हैं वैसे ही विद्वान् लोग मनुष्य आदि प्राणियों को सुख देवें ॥ १५ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

अपश्चिदेष विभ्वो३ दमूनाः प्र सध्रीचीरसृजद्विश्वश्चन्द्राः । मध्वः पुनानाः कविभिः पवित्रैर्द्युभिर्हिन्वन्त्यक्तुभिर्धनुत्रीः ॥ १६ ॥

अपः । चित् । एषः । विऽभ्वः । दमूनाः । प्र । सध्रीचीः । असृजत् । विश्वऽचन्द्राः । मध्वः । पुनानाः । कविऽभिः । पवित्रैः । द्युऽभिः । हिन्वन्ति । अक्तुऽभिः । धनुत्रीः ॥१६॥

पदार्थः—(अपः) जलानीव व्याप्तविद्याः (चित्) अपि (एषः) (विभ्वः) विभूः (दमूनाः) जितेन्द्रियमनस्काः (प्र)

(सध्रीचीः) सहैवाऽञ्चन्तीः (असृजत्) सृजति (विश्वश्चन्द्राः) विश्वानि समग्राणि चन्द्राणि सुवर्णादीनि येषान्ते । अत्रापि ह्रस्वाच्चन्द्रोत्तरपदे मन्त्र इति सुडागमः (मध्वः) मधुरस्वभावान् जनान् (पुनानाः) पवित्रयन्तः (कविभिः) विद्वद्भिः (पवित्रैः) शुद्धैर्व्यवहारैः (द्युभिः) दिनैः (हिन्वन्ति) वर्धयन्ति वर्धन्ते वा । अत्र पक्षेऽन्तर्भावितो ण्यर्थः (अक्तुभिः) रात्रिभिः (धनुत्रीः) धनधान्यादियुक्ताः ॥ १६ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या ये कविभिः सहिताः पवित्रैर्द्युभिरक्तुभिर्मध्वः पुनाना जना धनुत्रीर्हिन्वन्ति यश्चिदेष विश्वो दमूनाः सध्रीचीर्विश्वश्चन्द्रा अपः प्रासृजत्ताँस्तं च सर्वे सङ्गच्छन्ताम् ॥ १६ ॥

भावार्थः—ये विद्वांसो बह्वैश्वर्य्यजनकान् पदार्थान् कार्यसिद्धये प्रयुञ्जते विद्वद्भिः सह पवित्राचरणं कृत्वा सुखैश्वर्य्यमहर्निशं वर्धयन्ति ते भाग्यशालिनः सन्ति ॥ १६ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो लोग (कविभिः) विद्वान् जनों के सहित (पवित्रैः) उत्तम व्यवहारों तथा (द्युभिः) दिनों और (अक्तुभिः) रात्रियों से (मध्वः) कोमल स्वभाव वाले मनुष्यों को (पुनानाः) पवित्र करते हुए जन (धनुत्रीः) धन और धान्य आदि कों से युक्त (हिन्वन्ति) बढ़ाते वा बढ़ते हैं जो (चित्) भी (एषः) यह (विश्वः) व्यापक (दमूनाः) जितेन्द्रिय मनयुक्त (सध्रीचीः) एक साथ मिले हुए (विश्वश्चन्द्राः) संपूर्ण सुवर्ण आदिकों से युक्त (अपः) जलों के सदृश व्याप्त विद्याओं को (प्र) (असृजत्) उत्पन्न करता है उन और उस का सर्व जन सङ्गम करें ॥ १६

भावार्थः—जो विद्वान् लोग बहुत ऐश्वर्यों के जनक पदार्थों को कार्य सिद्धि के लिये उपयोग में लाते तथा विद्वान् जनों के साथ शुद्ध आचरणों को करके सुख और ऐश्वर्य दिन रात्रि बढ़ाते वे भाग्यशाली हैं ॥ १६ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

अनु कृष्णे वसुधिती जिहाते उभे सूर्यस्य मंहना यजत्रे । परि यत्ते महिमानं वृजध्यै सखाय इन्द्र काम्या ऋजिप्याः ॥ १७ ॥

अनु । कृष्णे इति । वसुधिती इति वसुऽधिती । जिहाते इति । उभे इति । सूर्यस्य । मंहना । यजत्रे इति । परि । यत् । ते । महिमानम् । वृजध्यै । सखायः । इन्द्र । काम्याः । ऋजिप्याः ॥ १७ ॥

पदार्थः—(अनु) (कृष्णे) कर्षिते (वसुधिती) वसूनां पदार्थानां धर्त्र्यौ द्यावापृथिव्यौ (जिहाते) गच्छतः (उभे) (सूर्यस्य) (मंहना) महत्वेन (यजत्रे) सङ्गते (परि) (यत्) ये (ते) तव (महिमानम्) (वृजध्यै) वर्जितुम् (सखायः) सुहृदः सन्तः (इन्द्र) परमैश्वर्ययुक्त राजन् (काम्याः) कमनीयाः (ऋजिप्याः) ऋजीन्सरलान्व्यवहारान् प्यायन्ते वर्धयन्ति ते ॥१७॥

अन्वयः—हे इन्द्र यद्ये ते काम्या ऋजिप्याः सखायो महिमानमनुकृष्णे उभे यजत्रे वसुधिती सूर्यस्य मंहना वृजध्यै परि जिहाते इव स्तस्ते वर्धयन्ति ते त्वया सत्कर्त्तव्याः ॥ १७ ॥

भावार्थः—यथा सूर्यः स्वमहिम्ना भूमिप्रकाशावनुकृष्य धरति यथा भूमिप्रकाशौ सर्वान् धरतस्तथोत्तमपुरुषेण स्वमहिमानं धृत्वा दुर्व्यसनानि वर्जित्वा सखायः सत्कर्त्तव्याः ॥ १७ ॥

वैदिकयन्त्रालय प्रयाग के पुस्तकों का सूचीपत्र

और संक्षिप्त नियम।

१) मूल्य पेशगी भेज कर मंगावें (२) पेशगी भेजने वालों को १०) रु० वा इस से अधिक पर २०) रु० सैकड़ा के हिसाब से कमीशन के पुस्तक अधिक भेजे जांय गे (३) डाक महसूल वेदभाष्य छोड़ कर सब से अलग लिया जायगा। ५) रु० वा इस से अधिक के पुस्तक ग्राहक की आज्ञानुसार रजिस्टरी भेजे जांय गे (४) मूल्य नीचे लिखे पते से भेजें ॥

	मू०	डा०
ऋग्वेदभाष्य अं० १—१२५	४५)	
यजुर्वेद भाष्य सम्पूर्ण	३९)	
ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका	मू०	डा०
विना जिल्द की	२)	=)
» जिल्द की	२॥)	।)
वर्णोच्चारणशिक्षा	/)	-)॥
सन्धिविषय	।≡)॥	-)॥
नामिक	।=)॥	-)॥
कारकीय	।/)॥	-)॥
सामासिक	।≡)॥	-)॥
स्त्रैणताद्धित	१=)	/)
अव्ययार्थ	=)॥	)॥
सौवर	=)॥	-)॥
आख्यातिक	१॥)	=)॥
पारिभाषिक	≡)॥	-)॥
धातुपाठ	।=)	-)॥
गणपाठ	।/)	-)॥
उणादिकोष	॥=)	/)
निघण्टु	।=)	-)॥
अष्टाध्यायी मूल	।/)॥	)॥
संस्कृतवाक्यप्रबोध	≡)	-)॥
व्यवहारभानु	≡)	-)॥

	मू०	डा०
भ्रमोच्छेदन	)॥	-)॥
अनुभ्रमोच्छेदन	)॥	-)॥
मेलाचांदापुर	/)	-)॥
आर्योद्देश्यरत्नमाला	/)	-)॥
गोकरुणानिधि	/)	-)॥
स्वामीनारायणमतखण्डन गुजराती	)॥	-)॥
वेदविरुद्धमतखण्डन	=)	-)॥
स्वमन्तव्याऽमन्तव्यप्रकाश	)॥	-)॥
शास्त्रार्थ फीरोज़ाबाद	≡)	-)॥
शास्त्रार्थकाशी	/)	-)॥
आर्य्याभिविनय	।)	/)
» जिल्द की	।≡)	/)
वेदान्तिध्वान्तनिवारण	/)	)॥
भ्रान्तिनिवारण	/)।	-)॥
पञ्चमहायज्ञविधि	=)॥	-)॥
» जिल्द की	।=)॥	/)
आर्य्यसमाज के नियमोपनियम	-)।	-)॥
सत्यार्थप्रकाश छपता है		
संस्कारविधि »		

मेनेजर—वैदिकयन्त्रालय—प्रयाग

रसीद मूल्य वेदभाष्य

श्रीमान् बाबू छुट्टनलाल जी डिपुटी कलेक्टर   सहारनपुर ८)

ओ३म्

निवेदन--

सब सज्जन महाशयों को सविनय निवेदन किया जाता है कि— सत्यार्थप्रकाश और संस्कारविधि के छपने में बहुत कुछ विलम्ब हुआ और इसी से यन्त्रालय में उक्त पुस्तकों की मांग के अनेकों पत्र आ चुके हैं वह दोनों पुस्तक छप रही हैं और छपने में राति दिन परिश्रम हो रहा है जहां तक होगा सत्यार्थप्रकाश और संस्कारविधि अभिलाषी जनों के पास शीघ्र भेजे जांय गे अत एव जब तक छप जाने का विज्ञापन न दिया जावे यदि उक्त पुस्तकों के विषय में पत्र आवें गे तो उन का उत्तर न दिया जाय गा।

दरियावसिंह
स्थानापन्न प्रबन्धकर्ता वैदिकयन्त्रालय
प्रयाग

ऋग्वेदभाष्यम्

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मितम्

संस्कृतार्य्यभाषाभ्यां समन्वितम् ॥

अस्यैकैकाङ्कस्य प्रतिमासं मूल्यम् भारतवर्षान्तर्गतदेशान्तर-
प्रापणमूल्येन सहितम् ।=) अङ्कद्वयस्यैकीकृतस्य ॥=)
वार्षिकं मूल्यम् ८)

इस ग्रंथ के प्रतिमास एक एक अंक का मूल्य भरतखंड के भीतर डांक-
महसूल सहित ।≠) एक साथ छपे हुए दो अङ्कों के ॥≠)
और वार्षिक मूल्य ८)

यस्य सज्जनमहाशयस्यास्य ग्रन्थस्य जिघृक्षा भवेत् स प्रयागनगरे वैदिक-
यन्त्रालयप्रबन्धकर्त्तुः समीपे वार्षिकमूल्यप्रेषणेन प्रतिमासं
मुद्रितावङ्कौ प्राप्स्यति ॥

जिस सज्जनमहाशय की इस ग्रन्थ के लेने की इच्छा हो वह प्रयाग नगरमें वैदिकयन्त्रालय मैनेजर
के समीप वार्षिक मूल्य भेजने से प्रतिमास के छपे हुए दोनों अङ्कों को प्राप्त कर सकता है।

पुस्तक (१५४, १५५) अङ्क (१३८, १३९)

अयं ग्रन्थः प्रयागनगरे वैदिकयन्त्रालये मुद्रितः ॥

संवत् १९४७ आषाढ़ शुक्ल

वेदभाष्यसम्बन्धी विशेषनियम ॥

[१] यह "ऋग्वेदभाष्य" मासिक छपता है। एक मास में बत्तीस २ पृष्ठ के एक साथ छपे हुए दो अङ्क १ वर्ष में २४ अङ्क "ऋग्वेदभाष्य" के भेजे जाते हैं॥

[२] वेदभाष्य का मूल्य बाहर और नगर के ग्राहकों से एक ही लिया जायगा अर्थात् डाकव्यय से कुछ न्यूनाधिक न होगा ॥

[३] इस वर्तमान तेरहवें वर्ष के कि जो १२३-१२४ अङ्क से प्रारंभ हो कर १५६। १५७ पर पूरा होगा। वार्षिक मूल्य ८) रु० हैं।

[४] पीछे के बारह वर्षमें जो वेदभाष्य छप चुका है उस का मूल्य यह है:-

[क] "ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका" विना जिल्द की ३)

स्वर्णाक्षरयुक्त जिल्द की ३।।)

[ख] ऋग्वेदभाष्य ११२ अङ्क तक ४४।-)॥

[५] वेदभाष्य का अङ्क प्रत्येक मास की पहिली तारीख को डाक में डाला जाता है। जो किसी का अङ्क डाक की भूल से न पहुंचे तो इस के उत्तरदाता प्रबन्धकर्त्ता न होंगे। परन्तु दूसरे मास के अङ्क भेजने से प्रथम जो ग्राहक अङ्क न पहुंचने की सूचना दे देंगे तो उन को विना दाम दूसरा अङ्क भेज दिया जायगा इस अवधि के व्यतीत हुए पीछे अङ्क दाम देने से मिलें गे एक अङ्क।=) दो अङ्क ॥=) तीन अङ्क १) देने से मिलेंगे॥

[६] दाम जिस को जिस प्रकार से सुबीता हो भेजे परन्तु मनीआर्डर द्वारा भेजना ठीक होगा। टिकट डाक के अधन्नी वाले लिये जा सकते हैं परन्तु एक रुपये पीछे आध आना बट्टे का अधिक लिया जायगा। टिकट आदि मूल्यवान् वस्तु रजिस्टरी पत्री में भेजना चाहिये॥

[७] जो लोग पुस्तक लेने से अनिच्छुक हों, वे अपनी ओर जितना रुपया हो भेज दें और पुस्तक के न लेने से प्रबन्धकर्त्ता को सूचित कर दें जब तक ग्राहक का पत्र न आवेगा तब तक पुस्तक बराबर भेजा जायगा और दाम लेलिये जायंगे।

[८] बिके हुए पुस्तक पीछे नहीं लिये जायंगे ॥

[९] जो ग्राहक एक स्थान से दूसरे स्थान में जांय वे अपने पुराने और नये पते से प्रबन्धकर्त्ता को सूचित करें। जिस में पुस्तक ठीक ठीक पहुंचता रहे।

[१०] "वेदभाष्य" सम्बन्धी रुपया, और पत्र प्रबन्धकर्त्ता वैदिकयन्त्रालय प्रयाग (इलाहाबाद) के नाम से भेजें ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य से युक्त राजन् (यत्) जो (ते) आप के (काम्याः) कामना करने योग्य (ऋजिप्याः) सरल व्यवहारों के वर्द्धक (सखायः) मित्र हुए (महिमानम्) महिमा को (अनु) (कृण्णे) खींची गयीं (उभे) दोनों (यजत्रे) परस्पर मिली हुई (वसुधिती) अन्तरिक्ष और पृथिवी (सूर्यस्य) सूर्य के (मंहना) महनत्व से (वृजध्यै) रोकने को (परि) (जिहाते) प्राप्त होतेसे हैं उन को बढ़ाते हैं वे आप से सत्कारपाने योग्य हैं ॥ १७॥

भावार्थः—जैसे सूर्य अपने प्रताप से भूमि और प्रकाश का आकर्षण कर के धारण करता है और जैसे भूमि तथा प्रकाश सम्पूर्ण पदार्थों को धारण करते हैं वैसे उत्तम पुरुष को चाहिये कि महिमा को धारण और दुर्व्यसनों को त्याग कर के मित्रों का सत्कार करैं ॥ १७ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

पतिर्भव वृत्रहन्त्सूनृतानां गिरां विश्वायुर्वृषभो वयोधाः । आ नो गहि सख्येभिः शिवेभिर्महान्महीभिरूतिभिः सरण्यन् ॥ १८ ॥

पतिः । भव । वृत्रऽहन् । सूनृतानाम् । गिराम् । विश्वऽआयुः । वृषभः । वयःऽधाः । आ । नः । गहि । सख्येभिः । शिवेभिः । महान् । महीभिः । ऊतिऽभिः । सरण्यन् ॥ १८ ॥

पदार्थः—(पतिः) पालकः स्वामी (भव) (वृत्रहन्) मेघहन्ता सूर्य इव वर्त्तमान (सूनृतानाम्) सुष्ठु ऋतानि सत्यानि यासु तासाम् (गिराम्) वाचाम् (विश्वायुः) पूर्णायुः (वृषभः) सुखवर्षकः (वयोधाः) यो वयो जीवनं दधाति सः (आ) (नः) अस्मान् (गहि) आगच्छ प्राप्नुहि (सख्येभिः) सखीनां कर्मभिः (शिवेभिः) मङ्गलकारिभिः

(महान्) पूज्यतमः (महीभिः) महतीभिः (ऊतिभिः) रक्षणादिभिः (सरण्यन्) आत्मनः सरणं गमनं विज्ञानं वेच्छन् ॥ १८ ॥

अन्वयः—हे वृत्रहन्निन्द्र राजँस्त्वं महान् विश्वायुर्वृषभो वयोधाः शिवेभिः सख्येभिर्महीभिरूतिभिः सह सरण्यन्सन् सूनृतानां गिरां पतिर्भव नोऽस्मानागहि ॥ १८ ॥

भावार्थः—ये मनुष्याः सत्यवाचोऽजातशत्रवः स्वात्मवत्सर्वेषां पालकाः सूर्य्यवद्विद्याधर्मविनयप्रकाशका विद्वांसः स्वामिनस्स्युस्ते महान्तो भवेयुः ॥ १८ ॥

पदार्थः—हे (वृत्रहन्) मेघ के नाशकारक सूर्य्य के सदृश तेजधारी राजन् आप (महान्) प्रतिष्ठित (विश्वायुः) पूर्ण आयु से युक्त (वृषभः) सुखों की वृष्टि और (वयोधाः) जीवन के धारण करने वाले (शिवेभिः) मङ्गलकारक (सख्येभिः) मित्रों के कर्मों से (महीभिः) बड़ी (ऊतिभिः) रक्षाओं आदि से युक्त (सरण्यन्) अपने चलन वा विज्ञान की इच्छा करते हुए (सूनृतानाम्) उत्तम सत्य से युक्त (गिराम्) वाणियों के (पतिः) पालनकर्त्ता (भव) हूजिये और (नः) हम लोगों को (आ,गहि) प्राप्त हूजिये ॥ १८ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य सत्य बोलने शत्रुता को त्यागने अपने प्राण के तुल्य सम्पूर्ण जनों के पालन करने और सूर्य्य के सदृश विद्या धर्म और नम्रता के प्रकाश करने वाले विद्वान् स्वामी हों वे श्रेष्ठ होवैं ॥ १८ ॥

पुना राजप्रजाविषयमाह ॥

फिर राजा और प्रजा के विषय को कहते हैं ॥

तमङ्गिरस्वन्नमसा सपर्यन्नव्यं कृणोमि सन्यसे पुराजाम् । द्रुहो वि याहि बहुला अदेवीः स्वश्च नो मघवन्त्सातये धाः ॥ १९ ॥

तम् । अङ्गिरस्वत् । नमसा । सपर्यन् । नव्यम् । कृणोमि । सन्यसे । पुराऽजाम् । द्रुहः । वि । याहि । बहुलाः । अदेवीः । स्वंऽरिति स्वः । च । नः । मघऽवन् । सातये । धाः ॥१९॥

पदार्थः—(तम्) पूर्वोक्तं राजानम् (अङ्गिरस्वत्) अङ्गिरसो विद्वांसो विद्यन्ते यस्य तत्सम्बुद्धौ (नमसा) सत्कारेणान्नेन वा (सपर्यन्) सेवमानः (नव्यम्) नवमिव वर्त्तमानम् (कृणोमि) (सन्यसे) सनां विभजतां मध्ये प्रयत्नाय (पुराजाम्) पुराजातम् (द्रुहः) द्रोग्ध्रीः (वि) (याहि) प्राप्नुहि (बहुलाः) (अदेवीः) अविदुषीः स्त्रियः (स्वः) सुखम् (च) (नः) अस्माकम् (मघवन्) पूजनीयवित्त (सातये) संविभागाय (धाः) धेहि ॥१९॥

अन्वयः—हे अङ्गिरस्वन्मघवन् राजन्पुराजां नव्यं तं त्वामहं सन्यसे नमसा सपर्यन् कृणोमि त्वं बहुला द्रुहोऽदेवीर्वियाहि दूरीकुरु नः सातये स्वश्च धाः ॥ १९ ॥

भावार्थः—प्रजास्थैर्जनैर्न्यायविनयादिशुभगुणान्विता राजादयो जनाः सदैव सत्कर्त्तव्या राजादिपुरुषैश्च प्रजाः सदा पितृवत्पालनीयाः स्त्रियश्च विदुष्यः संपादनीया अनेन बहुविधं सुखमुन्नेयम् ॥ १९ ॥

पदार्थः—हे (अङ्गिरस्वत्) विद्वानों के सहित विराजमान (मघवन्) श्रेष्ठ धनयुक्त राजन् (पुराजाम्) पहिले उत्पन्न और (नव्यम्) नवीन के सदृश वर्त्तमान (तम्) प्रथम कहे हुए आप की मैं (सन्यसे) अलग २ बटे हुए पदार्थों में प्रयत्न करते हुए के लिये (नमसा) सत्कार पूर्वक (सपर्य्यन्) सेवा करता हुआ (कृणोमि) प्रसिद्ध करता हूं आप (बहुलाः) बहुत (द्रुहः) शत्रुतायुक्त (अदेवीः) विद्यारहितस्त्रियों को (वि, याहि) दूर कीजिये (नः) हम लोगों के (सातये) संविभाग के लिये (स्वः,च) सुख को भी (धाः) धारण कीजिये ॥१९॥

भावार्थः—प्रजारूप जनों को चाहिये कि न्याय विनय आदि शुभ गुणों से युक्त राजा आदि जनों का सदा ही सत्कार करैं और राजा आदि पुरुषों को चाहिये कि प्रजा जनों का सदा पिता के तुल्य पालन करैं और स्त्रियों को विद्यायुक्त करैं इस से अनेक प्रकार के सुख की वृद्धि करैं ॥ १९ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

मिहः पावकाः प्रतता अभूवन्त्स्वस्ति नः पिपृहि पारमासाम् । इन्द्र त्वं रथिरः पाहि नो रिषो मक्षूमक्षू कृणुहि गोजितो नः ॥ २० ॥

मिहः । पावकाः । प्रऽतताः । अभूवन् । स्वस्ति । नः । पिपृहि । पारम् । आसाम् । इन्द्र । त्वम् । रथिरः । पाहि । नः । रिषः । मक्षुऽमक्षु । कृणुहि । गोऽजितः । नः ॥ २० ॥

पदार्थः—(मिहः) सेचकाः (पावकाः) पवित्राः पवित्रकराः (प्रतताः) विस्तीर्णाः स्वरूपगुणाः (अभूवन्) भवन्ति (स्वस्ति) सुखम् (नः) अस्मभ्यम् (पिपृहि) पूर्णं कुरु (पारम्) (आसाम्) (इन्द्र) सूर्य्य इव राजन् (त्वम्) (रथिरः) रथादियुक्तः (पाहि) (नः) अस्मान् (रिषः) हिंसकात् (मक्षूमक्षू) शीघ्रम् शीघ्रम् । अत्र निपातस्य चेति दीर्घः । मक्ष्विति क्षिप्रना० निघं० २ । १५ (कृणुहि) (गोजितः) गौर्भूमिर्जिता यैस्तान् (नः) अस्माकम् ॥ २० ॥

अन्वयः—हे इन्द्र रथिरस्त्वं नो रिषः पाहि नोऽस्मान्गोजितो मक्षूमक्षू कृणुहि । आसां शत्रुसेनानां पारं नय या मिहः प्रतताः पावका अभूवन् तैर्नः स्वस्ति पिपृहि ॥ २० ॥

भावार्थः—प्रजासेनापुरुषैः स्वेऽध्यक्षा एवं याचनीया यूयमस्माभिः शत्रून् विजयित्वा सुखं जनयत यथा विद्युदादयो वृष्टिद्वारा क्षुधादिदोषात्पृथक्कृत्यानन्दयन्ति तथैव हिंसकेभ्यः प्राणिभ्यः सद्यः पृथक्कृत्य रक्षित्वा सततमानन्दयत ॥ २० ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) सूर्य्य के सदृश तेजस्वी राजन् (रथिरः) रथ आदि वस्तुओं से युक्त (त्वम्) आप (नः) हम लोगों की (रिषः) हिंसाकारक जन से (पाहि) रक्षा कीजिये (नः) हम लोगों को (गोजितः) पृथिवी के जीतने वाले (मक्षूमक्षू) शीघ्र २ (कृणुहि) करिये (आसाम्) इन शत्रुओं की सेनाओं के (पारम्) पार पहुंचाइये जो (मिहः) सींचने वाले (प्रतताः) विस्तार स्वरूप और गुणों से युक्त (पावकाः) पवित्र और दूसरों को पवित्र करने वाले (अभूवन्) होते हैं उन लोगों से (नः) हम लोगों के (स्वस्ति) सुख को (पिपृहि) पूरा कीजिये ॥२०॥

भावार्थः—प्रजा और सेना के पुरुषों को चाहिये कि अपने प्रधान पुरुषों से इस प्रकार की याचना करैं कि आप लोग हम लोगों से शत्रुओं को जीत २ कर सुख उत्पन्न करो जैसे बिजुली आदि पदार्थ वृष्टि के द्वारा क्षुधा आदि दोष से दूर करके आनन्द देते हैं वैसे ही हिंसा करने वाले प्राणियों से शीघ्र दूर कर और रक्षा करके निरन्तर आनन्द दीजिये ॥ २० ॥

अथ के गुरवो भवितुमर्हन्तीत्याह ॥

अब कौन गुरु होने के योग्य हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अदे॑दिष्ट वृत्र॒हा गोप॑ति॒र्गा अ॒न्तः कृ॒ष्णाँ अ॑रु॒षैर्धाम॑भिर्गात्। प्र सू॒नृता॑ दि॒शमा॑न ऋ॒तेन॒ दुर॑श्च॒ विश्वा॑ अवृणो॒दप॒ स्वाः ॥ २१ ॥

अदे॑दिष्ट। वृ॒त्र॒ऽहा। गोऽप॑तिः। गाः। अ॒न्तरिति॑। कृ॒ष्णान्। अ॒रु॒षैः। धाम॑ऽभिः। गा॒त्। प्र। सू॒नृताः॑। दि॒शमा॑नः। ऋ॒तेन॑। दुरः॑। च॒। विश्वाः॑। अ॒वृ॒णो॒त्। अप॑। स्वाः॥२१॥

पदार्थः-(अदेदिष्ट) भृशमुपदिशत (वृत्रहा) मेघहा सूर्य्य इव (गोपतिः) गवां पालकः (गाः) धेनूः (अन्तः) मध्ये (कृष्णान्) कृष्णवर्णान् (अरुषैः) रक्तगुणविशिष्टैरश्वैः । अरुष इत्यश्वना०निघं० १ । १४ (धामभिः) स्थानविशेषैः (गात्) प्राप्नुयात् (प्र) (सूनृताः) सत्यादिलक्षणान्विता वाचः (दिशमानः) उपदिशन् । अत्र व्यत्ययेनात्मनेपदम् (ऋतेन) सत्येनेव जलेन (दुरः) द्वाराणि (च) (विश्वाः) समग्राः (अवृणोत्) वृणुयात् (अप) दूरीकरणे (स्वाः) स्वकीयाः ॥ २१ ॥

अन्वयः—हे विद्वन् यथा वृत्रहा सूर्य्यः किरणैर्जगत्पाति यथा गोपतिर्गा रक्षत्यरुषैर्धामभिःसह कृष्णानन्तर्गाद्दुरश्वाऽपावृणोत् तथर्त्तेन सहिता विश्वाः स्वाः सूनृता वाचः प्रदिशमानोऽदेदिष्ट ॥२१॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः—ये सूर्य्यवद्गोपतिवत्पितृवत्सर्वान् रक्षन्ति त एव गुरवो भवितुमर्हन्ति ॥ २१ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् पुरुष जैसे (वृत्रहा) मेघ का नाशक सूर्य्य अपनी किरणों से संसार की रक्षा करता है और जैसे (गोपतिः) गौओं का पालनकर्त्ता (गाः) गौओं की रक्षा करता तथा (अरुषैः) लाल गुण विशिष्ट घोड़ों और (धामभिः) स्थान विशेषों के साथ (कृष्णान्) काले वर्णों को (अन्तः) मध्य में (गात्) प्राप्त होवै (दुरः, च) और द्वारों को (अप, अवृणोत्) खोलै वैसे (ऋतेन) सत्य के सदृश जल के सहित (विश्वाः) सम्पूर्ण (स्वाः) अपनी (सूनृताः) सत्य आदि लक्षणों से युक्त वाणियों के (प्र, दिशमानः) अच्छे प्रकार उपदेशक (अदेदिष्ट) आप अत्यन्त उपदेश कीजिये ॥ २१ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—जो लोग सूर्य्य गौओं के पालक और पिता के सदृश सब की रक्षा करते हैं वे ही गुरुजन होने योग्य हैं ॥२१॥

अथ के विजयिनो भवन्तीत्याह ॥
अब कौन विजयी होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ । शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ॥ २२ ॥ व० ८ ॥

शुनम् । हुवेम । मघऽवानम् । इन्द्रम् । अस्मिन् । भरे । नृऽतमम् । वाजऽसातौ । शृण्वन्तम् । उग्रम् । ऊतये । समत्ऽसु । घ्नन्तम् । वृत्राणि । सम्ऽजितम् । धनानाम् ॥ २२ ॥ व० ८ ॥

पदार्थः—(शुनम्) वर्धकम् (हुवेम) स्वीकुर्याम प्रशंसेम (मघवानम्) परमधनयुक्तम् (इन्द्रम्) शत्रूणां विदारितारम् (अस्मिन्) वर्त्तमाने (भरे) भरणीये (नृतमम्) अतिशयेन नायकम् (वाजसातौ) अन्नादिविभाजके सङ्ग्रामे (शृण्वन्तम्) (उग्रम्) तेजस्विनम् (ऊतये) रक्षणाद्याय (समत्सु) सङ्ग्रामेषु (घ्नन्तम्) नाशयन्तम् (वृत्राणि) मेघावयवानिव (सञ्जितम्) सम्यग्जयशीलम् (धनानाम्) ॥ २२ ॥

अन्वयः—हे वीरा यथा वयमूतये सूर्यो वृत्राणीवाऽस्मिन् भरे वाजसातौ धनानां सञ्जितं नृतमं समत्सु घ्नन्तं शृण्वन्तमुग्रं शुनं मघवानमिन्द्रं हुवेम तथैतं यूयमप्याह्वयत ॥ २२ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः—तेषामेव ध्रुवो विजयो येषां पुष्कलधनबलाः सर्वेषां कथनश्रोतारो नरोत्तमा युद्धेषु शत्रूणां हन्तारो विजयमानाः स्युरिति ॥ २२ ॥

अत्र वह्निविद्वद्राजसेनामित्रवागुपदेशकप्रजागुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिर्वेद्या ॥

इत्येकाधिकत्रिंशत्तमं सूक्तमष्टमो वर्गश्च समाप्तः ॥

पदार्थः—हे वीर पुरुषो जैसे हम लोग (ऊतये) रक्षा आदि के लिये (वृत्राणि) मेघों के अवयवों को सूर्य्य के समान (अस्मिन्) इस वर्त्तमान (भरे) पुष्ट करने के योग्य (वाजसातौ) अन्न आदि के विभाग कारक संग्राम में (धनानाम्) धनों के (सञ्जितम्) उत्तम प्रकार जीतने वाले (नृतमम्) अतिप्रधान (समत्सु) संग्रामों में (घ्नन्तम्) नाश करते और (शृण्वन्तम्) सुनते हुए (उग्रम्) तेजस्वी (शुनम्) वृद्धिकर्त्ता (मघवानम्) अत्यन्त धन से युक्त (इन्द्रम्) शत्रुओं के विदारने वाले का (हुवेम) स्वीकार वा प्रशंसा करें वैसे इस पुरुष का आप लोग भी आह्वान करें ॥ २२ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—उन्हीं लोगों का निश्चय विजय होता है कि जिन के अत्यन्त धन बलयुक्त और सब वचनों के सुनने वाले श्रेष्ठ पुरुष जो कि संग्रामों में शत्रुओं के मारने जीतने वाले हों ॥ २२ ॥

इस मन्त्र में अग्नि, विद्वान्, राजा की सेना, मित्र, वाणी, उपदेशकर्त्ता और प्रजा के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह इकतीशवां सूक्त और आठवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

अथ सप्तदशर्चस्य द्वात्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य विश्वामित्र ऋषिः। इन्द्रो देवता। १। २। ३। ७। ८। ९। १७। त्रिष्टुप्। ११। १२। १३। १४। १५ निचृत्त्रिष्टुप्। १६ विराट् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतस्स्वरः। ४। १० भुरिक् पङ्क्तिः। ५ निचृत्पङ्क्तिः। ६ विराट् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

अथ नित्यकर्मविधिरुच्यते॥

अब सत्रह ऋचा वाले बत्तीशवें सूक्त का प्रारम्भ है उस के पहिले मन्त्र में नित्य कर्म का विधान कहते हैं॥

इन्द्र सोमं सोमपते पिबेमं माध्यंन्दिनं सवनं चारु यत्ते। प्रप्रुथ्या शिप्रे मघवन्नृजीषिन्विमुच्या हरी इह मादयस्व॥ १॥

इन्द्र। सोमम्। सोमऽपते। पिब। इमम्। माध्यंन्दिनम्। सवनम्। चारु। यत्। ते। प्रऽप्रुथ्य। शिप्रे इति। मघऽवन्। ऋजीषिन्। विऽमुच्य। हरी इति। इह। मादयस्व॥ १॥

पदार्थः—(इन्द्र) ऐश्वर्योत्पादक (सोमम्) ऐश्वर्यकारकं सोमाद्योषधिमयम् (सोमपते) ऐश्वर्यस्य पालक (पिब) (इमम्) (माध्यन्दिनम्) मध्ये भवम्। अत्र मध्योमध्यं दिनण् चास्मादिति वार्त्तिकेन मध्यशब्दोमध्यमिति मान्तत्वमापद्यते भवेऽर्थे दिनण् च प्रत्ययः (सवनम्) भोजनं होमादिकं वा (चारु) सुन्दरं भोक्तव्यम् (यत्) ये (ते) तव (प्रप्रुथ्या) प्रपूर्य (शिप्रे) मुखावयवाविव (मघवन्) परमपूजितधनयुक्त (ऋजीषिन्) शोधक (विमुच्य) त्यक्त्वा। अत्र निपातस्य चेति दीर्घः (हरी) अश्वाविव धारणाऽऽकर्षणे (इह) (मादयस्व) आनन्दय॥ १॥

अन्वयः—हे मघवन्त्सोमपत इन्द्र त्वमिमं सोमं पिब चारु माध्यन्दिनं सवनं कुरु। हे ऋजीषिंस्ते यच्छिप्रे स्तस्ते प्रप्रुथ्या दुर्व्यसनानि विमुच्य हरी प्रयोज्य त्वमिह मादयस्व ॥ १ ॥

भावार्थः—मनुष्यैः प्रथमं भोजनं मध्यन्दिनस्य निकटे कर्त्तव्यमग्निहोत्रादिव्यवहारेषु भोजनसमये बलिवैश्वदेवं विधाय दूषितं वायुं निःसार्य्याऽऽनन्दितव्यम् ॥ १ ॥

पदार्थः—हे (मघवन्) अत्यन्त श्रेष्ठ धनयुक्त (सोमपते) ऐश्वर्य्य के पालने और (इन्द्र) ऐश्वर्य की उत्पत्ति करने वाले आप (इमम्) इस (सोमम्) ऐश्वर्यकारक सोम आदि ओषधि स्वरूप को (पिब) पीओ (चारु) सुन्दर भोजन करने के योग्य (माध्यन्दिनम्) बीच में होने वाले (सवनम्) भोजन वा होम आदि को सिद्ध करो। हे (ऋजीषिन्) शुद्धिकर्त्ता (ते) आप के (यत्) जो (शिप्रे) मुख के अवयवों के सदृश ऐहिक और पारलौकिक व्यवहार हैं उन को (प्रप्रुथ्या) पूर्ण कर और दुर्व्यसनों को (विमुच्य) त्याग के (हरी) घोड़ों के सदृश धारण और खींचने का प्रयोग करके आप (इह) इस संसार में (मादयस्व) आनन्द दीजिये ॥ १ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये प्रथम भोजन मध्य दिन के समीप में करें और अग्निहोत्र आदि व्यवहारों में भोजन के समय बलिवैश्वदेव को कर और दूषित वायु को निकाल के आनन्दित हों ॥ १ ॥

के श्रीमन्तो भवन्तीत्याह ॥

कौन लोग श्रीमान् होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

गवाशिरं मन्थिनमिन्द्र शुक्रं पिबा सोमं ररिमा ते मदाय। ब्रह्मकृता मारुतेना गणेन सजोषा रुद्रैस्तृपदा वृषस्व ॥ २ ॥

गोऽआंशिरम् । मुन्थिनंम् । इन्द्र । शुक्रम् । पिबं । सोमंम् । ररिम । ते । मदाय । ब्रह्मऽकृतां । मारुतेन । गुणेनं । सऽजोषाः । रुद्रैः । तृपत् । आ । वृषस्व ॥ २ ॥

पदार्थः—(गवाशिरम्) गावः किरणा इन्द्रियाणि वाऽश्नन्ति यस्मिँस्तम् (मन्थिनम्) मन्थितुं शीलं यस्य तम् (इन्द्र) दुःखविदारक (शुक्रम्) आशु सुखकरं शुद्धम् (पिब) । अत्र द्व्यचोतस्तिङ इति दीर्घः (सोमम्) ऐश्वर्यकारकं पेयम् (ररिम) दद्याम । अत्र संहितायामिति दीर्घः (ते) तव (मदाय) आनन्दाय (ब्रह्मकृता) ब्रह्म धनमन्नं वा करोति यस्तेन (मारुतेन) मारुतेन हिरण्यादिसम्बन्धेन । अत्र संहितायामिति दीर्घः मरुदिति हिरण्यना० निघं० १।२। (गणेन) गणनीयेन सङ्ख्यातेन समूहेन (सजोषाः) आत्मसमानप्रीतिसेवमानः सन् (रुद्रैः) प्राणैरिव मध्यमैर्विद्वद्भिः सह (तृपत्) तृप्तः सन् (आ) समन्तात् (वृषस्व) वृष इव बलिष्ठो भव ॥ २ ॥

अन्वयः—हे इन्द्र वयं ते मदाय यं गवाशिरं शुक्रं मन्थिनं सोमं ररिम तं त्वं पिब ब्रह्मकृता मारुतेन गणेन रुद्रैः सह सजोषास्तृपत्सन्नावृषस्व ॥ २ ॥

भावार्थः—ये मनुष्या अन्येषु स्वात्मवद्वर्त्तित्वा तैः सह सुखादानं कृत्वा सुवर्णादिधनमुन्नीय तृप्ताः सन्तो बलिष्ठा जायन्ते त एव श्रीमन्तो भवन्ति ॥ २ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) दुःख के नाश करने वाले हम लोग (ते) आप के (मदाय) आनन्द के अर्थ जिस (गवाशिरम्) किरणों वा इन्द्रियों से मिले हुए (शुक्रम्) शीघ्र सुख पवित्र करने वा (मन्थिनम्) मथने का स्वभाव रखने और (सोमम्) ऐश्वर्य्यके करने वाले पान करने योग्य वस्तु को

(ररिम) देवें उस का आप (पिब) पान करिये और (ब्रह्मकृता) धन वा अन्न की करने वाले (मारुतेन) सुवर्ण आदि के सम्बन्धी (गणेन) गणना करने योग्य गिने हुए समूह से (रुद्रैः) प्राणों के सदृश मध्यम विद्वानों के साथ (सजोषाः) अपने तुल्य प्रीति का सेवन करने वाले (तृपत्) तृप्त होते हुए (आ) सब प्रकार (वृषस्व) वृषभ के तुल्य बलिष्ठ हूजिये ॥ २ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य अन्य जनों में अपने तुल्य वर्त्तमान हो कर उन लोगों के साथ सुख का ग्रहण और सुवर्ण आदि धन की वृद्धि करके तृप्त हुए बलिष्ठ होते वे ही श्रीमान् होते हैं ॥ २ ॥

पुना राजधर्ममाह ॥

फिर राजधर्मविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

ये ते शुष्मं ये तविषीमवर्धन्नर्चन्त इन्द्र मरुतस्त ओजः । माध्यन्दिने सवने वज्रहस्त पिबा रुद्रेभिः सगणः सुशिप्र ॥ ३ ॥

ये । ते । शुष्मम् । ये । तविषीम् । अवर्धन् । अर्चन्तः । इन्द्र । मरुतः । ते । ओजः । माध्यन्दिने । सवने । वज्रऽहस्त । पिब । रुद्रेऽभिः । सऽगणः । सुऽशिप्र ॥ ३ ॥

पदार्थः—(ये) (ते) तव सकाशात् (शुष्मम्) बलम् (ये) (तविषीम्) बलवतीं सेनाम् (अवर्धन्) वर्धयेयुः (अर्चन्तः) सत्कुर्वन्तः (इन्द्र) दुष्टदलविदारक (मरुतः) वायव इव वीराः (ते) तव (ओजः) पराक्रमः (माध्यन्दिने) मध्यादिने भवे (सवने) प्रेरणे (वज्रहस्त) वज्रादीनि शस्त्राणि हस्ते यस्य तत्सम्बुद्धौ (पिब) अत्र द्व्यचोतस्तिङ इति दीर्घः (रुद्रेभिः) दुष्टान्रोदयद्भिर्वीरैः (सगणः) गणेन सह वर्त्तमानः (सुशिप्र) शोभने शिप्रे हनुनासिके यस्य ॥ ३ ॥

अन्वयः—हे सुशिप्र वज्रहस्तेन्द्र ये त्वामर्चन्तो मरुतस्ते तव शुष्ममवर्धन् ये ते तविषीं चावर्धंस्तविषीमोजश्चावर्धंस्तैरुद्रेभिः सह सगणः सन्माध्यन्दिने सवने सूर्य्य इव सोमं पिब ॥ ३ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः—हे राजन् ये ते सचिवाः सेनां विजयं धनं राज्यं सुशिक्षां विद्यां धर्मं च वर्धयेयुस्तांस्त्वं सततं सत्कुर्य्यास्तैः सह राज्यसुखं सदा भुङ्क्ष्व ॥ ३ ॥

पदार्थः—(सुशिप्र) सुन्दर ठोढ़ी और नासिका जिन की (वज्रहस्त) वा वज्र आदि शस्त्र हाथों में जिन के वह हे (इन्द्र) दुष्ट पुरुषों के समूह नाशक (ये) जो आप का (अर्चन्तः) सत्कार करने वाले (मरुतः) वायु के सदृश वीर पुरुष (ते) आप के समीप से (शुष्मम्) बल को (अवर्धन्) बढ़ावैं (ये) वा जो लोग (ते) आप की (तविषीम्) सेना और (ओजः) पराक्रम को बढ़ावैं उन (रुद्रेभिः) दुष्टों के रुलाने वाले वीर पुरुषों के साथ (सगणः) समूह के सहित वर्त्तमान आप (माध्यन्दिने) मध्य दिन में होने वाले (सवने) प्रेरणा करने में सूर्य्य के सदृश सोमलतादि ओषधि का पान करो ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—हे राजन् जो आप के मन्त्री लोग सेना, विजय, धन, राज्य, उत्तम शिक्षा, विद्या और धर्म को बढ़ावैं उन का आप निरन्तर सत्कार उन के साथ राज्य के सुख का सदा भोग करो ॥३॥

पुनः के विद्वांसो भवन्तीत्याह ॥

फिर कौन लोग विद्वान् होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

त इन्न्व॑स्य मधु॑मद्विविप्र इन्द्र॑स्य शर्धो॑ मरुतो॒ य आ॑सन्। येभि॑र्वृ॒त्रस्ये॑षि॒तो वि॒वेदा॑म॒र्मणो॒ मन्य॑मानस्य॒ मर्म॑ ॥ ४ ॥

ते । इत् । नु । अ॒स्य॒ । मधु॑ऽमत् । वि॒वि॒प्रे॒ । इन्द्र॑स्य । शर्धः॑ । म॒रुतः॑ । ये । आस॑न् । येभिः॑ । वृ॒त्रस्य॑ । इ॒षि॒तः । वि॒वेद॑ । अ॒म॒र्मणः॑ । मन्य॑मानस्य । मर्म॑ ॥ ४ ॥

पदार्थः—(ते) पूर्वोक्ताः (इत्) एव (नु) सद्यः (अस्य) वर्त्तमानस्य (मधुमत्) बहूनि मधुरादिगुणयुक्तानि वस्तूनि विद्यन्ते यस्मिंस्तत् (विविप्रे) क्षिपन्ति (इन्द्रस्य) परमैश्वर्य्ययुक्तस्य (शर्धः) बलम् (मरुतः) वायव इव वेगबलयुक्ताः (ये) (आसन्) आस्ये (येभिः) यैः (वृत्रस्य) मेघस्येव शत्रोः (इषितः) प्रेरितः (विवेद) विजानीयात् (अमर्मणः) अविद्यमानं मर्म यस्मिंस्तस्य (मन्यमानस्य) विज्ञातुः (मर्म) यस्मिन्प्रहृते म्रियते तत् ॥ ४ ॥

अन्वयः—ये मरुतोऽस्येन्द्रस्य शर्द्धो विविप्रे आसन्मधुमदिद्विविप्रे यो येभिरिषितो वृत्रस्येवाऽमर्मणो मर्म मन्यमानस्य विवेद ते स च नु स्वाभीष्टं प्राप्नुवन्ति ॥ ४ ॥

भावार्थः—ये धनादिनैश्वर्य्येण सर्वस्य सुखं वर्धयित्वा दुःखानि निवार्य सर्वान् प्रसादयन्ति त एव धार्मिका विद्वांसो मन्तव्याः ॥४॥

पदार्थः—(ये) जो (मरुतः) पवनों के सदृश वेग और बल से युक्त पुरुष (अस्य) इस वर्त्तमान (इन्द्रस्य) अत्यन्त ऐश्वर्य्य से युक्त पुरुष के (शर्धः) बल को (विविप्रे) फेंकते हैं (आसन्) मुख में (मधुमत्) बहुत मधुर आदि गुणों से युक्त वस्तुओं से पूर्ण पदार्थ को (इत्) ही रखते हैं जो (येभिः) जिन्हों से (इषितः) प्रेरित हुआ (वृत्रस्य) मेघ के सदृश शत्रु वा (अमर्मणः) मर्म से रहित (मर्म) प्रहार करने से नाश होने वाले स्थान को (मन्यमानस्य) जानने वाले को (विवेद) जानै (ते) वे पूर्व कहे हुए और वह पुरुष (नु) निश्चय अपने वाञ्छित फल को प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थः—जो लोग धन आदि ऐश्वर्य्य से सब के सुख की वृद्धि और दुःखों का निवारण करके सब लोगों को प्रसन्न करते हैं उन को ही धार्मिक विद्वान् मानना चाहिये ॥ ४ ॥

पुनर्विद्वांसः किं कुर्युरित्याह ॥

फिर विद्वान् जन क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

मनुष्वदिन्द्र सवनं जुषाणः पिबा सोमं शश्वते वीर्याय। स आ ववृत्स्व हर्यश्व यज्ञैः सरण्युभिरपो अर्णा सिसर्षि ॥ ५ ॥ ९ ॥

मनुष्वत्। इन्द्र। सवनम्। जुषाणः। पिब। सोमम्। शश्वते। वीर्याय। सः। आ। ववृत्स्व। हरिऽअश्व। यज्ञैः। सरण्युऽभिः। अपः। अर्णा। सिसर्षि ॥ ५ ॥ ९ ॥

पदार्थः—(मनुष्वत्) मननशीलेन विदुषा तुल्यः (इन्द्र) परमैश्वर्यप्रद (सवनम्) ऐश्वर्य्यम् (जुषाणः) सेवमानः (पिब) अत्र द्व्यचोऽतस्तिङ इति दीर्घः (सोमम्) शरीरात्मबलविज्ञानवर्धकं महौषध्यादिरसम् (शश्वते) निरन्तरायाऽनादिभूताय (वीर्याय) बलाय (सः) (आ) (ववृत्स्व) वर्त्तते (हर्यश्व) हरणशीला हरिता वा अश्वा व्यापनस्वभावा यस्य तत्सम्बुद्धौ अश्वाइव अग्न्यादयो विदिता येन तत्सम्बुद्धौ वा (यज्ञैः) विद्वत्सत्कारशिल्पाक्रियाविद्यादिदानाख्यैर्व्यवहारैः (सरण्युभिः) आत्मनः सरणं गमनमिच्छुभिः (अपः) अन्तरिक्षं प्रति (अर्णा) अर्णांसि जलानि। अत्र सुपां सुलुगिति विभक्तेराकारादेशः छान्दसो वर्णलोप इति सलोपः (सिसर्षि) गमयसि। अत्र बहुलञ्छन्दसीत्यभ्यासस्येत्वम् ॥५॥

अन्वयः—हे हर्य्यश्वेन्द्र यतस्त्वं सरण्युभिर्यज्ञैरर्णा अपः सिसर्षि तस्मात्स त्वं सवनं जुषाणः शश्वते वीर्याय सोमं पिब। मनुष्वत्सवनं जुषाणः सन्त्सोमं पिब आववृत्स्व ॥ ५ ॥

भावार्थः—ये मनुष्या ब्रह्मचर्यविद्यासुशिक्षायुक्ताहारविहारसत्पुरुषसङ्गधर्मसेवनेन सनातनं परमात्मात्मयोगजं बलं वर्धयन्ति ते सर्वत उन्नता भवन्ति यथा सूर्यो जलमन्तरिक्षं प्रति वायुना सह क्षिपति तथैव विद्वांसः सर्वानुन्नतिं प्रति नयन्ति ॥ ५ ॥

पदार्थः—(हर्य्यश्व) हरणकर्त्ता वा हरे रंग और व्यापन स्वभाव वाले घोड़ों के समान अग्नि आदि पदार्थ जिन्हों ने जाने वह हे (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य्य के दाता जिस से आप (सरण्युभिः) अपने शरण प्राप्त होने की इच्छायुक्त पुरुषों और (यज्ञैः) विद्वानों का सत्कार शिल्पक्रिया और विद्या आदि के दानरूप व्यवहारों से (अर्णा) जलों को (अपः) अन्तरिक्ष के प्रति (सिसर्षि) पहुंचाते हैं इस से (सः) वह आप (सवनम्) ऐश्वर्य्य के (जुषाणः) सेवने वाले (शश्वते) निरन्तर अनादि सिद्ध (वीर्याय) बल के लिये (सोमम्) शरीर और आत्मा के बल तथा विज्ञान के बढ़ाने वाले महौषधि आदि के रस को (पिब) पीवो और (मनुष्वन्) विचार करने वाले विद्वान् पुरुष के तुल्य ऐश्वर्य्य का सेवने वाले शरीर और आत्मा के बल और विज्ञान के बढ़ाने वाले महौषधि आदि के रस को पीजिये तथा (आ) (ववृत्स्व) अच्छे प्रकार वर्त्ताव कीजिये ॥ ५ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य ब्रह्मचर्य विद्या उत्तमशिक्षायुक्त भोजन विहार सत्पुरुषों का संग और धर्म के सेवन करने से उत्तम आत्मा और परमात्मा के योग से उत्पन्न हुए बल को बढ़ाते हैं वे लोग सब प्रकार उन्नत होते हैं । जैसे सूर्य जल को अन्तरिक्ष के प्रति वायु के साथ ऊपर ले जाता है वैसे ही विद्वान् लोग सम्पूर्ण जनों को प्रतिष्ठा के साथ उन्नति पर पहुचाते हैं ॥ ५ ॥

पुना राजजनाः किं कुर्य्युरित्याह ॥

फिर राज पुरुष क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

त्वमपो यद्ध वृत्रं जघन्वाँ अत्याँइव प्रासृजः सर्त्तवाजौ । शयानमिन्द्र चरता वधेन वव्रिवांसं परि देवीरदेवम् ॥ ६ ॥

त्वम् । अपः । यत् । ह । वृत्रम् । जघन्वान् । अत्यान्ऽइव । प्र । असृजः । सर्त्तवै । आजौ । शयानम् । इन्द्र । चरता । वधेन । वव्रिऽवांसम् । परि । देवीः । अदेवम् ॥ ६ ॥

पदार्थः—(त्वम्) (अपः) जलानि (यत्) यः (ह) किल (वृत्रम्) (जघन्वान्) हतवान् (अत्यानिव) अश्वानिव (प्र, असृजः) प्रासृज (सर्त्तवै) सर्त्तव्ये गन्तव्ये (आजौ) युद्धे । आजाविति सङ्ग्रामना० निघं० २ । १७ (शयानम्) शयानमिव वर्त्तमानम् (इन्द्र) शत्रुविदारक (चरता) प्राप्तेन (वधेन) (वव्रिवांसम्) व्रियमाणम् (परि) सर्वतः (देवीः) दिव्याः किरणाः (अदेवम्) प्रकाशरहितमविद्वांसं दुष्टं वा ॥ ६ ॥

अन्वयः—हे इन्द्र यद्यस्त्वं यथा सूर्य्योऽत्यानिवाऽदेवं वृत्रं जघन्वांश्चरता वधेन शयानं वव्रिवांसं देवीरपो ह प्रसृजति तथैव सर्त्तवाआजौ परि प्राऽसृजः सोऽस्माभिः सत्कर्त्तव्योऽसि ॥ ६ ॥

भावार्थः—अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारः—ये राजादयो वीराः सूर्यो मेघमिव सङ्ग्रामे प्रसृष्टैः शस्त्रास्त्रैः शत्रून् विजयन्ते त एव प्रतापवन्तो जायन्ते ॥ ६ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) शत्रुओं के नाशक (यत्) जो (त्वम्) आप ने जैसे (अत्यानिव) घोड़ों को सूर्य के समान (अदेवम्) विद्या प्रकाश से रहित अविद्वान् वा (वृत्रम्) दुष्ट को (जघन्वान्) नाश किया वा सूर्य (चरता) प्राप्त (वधेन) नाश से (शयानम्) सोते हुए से वर्त्तमान (वव्रिवांसम्) ढपे हुए को (देवीः) उत्तम किरणों और (अपः) जलों को (ह) निश्चय से उत्पन्न करता है उसी प्रकार से (सर्त्तवै) जानने योग्य (आजौ) युद्ध में (परि) चारों ओर से (प्र, असृजः) उत्पन्न करते हो वे आप हम लोगों से सत्कार पाने योग्य हैं ॥ ६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—जो राजा आदि वीर पुरुष जैसे सूर्य मेघ को वैसे संग्राम में चलाये शस्त्र और अस्त्रों से शत्रुओं को जीतते हैं वे ही प्रतापयुक्त होते हैं ॥ ६ ॥

पुनः किंभूतस्येश्वरस्योपासना कार्य्येत्युच्यते ॥

फिर कैसे ईश्वर की उपासना करनी चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

यजा॑म॒ इन्नम॑सा वृ॒द्धमिन्द्रं॑ बृ॒हन्त॑मृ॒ष्वम॒जरं॒ युवा॑नम् । यस्य॑ प्रि॒ये म॒मतु॑र्य॒ज्ञिय॑स्य॒ न रोद॑सी महि॒मानं॑ म॒मा॒ते ॥ ७ ॥

यजा॑मः । इत् । नम॑सा । वृ॒द्धम् । इन्द्र॑म् । बृ॒हन्त॑म् । ऋ॒ष्वम् । अ॒जर॑म् । युवा॑नम् । यस्य॑ । प्रि॒ये इति॑ । म॒मतुः॑ । य॒ज्ञिय॑स्य । न । रोद॑सी इति॑ । म॒हि॒मान॑म् । म॒मा॒ते इति॑ ॥७॥

पदार्थः—(यजामः) पूजयामः (इत्) एव (नमसा) सत्कारेण (वृद्धम्) भुक्ताऽऽयुष्कं विद्यया महान्तं वा (इन्द्रम्) परमैश्वर्यकारकम् (बृहन्तम्) (ऋष्वम्) महान्तम् । ऋष्व इति-महन्ना० निघं० ३ । ३ (अजरम्) जरारहितम् (युवानम्) सर्वस्य जगतः संयोजकं विभाजकं च (यस्य) (प्रिये) कमनीये प्रीतिकारके (ममतुः) परिमीयेते (यज्ञियस्य) पूजनाऽर्हस्य (न) निषेधे (रोदसी) द्यावापृथिव्यौ (महिमानम्) महत्त्वम् (ममाते) मिमाते परिच्छिन्तः । अत्र बहुलं छन्दसीत्यभ्यासेत्त्वप्रतिषेधः ॥ ७ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या वयं यस्य यज्ञियस्य परमेश्वरस्य महिमानं रोदसी न ममाते प्रिये ऐहिकपारलौकिकसुखे च न ममतुस्तमिद्युवानमजरमृष्वं बृहन्तं वृद्धमिन्द्रं नमसा यजामस्तं यूयमपि पूजयत ॥७॥

भावार्थः—यस्य परमेश्वरस्य कश्चित्पदार्थस्तुल्योऽधिको वा न विद्यते यः सर्वेषां गुरुर्व्यापकोऽविनाशी पूज्यो वर्त्तते तमेव परमात्मानं वयं सततमुपासीमहि ॥ ७ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो हम लोग (यस्य) जिस (यज्ञियस्य) पूजा अर्थात् प्रीति करने योग्य परमेश्वर के (महिमानम्) महतत्त्व को (रोदसी) अन्तरिक्ष और पृथिवी (न) नहीं (ममाते) नाप सकते और (प्रिये) प्रीति कराने वाले इस लोक और परलोक के सुखों ने नहीं (ममतुः) नापे हैं (इत्) उसी (युवानम्) सम्पूर्ण संसार के संयोग और विभाग के करने वाले (अजरम्) बुढ़ापे से रहित (ऋष्वम्) श्रेष्ठ (बृहन्तम्) बड़े (वृद्धम्) आयु को भोगे हुए वा विद्या से श्रेष्ठ (इन्द्रम्) परमऐश्वर्य्य करने वाले परमेश्वर की (नमसा) सत्कार से (यजाम) पूजा करते हैं उस की तुम लोग भी पूजा करो ॥ ७ ॥

भावार्थः—जिस परमेश्वर की अपेक्षा कोई पदार्थ तुल्य वा अधिक नहीं जो सब से श्रेष्ठ व्यापक विनाशरहित और पूज्य है उसी परमात्मा की हम लोग निरन्तर उपासना करें ॥ ७ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

इन्द्र॑स्य॒ कर्म॒ सुकृ॑ता पु॒रूणि॑ व्र॒तानि॑ दे॒वा न मि॑नन्ति॒ विश्वे॑ । दा॒धार॒ यः पृ॑थि॒वीं द्यामु॒तेमां ज॒जान॒ सूर्य॑मु॒षसं॑ सु॒दंसाः॑ ॥ ८ ॥

इन्द्र॑स्य । कर्म॑ । सु॒ऽकृ॑ता । पु॒रूणि॑ । व्र॒तानि॑ । दे॒वाः । न । मि॒न॒न्ति॒ । विश्वे॑ । दा॒धार॑ । यः । पृ॒थि॒वीम् । द्याम् । उ॒त । इ॒माम् । ज॒जान॑ । सूर्य॑म् । उ॒षस॑म् । सु॒ऽदंसाः॑ ॥ ८ ॥

पदार्थः—(इन्द्रस्य) परमात्मनः (कर्म) कर्माणि (सुकृता) सुकृतानि (पुरूणि) (व्रतानि) सत्याचरणानि (देवाः) पृथिव्यादयो विद्वांसो वा (न) निषेधे (मिनन्ति) हिंसन्ति (विश्वे) सर्वे (दाधार) धरति पुष्णाति वा (यः) (पृथिवीम्) भूमिम् (द्याम्) प्रकाशात्मकलोकादिकम् (उत) अपि (इमाम्) प्रत्यक्षाम् (जजान) जनयति (सूर्य्यम्) सवितारम् (उषसम्) दिनम् (सुदंसाः) शोभनानि धर्म्याणि दंसांसि कर्माणि यस्य सः॥८॥

अन्वयः—हे मनुष्या यः सुदंसाः परमेश्वर इमां पृथिवीं द्यां सूर्य्यमुतोषसं जजान दाधार यस्येन्द्रस्य विश्वे देवा व्रतानि सुकृता पुरूणि कर्म न मिनन्ति तमेव यूयं वयं चोपासीमहि ॥ ८ ॥

भावार्थः—परमेश्वरस्य पवित्रत्वात्सर्वशक्तिमतः सर्वस्य जनकस्य धातुः स्वरूपपरिमितं सामर्थ्यं कर्म वा कोपि हिंसितुं न शक्नोति य एतं सत्यभावेनोपासते तेपि पविताः सन्तः समर्था जायन्ते ॥ ८ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यः) जो (सुदंसाः) सुन्दर धर्म सम्बन्धी कर्मों से युक्त परमेश्वर (इमाम्) इस (पृथिवीम्) भूमि और (द्याम्) प्रकाशस्वरूप आदि लोक को तथा (सूर्यम्) सूर्य लोक को (उत) और भी (उषसम्) दिन को (जजान) उत्पन्न करता (दाधार) धारणकरता वा पुष्टकरता है जिस (इन्द्रस्य) परमात्मा के (विश्वे) सम्पूर्ण (देवाः) पृथिवी आदि वा विद्वान् लोग (व्रतानि) सत्य विचारों को (सुकृता) उत्तम (पुरूणि) बहुत (कर्म) कामों को (न) नहीं (मिनन्ति) नाश करते हैं उस की आप और हम लोग उपासना करें ॥८॥

भावार्थः—परमेश्वर के पवित्र होने से सम्पूर्ण सामर्थ्ययुक्त सब के उत्पन्न वा धारणकर्त्ता परमेश्वर के स्वरूप परिमित सामर्थ्य वा कर्म को कोई भी नाश नहीं कर सक्ता है और जो लोग इस परमेश्वर की सत्यभावना से उपासना करते हैं वे भी पवित्र हो कर सामर्थ्ययुक्त होते हैं ॥ ८ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अद्रोघ सत्यं तव तन्महित्वं सद्यो यज्जातो अपिबो ह सोमम् । न द्याव इन्द्र तवसस्त ओजो नाहा न मासाः शरदो वरन्त ॥ ९ ॥

अद्रोघ । सत्यम् । तव । तत् । महिऽत्वम् । सद्यः । यत् । जातः । अपिबः । ह । सोमम् । न । द्यावः । इन्द्र । तवसः । ते । ओजः । न । अहा । न । मासाः । शरदः । वरन्त ॥९॥

पदार्थः—(अद्रोघ) द्रोहरहित (सत्यम्) सत्यभाषणादि-क्रियोज्ज्वलम् (तव) (तत्) सः (महित्वम्) महिमानम् (सद्यः) (यत्) यः (जातः) प्रकटः (अपिबः) पिबति (ह) किल (सोमम्) सर्वस्माज्जगतो रसम् (न) (द्यावः) प्रकाशमया लोकाः (इन्द्र) परमैश्वर्य्यप्रद (तवसः) बलस्य(ते) तव (ओजः) पराक्रमम् (न) (अहा) अहानि दिनानि(न) निषेधे (मासाः) चैत्रादयः (शरदः) वसन्तादयः (वरन्त) वारयन्ति ॥ ९॥

अन्वयः—हे अद्रोघेन्द्र जगदीश्वर यद्यः सद्यो जातः सूर्यः सोमम-पिबस्तद्यस्य तव सत्यं महित्वं नोल्लङ्घयति ते तवस ओजो न द्यावो नाहा न मासाः शरदश्च वरन्त तं ह भवन्तं वयं निरन्तरं सेवेमहि ॥ ९॥

भावार्थः—हे मनुष्या यथा परमेश्वरः कञ्चिन्न द्रुह्यति तथा यूयमपि भवत यस्य सृष्टौ सूर्य्यादयो महान्तः पदार्था विद्यन्ते यस्य स्वरूपस्य प्रभावस्य वान्तं कोपि न गच्छति स एवाऽस्माकमिष्टदेवोऽस्ति ॥ ९ ।

पदार्थः—हे (अद्रोघ) द्रोह से रहित (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य के दाता जगदीश्वर (यत्) जो (सद्यः) तत्काल (जातः) प्रकट हुआ सूर्य (सोमम्) सब जगत् से रस को (अपिबः) पीता—खींचता है (तत्) वह जिन (तव) आप के (सत्यम्) सत्य (महित्वम्) महिमा को (न) नहीं उल्लङ्घन कर सकता है (ते) आप के (तवसः) बल के (ओजः) प्रभाव को न (द्यावः) प्रकाशस्वरूप लोक (न) न (अहा) दिन (न) न (मासाः) चैत्र आदि महीने और न (शरदः) वसन्त आदि ऋतुयें (वरन्त) वारण करती हैं (भवन्तं, ह) उन्हीं आप की हम लोग निरन्तर सेवा करें ॥ ९ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो जैसे परमेश्वर किसी से द्रोह नहीं करता है वैसे आप लोग भी हूजिये जिस परमेश्वर की सृष्टि में सूर्य्य आदि बड़े २ पदार्थ विद्यमान हैं और जिस के स्वरूप वा प्रभाव के अन्त को कोई भी नहीं प्राप्त होता है वही हम लोगों का इष्टदेव है ॥ ९ ॥

कथं जन्मनः साफल्यं स्यादित्याह ॥

किस प्रकार जन्म की सफलता हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

त्वं सद्यो अपिबो जात इन्द्र मदाय सोमं परमे व्योमन्। यद्ध द्यावापृथिवी आविवेशीरथाभवः पूर्व्यः कारुधायाः ॥ १० ॥ १० ॥

त्वम्। सद्यः। अपिबः। जातः। इन्द्र। मदाय। सोमम्। परमे। विऽओमन्। यत्। ह। द्यावापृथिवी इति। आ। अविवेशीः। अथ। अभवः। पूर्व्यः। कारुऽधायाः ॥ १० ॥ १० ॥

पदार्थः—(त्वम्) (सद्यः) शीघ्रम् (अपिबः) पिबसि (जातः) उत्पन्नः सन् (इन्द्र) इन्द्रियाऽधिष्ठातर्जीव (मदाय) आनन्दाय (सोमम्) बलबुद्धिवर्धकं रसम् (परमे) सर्वोत्कृष्टे (व्योमन्) व्यापके

(यत्) यः (ह) किल (द्यावापृथिवी) प्रकाशभूमी (आ) समन्तात् (अविवेशीः) पुनः पुनराविश (अथ) आनन्तर्ये (अभवः) भवेः (पूर्व्यः) पूर्वैः कृतः (कारुधायाः) यः कारून् शिल्पीन् दधाति सः ॥ १० ॥

अन्वयः—हे इन्द्र त्वं परमे व्योमन् सद्यो जातः सन् मदाय सोममपिबोऽथ यद्यः पूर्व्यः कारुधाया अभवः स त्वं ह द्यावापृथिवी आविवेशीः ॥ १० ॥

भावार्थः—हे मनुष्या ब्रह्मचर्येण शीघ्रं विद्वांसो भूत्वा युक्ताऽऽहारविहारेणाऽरोगाः सन्तः परमात्मन्यासीनाः सृष्टिपदार्थविद्यासु सर्वे प्रविशन्तु येन जन्मसाफल्यं स्यात् ॥ १० ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) इन्द्रियों के अधिष्ठाता जीव (त्वम्) आप (परमे) उत्तम (व्योमन्) आकाशवत् व्यापक आत्मज्ञान में (सद्यः) शीघ्र (जातः) प्रकट वा प्रसिद्ध हुए (मदाय) आनन्द के लिये (सोमम्) बल और बुद्धि के बढ़ाने वाले रस का (अपिबः) पीते हैं (अथ) इस के अनन्तर (यत्) जो (पूर्व्यः) पूर्व लोगों में श्रेष्ठ (कारुधायाः) शिल्पी जनों का धारणकर्त्ता (अभवः) हो वह आप (ह) निश्चय से (द्यावापृथिवी) प्रकाश और भूमि में (आ) सब ओर से (आविवेशीः) बारम्बार प्रवेश कीजिये ॥ १० ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ब्रह्मचर्य्य से शीघ्र विद्वान् और नियमित आहार विहार से रोगरहित हो के परमात्मा की आराधना करते हुए सृष्टि और पदार्थ विद्याओं में आप सब प्रवेश करें जिस से जन्म की सफलता हो ॥ १० ॥

पुना राजपुरुषाः किं कुर्य्युरित्याह ॥

फिर राजपुरुष क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अहन्नहिं परिशयानमर्ण ओजायमानं तुविजात तव्यान् । न ते महित्वमनु भूदध द्यौर्यदन्यया स्फिग्या३ क्षामवस्थाः ॥ ११ ॥

अहन् । अहिम् । परिऽशयानम् । अर्णः । ओजायमानम् । तुविऽजात । तव्यान् । न । ते । महिऽत्वम् । अनु । भूत् । अध । द्यौः । यत् । अन्यया । स्फिग्या । क्षाम् । अवस्थाः ॥ ११ ॥

पदार्थः—(अहन्) हन्ति (अहिम्) मेघम् (परिशयानम्) सर्वत आकाशे शयानमिव वर्त्तमानम् (अर्णः) उदकम् (ओजायमानम्) बलयन्तम् (तुविजात) बहुषु प्रसिद्ध (तव्यान्) अतिशयेन बलवान्। अत्रेयसुन ईकारलोपः (न) (ते) तव (महित्वम्) महत्त्वम् (अनु) (भूत्) भवेत् (अध) अथ (द्यौः) प्रकाशः (यत्) यः (अन्यया) (स्फिग्या) मध्यस्थावयवरूपया (क्षाम्) पृथिवीम् (अवस्थाः) वस्ते ॥ ११ ॥

अन्वयः—हे तुविजात तव्यान्यद्यस्त्वं यथा द्यौरोजायमानं परिशयानमहिमहन्नर्णो निपातयति यथा सूर्य्यस्य महित्वमनुभूयथाऽयं मेघोऽधान्यया स्फिग्या क्षामाच्छादयति तथा त्वं शत्रूनवस्थायतस्ते महित्वं न छिन्द्युः ॥ ११ ॥

भावार्थः—हे राजपुरुषा यथा सूर्योऽन्तरिक्षगतं बलायमानं हत्वा भूमौ निपात्य तज्जलेन प्राणिनः पोषयति तथैऽवाऽधर्मिष्ठं शत्रुं हत्वा तद्वैभवेन राज्यं पालयत ॥ ११ ॥

पदार्थः—हे (तुविजात) बहुत लोगों में प्रसिद्ध (तव्यान्) अत्यन्त बलयुक्त (यत्) जो आप जैसे (द्यौः) सूर्य प्रकाश (ओजायमानम्) बल को प्राप्त होते हुए (परिशयानम्) सब ओर से आकाश में सोते जैसे वर्त्तमान (अहिम्) मेघ को (अहन्) नाश करता है (अर्णः) जल को गिराता है

और जैसे सूर्य्य का (महित्वम्) बड़ापन (अनु) (भूत्) हो वा जैसे यह मेघ (अध) तदनन्तर (अन्यया) दूसरी (स्फिग्या) मध्य के अवयवरूप से (क्षाम्) पृथिवी को ढांपता है वैसे आप शत्रुओं को (अवस्थाः) घेर के वर्त्तमान हूजिये जिस से (ते) वे आप की महिमा को (न) नहीं काटैं ॥ ११ ॥

भावार्थः—हे राजपुरुषो जैसे सूर्य्य अन्तरिक्ष में वर्त्तमान बलवान् मेघ का नाश और भूमि में गिरा कर उस के जल से प्राणियों का पोषण करता है वैसे ही अधर्म में वर्त्तमान शत्रु का नाश कर के उस के ऐश्वर्य्य से राज्य का पालन करो ॥ ११ ॥

पुनर्मनुष्याः किं कुर्युरित्याह ॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

यज्ञो हि त इन्द्र वर्धनो भूदुत प्रियः सुतसोमो मियेधः। यज्ञेन यज्ञमव यज्ञियः सन्यज्ञस्ते वज्रमहिहत्य आवत् ॥ १२ ॥

यज्ञः। हि। ते। इन्द्र। वर्धनः। भूत्। उत। प्रियः। सुतऽसोमः। मियेधः। यज्ञेन। यज्ञम्। अव। यज्ञियः। सन्। यज्ञः। ते। वज्रम्। अहिऽहत्ये। आवत् ॥ १२ ॥

पदार्थः—(यज्ञः) सङ्गन्तव्यो व्यवहारः (हि) यतः (ते) तव (इन्द्र) परमैश्वर्य्यप्रापक (वर्धनः) उन्नेता (भूत्) भवति (उत) अपि (प्रियः) प्रीतिसम्पादकः (सुतसोमः) सुतं निष्पन्नं सोम ऐश्वर्य्यं यस्मात्सः (मियेधः) येन मिनोति दुःखं प्रक्षिपति सः। अत्र बाहुलकादौणादिक एध प्रत्ययः (यज्ञेन) सङ्गतेन कर्मणा (यज्ञम्) सङ्गन्तव्यं व्यवहारम् (अव) रक्ष (यज्ञियः) यज्ञेषु

कुशलः (सन्) (यज्ञः) सङ्गतो व्यवहारः (ते) तव (वज्रम्) शस्त्रविशेषम् (अहिहत्ये) अहेर्मेघस्य हत्या हननं पतनं येन तस्मिन्। निमित्तार्थेऽत्र सप्तमी (आवत्) रक्षेत् ॥ १२ ॥

अन्वयः—हे इन्द्र हि यतस्तेऽहिहत्ये वर्षकर्मनिमित्तो यज्ञो वर्धनः सुतसोमो मियेध उत प्रियो भूत्। यस्य ते यज्ञो वज्रमावत्स यज्ञियः संस्त्वं यज्ञेन यज्ञमव ॥ १२ ॥

भावार्थः—हे मनुष्या यूयं यदि सत्क्रियया सत्क्रिया वर्धयेत तर्हि यूयं रक्षिताः सन्तोऽन्यानपि रक्षितुमर्हत ॥ १२ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य्य के प्राप्त कराने वाले (हि) जिस से कि (ते) आप का (अहिहत्ये) वर्षा का निमित्त (यज्ञः) पदार्थों का संयोग करनारूप व्यवहार (वर्धनः) उन्नतिकर्त्ता (सुतसोमः) ऐश्वर्य्य की उत्पत्ति-कर्त्ता (मियेधः) दुःख का नाशकर्त्ता (उत) और भी (प्रियः) प्रीति की उत्पत्ति करने वाला (भूत्) होता है जिन (ते) आप का (यज्ञः) पदार्थों का मेल करना रूप व्यवहार (वज्रम्) शस्त्र विशेष की (आवत्) रक्षा करै वह (यज्ञियः) यज्ञों में चतुर (सन्) हुए आप (यज्ञेन) सङ्गत कर्म से (यज्ञम्) सङ्गत व्यवहार की (अव) रक्षा करो ॥ १२ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो आप लोग जो उत्तम क्रिया से उत्तम क्रियाओं को बढ़ावैं तो आप लोग रक्षित हुए अन्य जनों की भी रक्षा करने के योग्य होवैं ॥१२॥

अथ कीदृशा जनाः सुखमाप्तुमर्हन्तीत्याह ॥

अब कैसे मनुष्य सुख को प्राप्त हो सकते इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

य॒ज्ञेनेन्द्र॒मव॑सा च॑क्रे अ॒र्वागै॑नं सु॒म्नाय॒ नव्य॑से व॒वृत्या॑म्। यः स्तोमे॑भिर्वावृ॒धे पू॒र्व्येभि॒र्यो म॑ध्य॒मेभि॑रु॒त नूत॑नेभिः ॥ १३ ॥

यज्ञेन । इन्द्रम् । अवसा । आ । चक्रे । अर्वाक् । आ । एनम् । सुम्नाय । नव्यसे । ववृत्याम् । यः । स्तोमेभिः । ववृधे । पूर्व्येभिः । यः । मध्यमेभिः । उत । नूतनेभिः ॥१३॥

पदार्थः—(यज्ञेन) युक्तेन व्यवहारेण (इन्द्रम्) परमैश्वर्य्यम् (अवसा) रक्षणाद्येन (आ) (चक्रे) समन्तात् करोति (अर्वाक्) पश्चात् (आ) (एनम्) (सुम्नाय) सुखाय (नव्यसे) अतिशयेन नवीनाय (ववृत्याम्) वर्त्तयेयम् । अत्र व्यत्ययेन परस्मैपदं बहुलं छन्दसीति शपः श्लुः (यः) (स्तोमेभिः) प्रशंसितैः कर्मभिः (वावृधे) वर्धते । अत्रान्येषामपीत्यभ्यासदीर्घः (पूर्व्येभिः) पूर्वेषु साधुभिः (यः) (मध्यमेभिः) मध्ये भवैः (उत) (नूतनेभिः) नवीनैः ॥१३॥

अन्वयः—हे मनुष्या यथाऽहं यः पूर्व्येभिर्मध्यमेभिरुत नूतनेभिः स्तोमेभिर्वावृधे यो नव्यसे सुम्नाय यज्ञेनावसेन्द्रमाचक्रे । अर्वागेनं रक्षति तमाववृत्यां तथा भवन्तोप्येतत्कर्माऽनुतिष्ठन्तु ॥ १३ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः—ये मनुष्या अतीतव्यवहारशेषज्ञतया मध्यमानां रक्षणेन नूतनेन प्रयत्नेन वर्धन्ते तेऽग्रे नवीनं नवीनं सुखं सम्प्राप्तुमर्हन्ति नेतरेऽलसा मूढाः ॥ १३ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे मैं (यः) जो (पूर्व्येभिः) प्राचीनों में कुशल और (मध्यमेभिः) बीच में हुए (उत) और भी (नूतनेभिः) नवीन (स्तोमेभिः) प्रशंसायुक्त कर्मों से (वावृधे) बढ़ता है (यः) जो (नव्यसे) नवीन (सुम्नाय) सुख के लिये (यज्ञेन) युक्त व्यवहार (अवसा) रक्षा आदि से (इन्द्रम्) अत्यन्त ऐश्वर्य्य को (आचक्रे) अच्छा करता है (अर्वाक्) पीछे (एनम्) इस की रक्षा करता है उस के समीप (आ) (ववृत्याम्) प्राप्त होऊं वैसे आप लोग भी इस कर्म को करैं ॥ १३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—जो मनुष्य व्यतीत हुए व्यवहार के शेष मर्म को जानने मध्यम पुरुषों की रक्षा करने और नवीन प्रयत्न से वृद्धि को प्राप्त होते हैं वे लोग उस के अनन्तर नवीन नवीन सुख को प्राप्त होने योग्य होते हैं न कि अन्य आलस्य युक्त और मूर्ख पुरुष ॥ १३ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

विवेष यन्मा धिषणा जजान स्तवै पुरा पार्या-दिन्द्रमह्नः । अंहसो यत्र पीपरद्यथा नो नावेव यान्तमुभये हवन्ते ॥ १४ ॥

विवेष । यत् । मा । धिषणा । जजान । स्तवै । पुरा । पार्यात् । इन्द्रम् । अह्नः । अंहसः । यत्र । पीपरत् । यथा । नः । नावाऽइव । यान्तम् । उभये । हवन्ते ॥ १४ ॥

पदार्थः—(विवेष) व्याप्नोति (यत्) या (मा) माम् (धिषणा) वाणी (जजान) जनयति (स्तवै) प्रशंसानि (पुरा) (पार्यात्) पारं गमयेत् (इन्द्रम्) ऐश्वर्य्यम् (अह्नः) दिवसात् (अंहसः) अपराधात् (यत्र) यस्मिन् व्यवहारे (पीपरत्) पारयेत् (यथा) येन प्रकारेण (नः) अस्मभ्यम् (नावेव) नौवत् (यान्तम्) गच्छन्तम् (उभये) दूरसमीपस्था जनाः (हवन्ते) आह्वयन्ते ॥ १४ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यथा धिषणा मा विवेष जजान तामहं स्तवै याह्न इन्द्रं पुरा पार्याद्यत्रांऽहसो मां पीपरद्यथा नो यान्तमुभये नावेव हवन्ते तथा नोऽस्मान्सर्व आह्वयन्तु ॥ १४ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालङ्कारः—मनुष्यैः सा वाणी प्रज्ञा च सङ्ग्राह्या या सर्वदा दुष्टाचारात्पृथग्रक्ष्य दुःखान्नौवत्पारं नयेत् ॥१४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यत्) जो (धिषणा) वाणी (मा) मुझ को (विवेष) व्याप्त होती और (जजान) उत्पन्न करती है उस की मैं (स्तवै) प्रशंसा करूं जो (अह्नः) दिन से (इन्द्रम्) ऐश्वर्य को (पुरा) प्रथम (पार्य्यात्) पार पहुंचावे वा (यत्र) जिस व्यवहार में (अंहसः) अपराध से मुझ को (पीपरत्) पार लगावे वा (यथा) जिस प्रकार से (नः) हम लोगों के अर्थ (यान्तम्) जाते हुए को (उभये) दूर और समीप में वर्त्तमान लोग (नावेव) नौका के सदृश (हवन्ते) पुकारते हैं वैसे हम लोगों को सब लोग पुकारें ॥१४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—मनुष्यों को चाहिये कि उस वाणी और बुद्धि को ग्रहण करें जो सब समय में दुष्ट आचरण से पृथक् रख के दुःख से नौका के सदृश पार उतारें ॥ १४ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

आपूर्णो अस्य कलशः स्वाहा सेक्तेव कोशं सिसिचे पिबध्यै । समु प्रिया आववृत्रन्मदाय प्रदक्षिणिदभि सोमास इन्द्रम् ॥ १५ ॥

आऽपूर्णः। अस्य। कलशः। स्वाहा। सेक्ताऽइव। कोशम्। सिसिचे। पिबध्यै। सम्। ऊँ इति। प्रियाः। आ। अववृत्रन्। मदाय। प्रऽदक्षिणित्। अभि। सोमासः। इन्द्रम् ॥१५॥

पदार्थः—(आपूर्णः) समन्तात् पूरितः (अस्य) (कलशः) कुम्भः (स्वाहा) सत्यया क्रियया (सेक्तेव) पूरकवत् (कोशम्) मेघम् । कोश इति मेघना० निघं० १। १० (सिसिचे) सिञ्चति (पिबध्यै)

पातुम् (सम्) (उ) (प्रियाः) कमनीयाः (आ) समन्तात् (अवृत्रन्) आवृण्वन्ति (मदाय) आनन्दाय (प्रदक्षिणित्) यः प्रदक्षिणमेति सः। अत्र शकन्ध्वादेराकृतिगणत्वात् पररूपमेकादेशः (अभि) आभिमुख्ये (सोमासः) ऐश्वर्य्ययुक्ताः (इन्द्रम्) सूर्य्यम्॥ १५॥

अन्वयः—ये सोमासः प्रिया मदायेन्द्रमभ्यावृत्रन् त उ अस्य जगतो मध्ये पिबध्यै सेक्तेव कोशं संसिसिचे स्वाहा आपूर्णः कलशः प्रदक्षिणिदापूर्णः कलश इव सुखकरो जायते ॥ १५ ॥

भावार्थः—ये धनादिकं प्राप्यान्येभ्यो यथा सुपात्रं सद्व्यवहारं च विज्ञाय ददति ते सेक्ता कुम्भमिव सर्वान्पूर्णसुखान् कुर्वन्ति॥ १५॥

पदार्थः—जो (सोमासः) ऐश्वर्य्य से युक्त (प्रियाः) कामना करने योग्य (मदाय) आनन्द के लिये (इन्द्रम्) सूर्य्य को (अभि) सन्मुख (आ) चारों ओर से (अवृत्रन्) घेरते हैं वे (उ) (अस्य) इस संसार के मध्य में (पिबध्यै) पान करने के लिये (सेक्तेव) पूर्ण करने वाले के तुल्य (कोशम्) मेघ को (सम्) (सिसिचे) सींचते हैं (स्वाहा) सत्य क्रिया से (आपूर्णः) चारों ओर से भरा हुआ (कलशः) घड़ा (प्रदक्षिणित्) दाहिनी ओर चलने वाला पूर्ण घड़े के तुल्य सुखकारक होता है ॥ १५ ॥

भावार्थः—जो लोग धन आदि को प्राप्त हो के औरों के लिये सुपात्र और उत्तम व्यवहार करने वाले को जान के देते हैं वे लोग सींचने वाला घड़े को जैसे वैसे सम्पूर्ण जनों को पूर्ण सुखयुक्त करते हैं ॥ १५ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

न त्वां गभीर पुरुहूत सिन्धुर्नाद्रयः परि षन्तो वरन्त । इत्था सखिभ्य इषितो यदिन्द्रा दृळ्हं चिदरुजो गव्यमूर्वम् ॥ १६ ॥

न । त्वा । गभीरः । पुरुऽहूत । सिन्धुः । न । अद्रयः ।
परि । सन्तः । वरन्त । इत्था । सखिऽभ्यः । इषितः । यत् ।
इन्द्र । आ । दृळ्हम् । चित् । अरुजः । गव्यम् । ऊर्वम् ॥१६॥

पदार्थः—(न) निषेधे (त्वा) त्वाम् (गभीरः) गाम्भीर्यगुणोपेतः (पुरुहूत) बहुभिः प्रशंसित (सिन्धुः) समुद्रः (न) (अद्रयः) मेघाः पर्वता वा (परि) सर्वतः (सन्तः) (वरन्त) वारयन्ति (इत्था) अनेन प्रकारेण (सखिभ्यः) मित्रेभ्यः (इषितः) प्रेरितः (यत्) यः (इन्द्र) परमैश्वर्यप्रद (आ) समन्तात् (दृढम्) स्थिरम् (चित्) (अरुजः) रुजति (गव्यम्) गवामिदम् (ऊर्वम्) निरोधस्थानम् ॥ १६ ॥

अन्वयः—हे पुरुहूतेन्द्र राजन् यं त्वा गभीरः सिन्धुर्न परिवरन्ताऽद्रयः सन्तो न परिवरन्त यद्यश्चिद् दृढं गव्यमूर्वमारुजः स सखिभ्य इषितस्त्वमित्था केनासत्कर्त्तव्यो भवेः ॥ १६ ॥

भावार्थः—हे विद्वांसो यथा समुद्राः पर्वताश्च सूर्य्यं निवारयितुं न शक्नुवन्ति तथैव बहुमित्राः शत्रुभिर्निरोद्धुमशक्या जायन्ते ॥१६॥

पदार्थः—हे (पुरुहूत) बहुतों से प्रशंसा किये गये (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य्य के दाता राजन् जिन (त्वा) आप को (गभीरः) गाम्भीर्य गुणों से युक्त (सिन्धुः) समुद्र (न) नहीं (परि) सब ओर से (वरन्त) वारण करते हैं (अद्रयः) मेघ वा पर्वत (सन्तः) वर्त्तमान होते हुए (न) नहीं सब ओर से वारण करते हैं (यत्) जो (दृढम्) स्थिर (चित्) भी (गव्यम्) गौओं का (ऊर्वम्) निरोधस्थान का (आ, अरुजः) भङ्ग करते हो वह (सखिभ्यः) मित्रों के लिये (इषितः) प्रेरित हुए आप (इत्था) इस प्रकार किस जन से सत्कार नहीं करने योग्य होवैं ॥ १६ ॥

भावार्थः—हे विद्वान् लोगो जैसे समुद्र और पर्वत सूर्य्य को निवारण नहीं कर सक्ते हैं वैसे ही बहुत मित्रों वाले जन शत्रुओं से निवारण करने के शक्य नहीं होते हैं॥ १६॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं॥

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ। शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम्॥ १७॥ ११॥

शुनम्। हुवेम। मघऽवानम्। इन्द्रम्। अस्मिन्। भरे। नृऽतमम्। वाजऽसातौ। शृण्वन्तम्। उग्रम्। ऊतये। समत्ऽसु। घ्नन्तम्। वृत्राणि। सम्ऽजितम्। धनानाम्॥ १७॥ ११॥

पदार्थः—(शुनम्) सुखम्। शुनमिति सुखना० निघं० ३। ६। (हुवेम) आह्वयेम (मघवानम्) परमधनवन्तम् (इन्द्रम्) दुष्टविदारकम् (अस्मिन्) (भरे) सङ्ग्रामे (नृतमम्) शुभैर्गुणैः सर्वोत्कृष्टम् (वाजसातौ) धनान्नादिविभाजके (शृण्वन्तम्) (उग्रम्) तेजस्वभावम् (ऊतये) रक्षणाद्याय (समत्सु) सङ्ग्रामेषु (घ्नन्तम्) हन्तारम् (वृत्राणि) सुवर्णादीनि धनानि। वृत्रमिति धनना० निघं० २। १० (सञ्जितम्) सम्यग्जिताः शत्रवो येन तम् (धनानाम्) द्रव्याणाम्॥ १७॥

अन्वयः—हे मनुष्या यथा वयमूतये समत्सु घ्नन्तमुग्रं धनानां सञ्जितं वृत्राणि शृण्वन्तमस्मिन् वाजसातौ भरे नृतमं मघवानमिन्द्रं हुवेम तत्सङ्गेन शुनं प्राप्नुयाम तथैतं स्तुत्वा यूयमप्येतत्प्राप्नुत॥ १७॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः—यदि राजादयोऽध्यक्षा राजविद्याकुशलान्योद्धॄन् न्यायाधीशान् प्राड्विवाकान्सेवकांश्च सत्कृत्य सङ्गृह्णीयुस्तर्हि तेषां सदैव विजयः कीर्तिरैश्वर्य्यं च जायत इति ॥ १७ ॥

अत्र सोममनुष्येश्वरविद्युद्गुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिर्वेद्या ॥

इति द्वात्रिंशत्तमं सूक्तमेकादशो वर्गश्च समाप्तः ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे हम लोग (ऊतये) रक्षा आदि के लिये (समत्सु) संग्रामों में (घ्नन्तम्) नाश करने वाले (उग्रम्) तेजस्वभावयुक्त (धनानाम्) द्रव्यों के (सञ्जितम्) और उत्तम प्रकार शत्रुओं को जीतने वाले (वृत्राणि) सुवर्ण आदि धनों को (शृण्वन्तम्) सुनते हुए को (अस्मिन्) इस (वाजसातौ) धन और अन्न आदि के विभाग करने वाले (भरे) संग्राम में (नृतमम्) उत्तम गुणों से सर्वोत्तम (मघवानम्) परम धनवान् और (इन्द्रम्) दुष्ट जनों के नाश कर्त्ता को (हुवेम) पुकारें और उस के सङ्ग से (शुनम्) सुख को प्राप्त होवें वैसे इस की स्तुति करके आप लोग भी इस को प्राप्त हों ॥ १७ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—जो राजा आदि प्रधान पुरुष, राजविद्या में चतुर, योद्धा, न्यायाधीश पुरुषों, प्राड्विवाकों (वकीलों) और सेवक पुरुषों का सत्कार करके ग्रहण करैं तो उन राजाओं का सदैव विजय यश कीर्त्ति और ऐश्वर्य्य होता है ॥ १७ ॥

इस मन्त्र में सोम मनुष्य ईश्वर और बिजुली के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह बत्तीसवां सूक्त और ग्यारवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

अथ त्रयोदशर्चस्य त्रयस्त्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य विश्वामित्र ऋषिः । नद्यो देवताः । १ भुरिक् पङ्क्तिः । ५ स्वराट् पङ्क्तिः । ७ पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । २ । १० विराट् त्रिष्टुप् । ३ । ८ । ११ । १२ त्रिष्टुप् । ४ । ६ । ९ निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । १३ उष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अथ नदीदृष्टान्तेन स्त्रीवर्णनमाह ॥

अब तेरह ऋचावाले तेंतीशवें सूक्त का प्रारम्भ है उस के पहिले मन्त्र में नदी के दृष्टान्त से स्त्री का वर्णन करते हैं ॥

प्र पर्वतानामुशती उपस्थादश्वेइव विषिते हासमाने । गावेव शुभ्रे मातरा रिहाणे विपाट्छुतुद्री पयसा जवेते ॥ १ ॥

प्र । पर्वतानाम् । उशती इति । उपऽस्थात् । अश्वेइवेत्यश्वेऽइव । विसिते इति विऽसिते । हासमाने इति । गावाऽइव । शुभ्रे इति । मातरा । रिहाणे इति । विऽपाट् । शुतुद्री । पयसा । जवेते इति ॥ १ ॥

पदार्थः—(प्र) (पर्वतानाम्) मेघानाम् (उशती) कामयमाने (उपस्थात्) समीपात् (अश्वेइव) अश्ववडवाविव (विषिते) विद्याशुभगुणकर्मव्याप्ते (हासमाने) (गावेव) यथा धेनुवृषभौ (शुभ्रे) श्वेते शुभगुणयुक्ते (मातरा) मान्यप्रदे (रिहाणे) आस्वदिन्यौ । अत्र वर्णव्यत्ययेन लस्य स्थाने रः (विपाट्) या

विविधं पटति गच्छति विपाटयति वा सा (शुतुद्री) शु शीघ्रं तुदति व्यथयति सा (पयसा) जलेन । पय इत्युदकना० निघं० १ । १२ (जवेते) गच्छतः ॥ १ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या ये अध्यापिकोपदेशिके मातरेव कन्यानां शिक्षामुशती पर्वतानामुपस्थादश्वेइव विषिते अश्वेइव हासमाने रिहाणे शुभ्रे गावेव पयसा विपाट् छुतुद्री प्रजवेते इव वर्त्तमाने भवेतां ते कन्या स्त्रीणामध्ययनोपदेशव्यवहारे नियोजयत ॥ १ ॥

भावार्थः—अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारः—यथा पर्वतानां मध्ये वर्त्तमाना नद्योऽश्वा इव धावन्ति गाव इव शब्दायन्ते तथैव प्रसन्नाः शुभगुणकर्मस्वभावा विद्योन्नतिं कामयमानाः स्त्रियः कन्याः स्त्रियश्च सततं सुशिक्षेरन् ॥ १ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो पढ़ाने और उपदेश देने वाली (मातरा) मान्य देने वालियों सी कन्याओं की शिक्षा को (उशती) कामना करने वाली (पर्वतानाम्) मेघों के (उपस्थात्) समीप से (अश्वेइव) घोड़ और घोड़ी के सदृश (विषिते) विद्या और शुभ गुण युक्त कर्मों से व्याप्त वा घोड़े और घोड़ी के सदृश (हासमाने) परस्पर प्रेम करती (रिहाणे) प्रीति से एक दूसरे को सूंघती हुई (शुभ्रे) उत्तम गुणों से युक्त (गावेव) गौ और बैल के सदृश (पयसा) जल से (विपाट्) कई प्रकार चलने वा ढांपने वाली (शुतुद्री) शीघ्र दुःखदायक (प्र) (जवेते) चलती हैं वैसे वर्त्तमान होवें उन अध्यापिका और उपदेशिका को कन्या और स्त्रियों के पढ़ाने और उपदेश करने में नियुक्त करो ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—जैसे पर्वतों के मध्य में वर्त्तमान नदियां घोड़ों के सदृश दौड़ती और गौओं के सदृश शब्द करती हैं वैसे ही प्रसन्न और उत्तम गुण कर्म स्वभाव युक्त विद्या की उन्नति की कामना करने वाली स्त्रियां कन्याओं और स्त्रियों को निरन्तर शिक्षा देवें ॥१॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥
फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इन्द्रेषिते प्रसवं भिक्षमाणे अच्छा समुद्रं रथ्येव याथः । समाराणे ऊर्मिभिः पिन्वमाने अन्या वामन्यामप्येति शुभ्रे ॥ २ ॥

इन्द्रेषिते इतीन्द्रऽइषिते । प्रऽसवम् । भिक्षमाणे इति । अच्छ । समुद्रम् । रथ्याऽइव । याथः । समाराणे इति सम्ऽआराणे । ऊर्मिऽभिः । पिन्वमाने इति । अन्या । वाम् । अन्याम् । अपि । एति । शुभ्रे इति ॥ २ ॥

पदार्थः—(इन्द्रेषिते) इन्द्रेण सूर्य्येण वर्षाद्वारा प्रेरिते (प्रसवम्) प्रकृष्टमैश्वर्य्यम् (भिक्षमाणे) (अच्छ) सम्यक् । अत्र निपातस्य चेति दीर्घः (समुद्रम्) समुद्द्रवन्त्यापो यस्मिँस्तं मेघं सागरं वा । समुद्र इति मेघना० निघं० १ । १० (रथ्येव) रथेषु साधू अश्वा इव (याथः) गच्छथः (समाराणे) सम्यक् समन्ताद्राणं दानं ययोस्ते (ऊर्मिभिः) तरङ्गैः (पिन्वमाने) सेक्त्र्यौ (अन्या) भिन्ना (वाम्) युवयोः (अन्याम्) (अपि) (एति) (शुभ्रे) शोभायमाने ॥ २ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या ये इन्द्रेषिते पिन्वमाने ऊर्मिभिः समुद्रं रथ्येव नद्याविव प्रसवं भिक्षमाणे समाराणे शुभ्रे अध्यापिकोपदेशिके अच्छ याथः । अन्या अन्यामप्येतीव हे अध्यापिकोपदेशिके वामध्येतुं श्रोतुं वा प्राप्नुयुस्ता युवाभ्यां विद्याव्यवहारे नियोजनीया अध्यापनीयाश्च ॥ २ ॥

भावार्थः—अत्रोपमा वाचकलुप्तोपमालङ्कारः—यथा युवतयो यूनः पतीन् प्राप्य प्रसवमिच्छन्ति नद्यः समुद्रं गच्छन्त्यश्वा मार्गे रथं नयन्ति तथैवाऽध्यापिकोपदेशिकाभिर्विद्यासुशिक्षादानेन सर्वाः स्त्रियः शुभगुणकर्मस्वभावाः सम्पादनीयाः ॥ २ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (इन्द्रेषिते) सूर्य्य से वृष्टि के द्वारा प्रेरित की गई (पिन्वमाने) सींचने वाली (ऊर्मिभिः) तरङ्गों से (समुद्रम्) बहने वाले जलों से युक्त मेघ वा सागर को (रथ्येव) रथों में चलने योग्य घोड़ों वा नदियों के सदृश (प्रसवम्) उत्तम ऐश्वर्य्य की (भिक्षमाणे) याचना करती हुई (समाराणे) उत्तम प्रकार सब तरह दान देने वाली (शुभ्रे) शोभायुक्त हो कर पढ़ाने और उपदेश करने वाली स्त्रियां (अच्छ, याथः) अच्छे प्रकार जावैं (अन्या) कोई एक स्त्री (अन्याम्) दूसरी स्त्री को (अपि) (एति) प्रीति से मिलाती है वा हे पढ़ाने और उपदेश देने वालियो (वाम्) तुम दोनों के सम्बन्ध से जो स्त्रियां पढ़ने वा सुनने को प्राप्त हों वे स्त्रियां तुम को विद्या सम्बन्धी व्यवहार में नियुक्त करनी तथा पढ़ानी चाहिये ॥ २ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—जैसे जवान स्त्रियां जवान पतियों को प्राप्त हो के गर्भोत्पत्ति की इच्छा करती हैं और नदियां समुद्र के प्रति जाती हैं और घोड़े मार्ग में रथ को ले चलते हैं वैसे ही पढ़ने और उपदेश देने वालियों को चाहिये कि विद्या और उत्तम शिक्षा के दान से सम्पूर्ण स्त्रियों को उत्तम गुणकर्म स्वभावयुक्त करें ॥ २ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अच्छा सिन्धुं मातृतंमामयासं विपाशमुर्वीं सुभगामगन्म । वत्समिव मातरा संरिहाणे समानं योनिमनु सञ्चरन्ती ॥ ३ ॥

अच्छ॑ । सिन्धु॑म् । मा॒तृऽत॑माम् । अ॒यास॑म् । विऽपा॑शम् । उ॒र्वीम् । सु॒ऽभगा॑म् । अ॒गन्म॒ । व॒त्सम्ऽइ॑व । मा॒तरा॑ । सं॒रि॒हा॒णे इति॑ सम्ऽरि॒हा॒णे । स॒मा॒नम् । योनि॑म् । अनु॑ । स॒ञ्च॒र॑न्ती॒ इति॑ स॒म्ऽचर॑न्ती ॥ ३ ॥

पदार्थः—(अच्छ) उत्तमरीत्या । अत्र निपातस्य चेति दीर्घः (सिन्धुम्) समुद्रम् (मातृतमाम्) अतिशयेन मातरो मातृवत्पालिका नद्यः । मातर इति नदीना० निघं० १ । १२ अत्र सुपां व्यत्ययः (अयासम्) अयासिषं प्राप्नुयाम । अत्र वाच्छन्दसीतीडभावः (विपाशम्) विगता पाट् बन्धनं यस्यान्ताम् (उर्वीम्) महतीम् (सुभगाम्) सौभाग्ययुक्ताम् (अगन्म) प्राप्नुयाम (वत्समिव) यथा गौर्वत्सम् (मातरा) मातृवद्वर्त्तमाने (संरिहाणे) सम्यगास्वादकर्यौ (समानम्) (योनिम्) गृहम् (अनु) (सञ्चरन्ती) सम्यग्गच्छन्त्यौ जानन्त्यौ ॥ ३ ॥

अन्वयः—यथा मातृतमां सिन्धुं प्राप्नुवन्ति तथैव वयं विपाशमूर्वीं सुभगामध्यापिकामुपदेशिकामगन्म । यथा संरिहाणे समानं योनिमनुसञ्चरन्ती मातरा वत्समिव मामध्यापनशिक्षार्थं प्राप्नुयातस्ते अहमच्छायासम् ॥ ३ ॥

भावार्थः—अत्रोपमा वाचकलुप्तोपमालङ्कारः—यथा समुद्रं नद्यो वत्सान् गावो दंपती समानं गृहं च प्राप्नुतस्तथैवाऽध्यापिकोपदेशिका अस्मान् प्राप्नुवन्तु वयं च याः कन्याः सौभाग्यवत्यश्च ताः प्राप्नुयाम ॥ ३ ॥

पदार्थः—जैसे (मातृतमाम्) अत्यन्त माता के सदृश पालन करने वाली नदियां (सिन्धुम्) समुद्र के प्रति प्राप्त होती हैं वैसे ही हम (विपाशम्) बन्धन रहित (उर्वीम्) बड़ी (सुभगाम्) सौभाग्य से युक्त पढ़ाने और उपदेश देने वाली स्त्री को (अगन्म) प्राप्त हों और जैसे (संरिहाणे) उत्तम प्रकार आस्वाद करने वालीं स्त्रियां (समानम्) तुल्य (योनिम्) गृह को (अनु) (सञ्चरन्ती) अनुकूलता से उत्तम प्रकार चलतीं और जानती हुई (मातरा) माता के सदृश वर्त्तमान (वत्समिव) जैसे गौ बछड़े को वैसे मुझ को पढ़ाने और शिक्षा देने के लिये प्राप्त होवें उन को मैं (अच्छ, अयासम्) अच्छे प्रकार प्राप्त होऊं ॥ ३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—जैसे समुद्र को नदियां और बछड़ों को गौवें और स्त्री पुरुष एक गृह को प्राप्त होते हैं वैसे ही पढ़ाने और उपदेश देने वाली स्त्रियां हम लोगों को प्राप्त हों और हम लोग जो कन्या और सौभाग्य वाली स्त्रियां हों उन को प्राप्त हों ॥ ३ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

एना वयं पयसा पिन्वमाना अनु योनिं देवकृतं चरन्तीः । न वर्त्तवे प्रसवः सर्गतक्तः किंयुर्विप्रो नद्यो जोहवीति ॥ ४ ॥

एना । वयम् । पयसा । पिन्वमानाः । अनु । योनिम् । देवऽकृतम् । चरन्तीः । न । वर्त्तवे । प्रऽसवः । सर्गऽतक्तः । किम्ऽयुः । विप्रः । नद्यः । जोहवीति ॥ ४ ॥

पदार्थः—(एना) एनेन (वयम्) (पयसा) उदकेन (पिन्वमानाः) सिञ्चमानाः (अनु) (योनिम्) उदकम् । योनिरित्युदकना०

निघं० १ । १२ (देवकृतम्) देवैर्विद्वद्भिः कृतं निष्पादितं शास्त्रम् (चरन्तीः) प्राप्नुवन्त्यः (न) (वर्त्तवे) वरितुं स्वीकर्त्तुम् (प्रसवः) सन्तानः (सर्गतक्तः) यः सर्गं उत्पत्तौ तक्तो हसितः । अत्र वाच्छन्दसीतीडभावः (किंयुः) आत्मनः किमिच्छुः । अत्र वाच्छन्दसीति क्यच् प्रतिषेधो न (विप्रः) मेधावी (नद्यः) सरितः (जोहवीति) भृशं शब्दयति ॥ ४ ॥

अन्वयः—या एना पयसा पिन्वमाना देवकृतं योनिमनु सञ्चरन्तीर्नद्यो वर्तवे न भवन्ति न निवर्त्तन्ते ता वयं प्राप्नुयाम । यः सर्गतक्तः प्रसवः किंयुर्विप्रो जोहवीति सोऽस्मान्प्राप्नुयात् ॥ ४ ॥

भावार्थः—यथा सोदका नद्यः सर्वोपकारका भवन्ति कदाचिज्जलहीना न भवन्ति तथैव यः कृतब्रह्मचर्य्ययोः स्त्रीपुरुषयोः सन्तानो भूत्वा धर्म्येण ब्रह्मचर्य्येणाऽखिला विद्याः प्राप्य विद्वान् जायते स एव सर्वानुपकर्त्तुं शक्नोति ॥ ४ ॥

पदार्थः—जो (एना) इस (पयसा) जल से (पिन्वमानाः) सींचती हुई (देवकृतम्) विद्वानों ने किये शास्त्र और (योनिम्) जल को (अनु, चरन्तीः) अनुकूल प्राप्त होने वाली (नद्यः) नदियां (वर्त्तवे) स्वीकार करने को (न) नहीं निवृत्त होती हैं उन को (वयम्) हम लोग प्राप्त होवें जो (सर्गतक्तः) उत्पत्ति में प्रसन्न (प्रसवः) सन्तान (किंयुः) अपने को क्या इच्छा करने वाला (विप्रः) बुद्धिमान् पुरुष (जोहवीति) बारम्बार शब्द करता है वह हम लोगों को प्राप्त होवे ॥ ४ ॥

भावार्थः—जैसे जल सहित नदियां सब की उपकार करने वाली होतीं और कभी जल से हीन नहीं होती हैं वैसे जो ब्रह्मचर्य से युक्त स्त्री और पुरुष का सन्तान उत्पन्न हो और धर्मसम्बन्धी ब्रह्मचर्य्य से सम्पूर्ण विद्याओं को प्राप्त हो कर विद्वान् होता है वही सब का उपकार कर सक्ता है ॥ ४ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

रमध्वं मे वचसे सोम्याय ऋतावरीरुप मुहूर्तमेवैः । प्र सिन्धुमच्छा बृहती मनीषावस्युरह्वे कुशिकस्य सूनुः ॥ ५ ॥ १२ ॥

रमध्वम् । मे । वचसे । सोम्याय । ऋतऽवरीः । उप । मुहूर्त्तम् । एवैः । प्र । सिन्धुम् । अच्छ । बृहती । मनीषा । अवस्युः । अह्वे । कुशिकस्य । सूनुः ॥ ५ ॥ १२ ॥

पदार्थः—(रमध्वम्) क्रीडध्वम् (मे) मम (वचसे) वचनाय (सोम्याय) सोम इव शान्तिगुणयुक्ताय (ऋतावरीः) ऋतं पुष्कलमुदकं विद्यते यासु ताः (उप) (मुहूर्त्तम्) कालावयवम् (एवैः) प्रापकैर्गुणैः (प्र) (सिन्धुम्) समुद्रम् (अच्छ) सम्यक् । अत्र निपातस्य चेति दीर्घः (बृहती) महती (मनीषा) प्रज्ञा (अवस्युः) आत्मनोऽव इच्छुः (अह्वे) प्रशंसामि (कुशिकस्य) विद्यानिष्कर्षप्राप्तस्य। अत्र वर्णव्यत्ययेन मूर्द्धन्यस्य तालव्यः (सूनुः) अपत्यमिव वर्त्तमानः ॥५॥

अन्वयः-हे मनुष्या यूयं यथा ऋतावरीः सिन्धुमुपगच्छन्ति स्थिरा भवन्ति तथैवैवैर्मुहूर्त्तं मे सोम्याय वचसे रमध्वं तथैव कुशिकस्य सूनुरवस्युरहं यो बृहती मनीषा तामच्छ प्राह्वे ॥ ५ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः—यथा नद्यः समुद्राऽभिमुखं गच्छन्ति तथैव मनुष्या विद्याधर्म्यव्यवहारं प्रत्यभिगच्छन्तु येन सुखेन समयो गच्छेत् ॥ ५ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो आप लोग जैसे (ऋतावरीः) बहुत जलों से युक्त नदी (सिन्धुम्) समुद्र को (उप) प्राप्त और स्थिर होती हैं वैसे ही (एवैः) प्राप्त कराने वाले गुणों से (मुहूर्त्तम्) दो दो घड़ी (मे) मेरे (सोम्याय) चन्द्रमा के तुल्य शान्ति गुण युक्त (वचसे) वचन के लिये (रमध्वम्) क्रीड़ा करो वैसे ही (कुशिकस्य) विद्या के निचोड़ को प्राप्त हुए सज्जन के (सूनुः) पुत्र के सदृश वर्त्तमान (अवस्युः) अपने को रक्षा चाहने वाला मैं जो (बृहती) बड़ी (मनीषा) बुद्धि उस की (अच्छ) उत्तम प्रकार (प्र) (अह्वे) प्रशंसा करता हूं ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—जैसे नदियां समुद्र के सम्मुख जाती हैं वैसे ही मनुष्य लोग विद्या और धर्मसम्बन्धी व्यवहार को प्राप्त हों जिस से सुखपूर्वक समय व्यतीत होवे ॥ ५ ॥

अथ सूर्यदृष्टान्तेन मनुष्यकर्त्तव्यमाह ॥

अब सूर्य के दृष्टान्त से मनुष्य के कर्त्तव्य को कहते हैं ॥

इन्द्रो॑ अ॒स्माँ अ॑रद॒द्वज्र॑बाहु॒रपा॑ह॒न्वृ॒त्रं प॑रि॒धिं न॒दीना॑म् । दे॒वो॑ऽनयत्सवि॒ता सु॑पा॒णिस्तस्य॑ व॒यं प्र॑स॒वे या॑म उ॒र्वीः ॥ ६ ॥

इन्द्रः॑ । अ॒स्मान् । अ॒र॒द॒त् । वज्र॑ऽबाहुः । अप॑ । अ॒ह॒न् । वृ॒त्रम् । प॒रि॒ऽधिम् । न॒दीना॑म् । दे॒वः । अ॒न॒य॒त् । स॒वि॒ता । सु॒ऽपा॒णिः । तस्य॑ । व॒यम् । प्र॒ऽस॒वे । या॒मः॒ । उ॒र्वीः ॥६॥

पदार्थः—(इन्द्रः) परमैश्वर्य्यवान् राजा (अस्मान्) (अरदत्) विलिखेत् (वज्रबाहुः) शस्त्रभुजः (अप) (अहन्) हन्ति (वृत्रम्) आवरकं मेघम् (परिधिम्) सर्वतो धीयन्ते नद्यो यस्मिँस्तम् (नदीनाम्) (देवः) दिव्यगुणस्वभावः (अनयत्) नयति (सविता) सूर्यः (सुपाणिः) शोभनहस्तः (तस्य) (वयम्) (प्रसवे) ऐश्वर्य्ये (यामः) प्राप्नुयामः (उर्वीः) बहुसुखप्रदाः प्रजाः ॥६॥

अन्वयः—हे राजन्निन्द्रस्त्वं यथा सविता देवो नदीनां परिधिं वृत्रमपाहन् तदवयवानरदज्जलं भूमिं चानयत्तथा वज्रबाहुः सन्नस्मान् संरक्ष्य ससेवकांश्छत्रून् हन्यात् यः सुपाणिर्देवस्त्वमुर्वी रक्षेस्तस्य प्रसवे वयमानन्दं यामः ॥ ६ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः—यथा सूर्य्यो भूम्यादीनाकर्षणेन व्यवस्थाप्य वर्षाः कृत्वैश्वर्य्यं जनयति तथैव वयं सद्गुणानाकृष्याऽरीन् विजित्य राज्यश्रियं जनयेम ॥ ६ ॥

पदार्थः—हे राजन् (इन्द्रः) अत्यन्त ऐश्वर्य्यवान् आप जैसे (सविता) सूर्य (देवः) उत्तम गुण कर्म और स्वभावयुक्त (नदीनाम्) नदियों के (परिधिम्) चारों ओर वर्त्तमान (वृत्रम्) ढापने वाले मेघ को (अप) (अहन्) नाश करता है उस के अवयवों को (अरदत्) खोदै और जल, भूमि को (अनयत्) प्राप्त करता वैसे (वज्रबाहुः) शस्त्रधारी हो (अस्मान्) हम लोगों की रक्षा करके सेवकों के सहित शत्रुओं का नाश करैं जो (सुपाणिः) उत्तम हाथों से और उत्तम गुण कर्म स्वभाव से युक्त आप (उर्वीः) बहुत सुख की देने वाली प्रजाओं की रक्षा करैं (तस्य) उस के (प्रसवे) ऐश्वर्य्य में (वयम्) हम लोग आनन्द को (यामः) प्राप्त होवैं ॥ ६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—जैसे सूर्य भूमि आदि पदार्थों को आकर्षण से यथा स्थान ठहरा और वृष्टि करके ऐश्वर्य को उत्पन्न करता है वैसे ही हम लोग उत्तम गुणों का आकर्षण और शत्रुओं को जीत करके राज्य की शोभा को प्राप्त करैं ॥ ६ ॥

पुनर्मनुष्यः किं कुर्यादित्याह ॥

फिर मनुष्य क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

प्रवाच्यं शश्वधा वीर्य्यं१तदिन्द्रस्य कर्म यदहिं विवृश्चत् । वि वज्रेण परिषदो जघानायन्नापोऽयनमिच्छमानाः ॥ ७ ॥

प्रऽवाच्यम् । शश्वधा । वीर्यम् । तत् । इन्द्रस्य । कर्म । यत् । अहिम् । विऽवृश्चत् । वि । वज्रेण । परिऽसदः । जघान । आयन् । आपः । अयनम् । इच्छमानाः ॥ ७ ॥

पदार्थः—(प्रवाच्यम्) प्रवक्तुं योग्यम् (शश्वधा) शश्वदेव (वीर्य्यम्) बलम् (तत्) (इन्द्रस्य) सूर्य्यस्य (कर्म) (यत्) (अहिम्) (विवृश्चत्) छिनत्ति (वि) (वज्रेण) किरणेन (परिषदः) परिषीदन्ति यासु ताः सभाः (जघान) हन्ति (आयन्) प्राप्नुयुः (आपः) (अयनम्) भूमिस्थानम् (इच्छमानः) अभिलषन्तः ॥ ७ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यः सूर्य्योऽहिं विवृश्चद्यदिन्द्रस्य वीर्य्यं कर्मास्ति तच्छश्वधा प्रवाच्यं यथा वज्रेण हता मेघस्याऽऽपोऽयनमायन् मेघं विजघान तथैवेच्छमानाः परिषदः कुर्य्युः ॥ ७ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः—हे मनुष्या यो धर्म्यं कर्म कृत्वा दुष्टनिवारणाय स्वबलं दर्शयेत्तस्य तत्कर्मप्रशंसनं सदैव कार्य्यं ये परिषदि सभ्याः स्युस्ते न्यायेन सर्वोन्नतिं चिकीर्षेयुः ॥७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो सूर्य्य (अहिम्) मेघ को (विवृश्चन्) काटता है (यत्) जो (इन्द्रस्य) सूर्य्य का (वीर्य्यम्) बलरूप (कर्म) कर्म है (तत्) वह (शश्वधा) निरन्तर ही (प्रवाच्यम्) कहने योग्य और जैसे (वज्रेण) किरण से विदीर्ण किये गये मेघ के (आपः) जल (अयनम्) भूमि स्थान को (आयन्) प्राप्त होवैं मेघ को (विजघान) नाश करता है वैसे ही (इच्छमानाः) इच्छा करते हुए जन (परिषदः) जिन में बैठे उन सभा को करैं ॥७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—हे मनुष्यो जो धर्मसम्बन्धी काम करके दुष्ट पुरुषों के निवारण के लिये अपना पराक्रम दिखावै उस के

उस कर्म की प्रशंसा सब काल में करनी चाहिये जो लोग सभा में श्रेष्ठ होवें वे न्याय से सब लोगों की उन्नति करने की इच्छा करें ॥ ७ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

एतद्वचो जरितर्मापि मृष्ठा आ यत्ते घोषानुत्तरा युगानि । उक्थेषु कारो प्रति नो जुषस्व मा नो नि कः पुरुषत्रा नमस्ते ॥ ८ ॥

एतत् । वचः । जरितः । मा । अपि । मृष्ठाः । आ । यत् । ते । घोषान् । उत्ऽतरा । युगानि । उक्थेषु । कारो इति । प्रति । नः । जुषस्व । मा । नः । नि । करिति कः । पुरुषऽत्रा । नमः । ते ॥ ८ ॥

पदार्थः—(एतत्) (वचः) (जरितः) प्रशंसक (मा) निषेधे (अपि) (मृष्ठाः) सहेः। अत्र व्यत्ययेनात्मनेपदम् (आ) (यत्) यानि (ते) तव (घोषान्) वाक्प्रयोगान् (उत्तरा) उत्तराणि युगानि वर्षाणि (उक्थेषु) प्रशंसनीयेषु व्यवहारेषु (कारो) यः करोति तत्सम्बुद्धौ (प्रति) (नः) अस्मान् (जुषस्व) सेवस्व (मा) (नः) अस्मान् (नि) (कः) निकुर्य्याः (पुरुषत्रा) पुरुषान् (नमः) (ते) तुभ्यम् ॥ ८ ॥

अन्वयः—हे जरितस्त्वमेतद्वचो माऽपि मृष्ठास्ते यद्यान्युत्तरा युगानि घोषान् प्राप्नुयुस्तान्युक्थेषु नोऽस्मान् प्राप्नुवन्तु । हे कारो तैर्नोऽस्मान्प्रत्याजुषस्व पुरुषत्रा नो मा नि कोऽतस्ते नमोऽस्तु ॥ ८ ॥

भावार्थः—हे मनुष्या यावान् भूतकालो गतस्तत्रत्यानां कर्मणां शिष्टं कार्य्यं कर्त्तव्यं विज्ञाय वर्त्तमाने भविष्यति च यथोन्नतिर्भूत्वा विघ्नानि निवर्त्तेरँस्तथैवाऽनुतिष्ठत ॥ ८ ॥

पदार्थः—हे (जरितः) प्रशंसा करने वाले आप (एतत्) इस (वचः) वचन को (मा) नहीं (अपिमृष्ठाः) सहो (ते) आप के (यत्) जो (उत्तरा) आगे के (युगानि) वर्ष (घोषान्) वाणी के प्रयोगों को प्राप्त होवे वह (उक्थेषु) प्रशंसा करने योग्य व्यवहारों में (नः) हम लोगों को प्राप्त होवैं । हे (कारो) हे कर्त्ता पुरुष उन से (नः) हम लोगों की (प्रति, आ, जुषस्व) सेवा करो हम (पुरुषत्रा) पुरुषों का (मा, नि, कः) अपकार मत करो इस से (ते) आप के लिये (नमः) नमस्कार हो ॥ ८ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो जितना भूतकाल गया उस में व्यतीत हुए कर्मों के शेष करने योग्य कार्य्य को जान के वर्त्तमान और भविष्यत् काल में जिस प्रकार उन्नति हो के विघ्न निवृत्त होवें वैसे ही करो ॥ ८ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥
फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

ओ षु स्वसारः कारवे शृणोत ययौ वो दूराद-
नसा रथेन। नि षू नमध्वं भवता सुपारा अधोअक्षाः
सिन्धवः स्रोत्याभिः ॥ ९ ॥

ओ इति। सु। स्वसारः। कारवे। शृणोत। ययौ। वः। दूरात्। अनसा। रथेन। नि। सु। नमध्वम्। भवत। सुऽपाराः। अधःऽअक्षाः। सिन्धवः। स्रोत्याभिः ॥ ९ ॥

पदार्थः—(ओ) सम्बोधने (सु) (स्वसारः) भगिनीवद्वर्त्तमाना अङ्गुलयः (कारवे) शिल्पिने (शृणोत) (ययौ) प्राप्नोति (वः)

युष्मान् (दूरात्) (अनसा) शकटेन (रथेन) (नि) नितराम् (सु) (नमध्वम्) (भवत) । अत्र संहितायामिति दीर्घः (सुपाराः) शोभनः पारः पालनादि कर्म येषान्ते (अधोअक्षाः) अधोऽर्वाचीना अक्षाः इन्द्रियाणि येषान्ते । अक्षा इति पदना० निघं० । ५ । ३ (सिन्धवः) नद्यः (स्रोत्याभिः) स्रोतःसु भवाभिर्गतिभिः ॥ ९ ॥

अन्वयः—ओ विद्वांसो यूयं कारवे स्वसार इव स्रोत्याभिः सिन्धव इव अधोअक्षाः सुपाराः सुभवत योऽनसा रथेन दूराद्वो ययौ तं सुशृणोत तत्र निनमध्वम् ॥ ९ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः—ये परस्मिन्परस्मिन् प्रीता बहुश्रुता अन्यरचितानि शीघ्रगामीनि यानानि दृष्ट्वा तादृशानि निर्माय पाराऽवारौ गच्छन्तो नम्राः स्युस्तान् स्रोतांसि नदीरिवैश्वर्य्यगुणाः प्राप्नुवन्ति ॥ ९ ॥

पदार्थः—(ओ) हे विद्वान् पुरुषो आप लोग (कारवे) शिल्पी जन के लिये (स्वसारः) भगिनी के तुल्य वर्त्तमान अङ्गुलियों (स्रोत्याभिः) वा स्रोतों में होने वाली गतियों से (सिन्धवः) नदियों के समान (अधोअक्षाः) नीचे को प्राप्त होती हुई इन्द्रियों से युक्त (सुपाराः) सुन्दर पालन आदि कर्म करने वाले (सु) (भवत) उत्तम प्रकार से हूजिये जो (अनसा) शकट और (रथेन) रथ से (दूरात्) दूर (वः) आप लोगों को (ययौ) प्राप्त होना है उस को (सु, शृणोत) उत्तम प्रकार सुनिये उस में (नि) अत्यन्त (नमध्वम्) नम्र हूजिये ॥ ९ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—जो लोग दूसरे दूसरे में प्रसन्न बहुत बातों को सुने हुए पुरुष, औरों से बनाए हुए शीघ्र चलने वाले वाहनों को देख और वैसे ही बनाय के जलाशयों के आर पार जाते हुए नम्र होवैं उन को जैसे स्रोता नदियों को वैसे ऐश्वर्य्य गुण प्राप्त होते हैं ॥ ९ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

आ ते कारो शृणवामा वचांसि ययाथ दूरादनसा रथेन । नि ते नंसै पीप्यानेव योषा मर्यायेव कन्या शश्वचै ते ॥ १० ॥ १३ ॥

आ । ते । कारो इति । शृणवाम । वचांसि । ययाथ । दूरात् । अनसा । रथेन । नि । ते । नंसै । पीप्यानाऽइव । योषा । मर्यायऽइव । कन्या । शश्वचै । त इति ते ॥ १० ॥ १३ ॥

पदार्थः-(आ) समन्तात् (ते) तव (कारो) शिल्पविद्यासु कुशल (शृणवाम) अत्र संहितायामिति दीर्घः (वचांसि) विद्याप्रज्ञापकानि वचनानि (ययाथ) प्राप्नुयाः (दूरात्) (अनसा) (रथेन) (नि) (ते) तव (नंसै) नमेः (पीप्यानेव) विद्यावृद्धाविव (योषा) (मर्यायेव) यथा पुरुषाय (कन्या) (शश्वचै) परिष्वङ्गाय (ते) तुभ्यम् ॥ १० ॥

अन्वयः—हे कारो ते तव वचांस्यनसा रथेन दूरादागत्य वयमाशृणवाम यथा त्वमस्मान् ययाथ तथा वयं त्वां प्राप्नुयाम। यस्त्वं पीप्यानेव नि नंसै ते तुभ्यं वयमपि नमाम योषा मर्यायेव कन्या शश्वचै इव ते तुभ्यं वयमभिलषेम ॥ १० ॥

भावार्थः-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारः—ये दूरादागत्य विदुषां सकाशाद्विविधा विद्याः प्राप्य नम्रा भवन्ति ते विद्यावृद्धाः सन्तः पतिव्रता स्त्री पतिमिव कन्याऽभीष्टं वरमिव विद्यां प्राप्याऽऽनन्दन्ति ॥ १० ॥

पदार्थः—हे (कारो) शिल्प विद्याओं में चतुर (ते) आप के (वचांसि) विद्या के प्राप्त कराने वाले वचनों को (अनसा) शकट और (रथेन) रथ से (दूरात्) दूर से आय के हम लोग (आ) सब प्रकार (शृणवाम) सुनें और जैसे आप हम लोगों को (ययाथ) प्राप्त होवें वैसे हम लोग आप को प्राप्त होवें जो आप (पीप्यानेव) विद्या के वृद्ध दो पुरुषों के सदृश (नि, नंसै) नमस्कार करें (ते) आप के लिये हम लोग भी नम्र होवें (योषा) स्त्री (मर्यायेव) जैसे पुरुष के लिये और (कन्या) कन्या (शश्वचै) प्रीति से मिलने के लिये वैसे (ते) आप के लिये हम लोग अभिलाषा करें ॥ १० ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—जो लोग दूर से आय के विद्वानों के समीप से अनेक प्रकार की विद्याओं को प्राप्त करके नम्र होते हैं वे विद्यावृद्ध हो कर जैसे पतिव्रता स्त्री पति और कन्या अभीष्ट वर को वैसे विद्या को प्राप्त हो के आनन्दित होते हैं ॥ १० ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

यदङ्ग त्वा भरताः सन्तरेयुर्गव्यन्ग्राम इषित इन्द्रजूतः। अर्षादह प्रसवः सर्गतक्त आ वो वृणे सुमतिं यज्ञियानाम् ॥ ११ ॥

यत्। अङ्ग। त्वा। भरताः। सम्ऽतरेयुः। गव्यन्। ग्रामः। इषितः। इन्द्रऽजूतः। अर्षात्। अह। प्रऽसवः। सर्गऽतक्तः। आ। वः। वृणे। सुऽमतिम्। यज्ञियानाम् ॥ ११ ॥

पदार्थः—(यत्) यम् (अङ्ग) मित्र (त्वा) त्वाम् (भरताः) सर्वेषां धर्त्तारः पोषकाः (सन्तरेयुः) (गव्यन्) गौरिवाचरन् (ग्रामः) मनुष्यसमूह इव (इषितः) प्रेरितः (इन्द्रजूतः) इन्द्रो

विद्युदिव प्रतापयुक्तः (अर्षात्) प्राप्नुयात् (अह) विनिग्रहे (प्रसवः) प्रकृष्टैश्वर्य्यः (सर्गतक्तः) जलस्य संकोचकः । सर्ग-इत्युदकना० निघं० १ । १२ (आ) समन्तात् (वः) युष्माकम् (वृणे) स्वीकुर्वे (सुमतिम्) शोभनां प्रज्ञाम् (यज्ञियानाम्) यज्ञस्य साधकानाम् ॥ ११ ॥

अन्वयः—हे अङ्ग यद्यं त्वा भरताः सन्तरेयुः स ग्राम इषित इन्द्रजूतः प्रसवः सर्गतक्तो गव्यन् भवानहार्षात् । हे विद्वांसो यथाहं यज्ञियानां वः सुमतिमावृणे तथा यूयं मम प्रज्ञां स्वीकुरुत ॥ ११ ॥

भावार्थः—यथा विद्वांसो विद्यापारं गत्वा प्राज्ञा जायन्ते तथेतरे मनुष्या अपि भवन्तु एवं कृते सर्वे दुःखान्तं गत्वा सुखिनः स्युः ॥ ११ ॥

पदार्थः—हे (अङ्ग) मित्र (यत्) जिस (त्वा) आप को (भरताः) सब के धारण वा पोषण करने वाले (सन्तरेयुः) संतरें अर्थात् आप के स्वभाव से पार हों वह (ग्रामः) मनुष्यों के समूह के समान (इषितः) प्रेरणा को प्राप्त (इन्द्रजूतः) विजुली के सदृश प्रताप और (प्रसवः) अत्यन्त ऐश्वर्य्य युक्त (सर्गतक्तः) जल के संकोच करने वाले (गव्यन्) गौ के तुल्य आचरण करते हुए आप (अह) ग्रहण करने में (अर्षात्) प्राप्त होवैं वा हे विद्वानो जैसे मैं (यज्ञियानाम्) यज्ञ के सिद्ध करने वाले (वः) आप लोगों की (सुमतिम्) उत्तम बुद्धि को (आ) सब प्रकार (वृणे) स्वीकार करता हूं वैसे आप लोग मेरी बुद्धि को स्वीकार करिये ॥ ११ ॥

भावार्थः—जैसे विद्वान् लोग विद्या के पार जाय अर्थात् सम्पूर्ण विद्याओं को पढ़ के बुद्धिमान् होते हैं वैसे और लोग भी हों ऐसा करने से सम्पूर्ण जन दुःख के पार जाय अर्थात् दुःख का उलंघन करके सुखी होवैं ॥ ११ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अतारिषुर्भरता गव्यवः समभक्त विप्रः सुमतिं नदीनाम् । प्र पिन्वध्वमिषयन्तीः सुराधा आ वक्षणाः पृणध्वं यात शीभम् ॥ १२ ॥

अतारिषुः । भरताः । गव्यवः । सम् । अभक्त । विप्रः । सुऽमतिम् । नदीनाम् । प्र । पिन्वध्वम् । इषयन्तीः । सुऽराधाः । आ । वक्षणाः । पृणध्वम् । यात । शीभम् ॥ १२ ॥

पदार्थः—(अतारिषुः) तरन्तु (भरताः) धारकपोषकाः (गव्यवः) आत्मनो गां सुशिक्षितां वाचमिच्छवः (सम्) (अभक्त) सम्यग्भजेत (विप्रः) मेधावी (सुमतिम्) श्रेष्ठां बुद्धिम् (नदीनाम्) सरितामिव वर्त्तमानानां विदुषीणाम् (प्र) (पिन्वध्वम्) सेवध्वम् (इषयन्तीः) इषमन्नं कुर्वन्त्यः (सुराधाः) शोभनं राधो धनमस्य सः (आ) (वक्षणाः) वहमाना नद्यः (पृणध्वम्) पालयध्वम् (यात) प्राप्नुत (शीभम्) क्षिप्रम् । शीभमिति क्षिप्रना० निघं २ । १५ ॥ १२ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यथा गव्यवो भरता नौकादिना नदीनां प्रवाहानतारिषुर्यथा सुराधा विप्रः सुमतिं समभक्त यथा वक्षणा वहन्ति तथेषयन्तीः प्रपिन्वध्वं सर्वानापृणध्वं शुभगुणान् शीभं यात ॥ १२ ॥

भावार्थः—मनुष्या नदीसमुद्रादीन् जलाशयान् विद्वद्वत्प्रतीर्य्य सुखं सद्यः सेवन्ताम् ॥ १२ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (गव्यवः) अपनी उत्तम शिक्षा युक्त वाणी की इच्छा करने तथा (भरताः) धारण और पोषण करने वाले नौका आदि से (नदीनाम्) नदियों के सदृश वर्त्तमान पढ़ी हुई स्त्रियों के ज्ञानप्रवाहों को (अतारिषुः) तरें, जैसे (सुराधाः) उत्तम धन युक्त (विप्रः) बुद्धिमान् पुरुष (सुमतिम्) उत्तम बुद्धि को (सम्, अभक्त) अच्छे प्रकार सेवन करे और जैसे (वक्षणाः) वहती हुई नदियां और वहती हैं वैसे (इषयन्तीः) अन्न को सिद्ध करने वाली स्त्रियों को (प्र, पिन्वध्वम्) सेवन करो, सब का (आ) (पृणध्वम्) पालन करो और उत्तम गुणों को (शीभम्) शीघ्र (यात) प्राप्त होओ ॥१२॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि नदी और समुद्र आदि जलाशयों, को विद्वानों के सदृश पार होके सुख का शीघ्र सेवन करें ॥ १२ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

उद्व॑ ऊ॒र्मिः शम्या॑ ह॒न्त्वापो॒ योक्त्रा॑णि मुञ्चत ।
मादु॑ष्कृतौ॒ व्ये॑नसा॒घ्न्यौ॒ शून॒मार॑ताम् ॥ १३ ॥ १४ ॥

उत् । व॒ः । ऊ॒र्मिः । शम्याः॑ । ह॒न्तु॒ । आपः॑ । योक्त्रा॑णि । मु॒ञ्च॒त॒ । मा । अदुः॑ऽकृतौ । विऽए॑नसा । अ॒घ्न्यौ॒ । शून॑म् । आ । अ॒र॒ता॒म् ॥ १३ ॥ १४ ॥

पदार्थः—(उत) उत्कृष्टे (वः) युष्मान् (ऊर्मिः) तरङ्ग इवोत्साहः (शम्याः) शम्यां कर्मणि भवाः (हन्तु) दूरीकुर्वन्तु (आपः) जलानीव (योक्त्राणि) योजनानि (मुञ्चत) त्यजत (मा) निषेधे (अदुष्कृतौ) अदुष्टाचारिणौ (व्येनसा) विनष्टपापाचरणेन (अघ्न्यौ) हन्तुमनर्हौ (शूनम्) सुखम् । अत्रान्येषामपीति दीर्घः (आ) (अरताम्) प्राप्नुताम् ॥ १३ ॥

अन्वयः—हे स्त्रियो भवन्त्यः शम्या आप इव दुःखं हन्तु यो व ऊर्मिरिवोत्साहेन योक्त्राणि यूयं मुञ्चत। हे स्त्रीपुरुषौ युवामदुष्कृतौ दुष्टं मारतां व्येनसाघ्न्यौ सत्यौ पतिः पत्नी च द्वौ शूनं सुखमुदारतां प्राप्नुताम्॥ १३॥

भावार्थः—यौ स्त्रीपुरुषौ दुःखबन्धनानिच्छित्वा दुष्टाचारं विहाय विद्योन्नतिं कुर्यातां तौ सततं सुखमाप्नुयातामिति॥ १३॥

अत्र मेघनदीविद्वत्सखिशिल्पिनौकादिस्त्रीपुरुषकृत्यवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिर्वेद्या॥

इति त्रयस्त्रिंशत्तमं सूक्तं चतुर्दशो वर्गश्च समाप्तः॥

पदार्थः—हे स्त्रियो आप (शम्याः) कर्म में उत्पन्न (आपः) जलों के सदृश दुःख को (हन्तु) दूर करैं और (वः) आप का जो (ऊर्मिः) तरंग के सदृश उत्साह उस से (योक्त्राणि) जोड़नों को तुम (मुञ्चत) त्याग करो हे स्त्री और पुरुष तुम दोनों (अदुष्कृतौ) दुष्टाचरण से रहित हुए दुष्ट कर्म को (मा) नहीं प्राप्त होओ (व्येनसा) पाप का आचरण नष्ट होने से (अघ्न्यौ) नहीं मारने योग्य होते हुए पति और स्त्री दोनों (शूनम्) सुख को (उत्) उत्तम प्रकार (आ) (अरताम्) प्राप्त होवैं॥ १३॥

भावार्थः—जो स्त्री और पुरुष दुःख के बन्धनों को काट और दुष्ट आचरण को त्याग के विद्या की उन्नति करैं तो वे निरन्तर सुख को प्राप्त होवैं॥१३॥

इस सूक्त में मेघ, नदी, विद्वान्, मित्र, शिल्पी, नौका आदि और स्त्री पुरुष का कृत्य वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्वसूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये॥

यह तेतीसवां सूक्त और चौदहवां वर्ग समाप्त हुआ॥

अथैकादशर्चस्य चतुस्त्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य विश्वामित्र-
ऋषिः।इन्द्रो देवता॥१।२।११त्रिष्टुप्।४।५।७।१०
निचृत्त्रिष्टुप् । ९ विराट्त्रिष्टुप्छन्दः ।
धैवतः स्वरः।३।६।८ भुरिक्पङ्क्ति-
श्छन्दः।पञ्चमः स्वरः॥

अथ सूर्यगुणा उपदिश्यन्ते ॥

अब ग्यारह ऋचा वाले ३४ चौतीशवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके
प्रथम मंत्र से सूर्य के गुणों का उपदेश करते हैं ॥

इन्द्रः पूर्भिदातिरद्दासमर्कैर्विदद्वसुर्दयमानो वि शत्रून्। ब्रह्मजूतस्तन्वा वावृधानो भूरिदात्र आपृणद्रोदसी उभे ॥ १ ॥

इन्द्रः । पूःऽभित् । आ । अतिरत् । दासम् । अर्कैः । विदत्ऽवसुः । दयमानः । वि । शत्रून् । ब्रह्मऽजूतः। तन्वा। ववृधानः । भूरिऽदात्रः । आ । अपृणत् । रोदसीइति । उभे इति ॥ १ ॥

पदार्थः—(इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् (पूर्भित्) पुरां भेत्ता (आ) (अतिरत्) उल्लङ्घयतु (दासम्) दातुं योग्यम् (अर्कैः) अर्चनीयैर्मन्त्रैर्विचारैः (विदद्वसुः) विदन्ति वसूनि येन सः (दयमानः) कृपालुः सन् (वि) (शत्रून्) (ब्रह्मजूतः) धनानि प्राप्तः (तन्वा) शरीरेण (वावृधानः) वर्धमानः (भूरिदात्रः) भूरि बहुविधं दात्रं दानं यस्य सः (आ) (अपृणत्) प्रपूरयेत् (रोदसी) द्यावापृथिव्याविव विद्याविनयौ (उभे) ॥ १ ॥

अन्वयः—हे राजपुरुष यथा सूर्य उभे रोदसी आपृणत्तथा विदद्वसुर्ब्रह्मजूतो दासं दयमानस्तन्वा वावृधानो भूरिदात्रः पूर्भिदिन्द्रो भवानर्कैः शत्रून् व्यातिरत् ॥ १ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः—यथा सूर्य्यः स्वकीयैः किरणैर्भूम्यन्तरिक्षे पूर्त्वाऽन्धकारं जयति तथैवाप्तैः सह कृतैर्विचारैः शत्रून् जयेत्सर्वदा शरीरात्मबलं वर्धयित्वा श्रेष्ठान् सत्कृत्य दुष्टान् पराभवेत् ॥ १ ॥

पदार्थः—हे राजपुरुष जैसे सूर्य (उभे) दोनों (रोदसी) अन्तरिक्ष और पृथिवी के तुल्य विद्या और विनय को (आ) (अपृणात्) पूर्ण करै वैसे (विदद्वसुः) धनों से संपन्न (ब्रह्मजूतः) धनों को प्राप्त (दासम्) देने योग्य-पर (दयमानः) कृपालु (तन्वा) शरीर से (वावृधानः) वृद्धि को प्राप्त होते हुए (भूरिदात्रः) अनेक प्रकार के दान देने (पूर्भित्) शत्रुओं के नगरों को तोड़ने और (इन्द्रः) अत्यन्त ऐश्वर्य के रखने वाले आप (अर्कैः) आदर करने योग्य विचारों से (शत्रून्) शत्रुओं का (वि, आ, अतिरत्) उल्लंघन करो ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—जैसे सूर्य्य अपने किरणों से भूमि और अन्तरिक्ष को पूर्ण करके अन्धकार को जीतता है वैसे ही श्रेष्ठ और ऐकयमत युक्त विचारों से शत्रुओं को जीतै तथा सब काल में शरीर और आत्मा के बल को बढ़ाय और श्रेष्ठ पुरुषों का सत्कार कर के दुष्ट जनों का अपमान करै ॥ १ ॥

अथ राजप्रजाविषयमाह ॥

अब राजा प्रजा सम्बन्धी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

मखस्यं ते तविषस्य प्र जूतिमियंर्मि वाचममृतांय भूषंन् । इन्द्रं क्षितीनामंसि मानुंषीणां विशां दैवींनामुत पूर्वयावां ॥ २ ॥

मखस्य॑ । ते॒ । त॒वि॒षस्य॑ । प्र । जू॒तिम् । इ॒य॒र्मि॒ । वाच॑म् ।
अ॒मृता॑य । भूष॑न् । इ॒न्द्र॒ । क्षि॒ती॒नाम् । अ॒सि॒ । मानु॑षीणाम् ।
वि॒शाम् । दैवी॑नाम् । उ॒त । पू॒र्व॒ऽयावा॑ ॥ २ ॥

पदार्थः-(मखस्य) प्राप्तस्य सङ्गतस्य व्यवहारस्य (ते) तव (तविषस्य) बलस्य (प्र) (जूतिम्) वेगम् (इयर्मि) प्राप्नोमि (वाचम्) सत्यामादिष्टां वाणीम् (अमृताय) अविनाशिसुखाय (भूषन्) अलङ्कुर्वन् (इन्द्र) परमैश्वर्य्यप्रद (क्षितीनाम्) स्वराज्ये निवसन्तीनाम् (असि) (मानुषीणाम्) मनुषसम्बन्धिनीम् (विशाम्) प्रजानाम् (दैवीनाम्) दिव्यगुणयुक्तानाम् (उत) (पूर्वयावा) प्राचीनराजनीतिं प्राप्तः ॥ २ ॥

अन्वयः-हे इन्द्र ते मखस्य तविषस्य जूतिममृताय वाचं भूषन्सन्प्रेयर्मि यतस्त्वं दैवीनां क्षितीनां मानुषीणां विशां पूर्वयावा असि उत वा स्वयं विद्याविनययुक्तोऽसि तस्माच्छ्रेष्ठैः सत्कर्त्तव्योऽसि ॥ २ ॥

भावार्थः—सर्वैः प्रजाराजजनैः सर्वाधीशस्याऽऽज्ञा नैवोल्लंघनीया सर्वाधीशेन धर्म्येण कर्मणा सततं प्रजाः पालनीयाः ॥ २ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य्य के देने वाले (ते) आप के (मखस्य) मेल करने रूप व्यवहार और (तविषस्य) बल के (जूतिम्) वेग और (अमृताय) अविनाशि सुख के लिये (वाचम्) कही हुई सत्य वाणी को (भूषन्) शोभित करता हुआ मैं (प्र, इयर्मि) प्राप्त होता हूं जिस से आप (दैवीनाम्) उत्तम गुणों से युक्त (क्षितीनाम्) अपने राज्य में बसने वाली (मानुषीणाम्) मनुष्य-रूप (विशाम्) प्रजाओं की (पूर्वयावा) प्राचीन राजनीति को प्राप्त (उत) अथवा अपने ही से विद्या और विनय से युक्त हो इस से श्रेष्ठ पुरुषों से सत्कार करने योग्य (असि) हो ॥ २ ॥

भावार्थः—सम्पूर्ण प्रजा और राजजनों को चाहिये कि सब लोगों के स्वामी की आज्ञा का उल्लङ्घन न करें और सब लोगों के स्वामी को चाहिये कि धर्म-युक्त कर्मों से निरन्तर प्रजाओं का पालन करे ॥ २ ॥

पुनः सूर्यदृष्टान्तेन राजधर्मविषयमाह ॥
फिर सूर्य के दृष्टान्त से राजधर्मविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इन्द्रो॑ वृ॒त्रम॑वृणो॒च्छर्ध॑नीतिः॒ प्र मा॒यिना॑ममिना॒द्वर्प॑णीतिः । अह॒न्व्यं॑समु॒शध॒ग्वने॒ष्वा॒विर्धेना॑ अकृणोद्रा॒म्याणा॑म् ॥ ३ ॥

इन्द्रः॑ । वृ॒त्रम् । अ॒वृ॒णो॒त् । शर्ध॑ऽनीतिः । प्र । मा॒यिना॑म् । अ॒मि॒ना॒त् । वर्प॑ऽनीतिः । अह॑न् । वि॒ऽअं॑सम् । उ॒शध॑क् । वने॑षु । आ॒विः । धेना॑ः । अ॒कृ॒णो॒त् । रा॒म्याणा॑म् ॥ ३ ॥

पदार्थः—(इन्द्रः) सूर्य्य इव प्रतापवान् राजा (वृत्रम्) मेघमिव शत्रुम् (अवृणोत्) वृणुयात् (शर्धनीतिः) बलस्य सैन्यस्य नीतिर्नायकः (प्र) (मायिनाम्) कुत्सिता माया प्रज्ञा विद्यते येषां तेषाम् (अमिनात्) हिंसेत् (वर्पणीतिः) वर्पस्य रूपस्य नीतिर्नायकः। अत्रोभयत्र नीतौ कर्त्तरि क्तिच् (अहन्) हन्ति (व्यंसम्) विगता अंसा यस्य तम् (उशधक्) य उशान् युद्धं कामयमानान्दहति सः (वनेषु) जङ्गलेषु (आविः) प्राकट्ये (धेनाः) वाचः। धेनेति वाङ्ना० निघं० १।११ (अकृणोत्) कुर्यात् (राम्याणाम्) रमणीयानाम् ॥ ३ ॥

अन्वयः—हे राजन् यथा सूर्य्यो वृत्रं व्यंसमहन् तथा शर्धनीतिर्वर्पणीतिरिन्द्रो भवान् मायिनां मायां प्रामिनात् । उशधक् वनेषु धेना अवृणोद्राम्याणां धेना आविरकृणोत् ॥ ३ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः—यथा सूर्य्यो मेघं हन्ति तथैव दुष्टाचारान् हत्वा विद्यावाचः प्रचार्य सर्वैः सेना शिक्षा च वर्धनीया ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे राजन् जैसे सूर्य्य (वृत्रम्) मेघ को (व्यंसम्) कटे बाहु जिस के उस पुरुष के समान (अहन्) नाश करता है वैसे (शर्धनीतिः) सेना का नायक (वर्पणीतिः) रूप को प्राप्त कराने वाले (इन्द्रः) सूर्यवत् प्रतापी राजा आप (मायिनाम्) बुरी बुद्धि से युक्त पुरुषों की माया का (प्र, अमिनात्) नाश करैं (उशधक्) और युद्ध करने वालों का नाश कर्ता पुरुष (वनेषु) जङ्गलों में (धेनाः) वाणियों को (अवृणोत्) घेरै (राम्याणाम्) सुन्दरों की वाणियों को (आविः) प्रकट (अकृणोत्) करै ॥ ३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—जैसे सूर्य्य मेघ का नाश करता है वैसे ही दुष्ट आचरण वाले जनों का नाश और विद्या सम्बन्धी वाणियों का प्रचार करके सब लोगों को सेना और शिक्षा की वृद्धि करनी चाहिये ॥ ३ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इन्द्रः स्वर्षा जनयन्नहानि जिगायोशिग्भिः पृतना अभिष्टिः । प्रारोचयन्मनवे केतुमह्नामविन्दज्ज्योतिर्बृहते रणाय ॥ ४ ॥

इन्द्रः । स्वःऽसाः । जनयन् । अहानि । जिगाय । उशिक्ऽभिः । पृतनाः । अभिष्टिः । प्र । अरोचयत् । मनवे । केतुम् । अह्नाम् । अविन्दत् । ज्योतिः । बृहते । रणाय ॥ ४ ॥

पदार्थः—(इन्द्रः) सूर्य इव तेजस्वी (स्वर्षाः) यः स्वः सुखं सनति विभजति सः (जनयन्) प्रकटयन् (अहानि) दिनानि

(जिगाय) जयेत् (उशिग्भिः) कामयमानैर्वीरैः (पृतनाः) वीरसेनाः (अभिष्टिः) अभिमुखा इष्टिः सङ्गतिर्यस्य सः (प्र, अरोचयत्) रोचयेत् (मनवे) मननशीलाय मनुष्याय (केतुम्) प्रज्ञाम् (अह्नाम्) दिनानाम् (अविन्दत्) विन्देत् प्राप्नुयात् (ज्योतिः) युद्धविद्याप्रकाशम् (बृहते) महते (रणाय) सङ्ग्रामाय ॥ ४ ॥

अन्वयः—यः स्वर्षा अभिष्टिरिन्द्रः पृतना अहानि सूर्य्य इव जनयन्नुशिग्भिः शत्रून् जिगाय बृहते रणायाऽह्नां ज्योतिरिव मनवे केतुमविन्दत्सङ्ग्रामं प्रारोचयत्स एव विजयविभूषितः स्यात् ॥ ४ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—ये राजानः सर्वेभ्योऽधिकं प्रयत्नं युद्धविद्यायां कुर्युस्ते सुहर्षितैर्युद्धाय रुचिं प्रदर्शितैर्वीरैः सह शत्रून् जित्वा सूर्य्यस्येव विजयप्रकाशं प्रथयेरन् ॥ ४ ॥

पदार्थः—जो (स्वर्षाः) सुख के विभाग करने (अभिष्टिः) सन्मुख मेल करने वाले (इन्द्रः) सूर्य्य के सदृश तेजस्वी (पृतनाः) वीर पुरुषों की सेनाओं और (अहानि) दिनों को सूर्य्य के सदृश (जनयन्) प्रकट करने वाला पुरुष (उशिग्भिः) युद्ध की इच्छा रखते हुए वीरों के साथ शत्रुओं को (जिगाय) जीतै (बृहते) बड़े (रणाय) संग्राम के लिये (अह्नाम्) दिनों के (ज्योतिः) युद्ध की विद्या के प्रकाश को (मनवे) और मनन करने वाले मनुष्य के लिये (केतुम्) बुद्धि को (अविन्दत्) प्राप्त होवै और संग्राम का (प्र) (अरोचयत्) उत्तम प्रकार प्रकाश करै वही पुरुष विजयरूप आभूषण से शोभित होवे ॥ ४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो राजा लोग सम्पूर्ण जनों से अधिक प्रयत्न युद्धविद्या में करैं वे उत्तम प्रकार प्रसन्नता युक्त जो कि युद्ध के लिये पारितोषिक आदि से रुचि दिखाये गये वीर लोग उन के साथ शत्रुओं को जीत कर सूर्य्य के सदृश विजय के प्रकाश को प्रकट करैं ॥ ४ ॥

कीदृशो जनो राज्येऽधिकृतः स्यादित्याह ॥

कैसा मनुष्य राज्य में अधिकारी हो इस वि० ॥

इन्द्रस्तुजो बर्हणा आ विवेश नृवद्दधानो नर्या पुरूणि। अचेतयद्धिय इमा जरित्रे प्रेमं वर्णमतिरच्छुक्रमासाम् ॥ ५ ॥ १५ ॥

इन्द्रः। तुजः। बर्हणाः। आ। विवेश। नृऽवत्। दधानः। नर्या। पुरूणि। अचेतयत्। धियः। इमाः। जरित्रे। प्र। इमम्। वर्णम्। अतिरत्। शुक्रम्। आसाम् ॥ ५ ॥ १५ ॥

पदार्थः—(इन्द्रः) राजा (तुजः) शत्रुहिंसकबलादियुक्ताः सेनाः (बर्हणाः) वर्धमानाः (आ, विवेश) आविशेत् (नृवत्) नायकवत् (दधानः) (नर्या) नृभ्यो हितानि सैन्यानि (पुरूणि) बहूनि (अचेतयत्) चेतयेत्सञ्ज्ञापयेत् (धियः) प्रज्ञाः (इमाः) वर्त्तमाने प्राप्ताः (जरित्रे) स्तावकाय (प्र) (इमम्) (वर्णम्) स्वीकारम् (अतिरत्) सन्तरेत् (शुक्रम्) क्षिप्रं कार्यकरम् (आसाम्) प्रजानाम् ॥ ५ ॥

अन्वयः—य इन्द्रो आसां प्रजानां पुरूणि नर्या नृवद्दधानो बर्हणास्तुज आविवेश जरित्रे इमा धियः प्राचेतयत्स इमं शुक्रं वर्णमतिरत् ॥ ५ ॥

भावार्थः—स एव राज्ये प्रवेष्टुं शक्नोति यो बुद्धिमतो धार्मिकान् जनान् सर्वेष्वधिकारेषु नियोज्य सेनोन्नतिं विधाय पितृवत्प्रजाः पालयितुमर्हेत् ॥ ५ ॥

पदार्थः—जो (इन्द्रः) राजा (आसाम्) इन प्रजाओं की (पुरूणि) बहुत (नर्या) मनुष्यों के लिये हितकारिणी सेनाओं को (नृवत्) प्रधान पुरुष के सदृश (दधानः) धारण करने वाला (बर्हणाः) वृद्धि को प्राप्त (तुजः) शत्रुओं के नाश करने वाले बल आदि से युक्त सेनाओं को (आ) (विवेश) प्राप्त होवैं (जरित्रे) स्तुति करने वाले के लिये (इमाः) इन वर्त्तमान में पाई हुई (धियः) बुद्धियों को (प्र) (अचेतयत्) बोध सहित करै वह पुरुष (इमम्) इस (शुक्रम्) शीघ्र कार्य्य करने वाले (वर्णम्) स्वीकार के (अतिरत्) पार उतरै ॥ ५ ॥

भावार्थः—वही पुरुष राज्य में प्रविष्ट हो सक्ता है कि जो बुद्धियुक्त धार्मिक पुरुषों को सब अधिकारों में नियुक्त कर और सेना की उन्नति करके पिता के सदृश प्रजाओं का पालन कर सकै ॥ ५ ॥

पुना राजप्रजापुरुषैरनुष्ठेयमाह ॥

फिर राजा तथा प्रजाजनों के कर्त्तव्य विषय को कहते हैं ॥

महो महानि पनयन्त्यस्येन्द्रस्य कर्म सुकृता पुरूणि । वृजनेन वृजिनान्त्सं पिपेष मायाभिर्दस्यूँरभिभूत्योजाः ॥ ६ ॥

महः । महानि । पनयन्ति । अस्य । इन्द्रस्य । कर्म । सुऽकृता । पुरूणि । वृजनेन । वृजिनान् । सम् । पिपेष । मायाभिः । दस्यून् । अभिभूतिऽओजाः ॥ ६ ॥

पदार्थः—(महः) महतः (महानि) महान्ति (पनयन्ति) पनायन्ति प्रशंसन्ति । अत्र वाच्छन्दसीति ह्रस्वः (अस्य) वर्त्तमानस्य (इन्द्रस्य) सकलैश्वर्ययुक्तस्य (कर्म) कर्माणि (सुकृता) शोभनेन धर्मयोगेन कृतानि (पुरूणि) बहूनि (वृजनेन) बलेन

(वृजिनान्) पापान् (सम्) (पिपेष) पिष्यात् (मायाभिः) प्रज्ञाभिः (दस्यून्) साहसेन उत्कोचकान् चोरान् (अभिभूत्योजाः) अभिभूतिपराजयकरमोजो बलं यस्य सः ॥ ६ ॥

अन्वयः—योऽभिभूत्योजा वृजनेन मायाभिर्वृजिनान्दस्यून् संपिपेष यान्यस्य मह इन्द्रस्य पुरूणि महानि सुकृता कर्म पनयन्ति तानि सङ्गृह्णीयात्स एव राजाऽमात्यतामर्हेत् ॥ ६ ॥

भावार्थः—यथा राजप्रजाजनैः सर्वाधीशस्य धर्म्याणि कर्माणि स्वीकर्त्तव्यानि सन्ति तथैव सर्वोऽधिष्ठाता राज्ञा सर्वेषामुत्तमान्याचरणानि स्वीकर्त्तव्यानि नेतराणि केनचित् ॥ ६ ॥

पदार्थः—जो (अभिभूत्योजाः) शत्रुपराजय करने वाले बल से युक्त राजपुरुष (वृजनेन) बल और (मायाभिः) बुद्धियों से (वृजिनान्) पापी (दस्यून्) साहसी चोरों को (सम्) (पिपेष) पीसै और जो (अस्य) इस (महः) श्रेष्ठ (इन्द्रस्य) सम्पूर्ण ऐश्वर्ययुक्त पुरुष के (पुरूणि) बहुत (महानि) बड़े (सुकृता) उत्तम धर्म के योग से किये गये (कर्म) कार्य्यों की (पनयन्ति) प्रशंसा करते हैं उन का ग्रहण करै वही पुरुष राजा का मन्त्री होने योग्य होवै ॥ ६ ॥

भावार्थः—जैसे राजा और प्रजाजनों को सब लोगों के स्वामी के धर्मयुक्त कर्म स्वीकार करने योग्य हैं वैसे ही सब के स्वामी राजा को चाहिये कि सब लोगों के उत्तम आचरणों का स्वीकार करै और अनिष्ट आचरणों का स्वीकर कोई न करै ॥ ६ ॥

पुनर्विद्वद्राजपुरुषविषयमाह ॥

फिर विद्वान् तथा राजपुरुष के वि० ॥

युधेन्द्रो मह्ना वरिवश्चकार देवेभ्यः सत्पतिश्चर्षणिप्राः । विवस्वतः सदने अस्य तानि विप्रा उक्थेभिः कवयो गृणन्ति ॥ ७ ॥

युधा । इन्द्रः । मह्ना । वरिवः । चकार । देवेभ्यः । सत्ऽपतिः । चर्षणिऽप्राः । विवस्वतः । सदने । अस्य । तानि । विप्राः । उक्थेभिः । कवयः । गृणन्ति ॥ ७ ॥

पदार्थः—(युधा) सङ्ग्रामेण (इन्द्रः) ऐश्वर्ययुक्तः (मह्ना) महता (वरिवः) सेवनम् (चकार) कुर्यात् (देवेभ्यः) विद्वद्भ्यः (सत्पतिः) सतां पालकः (चर्षणिप्राः) यः चर्षणीन्मनुष्यान्सत्यविद्याशिक्षासुशीलैः प्राति प्रपूर्ति सः (विवस्वतः) सवितुः (सदने) मण्डले (अस्य) (तानि) (विप्राः) मेधाविनः (उक्थेभिः) प्रशंसावचनैः (कवयः) विद्वांसः (गृणन्ति) स्तुवन्ति ॥ ७ ॥

अन्वयः—यो देवेभ्यः शिक्षां प्राप्य सत्पतिश्चर्षणिप्रा इन्द्रो मह्ना युधा येषां कर्मणां वरिवश्चकार तस्याऽस्य तानि विवस्वतः सदन इव कवयो विप्रा उक्थेभिर्गृणन्ति ॥ ७ ॥

भावार्थः—त एव विद्वांसो धार्मिका विज्ञेया ये राजादीनां मिथ्यास्तुतिं विहाय धर्म्याणि कर्माणि प्रशंसन्ति त एव राजानो भवितुमर्हन्ति ये धर्म्याणि कर्माण्याचरन्ति ॥ ७ ॥

पदार्थः—जो (देवेभ्यः) विद्वानों से शिक्षा पा के (सत्पतिः) श्रेष्ठ पुरुषों का पालन करने (चर्षणिप्राः) मनुष्यों को सत्य विद्या शिक्षा और उत्तम स्वभाव से पूर्ण करने वाला (इन्द्रः) राज्य के ऐश्वर्य से युक्त (मह्ना) बड़े (युधा) संग्राम से जिन कर्मों का (वरिवः) सेवन (चकार) करे उस (अस्य) इस राजपुरुष के (तानि) उन कर्मों की (विवस्वतः) सूर्य के (सदने) मण्डल में (कवयः) विद्यायुक्त (विप्राः) बुद्धिमान् लोग (उक्थेभिः) प्रशंसा के वचनों से (गृणन्ति) स्तुति करते हैं ॥ ७ ॥

भावार्थः—उन्हीं लोगों को विद्वान् और धार्मिक जानना चाहिये कि जो राजा आदिकों की झूठी स्तुति को त्याग के धर्मसम्बन्धी कर्मों की प्रशंसा करते हैं और वे ही राजा होने के योग्य हैं कि जो धर्मयुक्त आचरणों को करते हैं ॥ ७ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

सत्रासाहं वरेण्यं सहोदां ससवांसं स्वरपश्च देवीः । ससान यः पृथिवीं द्यामुतेमामिन्द्रं मदन्त्यनु धीरणासः ॥ ८ ॥

सत्राऽसहम् । वरेण्यम् । सहःऽदाम् । ससऽवांसम् । स्वः । अपः । च । देवीः । ससान । यः । पृथिवीम् । द्याम् । उत । इमाम् । इन्द्रम् । मदन्ति । अनु । धीऽरणासः ॥ ८ ॥

पदार्थः—(सत्रासाहम्) यः सत्रा सत्यानि सहते स तम् (वरेण्यम्) स्वीकर्त्तुं योग्यम् (सहोदाम्) बलप्रदम् (ससवांसम्) पापपुण्ययोर्विभक्तारम् (स्वः) सुखम् (अपः) प्राणान् (च) (देवीः) दिव्याः (ससान) विभजेत (यः) (पृथिवीम्) अन्तरिक्षं भूमिं वा (द्याम्) विद्युतम् (उत) (इमाम्) वर्त्तमानाम् (इन्द्रम्) (मदन्ति) आनन्दन्ति (अनु) (धीरणासः) धीः प्रशस्ता प्रज्ञा रणः सङ्ग्रामो येषान्ते ॥ ८ ॥

अन्वयः—यः सत्रासाहं वरेण्यं सहोदां ससवांसं स्वर्देवीरपश्चेमां पृथिवीमुतेमां द्यां ससान तमिन्द्रं धीरणासो मदन्ति सताननुमदेदानन्देत् ॥ ८ ॥

रसीद मूल्यवेदभाष्य

श्रीमान् बाबू ज्वाला प्रसाद जी हुसेन गंज	लखनऊ	१६)
श्रीमान् लाला दुर्गा प्रसाद जी रईस	फर्रुखाबाद	१७।)
श्रीमान् हरिवंश लाल जी मन्त्री आर्य्यसमाज	हरयाल	२।)
श्रीमान् बाबू दीनानाथ जी गंगोली	धारवाड़	९)
श्रीमान् पण्डित वृन्दावन जी	काशी	८)
		५२।)

ओ३म्

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामी जी महराजकृत स्वीकारपत्र सम्बन्धिनी श्रीमती परोपकारिणी सभा कार्यालय, उदयपुर ता० १ सितम्बर सन् १८९० ई० दयानन्दी संवत् ७

विज्ञापन

विदित हो कि परमपद प्राप्त परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री १०८ श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज के बनाये हुये ग्रन्थों के अनेक देश भाषाओं में अनुवाद करने के विषय में जो वर्षों से आर्य भद्र पुरुषों की नितान्त अभिलाषा थी और जिस के लिये उन्हों ने अनेक बार श्रीमती परोपकारिणी सभा के उप-सभापति, मन्त्री, तथा प्रतिनिधिसभाओं के मन्त्रियों से लिखा पढ़ी की थी। आज उन लोगों की उस अभिलाषा को पूर्ण करने के लिये श्रीमती परोपकारिणी सभा की ओर से यह विज्ञापन दिया जाता है–

जिन २ महाशयों को स्वामी जी महाराज के रचित ग्रन्थों के अनुवाद करने की इच्छा हो वे अपने २ प्रदेश की प्रतिनिधि सभा के मन्त्री के पास अपना निवेदनपत्र भेजें। उस निवेदनपत्र में यह लिखें कि वे अमुक ग्रन्थ का अमुक भाषा में अनुवाद करना चाहते हैं और निवेदनपत्र के साथ अपनी योग्यता का पूर्ण परिचय देने के लिये उस ग्रन्थ के किसी अंश का अनुवाद करके भेजें। तब प्रतिनिधि सभा उन की योग्यता का पूर्ण निश्चय करके जिन्हें परम योग्य समझें गी उन के निवेदन श्रीमती परोपकारिणी सभा के मन्त्री के पास भेजें गी।

श्रीयुत उपसभापति जी और मन्त्री श्रीमती परोपकारिणी सभा उन निवेदनपत्रों और अनुवाद के नमूनों को देख के जिन्हें सुयोग्य समझें गे उन्हें अनुवाद करने की आज्ञा देंगे। अनुवादित ग्रन्थों पर श्रीमती परोपकारिणी सभा का ही आधिपत्य होगा। और वह सभा जैसे २ कि उस के पास रुपिये का सामर्थ्य होगा क्रमशः छापती जायगी। छपने से पहिले प्रतिनिधि सभा यह पूर्ण निश्चय कर ले गी कि अनुवाद यथार्थ शुद्ध है। क्योंकि कहीं ऐसा न हो कि अनुवाद के दोष से ग्रन्थों की मान हानि हो। अनुवाद करने वाले धर्मार्थ ही अनुवाद करके श्रीमती परोपकारिणी सभा को दें गे। क्योंकि श्रीमती परोपकारिणी सभा के पास इतना रुपिया नहीं है कि मूल्य दे के अनुवाद करावे। और दूसरे जब कि देखा जाता है कि अन्य धर्मावलम्बी लोग बड़े २ ग्रन्थों का अनुवाद करके वरुक छपा के भी अपने धर्म के वृद्ध्यर्थ दे देते हैं तो आर्य पुरुष क्या इतना दान नहीं कर सकें गे। जब कि उन को स्पष्ट विदित है कि उन के परिश्रम से जो धन श्रीमती परोपकारिणी सभा को लब्ध होगा वह सम्पूर्ण ही श्रीमद्दयानन्दाश्रम के भरण पोषण में व्ययित होगा जो कि एक परम पुण्य का काम है वरुक वे पुरुष और भी धन्यवाद के पात्र होंगे जो कि इन पुस्तकों के छापने में मदद देंगे। क्योंकि श्रीमद्दयानन्दाश्रम के स्थानादि निर्माण में श्रीमती परोपकारिणी सभा का बहुतसा रुपिया व्यय हो जाने से सभा को झट पट छपवाने का सामर्थ्य भी नहीं है। अनुवाद सब ही भाषाओं में होगा। अंग्रेजी, बंगाली, मरहटी, गुजराती, उर्दू, तिलंगी, आदि २ इत्यलम्।

श्रीयुत उपसभापति जी की आज्ञानुसार

ह० मोहनलाल विष्णुलाल पण्ड्या मन्त्री श्रीमती परोपकारिणी सभा

स्थानापन्न परमहंसपरिव्राजकाचार्य

श्री १०८ श्रीस्वामी दयानन्दसरस्वती जी महाराज

ओ३म्

निवेदन

सब सज्जन महाशयों को सविनय निवेदन किया जाता है कि—सत्यार्थप्रकाश और संस्कारविधि के छपने में बहुत कुछ विलम्ब हुआ और इसी से यन्त्रालय में उक्त पुस्तकों की मांग के अनेकों पत्र आ चुके हैं वह दोनों पुस्तक छप रहे हैं और छपने में रात्रि दिन परिश्रम हो रहा है जहां तक होगा सत्यार्थप्रकाश और संस्कारविधि अभिलाषी जनों के पास शीघ्र भेजे जांय गे अत एव जब तक छप जाने का विज्ञापन न दिया जावे यदि उक्त पुस्तकों के विषय में पत्र आवें गे तो उन का उत्तर न दिया जाय गा।

दरियाव सिंह

स्थानापन्न प्रबन्धकर्त्ता वैदिकयन्त्रालय—प्रयाग

ऋग्वेदभाष्यम्

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मितम्

संस्कृतार्य्यभाषाभ्यां समन्वितम् ॥

अस्यैकैकाङ्कस्य प्रतिमासं मूल्यम् भारतवर्षान्तर्गतदेशान्तर-
प्रापणमूल्येन सहितम् ।=) अङ्कद्वयस्यैकीकृतस्य ॥≡)
वार्षिकं मूल्यम् ८)

इस ग्रंथ के प्रतिमास एक एक अंक का मूल्य भरतखंड के भीतर डांक-
महसूल सहित ।/) एक साथ छपे हुए दो अङ्कों के ॥/)
और वार्षिक मूल्य ८)

यस्य सज्जनमहाशयस्यास्य ग्रन्थस्य जिघृक्षा भवेत् स प्रयागनगरे वैदिक-
यन्त्रालयप्रबन्धकर्तुः समीपे वार्षिकमूल्यप्रेषणेन प्रतिमासं
मुद्रिताङ्कौ प्राप्स्यति ॥

जिस सज्जनमहाशय को इस ग्रन्थ के लेने की इच्छा हो वह प्रयाग नगरमें वैदिकयन्त्रालय मैनेजर
के समीप वार्षिक मूल्य भेजने से प्रतिमास के छपे हुए दोनों अङ्कों को प्राप्त कर सकता है ।

पुस्तक (१५६, १५७) अङ्क (१४०, १४१)

अयं ग्रन्थः प्रयागनगरे वैदिकयन्त्रालये मुद्रितः ॥

संवत् १९४७ श्रावण शुक्ल

१—८—९०

वेदभाष्यसम्बन्धी विशेषनियम ॥

[१] यह "ऋग्वेदभाष्य" मासिक छपता है । एक मास में बत्तीस २ पृष्ठ के एक साथ छपे हुए दो अङ्क १ वर्ष में २४ अङ्क "ऋग्वेदभाष्य" के भेजे जाते हैं ॥

[२] वेदभाष्य का मूल्य बाहर और नगर के ग्राहकों से एक ही लिया जायगा अर्थात् डाकव्यय से कुछ न्यूनाधिक न होगा ॥

[३] इस वर्तमान तेरहवें वर्ष के कि जो १३३-१३४ अङ्क से प्रारंभ हो कर १५६ । १५७ पर पूरा होगा । वार्षिक मूल्य ८) रु० हैं ।

[४] पीछे के बारह वर्षमें जो वेदभाष्य छप चुका है उस का मूल्य यह है:-

[क] "ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका" विना जिल्द को ३)

स्वर्णाक्षरयुक्त जिल्द को ३।)

[ख] ऋग्वेदभाष्य १३२ अङ्क तक ४४।)॥

[५] वेदभाष्य का अङ्क प्रत्येक मास की पहिली तारीख को डाक में डाला जाता है । जो किसी का अङ्क डाक की भूल से न पहुंचे तो इस के उत्तरदाता प्रबन्धकर्त्ता न होंगे । परन्तु दूसरे मास के अङ्क भेजने से प्रथम जो ग्राहक अङ्क न पहुंचने की सूचना दे देंगे तो उन को विना दाम दूसरा अङ्क भेज दिया जायगा इस अवधि के व्यतीत हुए पीछे अङ्क दाम देने से मिलें गे एक अङ्क ।) दो अङ्क ॥) तीन अङ्क १) देने से मिलेंगे ॥

[६] दाम जिस को जिस प्रकार से सुबीता हो भेजे परन्तु मनीआर्डर द्वारा भेजना ठीक होगा । टिकट डाक के अधन्नी वाले लिये जा सकते हैं परन्तु एक रुपये पीछे आध आना बट्टे का अधिक लिया जायगा । टिकट आदि मूल्यवान् वस्तु रजिस्टरी पत्री में भेजना चाहिये ॥

[७] जो लोग पुस्तक लेने से अनिच्छुक हों, वे अपनी ओर जितना रुपया हो भेज दें और पुस्तक के न लेने से प्रबन्धकर्त्ता को सूचित कर दें जब तक ग्राहक का पत्र न आवेगा तब तक पुस्तक बराबर भेजा जायगा और दाम लेलिये जायंगे।

[८] बिके हुए पुस्तक पीछे नहीं लिये जायंगे ॥

[९] जो ग्राहक एक स्थान से दूसरे स्थान में जांय वे अपने पुराने और नये पते से प्रबन्धकर्त्ता को सूचित करें । जिस में पुस्तक ठीक ठीक पहुंचता रहे ।

[१०] "वेदभाष्य" सम्बन्धी रुपया, और पत्र प्रबन्धकर्त्ता वैदिकयन्त्रालय प्रयाग (इलाहाबाद) के नाम से भेजें ॥

भावार्थः—योऽसत्यत्यागी सत्यग्राही बलवर्धकः प्रजासुखेच्छु- र्विद्युत्पृथिव्यादिगुणान् विद्यया विभाजकः स्यात् तमेव परीक्षकं धीमन्तो वीराः प्राप्याऽऽनन्दन्ति तेऽपीदृशादेवानन्दं प्राप्तुमर्हन्ति ॥ ८ ॥

पदार्थः—(यः) जो (सत्रासाहम्) सत्यों के सहने वाले (वरेण्यम्) स्वीकार करने योग्य (सहोदाम्) बल के देने तथा (ससवांसम्) पाप और पुण्य का विभाग करने वाले (स्वः) सुख (च) और (देवीः) उत्तम (अपः) प्राणों को (इमाम्) प्रत्यक्ष वर्त्तमान इस (पृथिवीम्) अन्तरिक्ष वा पृथिवी (उत) और इस (द्याम्) बिजुली को (ससान) अलग अलग करै उस (इन्द्रम्) तेजस्वी पुरुष को (धीरणासः) उत्तम बुद्धि और संग्राम से युक्त लोग (मदन्ति) आनन्दित करते हैं वह उन के (अनु) पीछे आनन्द को प्राप्त होवै ॥८॥

भावार्थः—जो असत्य का त्याग और सत्य का ग्रहण करने बल को बढ़ाने और प्रजा के सुख की इच्छा करने वाला पुरुष बिजुली और पृथिवी आदि के गुणों का विद्या से विभागकर्त्ता हो उसी परीक्षा करने वाले जन को बुद्धिमान् वीर लोग प्राप्त हो के आनन्द करते हैं और वे भी ऐसे ही पुरुष से आनन्द को प्राप्त हो सक्ते हैं ॥ ८ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

ससानात्याँ उत सूर्यं ससानेन्द्रः ससान पुरुभोजसं गाम् । हिरण्ययमुत भोगं ससान हत्वी दस्यून्प्रार्यं वर्णमावत् ॥ ९ ॥

ससान । अत्यान् । उत । सूर्य्यम् । ससान । इन्द्रः । ससान । पुरुऽभोजसम् । गाम् । हिरण्ययम् । उत । भोगम् । ससान । हत्वी । दस्यून् । प्र । आर्य्यम् । वर्णम् । आवत् ॥९॥

पदार्थः—(ससान) विभजेत् (अत्यान्) सुशिक्षयाऽश्वान् (उत) (सूर्य्यम्) सूर्य्यमिव वर्त्तमानं प्राज्ञम् (ससान) (इन्द्रः) सकलैश्वर्ययुक्तः सर्वाधिपतिः (ससान) (पुरुभोजसम्) बहूनां पालकं बह्वन्नभोक्तारं वा (गाम्) वाणीं भूमिं वा (हिरण्ययम्) सुवर्णादिप्रचुरं धनम् (उत) (भोगम्) (ससान) (हत्वी) (दस्यून्) (प्र) (आर्यम्) उत्तमगुणकर्मस्वभावं धार्मिकम् (वर्णम्) स्वीकर्त्तव्यम् (आवत्) रक्षेत् ॥ ९ ॥

अन्वयः—स इन्द्रो राजा अमात्यसमूहो वाऽत्यान् ससान सूर्य्यं ससान पुरुभोजसं गामुत हिरण्ययं ससानोत भोगं ससान दस्यून्हत्व्यार्यं वर्णं प्रावत् ॥ ९ ॥

भावार्थः—ये सुपरीक्ष्य श्रेष्ठाश्रेष्ठानश्वान् वीरान् न्यायाधीशान् श्रियं भोगं च विभक्तुं शक्नुयुस्त एव दुष्टान् हत्वा श्रेष्ठान् रक्षितुं शक्नुयुः ॥ ९ ॥

पदार्थः—वह (इन्द्रः) सम्पूर्ण ऐश्वर्य से युक्त राजा वा मन्त्रियों का समूह (अत्यान्) उत्तम शिक्षा से घोड़ों के (ससान) विभाग को और (सूर्यम्) सूर्य के सदृश प्रतापयुक्त वीर पुरुष को (ससान) अलग करे (पुरुभोजसम्) बहुतों का पालन वा बहुतों को नहीं भोजन देनेवाले पुरुष की (गाम्) वाणी वा भूमि का (उत) और (हिरण्ययम्) सुवर्णआदि पदार्थों का (ससान) विभाग करे (उत) और (भोगम्) उत्तम भोजन आदि के पदार्थों का (ससान) विभाग करे वह पुरुष (दस्यून्) साहस कर्म करने वाले चोरआदि का (हत्वी) नाश करके (आर्य्यम्) उत्तम गुण कर्म स्वभाव युक्त धार्मिक (वर्णम्) स्वीकार करने योग्य पुरुष की (प्र) (आवत्) रक्षा करे ॥ ९ ॥

भावार्थः—जो लोग उत्तम प्रकार परीक्षा करके भले और बुरे घोड़े, वीर पुरुष, न्यायाधीश, लक्ष्मी और उत्तम भोग का विभाग कर सकें वेही पुरुष दुष्ट पुरुषों का नाश कर श्रेष्ठ पुरुषों की रक्षा कर सकें ॥ ९ ॥

पुना राजादिजनैः किं कर्त्तव्यमित्याह ॥

फिर राजादि जनों को क्या करना चाहिये इस वि० ॥

इन्द्र ओषधीरसनोदहानि वनस्पतींरसनोदन्तरिक्षम् । बिभेद बलं नुनुदे विवाचोऽथाभवद्दमिताभिक्रतूनाम् ॥ १० ॥

इन्द्रः । ओषधीः । असनोत् । अहानि । वनस्पतीन् । असनोत् । अन्तरिक्षम् । बिभेद । बलम् । नुनुदे । विऽवाचः । अथ । अभवत् । दमिता । अभिऽक्रतूनाम् ॥ १० ॥

पदार्थः—(इन्द्रः) ऐश्वर्य्यप्रदः (ओषधीः) सोमाद्याः (असनोत्) सुनुयात् (अहानि) दिनानि (वनस्पतीन्) अश्वत्थादीन् (असनोत्) सुनुयात् (अन्तरिक्षम्) उदकम् । अन्तरिक्षमित्युदकना० निघं० १ । १२ (बिभेद) भिन्द्यात् (बलम्) (नुनुदे) प्रेरयेत् (विवाचः) विविधा वाणीः (अथ) (अभवत्) भवेत् (दमिता) नियन्ता (अभिक्रतूनाम्) आभिमुख्येन क्रतुः कर्म येषां तेषां बलीयसां शत्रूणाम् ॥ १० ॥

अन्वयः—स राजेन्द्रोऽहानि नित्यमोषधीरसनोद्वनस्पतीनसनोदन्तरिक्षं बलं च बिभेद विवाचो नुनुदेऽथाभिक्रतूनां दमिताऽभवत् ॥ १० ॥

भावार्थः—राजादिजनैः प्रत्यहमोषधिरसं निर्माय तद्रसपानं विद्यावाक्प्रचारणं सर्वेषां प्रज्ञानां स्वप्रज्ञाधिक्येन दमनं च कर्त्तव्यं यत आरोग्यं विद्याप्रभावाश्च प्रतिदिनं वर्धेरन् ॥ १० ॥

पदार्थः—वह (इन्द्रः) ऐश्वर्य देने वाला राजा (अहानि) दिनों दिन (ओषधीः) सोम आदि ओषधियों को (असनोत्) देवै (वनस्पतीन्) पीपल आदि वनस्पतियों को (असनोत्) देवै (अन्तरिक्षम्) जल और (वलम्) बल का (बिभेद) भेदन करै (विवाचः) अनेक प्रकार की वाणियों की (नुनुदे) प्रेरणा करै (अथ) और भी (अभिक्रतूनाम्) सहसा शीघ्र कर्म करने वाले शत्रुओं को (दमिता) दमन करने वाला (अभवत्) होवै ॥ १० ॥

भावार्थः—राजा आदि श्रेष्ठ जनों को चाहिये कि प्रतिदिन ओषधियों के रसादि उत्पन्न कर उन के रस का पान विद्या सम्बन्धी वाणी का प्रचार और सब जनों की बुद्धियों का अपनी बुद्धि से भी अधिकता के सहित दमन अर्थात् विषयों से निवृत्ति करैं जिस से आरोग्य और विद्याओं के प्रभाव प्रतिदिन बढ़ैं ॥ १० ॥

मनुष्यैः कीदृशो राजा सेव्य इत्याह ॥

मनुष्यों को कैसे राजा का सेवन करना चाहिये इस वि० ॥

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ । शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ॥ ११ ॥ १६ ॥

शुनम् । हुवेम । मघऽवानम् । इन्द्रम् । अस्मिन् । भरे । नृऽतमम् । वाजऽसातौ । शृण्वन्तम् । उग्रम् । ऊतये । समत्ऽसु । घ्नन्तम् । वृत्राणि । सम्ऽजितम् । धनानाम् ॥ ११ ॥ १६ ॥

पदार्थः—(शुनम्) सुखप्रदम् (हुवेम) प्रशंसेम (मघवानम्) पुष्कलधनम् (इन्द्रम्) दुष्टानां विदारकम् (अस्मिन्) वर्त्तमाने (भरे) मूर्खविद्वदज्ञानज्ञानविषयविरोधरूपे युद्धे (नृतमम्) अतिशयेन सत्याऽसत्ययोर्नेतारम् (वाजसातौ) विज्ञानाऽविज्ञानसत्यासत्यविभाजके (शृण्वन्तम्) अर्थिप्रत्यर्थिनोः श्रवणाऽनन्तरं

न्यायस्य कर्त्तारम् (उग्रम्) दुष्टानामुपरि कठिनस्वभावं श्रेष्ठेषु शान्तम् (ऊतये) रक्षणाद्याय (समत्सु) सङ्ग्रामेषु (घ्नन्तम्) (वृत्राणि) मेघावयवानिव शत्रुसैन्यानि (सञ्जितम्) सम्यगुत्कर्षप्राप्तम् (धनानाम्) विज्ञानादिपदार्थानां मध्ये ॥ ११ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यं शुनं मघवानमस्मिन् वाजसातौ भरे नृतममिन्द्रमूतये शृण्वन्तमुग्रं समत्सु वृत्राणि घ्नन्तं धनानां सञ्जितं राजानं हुवेम तं यूयमप्याह्वयत ॥ ११ ॥

भावार्थः—मनुष्या दुष्टश्रेष्ठानां परीक्षितारं वादिप्रतिवादिनोर्वचांसि श्रुत्वा न्यायकर्त्तारं पण्डितमूर्खसत्काराऽसत्कारविधातारं पक्षपातरहितं सर्वेषां सुहृदं राजानं स्वीकृत्याऽऽनन्दन्त्विति ॥ ११ ॥

अत्र सूर्यविद्युद्वीरराज्यराजसेनाप्रजागुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिर्वेद्या ॥

इति चतुस्त्रिंशत्तमं सूक्तं षोडशो वर्गश्च समाप्तः ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जिस (शुनम्) सुख देने वाले (मघवानम्) बहुत धन से युक्त (अस्मिन्) इस वर्त्तमान (वाजसातौ) विज्ञान अविज्ञान सत्य और असत्य के विभाग कारक (भरे) मूर्ख और विद्वान् के अज्ञान और ज्ञान के विषय के विरोध रूप युद्ध में (नृतमम्) अत्यन्त सत्य और असत्य के निर्णय करने (इन्द्रम्) और दुष्ट जनों के नाश करने वाले पुरुष की (ऊतये) रक्षा आदि के लिये (शृण्वन्तम्) अर्थी प्रत्यर्थी अर्थात् मुद्दई मुद्दाले के वचन सुनने के पीछे न्याय करने (उग्रम्) दुष्ट पुरुषों पर कठोर स्वभाव और श्रेष्ठ पुरुषों में शान्त स्वभाव रखने (समत्सु) संग्रामों में (वृत्राणि) मेघों के अवयवों के सदृश शत्रुओं की सेनाओं के (घ्नन्तम्) नाश करने और (धनानाम्) विज्ञान आदि पदार्थों के मध्य में (सञ्जितम्) उत्तम प्रकार श्रेष्ठता को प्राप्त होने वाले राजा की (हुवेम) प्रशंसा करैं उस की आप लोग भी प्रशंसा करो ॥ ११ ॥

भावार्थ।—मनुष्य लोग दुष्ट और श्रेष्ठ पुरुषों की परीक्षा करने, वादी और प्रतिवादी के वचनों को सुन के न्याय करने पण्डित और मूर्ख जन का आदर और निरादर करने पक्षपात से अलग रहने और सम्पूर्ण जनों के सुख देने वाले पुरुष को राजा मान के आनन्द करें॥ ११॥

इस सूक्त में सूर्य्य बिजुली वीर राज्य राजा की सेना और प्रजा के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये॥ ११॥

यह चौंतीसवां सूक्त और सोलहवां वर्ग समाप्त हुआ॥

अथैकादशर्चस्य पञ्चत्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य विश्वामित्र ऋषिः। इन्द्रो देवता। १। ७। १०। ११ त्रिष्टुप्। २। ३। ६। ८ निचृत्त्रिष्टुप्। ९ विराट्त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः। ४ भुरिक्पङ्क्तिः। ५ स्वराट्पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

अथ मनुष्यैः किं कर्त्तव्यमित्याह॥

अब ग्यारह ऋचा वाले पैंतीसवें सूक्त का प्रारम्भ है उस के प्रथम मन्त्र से मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस वि०॥

तिष्ठा हरी रथ आ युज्यमाना याहि वायुर्न नियुतो नो अच्छ। पिबास्यन्धो अभिसृष्टो अस्मे इन्द्र स्वाहा ररिमा ते मदाय॥ १॥

तिष्ठ। हरी इति। रथे। आ। युज्यमाना। याहि। वायुः। न। निऽयुतः। नः। अच्छ। पिबासि। अन्धः। अभिऽसृष्टः। अस्मे इति। इन्द्र। स्वाहा। ररिम। ते। मदाय॥ १॥

पदार्थः—(तिष्ठ) । अत द्व्यचोतस्तिङ इति दीर्घः (हरी) अश्वौ (रथे) (आ) समन्तात् (युज्यमाना) संयुक्तौ (याहि) गच्छ (वायुः) पवनः (न) इव (नियुतः) श्रेष्ठैर्मिश्रितान् दुष्टैर्वियुक्तान् (नः) अस्मान् (अच्छ) सम्यक् (पिबासि) पिबेः (अन्धः) सुसंस्कृतमन्नम् (अभिसृष्टः) आभिमुख्येन प्रेरितः (अस्मे) अस्मासु (इन्द्र) परमैश्वर्य्ययुक्त (स्वाहा) सत्यया वाचा (ररिम) दद्याम । अत्र संहितायामिति दीर्घः (ते) तुभ्यम् (मदाय) आनन्दाय ॥ १ ॥

अन्वयः—हे इन्द्र राजँस्त्वं यस्मिन्रथे युज्यमाना हरी इव जलाग्नी वर्त्तेते तस्मिन्नातिष्ठ तेन वायुर्न नियुतोनोऽस्मानच्छ याहि । अभिसृष्टः सँस्तेऽस्मे यदन्धो मदाय ररिम तत्स्वाहा पिबासि ॥ १ ॥

भावार्थः—ये मनुष्या अग्न्यादिपदार्थचालिरथे स्थित्वा देशान्तरं वायुवद्गच्छन्ति ते पुष्कलानि भक्ष्यभोज्यपेयचूष्याणि प्राप्नुवन्ति ॥ १ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य्य से युक्त राजन् आप जिस (रथे) रथ में (युज्यमाना) जुड़े हुए (हरी) घोड़ों के सदृश जल और अग्नि वर्त्तमान हैं उस रथ में (आ) सब प्रकार (तिष्ठ) वर्त्तमान हूजिये इस से (वायुः) पवन के (न) तुल्य (नियुतः) श्रेष्ठ पुरुषों के साथ मिले और दुष्ट पुरुषों से अनमिले (नः) हम लोगों को (अच्छ) अच्छे प्रकार (याहि) प्राप्त हूजिये और (अभिसृष्टः) सन्मुख प्रेरित होता हुआ जन (ते) आप के लिये (अस्मे) हमारे निकट से (अन्धः) उत्तम प्रकार संस्कार किये हुए अन्न को (मदाय) आनन्द के अर्थ (ररिम) देवैं उस का (स्वाहा) सत्य वाणी से (पिबासि) पान कीजिये ॥ १ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य अग्नि आदि पदार्थों से चलने वाले रथ पर चढ़ के अन्य अन्य देशों को वायु के सदृश जाते हैं वे बहुत भक्षण भोजन करने पीने और चूषने योग्य पदार्थों को प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

उपाजिरा पुरुहूताय सप्ती हरी रथस्य धूर्ष्वा युनज्मि । द्रवद्यथा सम्भृतं विश्वतश्चिदुपेमं यज्ञमा वहात इन्द्रम् ॥ २ ॥

उप । अजिरा । पुरुऽहूताय । सप्ती इति । हरी इति । रथस्य । धूःऽसु । आ । युनज्मि । द्रवत् । यथा । सम्ऽभृतम् । विश्वतः । चित् । उप । इमम् । यज्ञम् । आ । वहातः । इन्द्रम् ॥ २ ॥

पदार्थः—(उप) (अजिरा) यानानां प्रक्षेप्तारौ (पुरुहूताय) बहुभिराहूताय (सप्ती) सद्यः सर्पन्तौ । अत्र वाच्छन्दसीति गुणे कृते रफलोपः (हरी) हरणशीलौ (रथस्य) यानस्य (धूर्षु) रथाधारावयवेषु (आ) समन्तात् (युनज्मि) (द्रवत्) द्रवं प्राप्नुवत् (यथा) (सम्भृतम्) सम्यग्धृतम् (विश्वतः) सर्वतः (चित्) अपि (उप) (इमम्) प्रत्यक्षम् (यज्ञम्) शिल्पविद्यासाध्यम् (आ) (वहातः) वहेताम् (इन्द्रम्) परमैश्वर्य्यम् ॥ २ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यथाऽहं याविमं यज्ञमिन्द्रमावहातो विश्वतो द्रवत्सम्भृतं चिदप्युपावहातस्तौ पुरुहूताय वर्त्तमानावजिरा सप्ती हरी रथस्य धूर्षु युनज्मि तौ यूयमपि युङ्ग्ध्वम् ॥ २ ॥

भावार्थः—ये यानेषु विद्युदादिपदार्थान्संयोज्य चालयन्ति ते कं कं देशं न गच्छेयुः ? ॥ तेषां किमैश्वर्य्यमप्राप्तं स्यात् ? ॥ २ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यथा) जैसे मैं जो (इमम्) इस प्रत्यक्ष (यज्ञम्) शिल्प विद्या से होने योग्य (इन्द्रम्) अत्यन्त ऐश्वर्य्यवान् काम को सब प्रकार चलाते (विश्वतः) वा सब ओर से (द्रवन्) टिघिलने को प्राप्त होते हुए (सम्भृतम्) उत्तम प्रकार धारण किये गये पदार्थ को (चित्) भी (उप) समीप में (आ, वहातः) वहाते उन (पुरुहूताय) बहुतों ने बुलाये गये के लिये वर्त्तमान (अजिरा) वाहनों के फेंकने (सप्ती) शीघ्र चलने (हरी) और यान को ले जाने वाले का (रथस्य) वाहन की (धूर्षु) धुरियों में जिन को (उप, आ, युनज्मि) जोड़ता हूं उन को आप लोग भी जोड़िये ॥ २ ॥

भावार्थः—जो लोग वाहनों में बिजुली आदि पदार्थों को संयुक्त करके चलाते हैं वे किस किस देश को न जा सकैं ? और उन को कौनसा ऐश्वर्य्य है जो न प्राप्त होवे ? ॥ २ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

उपो॑ नयस्व॒ वृष॑णा तपु॒ष्पोतेम॑व॒ त्वं वृ॑षभ स्व॒धावः । ग्रसे॑ता॒मश्वा॒ वि मु॑चे॒ह शोणा॑ दि॒वेदि॑वे स॒दृशी॑रद्धि धा॒नाः ॥ ३ ॥

उपो॒ इति॑ । न॒यस्व॒ । वृष॑णा । त॒पुः॒ऽपा । उ॒त । ई॒म् । अ॒व॒ । त्वम् । वृ॒ष॒भ॒ । स्व॒धा॒ऽवः॒ । ग्रसे॑ताम् । अश्वा॑ । वि । मु॒च॒ । इ॒ह । शोणा॑ । दि॒वेऽदि॑वे । स॒ऽदृशीः॑ । अ॒द्धि॒ । धा॒नाः ॥ ३ ॥

पदार्थः—(उपो) सामीप्ये (नयस्व) (वृषणा) बलिष्ठौ (तपुष्पा) यौ तपूंषि पातो रक्षतस्तौ (उत) (ईम्) उदकम् । ईमित्युदकना० निघं० १ । १२ (अव) प्रवेशय (त्वम्) (वृषभ) बलिष्ठ (स्वधावः) पुष्कलान्नयुक्त (ग्रसेताम्) (अश्वा) सद्योगामिनौ

(वि) (मुच) त्यज (इह) अस्मिन् याने (शोणा) रक्तगुणविशिष्टौ (दिवेदिवे) नित्यम् (सदृशीः) समाना गतीः (अद्धि) भुङ्क्ष्व (धानाः) अग्निसंस्कृतान्नविशेषान् ॥ ३ ॥

अन्वयः—हे वृषभ स्वधावस्त्वमिह यौ तपुष्पा वृषणा शोणाऽश्वेन्धनानि ग्रसेतां तत्र कला विमुचेमुपो नयस्व। उत दिवेदिवे सदृशीर्धाना अद्धि तत्र सम्भारानव ॥ ३ ॥

भावार्थः—ये शिल्पिनो मनुष्या अग्निजलादीन् पदार्थान् सुकलायुक्तेषु यानेषु संयुज्य चालयन्ति ते दारिद्र्यं विमुच्य धनधान्यमाप्नुवन्ति ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे (वृषभ) बलवान् (स्वधावः) अत्यन्त अन्नयुक्त (त्वम्) आप (इह) इस वाहन में जो (तपुष्पा) तपते हुए पदार्थों को रखने वाले (वृषणा) बल और (शोणा) लालरङ्गयुक्त (अश्वा) शीघ्रगामी अग्नि आदि इन्धनों को (ग्रसेताम्) भक्षण करें उन में कलाओं को (वि,मुच) छोड़ो (ईम्) जल को (उपो) उन के समीप में (नयस्व) पहुंचाओ (उत) और (दिवेदिवे) नित्य (सदृशीः) तुल्य परिणाम वाले (धानाः) अग्नि से संस्कार किये अन्न विशेषों को (अद्धि) भक्षण करो उन में बोझों को (अव) पेश करो ॥३॥

भावार्थः—जो शिल्पी जन अग्नि जल आदि पदार्थों को उत्तम कलाओं से युक्त वाहनों में संयुक्त करके चलाते हैं वे दारिद्र्य को छोड़ के धन और धान्य को प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

ब्रह्म॑णा ते ब्रह्म॒युजा॑ युनज्मि॒ हरी॒ सखा॑या सध॒माद॑ आ॒शू। स्थि॒रं रथं॑ सु॒खमि॑न्द्राधि॒तिष्ठ॑न्प्रजा॒नन्वि॒द्वाँ उप॑ याहि॒ सोम॑म् ॥ ४ ॥

ब्रह्मणा । ते । ब्रह्मऽयुजा । युनज्मि । हरी इति । सखाया । सधऽमादे । आशू इति । स्थिरम् । रथम् । सुऽखम् । इन्द्र । अधिऽतिष्ठन् । प्रऽजानन् । विद्वान् । उप । याहि । सोमम् ॥४॥

पदार्थः—(ब्रह्मणा) अन्नादिना (ते) तव (ब्रह्मयुजा) यौ ब्रह्म धनं योजयतस्तौ (युनज्मि) (हरी) जलाग्नी (सखाया) सुहृदाविव (सधमादे) समानस्थाने (आशू) शीघ्रं गमयितारौ (स्थिरम्) ध्रुवम् (रथम्) यानम् (सुखम्) सुहितं खेभ्यस्तम् (इन्द्र) शिल्पविद्यैश्वर्य्ययुक्त (अधितिष्ठन्) उपरि स्थितः सन् (प्रजानन्) प्रकृष्टतया बुध्यमानः (विद्वान्) साङ्गोपाङ्गामेतद्विद्यां विदन् (उप) (याहि) (सोमम्) ऐश्वर्य्यम् ॥ ४ ॥

अन्वयः—हे इन्द्र अहं ते तव यस्मिन्याने ब्रह्मणा सह वर्त्तमानौ ब्रह्मयुजा आशू हरी सखाया इव सधमादे युनज्मि तं सुखं स्थिरं रथमधितिष्ठन् विद्वान् सन्नेतद्विद्यां प्रजानन् सोममुपयाहि॥ ४ ॥

भावार्थः-अत्र वाचकलु०-येऽग्निजलादिप्रयुक्ते याने स्थित्वा यथावद्विद्यया प्रचालयन्तो देशान्तरं गत्वागत्यैश्वर्य्यं प्राप्य सखीन्सत्कुर्युस्त एव विद्याधर्मावुन्नेतुं शक्नुयुः ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) शिल्पविद्या रूप ऐश्वर्य्य से युक्त पुरुष मैं (ते) आप के जिस वाहन में (ब्रह्मणा) अन्न आदि के सहित विद्यमान (ब्रह्मयुजा) धन के संग्रह कराने और (आशू) शीघ्र ले चलने वाले (हरी) जल और अग्नि को (सखाया) मित्रों के तुल्य (सधमादे) बरोबर के स्थान में (युनज्मि) संयुक्त करता हूं उस (सुखम्) आकाशमार्गियों के लिये हित करने वाले (स्थिरम्) दृढ़ (रथम्) वाहन (अधि, तिष्ठन्) पर स्थिर हो तो (विद्वान्) इस विद्या

को अङ्ग और उपाङ्गों के सहित जानते और (प्रजानन्) उत्तम प्रकार ज्ञान को प्राप्त होते हुए आप (सोमम्) ऐश्वर्य्य को (उप, याहि) प्राप्त हूजिये ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो लोग अग्नि और जल आदि पदार्थों से चलाये गये वाहन पर बैठ अच्छे प्रकार विद्या द्वारा उस को चलाते हुए देशदेशान्तरों में जाय आय और ऐश्वर्य को पाय मित्रों का सत्कार करें वे ही विद्या और धर्म की वृद्धि कर सकें ॥ ४ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

मा ते हरी वृषणा वीतपृष्ठा नि रीरमन्यजमानासो अन्ये । अत्यायाहि शश्वतो वयन्तेऽरं सुतेभिः कृणवाम सोमैः ॥ ५ ॥ १७ ॥

मा । ते । हरी इति । वृषणा । वीतऽपृष्ठा । नि । रीरमन् । यजमानासः । अन्ये । अतिऽआयाहि । शश्वतः । वयम् । ते । अरम् । सुतेभिः । कृणवाम । सोमैः ॥५॥ १७॥

पदार्थः-(मा) निषेधे (ते) तव (हरी) यानहारकौ (वृषणा) बलिष्ठौ (वीतपृष्ठा) वीते व्याप्तिशीले पृष्ठे ययोस्तौ (नि) (रीरमन्) रमयेयुः (यजमानासः) विद्यासङ्गतिविदः (अन्ये) एतद्भिन्नाः (अत्यायाहि) अतिवेगेनागच्छोल्लङ्घय वा (शश्वतः) सनातनाः (वयम्) (ते) तव (अरम्) अलम् (सुतेभिः) निष्पन्नैः (कृणवाम) कुर्य्याम (सोमैः) ऐश्वर्य्यैः ॥ ५ ॥

अन्वयः—हे इन्द्र येऽन्ये यजमानासस्ते तव वीतपृष्ठा वृषणा हरी मा निरीरमन् ताँस्त्वमत्यायाहि । शश्वत आगच्छ यस्य ते सुतेभिः सोमैररं कामं वयं कृणवाम स त्वमस्माकमलं कामं कुरु॥५॥

भावार्थः—येऽग्न्यादिपदार्थविद्यामविदित्वैतद्विद्याविदो जनान्नोत्साहयन्ति तानुल्लङ्घ्यानादिविद्याविदां विदुषां शरणं गत्वा शिल्पविद्यानिष्पन्नैः कार्य्यैः पूर्णकामा वयं भवेमेषित्वा नित्यं प्रयतेरन् ॥५॥

पदार्थः—हे प्रताप युक्त पुरुष जो (अन्ये) इस से और (यजमानासः) विद्या की संगति के जानने वाले (ते) आप के (वीतपृष्ठा) चौड़ी पीठों से युक्त (वृषणा) बलिष्ठ (हरी) वाहनों के ले चलने वालों को (मा) नहीं (नि, रीरमन्) रमावें उन को आप (अत्यायाहि) बड़े वेग से प्राप्त हूजिये वा छोड़िये और (शश्वतः) अनादि काल से सिद्धविद्या युक्त पुरुषों को प्राप्त हूजिये जिस (ते) आप के (सुतेभिः) उत्पन्न (सोमैः) ऐश्वर्य्यों से (अरम्) पूरे काम को (वयम्) हम लोग (कृणवाम) करें वह आप हमारे पूरे काम को करो ॥ ५ ॥

भावार्थः—जो लोग अग्नि आदि पदार्थों की विद्या को जाने विना इस विद्या के जानने वाले जनों का उत्साह नहीं बढ़ाते उन का उल्लङ्घन कर अनादि काल से सिद्ध विद्या के जानने वाले विद्वानों के शरण जा के शिल्पविद्या से उत्पन्न कार्यों से पूर्णमनोरथ वाले हम लोग होवें इस प्रकार इच्छा करके नित्य प्रयत्न करें ॥५॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

तवायं सोमस्त्वमेह्यर्वाङ् शश्वत्तमं सुमना अस्य पाहि । अस्मिन् यज्ञे बर्हिष्या निषद्या दधिष्वेमं जठर इन्दुमिन्द्र ॥ ६ ॥

तव । अयम् । सोमः । त्वम् । आ । इहि । अर्वाङ् । शश्वत्ऽतमम् । सुऽमनाः । अस्य । पाहि । अस्मिन् । यज्ञे । बर्हिषि । आ । निऽसद्य । दधिष्व । इमम् । जठरे । इन्दुम् । इन्द्र ॥६॥

पदार्थः–(तव) (अयम्) (सोमः) ऐश्वर्य्ययोगः (त्वम्) (आ) (इहि) प्राप्नुहि (अर्वाङ्) अधस्ताद्वर्त्तमानः (शश्वत्तमम्) अतिशयेनाऽनादिभूतम् (सुमनाः) प्रसन्नचित्तः (अस्य) बोधस्य (पाहि) (अस्मिन्) (यज्ञे) शिल्पसम्पाद्ये व्यवहारे (बर्हिषि) अत्युत्तमे (आ) समन्तात् (निषद्य) नितरां स्थित्वा । अत्र संहितायामिति दीर्घः (दधिष्व) धेहि (इमम्) (जठरे) उदरे (इन्दुम्) सार्द्रपदार्थम् (इन्द्र) परमैश्वर्य्यमिच्छुक ॥ ६ ॥

अन्वयः—हे इन्द्र तव योऽयमर्वाङ् सोमस्तं शश्वत्तमं त्वमेहि। अस्मिन्बर्हिषि यज्ञे निषद्य सुमनाः सन्निमं पाहि । अस्य सकाशात् प्राप्तमिन्दुं जठर आ दधिष्व ॥ ६ ॥

भावार्थः—हे मनुष्या अस्मिन्त्सर्वोत्तमे शिल्पसाध्ये व्यवहारे निपुणा भूत्वाऽनादिभूतं पूर्वैर्विद्वद्भिः प्राप्तमैश्वर्य्यं विधाय सर्वस्यास्य जगतो रक्षणे निधाय युक्ताहारविहारेणाऽऽनन्दं भुङ्क्त ॥ ६ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य्य के इच्छा करने वाले (तव) आप का जो (अयम्) यह (अर्वाङ्) अधोभाग में विद्यमान (सोमः) ऐश्वर्य्य का संयोग उस (शश्वत्तमम्) अत्यन्त अनादि काल से सिद्ध ऐश्वर्य संयोग को (त्वम्) आप (आ) (इहि) प्राप्त हूजिये (अस्मिन्) इस (बर्हिषि) अतिउत्तम (यज्ञे) शिल्प विद्या से होने योग्य व्यवहार में (निषद्य) निरन्तर स्थिर हो कर (सुमनाः) प्रसन्न चित्त हुए (इमम्) इस की (पाहि) रक्षा करो और (अस्य) इस ज्ञान की उत्तेजना से प्राप्त (इन्दुम्) गीले पदार्थ को (जठरे) उदर में (आ) सब प्रकार (दधिष्व) धारण कीजिये ॥ ६ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो इस सब से उत्तम शिल्पविद्या से साध्य व्यवहार में चतुर हो के अनादि काल से उत्पन्न और प्राचीन विद्वानों से प्राप्त ऐश्वर्य्य को सिद्ध कर इस संसार की रक्षा के लिये स्थित करके योग्य आहार और विहार से आनन्द भोगो ॥ ६ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

स्तीर्णं ते बर्हिः सुत इन्द्र सोमः कृता धाना अत्तवे ते हरिभ्याम् । तदोकसे पुरुशाकाय वृष्णे मरुत्वते तुभ्यं राता हवींषि ॥ ७ ॥

स्तीर्णम् । ते । बर्हिः । सुतः । इन्द्र । सोमः । कृताः । धानाः । अत्तवे । ते । हरिऽभ्याम् । तत्ऽओकसे । पुरुऽशाकाय । वृष्णे । मरुत्वते । तुभ्यम् । राता । हवींषि ॥७॥

पदार्थः—(स्तीर्णम्) आच्छादितम् (ते) तव (बर्हिः) वृद्धमुदकम् । बर्हिरित्युदकना० निघं० १ । १२ (सुतः) निष्पादितः (इन्द्र) दारिद्र्यविदारक (सोमः) ऐश्वर्य्ययोगः (कृताः) निष्पन्नाः (धानाः) पक्वान्नविशेषाः (अत्तवे) अत्तुम् (ते) (हरिभ्याम्) (तदोकसे) तद्यानमोकः स्थानं यस्य तस्मै (पुरुशाकाय) बहुशक्तये (वृष्णे) वर्षणशीलाय (मरुत्वते) मरुतो बहवो मनुष्याः कार्य्यसाधका विद्यन्ते यस्य तस्मै (तुभ्यम्) (राता) दत्तानि (हवींषि) अत्तुमर्हाण्यन्नादीनि ॥ ७ ॥

अन्वयः—हे इन्द्र ते स्तीर्णं बर्हिस्सुतस्सोमः कृता धाना हरिभ्यां युक्ते याने स्थिता यत्ते तदोकसे पुरुशाकाय वृष्णे मरुत्वते तुभ्यमत्तवे यानि हवींषि राता सन्ति तानि भुङ्क्ष्व ॥ ७ ॥

भावार्थः—सर्वे मनुष्या निमृष्टपदार्थभोक्तारस्स्युर्नैवाऽन्यायेनोपार्जितं किञ्चिदपि भुञ्जीरन्नेवं वर्त्तमाने कृते धनशक्तिविद्याऽऽयूंषि वर्धन्ते ॥ ७ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) दरिद्रता के नाश करने वाले (ते) आप का (स्तीर्णम्) ढंपा और (बर्हिः) बढ़ा हुआ जल वा (सुतः) उत्पन्न किया गया (सोमः) ऐश्वर्य्य का संयोग वा (कृताः) सिद्ध किये गये (धानाः) पके हुए अन्न विशेष वा (हरिभ्याम्) घोड़ों से संयुक्त वाहन पर बैठे हुए जो (ते) आप के जन और (तदोकसे) वाहनरूप स्थान वाले (पुरुशाकाय) अनेक प्रकार की शक्ति से (वृष्णे) वृष्टि कराने वाले (मरुत्वते) कार्य्य कराने वाले बहुत मनुष्यों के सहित विराजमान (तुभ्यम्) आप के लिये (अत्तवे) भोजन करने को जो (हवींषि) भोजन करने के योग्य अन्न आदि (राता) वर्त्तमान उन को भोगो ॥ ७ ॥

भावार्थः—सम्पूर्ण जन उत्तम पदार्थों के भोजन करने वाले हों और अन्याय से इकट्ठे किये हुए किसी भी पदार्थ का भोग न करें इस प्रकार वर्त्ताव करने पर धनसामर्थ्य, विद्या और आयु बढ़ते हैं ॥ ७ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इमं नरः पर्वतास्तुभ्यमापः समिन्द्र गोभिर्मधुमन्तमक्रन् । तस्यागत्या सुमना ऋष्व पाहि प्रजानन् विद्वान् पथ्या३ अनु स्वाः ॥ ८ ॥

इमम् । नरः । पर्वताः । तुभ्यम् । आपः । सम् । इन्द्र । गोभिः । मधुऽमन्तम् । अक्रन् । तस्य । आऽगत्य । सुऽमनाः । ऋष्व । पाहि । प्रऽजानन् । विद्वान् । पथ्याः । अनु । स्वाः ॥ ८ ॥

पदार्थः—(इमम्) (नरः) नायकाः (पर्वताः) मेघाः (तुभ्यम्) (आपः) जलानि (सम्) (इन्द्र) परमैश्वर्य्यप्रापक (गोभिः) पृथिव्यादिभिस्सह (मधुमन्तम्) मधुरादिबहुरसयुक्तम् (अक्रन्) कुर्युः (तस्य) (आगत्य) अत्र । संहितायामिति दीर्घः (सुमनाः)

शोभनं निरीर्ष्यकं मनो यस्य सः (ऋष्व) प्राप्तविद्य (पाहि) (प्रजानन्) (विद्वान्) (पथ्याः) पथोऽनपेताः (अनु) (स्वाः) स्वकीया गतीः ॥ ८ ॥

अन्वयः—हे ऋष्वेन्द्र ये नरस्तुभ्यं पर्वता आपश्चेव गोभिरिमं मधुमन्तं समक्रँस्तान्पाहि । सुमनाः प्रजानन् विद्वान्सँस्तस्य स्वाः पथ्या आगत्य सर्वाननुपाहि ॥ ८ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यथा वर्षाभिः सर्वेषां पालनं जायते तथैव विमानादेर्यानस्य निर्मातारो जगत्यां सर्वेषां रक्षका भवन्ति ॥८॥

पदार्थः—हे (ऋष्व) विद्या से पूर्ण (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य की प्राप्ति कराने वाले जो (नरः) प्रधान पुरुष (तुभ्यम्) आप के लिये (पर्वताः) मेघ और (आपः) जल के समान (गोभिः) पृथिवी आदि पदार्थों के सहित (इमम्) इस वर्त्तमान (मधुमन्तम्) मधुर आदि बहुत रसों से युक्त पदार्थ को (सम्, अक्रन्) अच्छे प्रकार करें उन का (पाहि) पालन करो (सुमनाः) और ईर्ष्या रहित मन वाले आप (प्रजानन्, विद्वान्) जानते और विद्वान् होते हुए (तस्य) उस काम की (स्वाः, पथ्याः) मार्ग से निज चालियों को (आगत्य) प्राप्त हो कर सब का (अनु) पालन करो ॥ ८ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे वृष्टियों से सब का पालन होता है वैसे ही विमान आदि वाहन बनाने वाले जन संसार में सब के रक्षा करने वाले होते हैं ॥ ८ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

याँ आभंजो मरुत इन्द्र सोमे ये त्वामवर्धन्नभवन् गणस्ते । तेभिरेतं सजोषां वावशानो३ऽग्नेः पिब जिह्वया सोममिन्द्र ॥ ९ ॥

यान् । आ । अभंजः । मरुतः । इन्द्र । सोमे । ये । त्वाम् । अवर्धन् । अभंवन् । गणः । ते । तेभिः । एतम् । सऽजोषाः । वावशानः । अग्नेः । पिब । जिह्वयां । सोमम् । इन्द्र ॥९॥

पदार्थः—(यान्) विदुषः (आ) (अभजः) सेवेथाः (मरुतः) प्राणानिव प्रियानाप्तान् (इन्द्र) सकलैश्वर्यप्रद (सोमे) ऐश्वर्ये (ये) (त्वाम्) (अवर्धन्) वर्धयेयुः (अभवन्) भवेयुः (गणः) समूहः (ते) तव (तेभिः) तैस्सह (एतम्) (सजोषाः) समानप्रीतिसेवी (वावशानः) भृशं कामयमानः (अग्नेः) पावकस्य (पिब) (जिह्वया) ज्वालेव वर्त्तमानया (सोमम्) रसम् (इन्द्र) दुःखविदारक ॥ ९ ॥

अन्वयः—हे इन्द्र त्वं सोमे यान् विदुषो मरुत इवाभजो ये सोमे त्वामवर्धन् यस्ते गणस्तं प्राप्याऽऽनन्दिता अभवँस्तेभिः सह हे इन्द्र सजोषा वावशानः सन्नग्नेर्जिह्वयैतं सोमं पिब ॥ ९ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यदि प्राणानिव प्रियानाप्तान् विदुषो मनुष्याः सेवेरन् तर्ह्येतांस्ते सर्वतो वर्धयेयुर्यथाऽग्निर्ज्वालया सर्वान् रसान् पिबति तथैव तीव्रक्षुधा सह वर्त्तमानोऽन्नं भुञ्जीत पेयं पिबेच्च॥९॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) सम्पूर्ण ऐश्वर्य के देने वाले आप ऐश्वर्य्य में (यान्) जिन विद्वानों को (मरुतः) प्राणों के सदृश प्रिय और श्रेष्ठ जान के (आ, अभजः) सेवन करो (ये) जो लोग (सोमे) ऐश्वर्य में (त्वाम्) आप की (अवर्धन्) वृद्धि करैं जो (ते) आप का (गणः) समूह उस को प्राप्त होके आनन्दित (अभवन्) होवें (तेभिः) उन लोगों के साथ हे (इन्द्र) दुःख के नाश करने वाले (सजोषाः) तुल्य प्रीति के सेवनकर्त्ता (वावशानः) अत्यन्त कामना करते हुए आप (अग्नेः) अग्नि की (जिह्वया) ज्वाला के सदृश वर्त्तमान गुण से (एतम्) इस (सोमम्) सोम रस का (पिब) पान करो ॥ ९ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो प्राण के सदृश प्रिय और श्रेष्ठ विद्वान् जनों की मनुष्य लोग सेवा करें तो इन मनुष्यों की वे विद्वान् लोग सब प्रकार वृद्धि करें और जैसे अग्नि ज्वाला से सम्पूर्ण रसों का पान करता है वैसे ही तीक्ष्ण क्षुधा के सहित वर्त्तमान पुरुष अन्न का भोजन करें और पान करने योग्य वस्तु का पान करें ॥ ९ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इन्द्र पिब॑ स्व॒धया॑ चित्सु॒तस्या॒ग्नेर्वा॑ पाहि जि॒ह्वया॑ यजत्र । अ॒ध्व॒र्योर्वा॒ प्रय॑तं शक्र॒ हस्ता॒द्धो-तु॑र्वा य॒ज्ञं ह॒विषो॑ जुषस्व ॥ १० ॥

इन्द्र॑ । पिब॑ । स्व॒धया॑ । चि॒त् । सु॒तस्य॑ । अ॒ग्नेः । वा॒ । पा॒हि॒ । जि॒ह्वया॑ । य॒ज॒त्र॒ । अ॒ध्व॒र्योः । वा॒ । प्रऽय॑तम् । श॒क्र॒ । हस्ता॑त् । होतुः॑ । वा॒ । य॒ज्ञम् । ह॒विषः॑ । जु॒ष॒स्व॒ ॥ १० ॥

पदार्थः—(इन्द्र) ऐश्वर्य्यवन् (पिब) (स्वधया) अन्नेन (चित्) अपि (सुतस्य) निष्पन्नस्य (अग्नेः) पावकस्य (वा) (पाहि) (जिह्वया) ज्वालेव वर्त्तमानया (यजत्र) पूजनीय (अध्वर्योः) य आत्मनोऽध्वरमिच्छति तस्य (वा) (प्रयतम्) प्रयत्नेन सिद्धम् (शक्र) शक्तिमन् (हस्तात्) (होतुः) दातुः (वा) (यज्ञम्) (हविषः) साकल्यात् (जुषस्व) सेवस्व ॥ १० ॥

अन्वयः—हे यजत्र शक्रेन्द्र त्वमग्नेर्ज्वालेव जिह्वया स्वधया वा चित्सुतस्य रसं पिब अध्वर्योर्वा प्रयतं यज्ञं पाहि । होतुर्हस्ताद्धविषो वा यज्ञं जुषस्व ॥ १० ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यैर्मनुष्यैः सुसाधितस्याऽन्नस्य भोजनं रसस्य पानं कृत्वाऽरोगा भूत्वा विद्वद्भिः सह सङ्गत्य यज्ञः सेव्येत ते सदा सुखिनः स्युः ॥ १० ॥

पदार्थः—हे (यजत्र) आदर करने योग्य (शक्र) शक्तिमान् (इन्द्र) ऐश्वर्य वाले आप (अग्नेः) अग्नि की (जिह्वया) ज्वाला के सदृश वर्त्तमान लपट से (वा) वा (स्वधया) अन्न से (चित्) भी (सुतस्य) सिद्ध हुए रस का (पिब) पान करिये (अध्वर्योः) आत्मसम्बन्धी यज्ञ की इच्छा करते हुए पुरुष के (वा) अथवा (प्रयतम्) प्रयत्न से सिद्ध (यज्ञम्) यज्ञ का (पाहि) पालन करो (होतुः) देने वाले के (हस्तात्) हाथ और (हविषः) हवन की सामग्री से (वा) अथवा यज्ञ का (जुषस्व) सेवन करो ॥ १० ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जिन मनुष्यों से उत्तम प्रकार सिद्ध किये हुए अन्न का भोजन और रस का पान कर रोग रहित हो और विद्वानों के साथ मेल करके यज्ञ का सेवन किया जाय वे सदा सुखी होवें ॥ १० ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ । शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ॥ ११ ॥

शुनम् । हुवेम । मघऽवानम् । इन्द्रम् । अस्मिन् । भरे । नृऽतमम् । वाजऽसातौ । शृण्वन्तम् । उग्रम् । ऊतये । समत्ऽसु । घ्नन्तम् । वृत्राणि । सम्ऽजितम् । धनानाम् ॥ ११ ॥

पदार्थः—(शुनम्) सुखकरम् (हुवेम) (मघवानम्) बहुधनयुक्तम् (इन्द्रम्) परमैश्वर्यम् (अस्मिन्) शिल्पव्यवहारे (भरे) सङ्ग्रामे (नृतमम्) पुरुषोत्तमम् (वाजसातौ) अन्नानां विभागे (शृण्वन्तम्) सत्पुरुषवचनानां श्रोतारम् (उग्रम्) तेजस्विनम् (ऊतये) रक्षणाद्याय (समत्सु) सङ्ग्रामेषु (घ्नन्तम्) नाशयन्तम् (वृत्राणि) अस्मद्बलाऽऽवरकाणि शत्रुसैन्यानि (सञ्जितम्) (धनानाम्) विद्यासुवर्णादीनाम् ॥ ११ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यथा वयमूतये समत्सु वृत्राणि सूर्य इव शत्रून् घ्नन्तमुग्रं शृण्वन्तं धनानां सञ्जितमस्मिन्भरे वाजसातौ नृतमं शुनं मघवानमिन्द्रं हुवेम तथाऽप्येतं यूयमपि प्रशंसत ॥ ११ ॥

भावार्थः—अत्रवाचकलु०—हे मनुष्या येषां निष्फलं कर्म नास्ति तान् सर्वस्य रक्षणाय यूयं वृणुतेति ॥ ११ ॥

अत्राग्न्यादीनां पदार्थानां तुरङ्गदृष्टान्तेनोपदेशादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिर्वेद्या ॥

इति पञ्चत्रिंशत्तमं सूक्तमष्टादशो वर्गश्च समाप्तः ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे हम लोग(ऊतये)रक्षा आदि के लिये (समत्सु) संग्रामों में (वृत्राणि) हम लोगों के बल को घेरने वाली शत्रु की सेनाओं को सूर्य्य के सदृश शत्रुओं के (घ्नन्तम्) नाशकारक (उग्रम्) तेजस्वी (शृण्वन्तम्) सत्पुरुष के वचनों के सुनने (धनानाम्) विद्या और सुवर्ण आदिकों के (सञ्जितम्) उत्तम प्रकार जीतने वाले (अस्मिन्) इस शिल्प व्यवहार (वाजसातौ) अन्नों के विभाग और (भरे) युद्ध में (नृतमम्) पुरुषोत्तम (शुनम्) सुखकारक (मघवानम्) बहुत धनयुक्त (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य वाले जन को (हुवेम) प्रशंसा से पुकारें वैसे इस की आप लोग भी प्रशंसा करें ॥११॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो जिन लोगों का निष्फल कर्म नहीं है उन को सब की रक्षा के लिये आप लोग स्वीकार करें ॥ ११ ॥

इस सूक्त में अग्नि आदि पदार्थों और घोड़े के दृष्टान्त से उपदेशक करने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह पैंतीसवां सूक्त और अठारहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

अथैकादशर्चस्य षट्त्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य १—९ । ११ विश्वामित्रः । १० घोर आङ्गिरस ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ । ७ । १० । ११ त्रिष्टुप् । २ । ३ । ६ । ८ निचृत्त्रिष्टुप् । ९ विराट् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । ४ भुरिक् पङ्क्तिः । ५ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अथ मनुष्याः केनाचरणेन सुखमाप्नुयुरित्याह ॥

अब ग्यारह ऋचा वाले छत्तीशवें सूक्त का प्रारम्भ है उस के पहिले मन्त्र से मनुष्य किस प्रकार के आचरण से सुख को प्राप्त हों इस वि० ॥

इमामू षु प्रभृतिं सातये धाः शश्वच्छश्वदूतिभिर्यादमानः । सुतेसुते वावृधे वर्धनेभिर्यः कर्मभिर्महद्भिः सुश्रुतो भूत् ॥ १ ॥

इमाम् । ऊँ इति । सु । प्रऽभृतिम् । सातये । धाः । शश्वत्ऽशश्वत् । ऊतिऽभिः । यादमानः । सुतेऽसुते । ववृधे । वर्धनेऽभिः । यः । कर्मऽभिः । महत्ऽभिः । सुऽश्रुतः । भूत् ॥ १ ॥

पदार्थः—(इमाम्) (उ) वितर्के (सु) शोभने (प्रभृतिम्) प्रकृष्टां धारणाम् (सातये) संविभागाय (धाः) दध्याः

(शश्वच्छश्वत्) व्यापकं व्यापकं वस्तु (ऊतिभिः) रक्षणादिभिः (यादमानः) याचमानः । अत्र वर्णव्यत्ययेन चस्य दः (सुतेसुते) निष्पन्ने निष्पन्ने पदार्थे (वावृधे) वर्धेत (वर्धनेभिः) वर्धकैः साधनैः (यः) (कर्मभिः) कर्त्तुरीप्सिततमैः (महद्भिः) (सुश्रुतः) शोभनं श्रुतं यस्य सः (भूत्) भवेत् । अत्राडभावः ॥ १ ॥

अन्वयः—हे विद्वन् यो विद्यां यादमानस्त्वमूतिभिः सातय इमां प्रभृतिं शश्वच्छश्वद्वस्तु च सु धा वर्द्धनेभिर्महद्भिः कर्मभिः सुतेसुते वावृधे स उ सुश्रुतो भूत् ॥ १ ॥

भावार्थः—ये मनुष्या कार्य्यविज्ञानमारभ्य परम्परं सूक्ष्मकारण-पर्य्यन्तं विभुं पदार्थं विज्ञाय उपयुञ्जीरन् तेऽत्र जगति वर्धेरन् । ये विद्वद्भ्यो विद्यामेव याचन्ते ते बहुश्रुतो जायन्ते ॥ १ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् पुरुष (यः) जो विद्या की (यादमानः) याचना करते हुए आप (ऊतिभिः) रक्षण आदिकों से (सातये) संविभाग के लिये (इमाम्) इस (प्रभृतिम्) उत्तम धारणा और (शश्वच्छश्वत्) व्यापक व्यापक वस्तु को (सु) उत्तम प्रकार (धाः) धारण करें (वर्धनेभिः) वृद्धि के साधनों और (महद्भिः) बड़े (कर्मभिः) करने वाले के अतीव चाहे हुए व्यवहारों से (सुतेसुते) उत्पन्न उत्पन्न हुए पदार्थ में (वावृधे) बढ़ें (उ) वही (सुश्रुतः) उत्तम प्रकार श्रोता (भूत्) होवैं ॥ १ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य कार्य्य के विज्ञान का प्रारम्भ करके पर पर अर्थात् बड़े से छोटे उस से और छोटे उस से भी छोटे इत्यादि सूक्ष्म कारण पर्य्यन्त व्यापक परमाणुरूप पदार्थ को जान कर उपयोग करैं कार्य में लावैं वे इस संसार में अत्यन्त वृद्धि को प्राप्त होवैं और जो लोग विद्वान् जनों से केवल विद्या की ही याचना करते हैं वे बहुश्रुत होते हैं ॥ १ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥
फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इन्द्राय सोमाः प्रदिवो विदाना ऋभुर्येभिर्वृषपर्वा विहायाः । प्रयम्यमानान्प्रति षू गृभायेन्द्र पिब वृषधूतस्य वृष्णः ॥ २ ॥

इन्द्राय । सोमाः । प्रऽदिवः । विदानाः । ऋभुः । येभिः । वृषऽपर्वा । विऽहायाः । प्रऽयम्यमानान् । प्रति । सु । गृभाय । इन्द्र । पिब । वृषऽधूतस्य । वृष्णः ॥ २ ॥

पदार्थः—(इन्द्राय) परमैश्वर्याय (सोमाः) ये सुन्वान्ति सूयन्ते वा ते पदार्थाः (प्रदिवः) प्रकृष्टा द्यौः प्रकाशमाना विद्या येषान्ते (विदानाः) लभमानाः (ऋभुः) मेधावी । ऋभुरिति मेधाविना० निघं० ३ । १५ (येभिः) यैः (वृषपर्वा) वृषाणि समर्थानि पर्वाणि पालनानि यस्य सः (विहायाः) योऽनर्थान् विजहाति सः (प्रयम्यमानान्) प्रकर्षेण प्रापितनियमान् (प्रति) (सु) (गृभाय) गृहाण (इन्द्र) ऐश्वर्य्ययुक्त (पिब) (वृषधूतस्य) वृषैः सेचनैर्यो धूतो विलोडितस्तस्य (वृष्णः) वर्धकस्य ॥ २ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यथा वृषपर्वा विहाया ऋभुर्येभिः प्रयम्यमानान् जानाति तथेन्द्राय सोमाः प्रदिवो विदानाः सन्त्येतान् यूयं विजानीत । हे इन्द्र त्वमेतान् प्रति सुगृभाय वृषधूतस्य वृष्णो रसं पिब ॥ २ ॥

भावार्थः—हे मनुष्या इह संसारे यथाऽऽप्ता दुष्टं व्यवहारं त्यक्त्वा श्रेष्ठमाचर्य्य युक्ताहारविहारेणारोगा दीर्घायुषो भवन्ति तथैव यूयमपि भवत ॥ २ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (वृषपर्वा) समर्थ पालनों वाला (विहायाः) अनर्थों का नाशकारी (ऋभुः) बुद्धिमान् जन (येभिः) जिन लोगों से (प्रयम्यमानान्) अत्यन्त नियमयुक्तों को जानता है वैसे (इन्द्राय) अत्यन्त ऐश्वर्य्य के लिये (सोमाः) उत्पन्न करने वाले वा उत्पन्न किये गये पदार्थ (प्रदिवः) प्रकाशित विद्यायुक्त (विदानाः) प्राप्त हुए हों इन को आप लोग जानिये। हे (इन्द्र) ऐश्वर्य्य से युक्त पुरुष आप इन लोगों को (प्रति, सु, गृभाय) अच्छे प्रकार ग्रहण कीजिये और (वृषधूतस्य) सेचनों से मथे हुए (वृष्णः) बढ़ाने वाले रस का (पिब) पान कीजिये ॥ २ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो इस संसार में जैसे श्रेष्ठ यथार्थवक्ता पुरुष दुष्ट व्यवहार का त्याग और श्रेष्ठ आचरण का ग्रहण करके नियमित आहार विहार से रोगरहित और अधिक अवस्था वाले होते हैं वैसे ही आप लोग भी हूजिये ॥२॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

पिबा वर्धस्व तव घा सुतास इन्द्र सोमासः प्रथमा उतेमे । यथापिबः पूर्व्याँ इन्द्र सोमाँ एवा पाहि पन्यो अद्या नवीयान् ॥ ३

पिब । वर्धस्व । तव । घ । सुतासः । इन्द्र । सोमासः । प्रथमाः । उत । इमे । यथा । अपिबः । पूर्व्यान् । इन्द्र । सोमान् । एव । पाहि । पन्यः । अद्य । नवीयान् ॥ ३ ॥

पदार्थः—(पिब) अत्र द्व्यचोऽतस्तिङ इति दीर्घः (वर्धस्व) (तव) (घा) एव अत्र निपातस्य चेति दीर्घः (सुतासः) निष्पन्नाः (इन्द्र) ऐश्वर्य्यमिच्छो (सोमासः) ऐश्वर्य्यकराः पदार्थाः (प्रथमाः) आदिमाः (उत) (इमे) (यथा) (अपिबः) पिबति (पूर्व्यान्)

पूर्वैर्निष्पादितान् (इन्द्र) (सोमान्) उत्तमान् सोमरसैश्वर्य्यादियुक्तान् (एव) निश्चये (पाहि) (पन्यः) स्तुत्यः (अद्य) इदानीम्। अत्र संहितायामिति दीर्घः (नवीयान्) नूतनः॥ ३॥

अन्वयः-हे इन्द्र यथा पन्यो नवीयाँस्त्वमद्य पूर्व्यान् सोमानपिबस्तथैतान् पाहि। हे इन्द्र तव य इमे प्रथमाः सुतासः सोमासो घ सन्ति तान् पाहि उतोत्तमान् रसान् पिब तैरेव वर्धस्व॥ ३॥

भावार्थः-अत्रोपमालं०-ये मनुष्या सुसंस्कृतान् रसान् पिबेयुस्ते वर्धेरन्। ये वृद्धा भूत्वा धर्ममाचरेयुस्ते सर्वैश्वर्य्यमाप्नुयुः॥ ३॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) ऐश्वर्य की इच्छा करने वाले (यथा) जैसे (पन्यः) स्तुति करने योग्य (नवीयान्) नवीन आप (अद्य) इस समय (पूर्व्यान्) पूर्व हुए जनों से उत्पन्न (सोमान्) श्रेष्ठ सोमलता रसरूप ऐश्वर्य आदि से युक्त पदार्थों का (अपिबः) पान करते हैं वैसे ही उन का (पाहि) पालन करो। हे (इन्द्र) तेजस्वी जन (तव) आप के जो (इमे) ये (प्रथमाः) पहिले (सुतासः) उत्पन्न हुए (सोमासः) ऐश्वर्य करने वाले पदार्थ (घ) ही हैं उन का पालन करो (उत) और उत्तम रसों का (पिब) पान करो उन से (एव) ही (वर्धस्व) वृद्धि को प्राप्त होओ॥ ३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०-जो मनुष्य उत्तम प्रकार संस्कार युक्त रसों का पान करें उन की वृद्धि होवै और जो वृद्धि को प्राप्त हो कर धर्म का आचरण करें वे सम्पूर्ण ऐश्वर्य को प्राप्त होवैं॥ ३॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं॥

म॒हाँ अम॑त्रो वृ॒जने॑ विर॒प्श्यु१॒॑ग्रं शवः॑ पत्यते धृ॒ष्ण्वोजः॑। नाह॑ विव्याच पृथि॒वी च॒नैनं॒ यत्सोमा॑सो॒ हर्य॑श्व॒मम॑न्दन्॥ ४॥

म॒हान् । अम॑त्रः । वृ॒जने॑ । वि॒ऽर॒प्शी । उ॒ग्रम् । शवः॑ । प॒त्य॒ते॒ । धृ॒ष्णु । ओजः॑ । न । अह॑ । वि॒व्या॒च॒ । पृ॒थि॒वी । च॒न । ए॒न॒म् । यत् । सोमा॑सः । हरि॑ऽअश्वम् । अम॑न्दन् ॥ ४ ॥

पदार्थः—(महान्) (अमत्रः) ज्ञानवान् (वृजने) बले (विरप्शी) विविधा विरप्शा प्रसिद्धा उपदेशा विद्यन्ते यस्य सः (उग्रम्) कठिनं दृढम् (शवः) बलम् (पत्यते) प्राप्नोति (धृष्णु) प्रगल्भम् (ओजः) पराक्रमः (न) निषेधे (अह) विनिग्रहे (विव्याच) छलयति (पृथिवी) भूमिः (चन) (एनम्) (यत्) ये (सोमासः) ऐश्वर्य्ययुक्ताः (हर्यश्वम्) हरयो हरणशीला अश्वा यस्य तम् (अमन्दन्) आनन्देयुः ॥ ४ ॥

अन्वयः—योऽमत्रो विरप्शी महान्वृजने उग्रं शवो धृष्ण्वोजः पत्यते । एनं कश्चन न विव्याचाह एनं पृथिवी प्राप्नुयात् यद्यं हर्यश्वं सोमासोऽमन्दन्त्स तान् सततं हर्षयेत् ॥ ४ ॥

भावार्थः—मनुष्येषु स एव महान् भवति यः शरीरात्मसेनामित्र-बलाऽऽरोग्यधर्मविद्या वर्धयति स छलादिदोषांस्त्यक्त्वा सर्वोपकारं करोति ॥ ४ ॥

पदार्थः—जो (अमत्रः) ज्ञानी (विरप्शी) अनेक प्रकार के प्रसिद्ध उपदेशों से पूर्ण (महान्) श्रेष्ठ (वृजने) बल में (उग्रम्) कठिन दृढ़ (शवः) बल और (धृष्णु) प्रचण्ड (ओजः) पराक्रम (पत्यते) प्राप्त होता है (एनम्) इस को कोई पुरुष (चन) कुछ (न) नहीं (विव्याच) छलता है (अह) हा ! इस को (पृथिवी) भूमि प्राप्त होवे (यत्) जिस (हर्यश्वम्) ले चलने वाले घोड़ों युक्त जन को (सोमासः) ऐश्वर्य से युक्त पुरुष (अमन्दन्) पसन्द करें वह उन को निरन्तर प्रसन्न करे ॥ ४ ॥

भावार्थः—मनुष्यों में वही पुरुष श्रेष्ठ होता है जो शरीर आत्मा सेना-मित्र बल आरोग्य धर्म और विद्या की वृद्धि करता है वह छल आदि दोषों का त्याग करके सब का उपकार करता है ॥ ४ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥
फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

महाँ उग्रो वावृधे वीर्याय समाचक्रे वृषभः काव्येन । इन्द्रो भगो वाजदा अस्य गावः प्र जायन्ते दक्षिणा अस्य पूर्वीः ॥ ५ ॥ १९ ॥

महान् । उग्रः । ववृधे । वीर्याय । समऽआचक्रे । वृषभः । काव्येन । इन्द्रः । भगः । वाजऽदाः । अस्य । गावः । प्र । जायन्ते । दक्षिणाः । अस्य । पूर्वीः ॥ ५ ॥ १९ ॥

पदार्थः—(महान्) पूज्यतमो महाशयः (उग्रः) तीव्रभाग्योदयः (वावृधे) वर्धते (वीर्याय) बलाय (समाचक्रे) समाकरोति (वृषभः) बलिष्ठः (काव्येन) कविना मेधाविना निर्मितेन शास्त्रेण (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् (भगः) भजनीयः (वाजदाः) यो वाजमन्नादिकं ददाति सः (अस्य) (गावः) धेनवः (प्र) (जायन्ते) उत्पद्यन्ते (दक्षिणाः) दानानि (अस्य) (पूर्वीः) पूर्णाः ॥ ५ ॥

अन्वयः—यो वाजदा भगो वृषभ उग्रो महानिन्द्रः काव्येन वीर्याय वावृधे समाचक्रेऽस्य गावोऽस्य दक्षिणाः पूर्वीः प्रजायन्ते ॥५॥

भावार्थः—यो विद्वान् सुपात्रकुपात्रौ सुपरीक्ष्य सत्काराऽपकारौ करोति तस्यैव सर्वे पशव आनन्दाश्चोपकृता भवन्ति ॥ ५ ॥

पदार्थः—जो (वाजदाः) अन्न आदि का देने वाला (भगः) सेवा करने योग्य (वृषभः) बल युक्त (उग्रः) उत्तम भाग्योदय विशिष्ट (महान्) अतिआदर करने योग्य महाशय (इन्द्रः) ऐश्वर्य्य वाला (काव्येन) बुद्धिमान् पुरुष ने बनाये हुए शास्त्र से (वीर्याय) बल के लिये (वावृधे) बढ़ता और (समाचक्रे) संयुक्त करता है (अस्य) इस पुरुष की (गावः) गौवें और (अस्य) इस की (दक्षिणाः) दान कर्म (पूर्वीः) पूर्ण रूप से सिद्ध (प्र, जायन्ते) होते हैं ॥ ५ ॥

भावार्थः—जो विद्यावान् पुरुष श्रेष्ठ और अश्रेष्ठ सुपात्र कुपात्रों की उत्तम प्रकार परीक्षा करके सत्कार और अपकार यथायोग्य करता है उसी पुरुष के सम्पूर्ण पशु और आनन्द उपकार युक्त होते हैं ॥ ५ ॥

अथ विद्वद्गुणानाह ॥

अब विद्वान् के गुणों को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

प्र यत्सिन्धवः प्रसवं यथायन्नापः समुद्रं रथ्येव जग्मुः । अतश्चिदिन्द्रः सदसो वरीयान्यदीं सोमः पृणाति दुग्धो अंशुः ॥ ६ ॥

प्र । यत् । सिन्धवः । प्रऽसवम् । यथा । आयन् । आपः । समुद्रम् । रथ्याऽइव । जग्मुः । अतः । चित् । इन्द्रः । सदसः । वरीयान् । यत् । ईम् । सोमः । पृणाति । दुग्धः । अंशुः ॥ ६ ॥

पदार्थः—(प्र) (यत्) ये (सिन्धवः) नद्यः (प्रसवम्) प्रसूयन्ते यस्मात्तं मेघम् (यथा) (आयन्) गच्छन्ति (आपः) जलानि (समुद्रम्) अन्तरिक्षम् (रथ्येव) रथेषु साध्वी गतिरिव (जग्मुः) (अतः) (चित्) अपि (इन्द्रः) राजा (सदसः)

सभाः (वरीयान्) (यत्) यः (ईम्) जलम् (सोमः) ओषधिगणः (पृणाति) सुखयति (दुग्धः) प्रपूर्णः (अंशुः) ओषधिसारः ॥ ६ ॥

अन्वयः—यथा सिन्धवः प्रसवमापः समुद्रं मायँस्तथा यद्ये शुभान्गुणानीयू रथ्येव सर्वत्र प्रजग्मुस्तैः सह चिद्यदिन्द्रो वरीयान् सन्सदसोगच्छदतः स दुग्धोंऽशुः सोम ईं प्राप्त इव सर्वान्पृणाति ॥ ६ ॥

भावार्थः—अत्रोपमावाचकलु०—ये मनुष्या निर्वैरा भूत्वा सर्वेषामुपकारं कर्त्तुमिच्छेयुस्तान्प्रति नद्यः समुद्रमिव जलान्यन्तरिक्षमिवाऽऽभिमुख्यं गच्छन्ति तेभ्यः सुशिक्षां प्राप्य सुषिक्त ओषधिगण इव सर्वान् सुखयितुं प्रभवन्ति ॥ ६ ॥

पदार्थः—(यथा) जैसे (सिन्धवः) नदियां (प्रसवम्) मेघ को वा (आपः) जल (समुद्रम्) अन्तरिक्ष को (आयन्) प्राप्त होते हैं वैसे (यत्) जो उत्तम गुणों को प्राप्त होवैं वा (रथ्येव) रथों में जो उत्तम चाल उस के सदृश सब स्थानों में (प्र,जग्मुः) प्राप्त हुए उन के साथ (चित्) भी (यत्) जो (इन्द्रः) राजा (वरीयान्) श्रेष्ठ पुरुष होता हुआ (सदसः) सभाओं को प्राप्त होवै (अतः) इस से वह (दुग्धः) गुणों से पूर्ण (अंशुः) ओषधियों का सार भाग और (सोमः) ओषधियों का समूह (ईम्) जल को जैसे प्राप्त हो वैसे सम्पूर्ण प्राणियों को (पृणाति) सुख देता है ॥ ६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलु०—जो मनुष्य वैर को त्याग के सम्पूर्ण प्राणियों के उपकार करने की इच्छा करैं उन के प्रति जैसे नदियां समुद्र को और जल अन्तरिक्ष के सन्मुख को प्राप्त होते हैं वैसे सन्मुख जाते हैं उन से उत्तम शिक्षा को प्राप्त उत्तम प्रकार से सींचे गये औषधियों के समूह के सदृश सम्पूर्ण प्राणियों के सुख देने को समर्थ होते हैं ॥ ६ ॥

अथ राजप्रजागुणानाह ॥

अब राजा और प्रजा के गुणों को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

समुद्रेण सिन्धवो यादमाना इन्द्राय सोमं सुषुतं भरन्तः। अंशुं दुहन्ति हस्तिनो भरित्रैर्मध्वः पुनन्ति धारया पवित्रैः ॥ ७ ॥

समुद्रेण । सिन्धवः । यादमानाः । इन्द्राय । सोमम् । सुऽसुतम् । भरन्तः । अंशुम् । दुहन्ति । हस्तिनः । भरित्रैः । मध्वः । पुनन्ति । धारया । पवित्रैः ॥ ७ ॥

पदार्थः-(समुद्रेण) सागरेण सह (सिन्धवः) नद्य इव (यादमानाः) याचमानाः (इन्द्राय) ऐश्वर्य्याय (सोमम्) पदार्थसमूहम् (सुषुतम्) सुष्ठु निष्पादितम् (भरन्तः) धरन्तः पुष्णन्तः (अंशुम्) सारम् (दुहन्ति) पिपुरति (हस्तिनः) प्रशस्ता हस्ता विद्यन्ते येषान्ते (भरित्रैः) धृतैः पोषितैः साधनैः (मध्वः) मधुरस्य (पुनन्ति) (धारया) (पवित्रैः) शुद्धैः ॥ ७ ॥

अन्वयः—ये समुद्रेण सिन्धव इव विदुषः सङ्गत्येन्द्राय विद्यां यादमानाः सुषुतमंशुं सोमं भरन्तो हस्तिनो मध्वः पवित्रैर्भरित्रैर्धारया पुनन्ति ते कामं दुहन्ति ॥ ७ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यथा सर्वतो जलादिकं हृत्वा नद्यो वेगेन गत्वा समुद्रं प्राप्य रत्नवत्यः सत्यः शुद्धजला भवन्ति तथैव ब्रह्मचर्य्येण विद्या धृत्वा तीव्रसंवेगेनालंज्ञाना भूत्वा पवित्रोपचिताः परमेश्वरं प्राप्य सिद्धिमन्तो भूत्वा शुद्धाऽऽनन्दा मनुष्या जायन्ते ॥७॥

पदार्थः—जो (समुद्रेण) सागर के साथ (सिन्धवः) नदियां जैसे वैसे विद्वानों के साथ मेल करके (इन्द्राय) ऐश्वर्य्य के लिये विद्या की (यादमानाः) याचना करते हुए (सुषुतम्) उत्तम प्रकार उत्पन्न (सोमम्) पदार्थों के समूह को (भरन्तः) धारण और पुष्ट करते हुए (हस्तिनः) उत्तम हाथों से युक्त पुरुष (मध्वः) मधुर गुणसम्बन्धी (पवित्रैः) उत्तम शुद्ध (भरित्रैः) धारण और पोषण किये गये धनों के साथ (धारया) तीक्ष्ण धार से (पुनन्ति) पवित्र करते हैं वे काम को (दुहन्ति) पूर्ण करते हैं ॥ ७ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे सब ओर से जल आदि का ग्रहण कर नदियां वेग से समुद्र को प्राप्त हो रत्नवाली और शुद्ध जलयुक्त होती हैं वैसे ही ब्रह्मचर्य्य से विद्याओं को धारण करके तीक्ष्ण बुद्धि से पूर्णज्ञान वाले हो पवित्र हुए और परमेश्वर को प्राप्त हो कर सिद्धियों से परिपूर्ण शुद्ध आनन्दी मनुष्य होते हैं ॥ ७ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

ह्रदाइव कुक्षयः सोमधानाः समीं विव्याच सवना पुरूणि । अन्ना यदिन्द्रः प्रथमा व्याश वृत्रं जघन्वाँ अवृणीत सोमम् ॥ ८ ॥

ह्रदाःऽइव । कुक्षयः । सोमऽधानाः । सम् । ईम् इति । विव्याच । सवना । पुरूणि । अन्ना । यत् । इन्द्रः । प्रथमा । वि । आश । वृत्रम् । जघन्वान् । अवृणीत । सोमम् ॥ ८ ॥

पदार्थः—(ह्रदाइव) यथा गम्भीरा जलाशयास्तथा (कुक्षयः) उभयत उदरावयवाः (सोमधानाः) सोमानां धानाः येषु ते (सम्) (ईम्) जलम् (विव्याच) छलयति (सवना) सुन्वन्ति येषु

तानि (पुरूणि) बहूनि (अन्ना) अन्नानि (यत्) यः (इन्द्रः) सूर्य्य इव महाप्रकाशः (प्रथमा) प्रख्यातानि (वि) (आश) अश्नाति (वृत्रम्) मेघम् (जघन्वान्) हतवान् (अवृणीत) स्वीकरोति (सोमम्) ओषधिगणम् ॥ ८ ॥

अन्वयः—यस्य कुक्षयः सोमधाना ह्रदा इव सन्ति यद्यः पुरूणि सवना प्रथमा अन्ना ईं संविव्याच स इन्द्रो वृत्रं जघन्वान् सूर्य्य इव सोममवृणीत स्वादिष्ठान्भोगान्व्याश ॥ ८ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालं०—ये गम्भीराशयाः सूर्य्यवत्प्रतापवन्तो धृतैश्वर्य्याः स्वपरदोषान् हत्वा गुणैरैश्वर्य्यं स्वीकुर्वन्ति त एव प्रसन्नात्मानो भवन्ति ॥ ८ ॥

पदार्थः—जिस पुरुष के (कुक्षयः) दोनों ओर के उदर के अवयव (सोमधानाः) सोमरूप ओषधियों के बीजों से युक्त (ह्रदाइव) गम्भीर जलाशयों के सदृश वर्त्तमान हैं (यत्) तथा जो (पुरूणि) बहुत (सवना) ओषधियों के उत्पन्न रसों से युक्त (प्रथमा) प्रसिद्ध (अन्ना) अन्न और (ईम्) जल को (सम्, विव्याच) छलता है वह (इन्द्रः) सूर्य्य के समान महाप्रकाशमान (वृत्रम्) मेघ के (जघन्वान्) नाश करने वाले सूर्य्य के समान (सोमम्) ओषधियों के समूह का (अवृणीत) स्वीकार करता तथा स्वादुयुक्त पदार्थों का (वि, आश) स्वीकार करता है ॥ ८ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जो पुरुष गम्भीर अभिप्राय से युक्त सूर्य्य के सदृश प्रतापी ऐश्वर्य्य के धारण करने वाले अपने और दूसरों के दोषों को नाश करके ऐश्वर्य्य का स्वीकार करते हैं वे ही प्रसन्नात्मा होते हैं ॥ ८ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

आ तू भर माकिरेतत्परि ष्ठाद्विद्मा हि त्वा वसुपतिं वसूनाम्। इन्द्र यत्ते माहिनं दत्रमस्त्यस्मभ्यं तद्धर्यश्व प्र यन्धि ॥ ९ ॥

आ। तु। भर। माकिः। एतत्। परि। स्थात्। विद्म। हि। त्वा। वसुऽपतिम्। वसूनाम्। इन्द्र। यत्। ते। माहिनम्। दत्रम्। अस्ति। अस्मभ्यम्। तत्। हरिऽअश्व। प्र। यन्धि ॥ १ ॥

पदार्थः—(आ) समन्तात् (तु) पुनः। अत्र ऋचीत्यादिना दीर्घः (भर) धर (माकिः) निषेधे (एतत्) (परि) सर्वतः (स्थात्) तिष्ठेत् (विद्म) जानीयाम। अत्र द्व्यचोतस्तिङ इति दीर्घः (हि) यतः (त्वा) त्वाम् (वसुपतिम्) धनस्वामिनम् (वसूनाम्) धनानाम् (इन्द्र) ऐश्वर्य्यप्रद (यत्) (ते) तव (माहिनम्) महत्तमम् (दत्रम्) दानम् (अस्ति) (अस्मभ्यम्) (तत्) (हर्य्यश्व) हरयो वेगवन्तोऽश्वा यस्य तत्सम्बुद्धौ (प्र) (यन्धि) प्रयच्छ ॥ १ ॥

अन्वयः—हे इन्द्र यत्ते माहिनं दत्रमस्ति तदस्मभ्यं त्वं प्रयन्धि। हे हर्य्यश्व भवानेतन्माकिः परिष्ठाद्धि वसूनां वसुपतिं त्वा वयं विद्म तु त्वमेतत्सर्वमाभर ॥ १ ॥

भावार्थः—विद्वद्भिः सर्वान्प्रत्येवमुपदेष्टव्यं भवन्तो दोषान् विहाय गुणान्धृत्वा धनैश्वर्य्यं प्राप्यान्येभ्यः सुपात्रेभ्यो देयम् ॥ १ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) ऐश्वर्य के देने वाले (यत्) जो (ते) आप का (माहिनम्) अतिश्रेष्ठ (दत्रम्) दान (अस्ति) है (तत्) उसे (अस्मभ्यम्) हम लोगों के लिये आप (प्र, यन्धि) अच्छे प्रकार दीजिये और हे (हर्यश्व) वेगयुक्त घोड़ों वाले आप (एतत्) इस को (माकिः) न (परि, ष्ठात्) सब ओर से रोकिये (हि) जिस से कि (वसूनाम्) धनों के (वसुपतिम्) स्वामी (त्वा) आप को हम लोग (विद्म) जानैं इस से (तु) शीघ्र फिर आप इस सब को (आ) सब ओर से (भर) धारण करो ॥ १ ॥

भावार्थः—विद्वान् जनों को चाहिये कि सम्पूर्ण जनों के प्रति ऐसा उपदेश देवें कि आप लोग दोषों को त्याग गुणों को धारण और धन और ऐश्वर्य्य को प्राप्त हो के अन्य सुपात्र पुरुषों के लिये देवें ॥ ९ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अस्मे प्र यन्धि मघवन्नृजीषिन्निन्द्र रायो विश्ववारस्य भूरेः । अस्मे शतं शरदो जीवसे धा अस्मे वीराञ्छश्वत इन्द्र शिप्रिन् ॥ १० ॥

अस्मे इति । प्र । यन्धि । मघऽवन् । ऋजीषिन् । इन्द्र । रायः । विश्वऽवारस्य । भूरेः । अस्मे इति । शतम् । शरदः । जीवसे । धाः । अस्मे इति । वीरान् । शश्वतः । इन्द्र । शिप्रिन् ॥ १० ॥

पदार्थः—(अस्मे) अस्मभ्यम् (प्र) (यन्धि) प्रयच्छ (मघवन्) बहुसत्कृतधनयुक्त (ऋजीषिन्) सरलस्वभाव (इन्द्र) सुखदातः (रायः) धनस्य (विश्ववारस्य) समग्रं सुखं स्वीकृतं यमात्तस्य (भूरेः) बहुविधस्य (अस्मे) अस्मान् (शतम्) (शरदः) शतं वर्षाणि (जीवसे) जीवितुम् (धाः) धेहि (अस्मे) अस्माकम् (वीरान्) विक्रान्तान् जनान् (शश्वतः) निरन्तरान् (इन्द्र) सूर्य इव प्रभावयुक्त (शिप्रिन्) शोभनहनुनासिक ॥ १० ॥

अन्वयः—हे शिप्रिन्निन्द्र त्वमस्मे शश्वतो वीरान् धाः। हे मघवन्नृजीषिन्निन्द्र त्वमस्मे विश्ववारस्य भूरे रायो भागं प्रयन्धि। अस्मे जीवसे शतं शरदो धाः ॥ १० ॥

भावार्थः—त एव सरलस्वभावा आप्ता विद्वांसः सन्ति ये श्रियं विभज्य भुञ्जते ब्रह्मचर्य्योपदेशेन शतायुषः कृत्वा सर्वेषु कर्म्मसूत्साहितान्निर्भयान् पुरुषार्थिनः कुर्वन्ति ॥ १० ॥

पदार्थः—हे (शिप्रिन्) सुन्दर नासिका और ठोढ़ी वाले (इन्द्र) सुख के दाता आप (अस्मे) हम लोगों के लिये (शश्वतः) निरन्तर वर्त्तमान (वीरान्) पराक्रमी मनुष्यों को धारण करो हे (मघवन्) बहुत सत्कारयुक्त धन से परिपूर्ण (ऋजीषिन्) सरल स्वभाव वाले (इन्द्र) सूर्य के सदृश प्रतापी आप (अस्मे) हम लोगों का (विश्ववारस्य) सम्पूर्ण सुख स्वीकार किया जाता है जिस से उस (भूरेः) अनेक प्रकार (रायः) धन के भाग को (प्र, यन्धि) दीजिये (अस्मे) हम लोगों को (जीवसे) जीवने के लिये (शतम्, शरदः) सौ वर्षों को (धाः) धारण कीजिये ॥ १० ॥

भावार्थः—वे ही उत्तम स्वभाव वाले यथार्थवक्ता विद्वान् लोग हैं कि जो लक्ष्मी का विभाग करके अर्थात् अन्य जनों को बांट के फिर आप भोजन करते हैं और मनुष्यों को ब्रह्मचर्य्य के उपदेश से सौ वर्ष की अवस्था वाले करके सम्पूर्ण कर्मों में उत्साही भयरहित और पुरुपार्थी करते हैं ॥ १० ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ । शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ॥ ११ ॥ २० ॥

शुनम् । हुवेम । मघऽवानम् । इन्द्रम् । अस्मिन् । भरे । नृऽतमम् । वाजऽसातौ । शृण्वन्तम् । उग्रम् । ऊतये । समत्ऽसु । घ्नन्तम् । वृत्राणि । सम्ऽजितम् । धनानाम् ॥ ११ ॥ २० ॥

पदार्थः—(शुनम्) सर्वेषां सुखकरम् (हुवेम) स्वीकुर्याम (मघवानम्) बहुविद्याधनम् (इन्द्रम्) दुष्टविदारकं राजानम् (अस्मिन्) भरे पोषणे (नृतमम्) अतिशयेन नायकम् (वाजसातौ) वाजानामन्नादीनां विभागो यस्मिंस्तस्मिन् (शृण्वन्तम्) सकल-शास्त्रश्रोतारम् (उग्रम्) तेजस्विनम् (ऊतये) रक्षणाद्याय (समत्सु) सङ्ग्रामेषु (घ्नन्तम्) (वृत्राणि) मेघावयवान्सूर्य इव शत्रून् (सञ्जितम्) सम्यग् जयशीलम् (धनानाम्) ॥ ११ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यथा वयमस्मिन् वाजसातौ भरे शुनं मघवानं नृतममूतये शृण्वन्तमुग्रं समत्सु वृत्राणि घ्नन्तं धनानां सञ्जितमिन्द्रं हुवेम तथैतं यूयमपि स्वीकुरुत ॥ ११ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—योऽखिलविद्याशुभगुणः सर्वेषां सुखप्रदः प्रजापालनतत्परः शत्रुविनाशने रतो धार्मिको नरोत्तमो भवेत्तं राज्येऽधिकृत्य तच्छासने वर्त्तित्वा सर्वेऽतुलं सुखं भुञ्जतामिति ॥ ११ ॥

अत्रेन्द्रविद्वद्राजप्रजागुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिर्वेद्या ॥

इति षट्त्रिंशत्तमं सूक्तं विंशतितमो वर्गश्च समाप्तः ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे हम लोग (अस्मिन्) इस (वाजसातौ) अन्न आदि का विभाग जिस में ऐसे (भरे) पालन में (शुनम्) सब प्राणियों के सुखकारक (मघवानम्) बहुत विद्या और धनयुक्त (नृतमम्) अतिशय पुरुषों में अग्रणी (ऊतये) रक्षा आदि के लिये (शृण्वन्तम्) सकल शास्त्र सुनने वाले (उग्रम्) तेजधारी (समत्सु) संग्रामों में (वृत्राणि) मेघों के अवयवों को

जैसे सूर्य वैसे शत्रुओं को (सञ्जितम्) उत्तम प्रकार जीतने वाले (इन्द्रम्) दुष्ट जनों के नाशकर्त्ता राजा को (हुवेम) स्वीकार करें वैसे इस का आप लोग भी स्वीकार करें ॥ ११ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो सम्पूर्ण विद्याविशिष्ट शुभगुणी सब को सुख देने वाला प्रजाओं के पालन में तत्पर शत्रुओं के नाश करने में उद्यत धर्मी और पुरुषों में श्रेष्ठ पुरुष हो उस के लिये राज्य में अधिकार दे और उस की आज्ञा में वर्त्तमान हो कर सब लोग अत्यन्त सुख भोग करो ॥ ११ ॥

इस सूक्त में इन्द्र विद्वान् राजा और प्रजा के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह छत्तीसवां सूक्त और वीसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

अथैकादशर्चस्य सप्तत्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य विश्वामित्र ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ । ३ । ७ निचृद्गायत्री । २ । ४ । ५ । ६ । ८ । ९ । १० गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः । ११ निचृदनुष्टुप् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अथ राजगुणानाह ॥

अब ग्यारह ऋचा वाले सैंतीशवें सूक्त का प्रारम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में राजा के गुणों को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

वार्त्रहत्याय शवसे पृतनाषाह्याय च । इन्द्र त्वा वर्त्तयामसि ॥ १ ॥

वार्त्रऽहत्याय । शवसे । पृतनाऽसह्याय । च । इन्द्र । त्वा । आ । वर्त्तयामसि ॥ १ ॥

पदार्थः—(वार्त्रहत्याय) वृत्रहत्याया इदं तस्मै (शवसे) बलाय (पृतनाषाह्याय) पृतना सह्या येन तस्मै (च) (इन्द्र) सेनाधीश (त्वा) त्वाम् (आ) (वर्त्तयामसि) वर्त्तयामः ॥ १ ॥

अन्वयः—हे इन्द्र यथा वयं वार्त्रहत्याय सूर्यमिव पृतनाषाह्याय शवसे त्वा वर्त्तयामसि तथा त्वं चास्मानेतस्मै वर्त्तय ॥ १ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—युद्धविद्याशिक्षकैः सेनाध्यक्षाभृत्याश्च सम्यक् शिक्षणीया यतो ध्रुवो विजयः स्यात् ॥ १ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) सेना के अधीश जैसे हम लोग (वार्त्रहत्याय) मेघ के नाश करने के लिये जो बल उस के लिये सूर्य के समान (पृतनाषाह्याय) संग्राम के सहने वाले (शवसे) बल के लिये (त्वा) आप का (वर्त्तयामसि)आश्रय करते हैं वैसे आप (च) भी हम लोगों को इस बल के लिये वर्त्तो ॥ १ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—युद्ध करने की विद्या के शिक्षकों को चाहिये कि सेनाओं के अध्यक्ष और नौकरों को उत्तम प्रकार शिक्षा देवें जिस से निश्चित विजय होवे ॥ १ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अर्वाचीनं सु ते मन उत चक्षुः शतक्रतो । इन्द्र कृण्वन्तु वाघतः ॥ २ ॥

अर्वाचीनम् । सु । ते । मनः । उत । चक्षुः । शतक्रतो इति शतऽक्रतो । इन्द्र । कृण्वन्तु । वाघतः ॥ २ ॥

पदार्थः—(अर्वाचीनम्) इदानीं सुशिक्षितम् (सु) (ते) तव (मनः) अन्तःकरणम् (उत) (चक्षुः) चक्षुरादीन्द्रियम्

(शतक्रतो) शतमसङ्ख्यः क्रतुः प्रज्ञा यस्य तत्सम्बुद्धौ (इन्द्र) दुष्टानां विदारक (कृण्वन्तु) निष्पादयन्तु (वाघतः) ये वाचा दोषान् घ्नन्ति ते मेधाविनः। वाघत इति मेधाविना०निघं० ३ । १५ ॥ २ ॥

अन्वयः—हे शतक्रतो इन्द्र यथा वाघतस्तेऽर्वाचीनं मन उत चक्षुश्च शुभगुणान्वितं सुकृण्वन्तु तथैव भवानाचरतु ॥ २ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—राजादयो जनाः सदाऽऽप्तशिक्षायां वर्त्तित्वा धर्मार्थकाममोक्षान् साध्नुवन्तु ॥ २ ॥

पदार्थः—हे (शतक्रतो) असंख्य बुद्धियुक्त (इन्द्र) दुष्ट पुरुषों के नाश करने वाले जैसे (वाघतः) वाणी से दोषों के नाश करने वाले बुद्धिमान् लोग (ते) आप के (अर्वाचीनम्) इस समय उत्तम शिक्षायुक्त (मनः) अन्तः-करण (उत) और (चक्षुः) नेत्र आदि इन्द्रिय को उत्तम गुणों से युक्त (सु, कृण्वन्तु) सिद्ध करें वैसे ही आप आचरण करें ॥ २ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—राजा आदि जन सदा यथार्थवक्ता पुरुष की शिक्षा में वर्त्तमान हो के धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष, को सिद्ध करें ॥ २ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

नामा॑नि ते शतक्रतो॒ विश्वा॑भिर्गी॒र्भिरी॑महे ।
इन्द्रा॑भिमाति॒षाह्ये॑ ॥ ३ ॥

नामा॑नि । ते॒ । श॒तक्र॒तो॒ इति॑ शत॒ऽक्रतो । विश्वा॑भिः । ई॒मह॒े । इन्द्र॑ । अ॒भि॒मा॒ति॒ऽसह्ये॑ ॥ ३ ॥

पदार्थः—(नामानि) संज्ञाः (ते) तव (शतक्रतो) बहुप्रज्ञान (विश्वाभिः) सर्वाभिः (गीर्भिः) विद्यासुशिक्षाधर्मयुक्ताभिर्वाग्भिः

(ईमहे) याचामहे (इन्द्र) परमैश्वर्य्यहेतो राजन् (अभिमातिषाह्ये) अभिमातयोऽभिमानयुक्ताः शत्रवस्सह्या यस्मिन् सङ्ग्रामे तस्मिन् ॥ ३ ॥

अन्वयः—हे शतक्रतो इन्द्र यथा वयं विश्वाभिर्गीर्भिर्यस्य ते नामानि सार्थकानीमहे स त्वमस्मभ्यमभिमातिषाह्ये साहाय्यं देहि ॥३॥

भावार्थः—राजते विद्याविनयाभ्यां प्रकाशते स राजा यो नॄन्पाति स नृपो यो भुवं पाति स भूमिप इत्यादीनि सर्वाणि राज्ञो नामानि सार्थकानि सन्तु। यदा शत्रुभिः सह सङ्ग्रामो भवेत्तदा सर्वप्रकारेण रक्षको राजा भवेत् । एवं सति ध्रुवो विजयोऽन्यथा विपर्य्ययः ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे (शतक्रतो) बहुत बुद्धिमान् (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य्य के कारण से राजन् जैसे हम लोग (विश्वाभिः) संपूर्ण (गीर्भिः) विद्या उत्तम शिक्षा और धर्म से युक्त वाणियों से जिन (ते) आप के (नामानि) संज्ञाओं को अर्थ युक्त होने की (ईमहे) याचना करते हैं वह आप हम लोगों के लिये (अभिमातिषाह्ये) अभिमान युक्त शत्रु लोग सहने योग्य हैं जिसमें ऐसे संग्राम में सहायता दीजिये ॥ ३ ॥

भावार्थः—राजमान, विद्या और विनयों से प्रकाशमान, वह राजा, मनुष्यों की पालना करता वह नृप, और भूमि का पालन करता है वह भूमिप इत्यादि सब राजा के नाम सार्थक हों और जब शत्रुओं के साथ संग्राम होवे तो सब प्रकार से रक्षा करने वाला राजा होवे ऐसा होने से निश्चित विजय होना नहीं तो नहीं होता है ॥ ३ ॥

अथ प्रजागुणानाह ॥

अब प्रजा के गुणों को अगले मंत्र में कहते हैं ॥

पुरुष्टुतस्य धामभिः शतेन महयामसि । इन्द्रस्य चर्षणीधृतः ॥ ४ ॥

पुरुऽस्तुतस्य । धामऽभिः । शतेन । महयामसि । इन्द्रस्य । चर्षणिऽधृतः ॥ ४ ॥

पदार्थः—(पुरुष्टुतस्य) बहुभिः प्रशंसितस्य (धामभिः) जन्मस्थान नामभिः (शतेन) असङ्ख्येन (महयामसि) पूजयाम (इन्द्रस्य) परमैश्वर्ययुक्तस्य राज्ञः (चर्षणीधृतः) यश्चर्षणीन् मनुष्यान्धरति तस्य ॥४॥

अन्वयः—हे मनुष्या यथा वयं पुरुष्टुतस्य चर्षणीधृत इन्द्रस्य शतेन धामभिर्महयामसि । तथैतस्य सत्कारं यूयमपि कुरुत ॥ ४ ॥

भावार्थः—मनुष्यै राजादिन्यायकारिणां सर्वथा सत्कारः कर्त्तव्यो राजादयोपि प्रजास्थान् सदा सत्कुर्युरेवंकृते सत्युभयेषां मङ्गलोन्नतिर्भवति ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे हम लोग (पुरुष्टुतस्य) बहुतों से प्रशंसा पाये हुए और (चर्षणीधृतः) मनुष्यों को धारण करने वाले (इन्द्रस्य) अत्यन्त ऐश्वर्य से युक्त राजा का (शतेन) असङ्ख्य (धामभिः) जन्म स्थान और नामों से (महयामसि) पूजन करैं वैसे उस प्रशंसित का सत्कार आप लोग भी करो ॥४॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि राजा आदि न्यायकारी जनों का सब प्रकार सत्कार करैं और राजा आदि भी प्रजा जनों का सदा सत्कार करैं ऐसा करने पर राजा और प्रजा इन दोनों के मंगल की उन्नति होती है ॥ ४ ॥

पुनाराजविषयमाह ॥

फिर राजविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इन्द्रं वृत्राय हन्तवे पुरुहूतमुप ब्रुवे । भरेषु वाजसातये ॥ ५ ॥ २१ ॥

इन्द्रम् । वृत्राय । हन्तवे । पुरुऽहूतम् । उप । ब्रुवे । भरेषु । वाजऽसातये ॥ ५ ॥ २१ ॥

पदार्थः—(इन्द्रम्) परमैश्वर्य्यप्रदम् (वृत्राय) मेघ इव न्यायावरकाय शत्रवे (हन्तवे) हन्तुम् (पुरुहूतम्) बहुभिराहूतं प्रशंसितं वा (उप) समीपे (ब्रुवे) कथयामि (भरेषु) सङ्ग्रामेषु (वाजसातये) धनादिसंविभागाय ॥ ५ ॥

अन्वयः—हे सेनास्थवीरा यथा सेनाधीशोऽहं वृत्राय हन्तवे भरेषु वाजसातये पुरुहूतमिन्द्रमुपब्रुवे तथा यूयमप्येतमुपब्रुवन्तु ॥ ५ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यदा सङ्ग्रामः प्रवर्त्तेत तदा योधॄन्प्रत्यध्यक्षैर्यथा विजयः स्यात्तथोपदेष्टव्यम् । योद्धारश्चाधिष्ठातॄणामाज्ञायां सर्वथा वर्त्तेरन्नेवं सति कुतः पराजयः ? ॥ ५ ॥

पदार्थः—हे सेना में वर्त्तमान वीर पुरुषो जिस प्रकार सेना का अधीश मैं (वृत्राय) न्याय के आवरण करने वाले शत्रु के (हन्तवे) नाश के लिये तथा (भरेषु) संग्रामों में (वाजसातये) धन आदि को बांटने के लिये (पुरुहूतम्) बहुतों से पुकारे वा प्रशंसा किये गये (इन्द्रम्) अत्यन्त ऐश्वर्य्य के देने वाले राजा को (उप) समीप में (ब्रुवे) कहता हूं वैसे आप लोग भी इस के समीप कहो ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जब संग्राम प्रवृत्त होवै तो योधाओं के प्रति अध्यक्ष पुरुषों को चाहिये कि जिस प्रकार विजय हो वैसा उपदेश दें और योद्धा लोग अधिष्ठाता पुरुषों की आज्ञा में सब प्रकार वर्त्तमान होवैं ऐसा करने से कैसे पराजय हो ? ॥ ५ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

वाजे॑षु सास॒हिर्भ॑व॒ त्वामी॑महे शतक्रतो । इन्द्र॑ वृ॒त्राय॒ हन्त॑वे ॥ ६ ॥

वाजे॑षु । स॒स॒हिः । भ॒व॒ । त्वाम् । ई॒म॒हे॒ । श॒त॒क्र॒तो॒ इति॑ शत॑ऽक्रतो । इन्द्र॑ । वृ॒त्राय॑ । हन्त॑वे ॥ ६ ॥

पदार्थः—(वाजेषु) बह्वन्नविज्ञानादिसामग्र्यपेक्षेषु सङ्ग्रामेषु (सासहिः) भृशं सोढा (भव) (त्वाम्) (ईमहे) युद्धोपकरणै र्याचामहे (शतक्रतो) अमितप्रज्ञ (इन्द्र) दुष्टदलविदारक (वृत्राय) मेघमिव शत्रुम् (हन्तवे) हन्तुम् ॥ ६ ॥

अन्वयः—हे शतक्रतो इन्द्र वयं यं त्वा वृत्राय हन्तव ईमहे स त्वं वाजेषु सासहिर्भव ॥ ६ ॥

भावार्थः—यस्मिन् कर्मणि यस्य स्थापनं सभा कुर्यात्स तमधिकारं यथावदुन्नयेत् यस्याऽधिकारे यस्य नियोजनं स्यात्तदाज्ञां स कदाचिन्नोल्लङ्घयेत् ॥ ६ ॥

पदार्थः—हे (शतक्रतो) अति सूक्ष्म बुद्धियुक्त (इन्द्र) दुष्ट पुरुषों के दल के नाश करने वाले हम लोग जिन (त्वाम्) आप को (वृत्राय) मेघ के सदृश शत्रु के (हन्तवे) नाश करने को (ईमहे) युद्ध के उपकारक वस्तुओं के साथ याचना करते हैं वह आप (वाजेषु) जिन में बहुत अन्न और विज्ञान आदि सामग्री अपेक्षित हैं ऐसे संग्रामों में (सासहिः) अत्यन्त सहने वाले (भव) हूजिये ॥ ६ ॥

भावार्थः—जिस कर्म में जिस का स्थापन सभा करै वह पुरुष उस अधिकार की यथायोग्य उन्नति करै और जिस अधिकार में जिस का नियोग होवै वहां जो आज्ञा उस का वह कदाचित् उल्लङ्घन न करै ॥ ६ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

द्युम्नेषु पृतनाज्ये पृत्सुतूर्षु श्रवःसु च । इन्द्र साक्ष्वाभिमातिषु ॥ ७ ॥

द्युम्नेषु । पृतनाज्ये । पृत्सुतूर्षु । श्रवःऽसु । च । इन्द्र । साक्ष्व । अभिऽमातिषु ॥ ७ ॥

पदार्थः—(द्युम्नेषु) यशस्विषु धनप्रापकेषु वा (पृतनाज्ये) पृतनायाः सेनायाः सङ्ग्रामे (पृत्सुतूर्षु) पृत्नासु सेनासु त्वरमाणेषु हिंसकेषु (श्रवःसु) श्रवणेष्वन्नादिषु वा (च) (इन्द्र) (साक्ष्व) सहस्व (अभिमातिषु) अभिमानयुक्तेषु योद्धृषु ॥ ७ ॥

अन्वयः—हे इन्द्र त्वं पृत्सुतूर्षु श्रवःसु द्युम्नेष्वभिमातिषु च सत्सु पृतनाज्ये साक्ष्व ॥ ७ ॥

भावार्थः—ये विद्यमानेषु धनादिषु वीरसेनासु व्याख्यातृषु युद्धाऽभिमानिषु स्वप्रियेषु हृष्टपुष्टेषु सत्सु च शत्रुभिः सह सङ्ग्रामं कुर्वन्ति त एव ध्रुवं विजयं लभन्ते ॥ ७ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) तेजस्वी पुरुष आप (पृत्सुतूर्षु) सेनाओं में शीघ्रता से नाश करने वाले जनों वा (श्रवःसु) श्रवण वा अन्न आदि पदार्थों (द्युम्नेषु) वा यशस्वी वा धन की प्राप्ति कराने वाले विषयों में वा (पृतनाज्ये) सेना संबन्धी संग्राम में (साक्ष्व) सहन करो ॥ ७ ॥

भावार्थः—जो विद्यमान धन आदि पदार्थ वीर सेना व्याख्यान देने वाले और युद्ध के अभिमानी अपने प्रिय आनन्दित और पुष्ट पुरुषों के होने पर शत्रुओं के साथ संग्राम करते हैं वे ही पुरुष निश्चित विजय को प्राप्त होते हैं ॥ ७ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

शुष्मिन्तमं न ऊतये द्युम्निनं पाहि जागृविम् ।
इन्द्र सोमं शतक्रतो ॥ ८ ॥

शुष्मिन्ऽतमम् । नः । ऊतये । द्युम्निनम् । पाहि । जागृविम् । इन्द्र । सोमम् । शतक्रतो इति शतऽक्रतो ॥ ८ ॥

पदार्थः—(शुष्मिन्तमम्) प्रशंसितं बहुविधं वा बलं विद्यते यस्य तमतिशयितम् (नः) अस्माकम् (ऊतये) रक्षणाद्याय (द्युम्निनम्) यशस्विनं श्रीमन्तम् (पाहि) (जागृविम्) जागरूकम् (इन्द्र) सर्वाभिरक्षक राजन् (सोमम्) ऐश्वर्यम् (शतक्रतो) बहुप्रज्ञ बहुकर्मन् वा ॥ ८ ॥

अन्वयः—हे शतक्रतो इन्द्र त्वं न ऊतये शुष्मिन्तमं द्युम्निनं जागृविं सोमं च पाहि ॥ ८ ॥

भावार्थः—सर्वैःप्रजाराजजनैःसर्वाधीशं राजानमन्यानध्यक्षान्प्रति चैवं वाच्यं भवन्तोऽस्माकं रक्षकाणामैश्वर्य्यस्य च रक्षायामनलसा उद्यता भवन्तु ॥ ८ ॥

पदार्थः—हे (शतक्रतो) बहुत बुद्धि वा बहुत कर्म युक्त (इन्द्र) सब के रक्षक राजन् आप (नः) हम लोगों की (ऊतये) रक्षा आदि के लिये (शुष्मिन्तमम्) प्रशंसित वा बहुत प्रकार का बल जिस्के उस अतीव (द्युम्निनम्) यशस्वी लक्ष्मीवान् और (जागृविम्) जागने वाले जन और (सोमम्) ऐश्वर्य्य की (पाहि) रक्षा करो ॥ ८ ॥

भावार्थः—सब प्रजा और राजजनों को चाहिये कि सब के अधीश राजा और अन्य अध्यक्षों के प्रति ऐसा कहैं कि आप लोग हम लोगों के रक्षक पुरुषों की और ऐश्वर्य्य की रक्षा में निरालस और उद्यत होवैं ॥ ८ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इन्द्रियाणि शतक्रतो या ते जनेषु पञ्चसु ।
इन्द्र तानि त आ वृणे ॥ ९ ॥

इन्द्रियाणि । शतक्रतो इति शतऽक्रतो । या । ते । जनेषु । पञ्चऽसु । इन्द्र । तानि । ते । आ । वृणे ॥ ९ ॥

पदार्थः—(इन्द्रियाणि) इन्द्रस्य जीवस्य लिङ्गानि (शतक्रतो) अमितबुद्धे (या) यानि (ते) तव (जनेषु) प्रसिद्धेष्वध्यक्षेषु (पञ्चसु) राज्यसेनाकोशदूतत्वप्राड्विवाकत्वसंपन्नेष्वधिकारिषु (इन्द्र) ऐश्वर्ययोजक (तानि) (ते) तव (आ) (वृणे) शुभगुणैराच्छादयामि ॥ ९ ॥

अन्वयः—हे शतक्रतो इन्द्र पञ्चसु जनेषु या त इन्द्रियाणि सन्ति तानि ते ऽहमावृणे ॥ ९ ॥

भावार्थः—स एव राज्यं कर्त्तुमर्हति योऽमात्यानां चरित्राणि चक्षुषा रूपमिव प्रत्यक्षीकरोति यथा शरीरेन्द्रियगोलकसम्बन्धेन जीवस्य सर्वाणि कार्याणि सिध्यन्ति तथैव राजाऽमात्यसेनायोगेन राजकार्याणि साद्धुं शक्नोति ॥ ९ ॥

पदार्थः—हे (शतक्रतो) अपार बुद्धि युक्त (इन्द्र) ऐश्वर्य्य को योग करने वाले (पञ्चसु) पांच राज्य, सेना, कोश, दूतत्व, प्राड्विवाकत्व आदि पदवियों से युक्त अधिकारी और (जनेषु) प्रत्यक्ष अध्यक्षों में (या) जो (ते) आप के (इन्द्रियाणि) जी ने के चिन्ह हैं (तानि) उन (ते) आप के चिन्हों को मैं (आ) (वृणे) उत्तम गुणों से आच्छादन करता हूं ॥ ९ ॥

भावार्थः—वही पुरुष राज्य करने के योग्य है जो मन्त्रियों के चरित्रों को नेत्र से रूप के सदृश प्रत्यक्ष करता है जैसे शरीर के इन्द्रिय के गोलक अर्थात् काले तारे वाले नेत्र के संबन्ध से जीव के सम्पूर्ण कार्य्य सिद्ध होते हैं वैसे राजा मन्त्री और सेना के योग से राजकार्यों को सिद्ध कर सक्ता है ॥ ९ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अगन्निन्द्र श्रवो बृहद्द्युम्नं दधिष्व दुष्टरं ।

उत्ते शुष्मं तिरामसि ॥ १० ॥

अगन्। इन्द्र। श्रवः। बृहत्। द्युम्नम्। दधिष्व। दुस्तरम्। उत्। ते। शुष्मम्। तिरामसि ॥ १० ॥

पदार्थः-(अगन्) प्राप्नुवन्ति (इन्द्र) परमैश्वर्ययुक्त (श्रवः) अन्नं श्रवणं वा (बृहत्) महत् (द्युम्नम्) यशो धनं वा (दधिष्व) धर (दुष्टरम्) शत्रुभिर्दुःखेन तरितुमुल्लङ्घयितुं योग्यम् (उत्) उत्कृष्टे (ते) तव (शुष्मम्) बलम् (तिरामसि) तराम॥१०॥

अन्वयः—हे इन्द्र यद्बृहद्दुष्टरं श्रवो द्युम्नं शुष्मं विद्वांसोऽगन् यत्ते वयमुत्तिरामसि तत्सर्वं त्वं दधिष्व ॥ १० ॥

भावार्थः—तावदैश्वर्य्यं राज्ञा धर्त्तव्यं यावत्सेनायै प्रजापालनायाऽमात्यरक्षणायाऽलं स्यादेवं जाते सति महद्यशो वर्धेत ॥ १० ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य से युक्त जिस (बृहत्) बड़े (दुष्टरम्) शत्रुओं से दुःख से उलंघन करने योग्य (श्रवः) अन्न वा श्रवण (द्युम्नम्) यश वा धन और (शुष्मम्) बल को विद्वान् लोग (अगन्) प्राप्त होते हैं वा जिस (ते) आप के पूर्वोक्त अन्न श्रवण यश धन और बल को हम लोग (उत्) उत्तम प्रकार (तिरामसि) तरें उलंघें अर्थात् उस से अधिक सम्पादन करें उस सब को आप (दधिष्व) धारण करो ॥ १० ॥

भावार्थः—उतना ही ऐश्वर्य राजा को धारण करना चाहिये कि जितना सेना और प्रजा के पालन के और मन्त्रियों की रक्षा के लिये पूरा होवे ऐसा करने से बड़ा यश बढ़े ॥ १० ॥

अथ राजप्रजाजनविषयं परस्परेणाह ॥

अब राजा और प्रजाविषय को परस्पर सम्बन्ध से कहते हैं ॥

अ॒र्वा॒वतो॑ न॒ आ ग॒ह्यथो॑ शक्र परा॒वत॑:। उ॒ लो॒को यस्ते॑ अद्रिव॒ इन्द्रे॒ह त॒त आ ग॑हि ॥ ११ ॥ २२ ॥

अ॒र्वाऽवत॑:। न॒:। आ। ग॒हि॒। अथो॒ इति॑। श॒क्र॒। प॒रा॒ऽवत॑:। उँ॒ इति॑। लो॒कः। यः। ते॒। अ॒द्रि॒ऽवः॒। इन्द्र॑। इ॒ह। तत॑:। आ। ग॒हि॒ ॥ ११ ॥ २२ ॥

पदार्थः—(अर्वावतः) अर्वाचीनात् (नः) अस्मान् (आ) (गहि) आगच्छ प्राप्नुहि (अथो) आनन्तर्ये (शक्र) शक्तिमन् (परावतः) दूरात् (उ) (लोकः) निवासस्थानम् (यः) (ते) तव (अद्रिवः) अद्रयो बहवो मेघा विद्यन्ते यस्य सूर्यस्य तद्वद्वर्त्तमान (इन्द्र) ऐश्वर्येण सुखप्रद (इह) अस्मिन् संसारे (ततः) तस्मात् (आ) (गहि) ॥ ११ ॥

अन्वयः—हे अद्रिवः शक्रेन्द्र इह यस्ते लोकोऽस्ति तस्मादर्वावतो न आगह्यथो परावतो न आगहि तत उ अन्यत्र गच्छ॥११॥

भावार्थः—यथा मनुष्याः प्रीत्या राजानमाह्वयेयुस्तत्सामीप्यं स स्वदेशादागच्छेत् तस्मादन्यत्र गच्छेदेवं राजप्रजाजनाः परस्परेषु स्नेहवर्धनाय कर्माणि सततं कुर्युरिति ॥ ११ ॥

अत्र राजप्रजाकृत्यवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिर्वेद्या ॥

इति सप्तत्रिंशत्तमं सूक्तं द्वाविंशो वर्गश्च समाप्तः ॥

पदार्थः—हे (अद्रिवः) बहुत मेघों से युक्त सूर्य के सदृश वर्त्तमान (शक्र) सामर्थ्यवान् (इन्द्र) ऐश्वर्य से सुख के दाता (इह) इस संसार में (यः) जो (ते) आप का (लोकः) निवास स्थान है इस स्थान से (नः) हम लोगों को (आ, गहि) प्राप्त हूजिये (अथो) इसके अनन्तर (परावतः) दूर से भी हम लोगों को प्राप्त हूजिये (ततः) और इस से (आगहि) उत्तम प्रकार अन्यस्थान में जाइये ॥ ११ ॥

भावार्थः—जैसे मनुष्य लोग प्रीति से राजा को बुलावैं और वह राजा उन प्रजा जनों के समीप अपने देश से प्राप्त हो और उस देश से अन्य देश में भी जाय इस प्रकार राजा और प्रजा जन परस्पर स्नेह की वृद्धि के लिये कर्मों को निरन्तर करें ॥ ११ ॥

इस सूक्त में राजा और प्रजा के कामों का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इस सूक्त से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह सैंतीसवां सूक्त और बाईसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

अथ दशर्चस्याष्टत्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य प्रजापतिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ । ६ । १० त्रिष्टुप् । २ । ३ । ४ । ५ । ८ । ९ निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ७ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अथ विद्वद्विषयमाह ॥

अब दश ऋचा वाले अड़तीशवें सूक्त का प्रारम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में विद्वान् के विषय को कहते हैं ॥

अभि तष्टेव दीधया मनीषामत्यो न वाजी सुधुरो जिहानः । अभि प्रियाणि मर्मृशत्पराणि कवीँरिच्छामि संदृशे सुमेधाः ॥ १ ॥

अभि । तष्टाऽइव । दीधय । मनीषाम् । अत्यः । न । वाजी । सुऽधुरः । जिहानः । अभि । प्रियाणि । मर्मृशत् । पराणि । कवीन् । इच्छामि । सम्ऽदृशे । सुऽमेधाः ॥ १ ॥

पदार्थः-(अभि) आभिमुख्ये (तष्टेव) यथा काष्ठानां सूक्ष्मत्वस्य कर्त्ता (दीधय) प्रकाशय । अत्र संहितायामिति दीर्घः (मनीषाम्) प्रज्ञाम् (अत्यः) सततं गन्ता (न) इव (वाजी) वेगवान् (सुधुरः) शोभना धूर्यस्य सः (जिहानः) प्राप्नुवन् (अभि) (प्रियाणि) कमनीयानि सेवनानि सुखानि (मर्मृशत्) भृशं विचारयन् (पराणि) उत्कृष्टानि (कवीन्) धार्मिकान् विदुषः (इच्छामि) (संदृशे) सम्यग्दर्शनाय (सुमेधाः) शोभनप्रज्ञः ॥१॥

अन्वयः—हे विद्वन् यथाऽहं संदृशे कवीनभीच्छामि तथा सुमेधा जिहानः पराणि प्रियाण्यभिमर्मृशत्सन् सुधुरोऽत्यो वाजी न मनीषां तष्टेवाऽभिदीधय ॥ १ ॥

भावार्थः-अत्रोपमावाचकलु०-यथा धुरन्धरा सुशिक्षितास्तुरङ्गा अभीष्टानि कार्य्याणि साध्नुवन्ति तथैव साधारणा जना विदुषः प्रज्ञां प्राप्य तद्वेव व्यसनानि छिन्द्युः ॥ १ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् पुरुष जैसे मैं (संदृशे) उत्तम प्रकार दर्शन के लिये (कवीन्) धार्मिक विद्वानों की (इच्छामि) इच्छा करता हूं वैसे (सुमेधाः) उत्तम बुद्धि वाले (जिहानः) प्राप्त होते और (पराणि) परम उत्तम (प्रियाणि) कामना और आदर करने योग्य सुखों को (अभि, मर्मृशत्) अत्यन्त विचारते हुए (सुधुरः) सुन्दर धुरा को धारण किये हुए (अत्यः) निरन्तर चलने वाले (वाजी) वेगयुक्त घोड़े के (न) समान (मनीषाम्) बुद्धि को (तष्टेव) काष्ठों के सूक्ष्मत्व अर्थात् छीलने से पतले करने वाले बढ़ई के सदृश आप (अभि) सन्मुख (दीधय) प्रकाश करो ॥ १ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलु०—जैसे धुरियों के धारण करने वाले उत्तम प्रकार शिक्षित घोड़े वाञ्छित कर्मों को सिद्ध करते हैं वैसे ही साधारण जन विद्वानों की उत्तम बुद्धि को ग्रहण कर के बढ़ई के सदृश व्यसनों का छेदन करें ॥ १ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इनोत पृच्छ जनिमा कवीनां मनोधृतः सुकृतस्तक्षत द्याम् । इमा उ ते प्रण्यो३ वर्धमाना मनोवाता अध नु धर्मणि ग्मन् ॥ २ ॥

इना । उत । पृच्छ । जनिम । कवीनाम् । मनःऽधृतः । सुऽकृतः । तक्षत । द्याम् । इमाः । ऊं इति । ते । प्रऽन्यः । वर्धमानाः । मनःऽवाताः । अध । नु । धर्मणि । ग्मन् ॥२॥

पदार्थः—(इना) इनान् प्रभून् समर्थान् (उत) अपि (पृच्छ) (जनिमा) जन्मानि (कवीनाम्) मेधाविनाम् (मनोधृतः) मनो विज्ञानं धृतं यैस्ते (सुकृतः) ये शोभनं कर्म कुर्वन्ति ते (तक्षत) सूक्ष्मान् कुरुत (द्याम्) विद्युतम् (इमाः) वर्त्तमानाः (उ) (ते) तव (प्रण्यः) प्रकृष्टा नीतिर्यासां ताः (वर्द्धमानाः) वृद्धिशीलाः (मनोवाताः) मन इव वातो वेगो यासां ताः (अध) अथ (नु) सद्यः (धर्मणि) (ग्मन्) प्राप्नुयुः ॥ २ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या या कवीनां मनोधृतः सुकृत उ इमा प्रण्यो वर्धमाना मनोवाता धर्मणि नु ग्मन् अध या द्यां प्राप्नुयुर्ये ते जनिमा ग्मन् ता उत तानिना त्वं पृच्छ । यूयमविद्यां तक्षत ॥ २ ॥

भावार्थः—ये पुरुषाः स्त्रियश्च धर्मानुष्ठानपुरःसरं मेधाविलक्षणानि धृत्वा प्रश्नोत्तराणि विधायान्तःकरणं संशोध्य समर्था जायन्ते ते ताश्चैव सर्वतोऽधिवर्धन्ते ॥ २ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् वा साधारण मनुष्यो जो (कवीनाम्) बुद्धिमान् लोगों के (मनोधृतः) विज्ञान के धारण करने और (सुकृतः) उत्तम कर्म करने वाले पुरुष (उ) और (इमाः) ये वर्त्तमान (प्रण्यः) उत्तम नीतियुक्त (वर्द्धमानाः) बढ़ती हुई (मनोवाताः) मन के सदृश वेग वाली स्त्रियां (धर्मणि) धर्म व्यवहार में (नु) शीघ्र (ग्मन्) प्राप्त हों (अध) इस के अनन्तर जो (द्याम्) बिजुली को प्राप्त हों और जो लोग (ते) तुम्हारे (जनिमा) जन्मों को प्राप्त हों उन स्त्रियों (उत) वा उन (इना) समर्थ पुरुषों को आप (पृच्छ) पूंछिये और आप लोग भी अविद्या को (तक्षत) काटिये ॥ २ ॥

भावार्थः—जो पुरुष और स्त्रियां धर्म के अनुष्ठान पूर्वक बुद्धिमान् लोगों के लक्षणों को धारण कर प्रश्नोत्तर और अन्तःकरण को शुद्ध करके समर्थ होते हैं वे पुरुष और वैसी स्त्रियां सब प्रकार वृद्धि को प्राप्त होती हैं ॥ २ ॥

अथ भूमिविषयमाह ॥

अब भूमि विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

नि षीमिदत्र गुह्या दधाना उत क्षत्राय रोदसी समञ्जन् । सं मात्राभिर्ममिरे येमुरुर्वी अन्तर्मही समृते धायसे धुः ॥ ३ ॥

नि । सीम् । इत् । अत्र । गुह्या । दधानाः । उत । क्षत्राय । रोदसी इति । सम् । अञ्जन् । सम् । मात्राभिः । ममिरे । येमुः । उर्वी इति । अन्तः । मही इति । समृते इति । सम्ऽऋते । धायसे । धुरिति धुः ॥ ३ ॥

पदार्थः—(नि) नितराम् (सीम्) सर्वतः (इत्) एव (अत्र) अस्मिन्संसारे (गुह्या) गूढानि विज्ञानानि (दधानाः) (उत) अपि (क्षत्राय) राज्याय (रोदसी) भूमिविद्याप्रकाशौ (सम्) (अञ्जन्) प्रकटीकुर्य्युः (सम्) (मात्राभिः) सूक्ष्माऽवयवैः (ममिरे) निर्मिमीरन् (येमुः) यच्छेयुः (उर्वी) महती (अन्तः) मध्ये (मही) (समृते) सम्यक् सत्ये व्यवहारे (धायसे) धातुम् (धुः) धरेयुः ॥ ३ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या याः स्त्रियोऽत्र गुह्या दधानाः समृते सत्यः क्षत्राय रोदसी सीं समञ्जन्नुत मात्राभिर्निममिरे उर्वी मही समृते धायसेऽन्तः संयेमुस्ता इदेव सुखं धुः ॥ ३ ॥

भावार्थः—याः स्त्रियो ब्रह्मचर्य्येण विद्याविज्ञानानि प्राप्य पृथिव्यादिपदार्थानां सकाशादुपकारं ग्रहीतुं शक्नुयुस्ता राज्यो भवितुमर्हन्ति ॥ ३ ॥

पदार्थ.—हे मनुष्यो जो स्त्रियां (अत्र) इस संसार में (गुह्या) गूढ़ विज्ञानों को (दधानाः) धारण किये हुईं (क्षत्राय) राज्य के लिये (रोदसी) भूमि और विद्या के प्रकाश को (सीम्) सब प्रकार (सम्, अञ्जन्) प्रकट करैं (उत) और (मात्राभिः) सूक्ष्म अवयवों से (नि) निरन्तर पदार्थों को (ममिरे) मापें और (उर्वी) बड़ी (मही) पृथ्वी को (समृते) अच्छे प्रकार सत्य व्यवहार में (धायसे) धारण करने को अपने अन्तःकरण के (अन्तः) मध्य में (सम्, येमुः) संयुक्त करैं वे (इत्) ही सुख को (धुः) धारण करैं॥३॥

भावार्थः—जो स्त्रियां ब्रह्मचर्य्य से विद्या के विज्ञानों को प्राप्त हो कर पृथिवी आदि पदार्थों से उपकार का ग्रहण कर सकैं वे रानी होने के योग्य होती हैं ॥ ३ ॥

अथ सूर्यविषयमाह ॥

अब सूर्य्य के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

आतिष्ठन्तं परि विश्वे अभूषञ्छ्रियो वसानश्चरति स्वरोचिः । महत्तद्वृष्णो असुरस्य नामा विश्वरूपो अमृतानि तस्थौ ॥ ४ ॥

आऽतिष्ठन्तम् । परि । विश्वे । अभूषन् । श्रियः । वसानः । चरति । स्वऽरोचिः । महत् । तत् । वृष्णः । असुरस्य । नाम । आ । विश्वऽरूपः । अमृतानि । तस्थौ ॥ ४ ॥

पदार्थः—(आतिष्ठन्तम्) समन्तात् स्थितम् (परि) सर्वतः (विश्वे) सर्वे (अभूषन्) अलंकुर्वन् (श्रियः) लक्ष्मीः (वसानः) आच्छादयन् गृह्णन् (चरति) गच्छति (स्वरोचिः) स्वकीयं रोचिर्दीपनं यस्य सः (महत्)(तत्) (वृष्णः) वर्षकस्य (असुरस्य) योऽस्यति दोषान्प्राणेषु रममाणो वा तस्य (नामा) उदकानि नामेत्युदकना० निघं० १ । १२ (विश्वरूपः) विश्वानि रूपाणि यस्मात्सः (अमृतानि) अमृतात्मकानि (तस्थौ) तिष्ठति ॥४॥

अन्वयः—हे मनुष्या विश्वरूपः श्रियो वसानः स्वरोचिः सूर्यो वृष्णोऽसुरस्य वायोरमृतानि नामा तस्थाविव यन्महत्तच्चरति तमातिष्ठन्तं विश्वे विद्वांसो पर्य्यभूषन् ॥ ४ ॥

भावार्थः—हे मनुष्या वाय्वाधारे स्थिताः सूर्य्यादयो लोका जलवर्षणादिद्वारा सर्वानानन्दयन्ति तथैव श्रीकरः पुरुषः सर्वान् विभूषयति ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (विश्वरूपः) सम्पूर्ण रूप हैं जिस से वा जो (श्रियः) धनों वा पदार्थों की शोभाओं को (वसानः) ढांपता वा ग्रहण करता हुआ और (स्वरोचिः) अपना प्रकाश जिस में विद्यमान वह सूर्य्य (वृष्णः) वृष्टि-कारक (असुरस्य) दोषों को दूर करने वा प्राणों में रमने वाले वायु सम्बन्धी (अमृतानि) अमृतस्वरूप (नामा) जलों को व्याप्त हो कर (आ, तस्थौ) स्थित होता वा उस के समान जो (महत्) बड़ा है (तत्) उस को (चरति) प्राप्त होता है उस (आतिष्ठन्तम्) चारो ओर से स्थिर हुए को (विश्वे) सम्पूर्ण विद्वान् लोग (परि) सब प्रकार (अभूषन्) शोभित करैं ॥ ४ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो वायुरूप आधार में वर्त्तमान सूर्य्य आदि लोक जल-वृष्टि आदि के द्वारा सब लोगों को आनन्द देते हैं वैसे ही लक्ष्मी उत्पादन करने वाला पुरुष सब को शोभित करता है ॥ ४ ॥

अथ राजविषयमाह ॥

अब राजा के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

असूत पूर्वो वृषभो ज्यायानिमा अस्य शुरुधः सन्ति पूर्वीः । दिवो नपाता विदथस्य धीभिः क्षत्रं राजाना प्रदिवो दधाथे ॥ ५ ॥ २३ ॥

असूत । पूर्वः । वृषभः । ज्यायान् । इमाः । अस्य । शुरुधः । सन्ति । पूर्वीः । दिवः । नपाता । विदथस्य । धीभिः । क्षत्रम् । राजाना । प्रऽदिवः । दधाथे इति ॥ ५ ॥ २३ ॥

पदार्थः—(असूत) सूते (पूर्वः) पालकः प्रथमः (वृषभः) वर्षकः (ज्यायान्) महान्वृद्धः (इमाः) (अस्य) (शुरुधः) याः शु शीघ्रं रुन्धन्ति ताः (सन्ति) (पूर्वीः) प्राचीनाः (दिवः) अन्तरिक्षात् (नपाता) यौ न पततो विनश्यतस्तत्सम्बुद्धौ (विदथस्य)

विज्ञानकरस्य (धीभिः) प्रज्ञाभिः कर्मभिर्वा (क्षत्रम्) रक्षितव्यं राज्यम् (राजाना) सूर्यविद्युताविव प्रकाशमानौ राजन्यायेशौ (प्रदिवः) प्रकृष्टान् विद्याविनयप्रकाशान् (दधाथे) धरथः ॥ ५ ॥

अन्वयः—हे नपाता राजाना युवां यथा पूर्वो वृषभो ज्यायानिमाः पूर्वीः शुरुधोऽसूताऽस्य सकाशाद् वृष्टिकाः सन्ति तथैव दिवो विदथस्य प्रदिवो धीभिः क्षत्रं दधाथे ॥ ५ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यथाऽनुक्रमेण सूर्यो जलधारणवर्षणाभ्यामस्य जगतो हितं करोति तथैव शुभगुणन्यायैः सह वर्त्तमानाः सन्तो राजादयः सुरक्षितं राज्यं पान्तु ॥ ५ ॥

पदार्थः—हे (नपाता) नाश रहित (राजाना) सूर्य्य और बिजुली के सदृश प्रकाशयुक्त राजा और न्यायाधीश आप दोनों जैसे (पूर्वः) पालन करने वाला प्रथम (वृषभः) वृष्टि कर्त्ता (ज्यायान्) बड़ा वृद्ध (इमाः) इन (पूर्वीः) प्राचीन (शुरुधः) शीघ्र रुचिकारकों को (असूत) उत्पन्न करता है और (अस्य) इस के समीप से वृष्टिका वर्षायें हैं वैसे ही (दिवः) अन्तरिक्ष से (विदथस्य) विज्ञान करने वाले के (प्रदिवः) विद्या और विनय के प्रकाशों को तथा (धीभिः) बुद्धि वा कर्मों से (क्षत्रम्) रक्षा करने योग्य राज्य को (दधाथे) धारण करते हो ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे क्रम से सूर्य जल के धारण और वृष्टि से इस संसार का हित करता है वैसे ही उत्तम गुण और न्यायों के सहित वर्त्तमान हुए राजा आदि लोग उत्तम प्रकार रक्षित राज्य का पालन करें ॥५॥

अथ सभाकार्य्यमुपदिश्यते ॥

अब सभा के कार्य्य का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

त्रीणि राजाना विदथे पुरूणि परि विश्वानि भूषथः सदांसि । अपश्यमत्र मनसा जगन्वान्व्रते गन्धर्वां अपि वायुकेशान् ॥ ६ ॥

त्रीणि । राजाना । विदथे । पुरूणि । परि । विश्वानि । भूषथः । सदांसि । अपश्यम् । अत्र । मनसा । जगन्वान् । व्रते । गन्धर्वान् । अपि । वायुऽकेशान् ॥ ६ ॥

पदार्थः—(त्रीणि) (राजाना) विद्यादिशुभगुणैः प्रकाशमानौ राजप्रजाजनौ (विदथे) विज्ञानप्रापके व्यवहारे (पुरूणि) बहूनि (परि) सर्वतः (विश्वानि) अखिलानि (भूषथः) अलंकुरुथः (सदांसि) सभाः (अपश्यम्) पश्यामि (अत्र) अस्मिन् राजव्यवहारे (मनसा) विज्ञानेन (जगन्वान्) गन्ता (व्रते) सत्यभाषणादिव्यवहारे (गन्धर्वान्) ये गां सुशिक्षितां वाचं पृथिवीं वा धरन्ति तान् (अपि) (वायुकेशान्) वायुरिव केशाः प्रकाशा येषां तान् ॥ ६ ॥

अन्वयः—हे राजानाऽहमत्र स्थितान्यान् व्रते गन्धर्वान्वायुकेशानन्यानपि शिष्टान् मनसा जगन्वान् सन्नपश्यं तैस्त्रीणि सदांसि निर्माय विदथे पुरूणि विश्वानि यतः परिभूषथस्तस्मात्सकलकार्य्यसिद्धिकरौ भवथः ॥ ६ ॥

भावार्थः—हे मनुष्या युष्माभिरुत्तमगुणकर्मस्वभावानामाप्तानां विदुषां राजविद्याधर्मसभाः संस्थाप्य सर्वाणि राजकार्याणि यथावत्संसाध्य सर्वाः प्रजाः सततं सुखयत ॥ ६ ॥

पदार्थः—हे (राजाना) राजा और प्रजा जनो मैं इस संसार में वर्त्तमान जिन (व्रते) सत्यभाषणादि व्यवहार में (गन्धर्वान्) उत्तम प्रकार शिक्षित वाणी वा पृथिवी को धारण करने और (वायुकेशान्) वायु के सदृश प्रकाश वाले तथा अन्य भी शिष्ट अर्थात् उत्तम पुरुषों को (मनसा) विज्ञान से (जगन्वान्)

प्राप्त हुआ (अपश्यम्) देखता हूं उन लोगों से (त्रीणि) तीन (सदांसि) सभायें नियत करा के (विदथे) विज्ञान को प्राप्त कराने वाले व्यवहार में (पुरूणि) बहुत (विश्वानि) सम्पूर्ण व्यवहारों को (परि) सब प्रकार (भूषथः) शोभित करते हो इस से सम्पूर्ण कार्यों के सिद्ध करने वाले होते हो ॥ ६ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो आप लोग उत्तम गुणकर्म और स्वभाव वाले यथार्थवक्ता विद्वान् पुरुषों की राजसभा विद्यासभा और धर्मसभा नियत कर और सम्पूर्ण राज्यसम्बन्धी कर्मों को यथायोग्य सिद्ध कर सकल प्रजा को निरन्तर सुख दीजिये ॥ ६ ॥

अथ राजविषयमाह ॥

अब राजविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

तदिन्न्वस्य वृषभस्य धेनोरा नामभिर्ममिरे सक्म्यं गोः । अन्यदन्यदसुर्यं१ वसाना नि मायिनो ममिरे रूपमस्मिन् ॥ ७ ॥

तत् । इत् । नु । अस्य । वृषभस्य । धेनोः । आ । नामऽभिः । ममिरे । सक्म्यम् । गोः । अन्यत्ऽअन्यत् । असुर्यम् । वसानाः । नि । मायिनः । ममिरे । रूपम् । अस्मिन् ॥ ७ ॥

पदार्थः—(तत्) (इत्) एव (नु) सद्यः (अस्य) (वृषभस्य) बलिष्ठस्य (धेनोः) वाण्याः (आ) समन्तात् (नामभिः) संज्ञाभिः (ममिरे) (सक्म्यम्) सचति संयुनक्ति यस्मिँस्तत्र भवम् (गोः) वाण्याः (अन्यदन्यत्) पृथक्पृथग्वर्त्तमानम् (असुर्यम्) असुरस्य मेघस्य स्वम् (वसानाः) आच्छादयन्तः (नि) (मायिनः) प्रशस्ता माया प्रज्ञा विद्यते येषान्ते (ममिरे) सृजन्ति (रूपम्) (अस्मिन्) राज्ये ॥ ७ ॥

अन्वयः—ये मनुष्या अस्य वृषभस्य धेनोर्नामभिर्नु यदा ममिरे तत्सकम्यं गोरन्यदन्यदसुर्य्यं वसाना मायिनोऽस्मिन् रूपं निममिरे त इदेव राज्यं कर्त्तुं शक्नुयुः ॥ ७ ॥

भावार्थः—ये मनुष्या अस्य राज्यस्य कोमलवचनैः पालनं विदधति ते मेघाज्जलमिव बहुविधमैश्वर्य्यं लभन्ते ॥ ७ ॥

पदार्थः—जो मनुष्य (अस्य) इस (वृषभस्य) बलिष्ठ की (धेनोः) वाणी के (नामभिः) नामों से (नु) शीघ्र जिस को (आ, ममिरे) सब ओर से नापते हैं (तत्) उस (सकम्यम्) संयोग जिस पदार्थ में करता है उस में उत्पन्न (गोः) वाणी से (अन्यदन्यत्) पृथक् पृथक् वर्त्तमान (असुर्यम्) मेघपन को (वसानाः) ढांपते हुए (मायिनः) उत्तम बुद्धि वाले (अस्मिन्) इस राज्य में (रूपम्) रूप को (नि, ममिरे) उत्पन्न करते हैं वे (इत्) ही राज्य कर सक्ते हैं ॥ ७ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य इस राज्य का कोमल वचनों से पालन करते हैं वे मेघ से जल के सदृश अनेक प्रकार के ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं ॥ ७ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

तदिन्न्वस्य सवितुर्नकिर्मे हिरण्ययीममतिं यामशिश्रेत्। आ सुष्टुती रोदसी विश्वमिन्वे अपीव योषा जनिमानि वव्रे ॥ ८ ॥

तत् । इत् । नु । अस्य । सवितुः । नकिः । मे । हिरण्ययीम् । अमतिम् । याम् । अशिश्रेत् । आ । सुऽस्तुती । रोदसी इति । विश्वमिन्वे इति विश्वम्ऽइन्वे । अपिऽइव । योषा । जनिमानि । वव्रे ॥ ८ ॥

पदार्थः—(तत्) (इत्) (नु) (अस्य) सूर्य्यस्येव (नकिः) निषेधे (मे) मम (हिरण्ययीम्) हिरण्यादिबहुधनयुक्ताम् (अमतिम्) सुरूपां लक्ष्मीम् (याम्) (अशिश्रेत्) आश्रयेत् (आ) (सुष्टुती) सुष्टुप्रशंसया (रोदसी) द्यावापृथिव्याविव राजप्रजाव्यवहारौ (विश्वमिन्वे) विश्वव्यापिके (अपीव) समुच्चिता इव (योषा) भार्या (जनिमानि) जन्मानि (वव्रे) वृणोति ॥ ८ ॥

अन्वयः—योऽस्य सवितुः सकाशाद्दीप्तिमिव यां हिरण्ययीममतिं योषापीव जनिमानि वव्रे सुष्टुती विश्वमिन्वे रोदसी न्वाशिश्रेत्तदिन्मे नकिर्माभूत् ॥ ८ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालं०—यथा चन्द्रादयो लोकाः सूर्यप्रकाशमाश्रित्य सुशोभिता दृश्यन्ते यथा स्त्री हृद्यं स्वप्रियं शुभलक्षणान्वितं पतिं प्राप्य सन्तानान् जनयित्वाऽऽनन्दति तथैव पृथिवीराज्यं प्राप्य नष्टदुःखाः सन्तोराजानः सततमानन्देयुः ॥ ८ ॥

पदार्थः—जो (अस्य) इस (सवितुः) सूर्य की प्रगटता से उत्पन्न हुए प्रकाश के सदृश (याम्) जिस (हिरण्ययीम्) सुवर्ण आदि बहुत रत्नों से युक्त (अमतिम्) उत्तम शोभायुक्त लक्ष्मी को (योषा) स्त्री (अपीव) इकट्ठा की गई सी (जनिमानि) जन्मों को (वव्रे) स्वीकार करती और (सुष्टुती) उत्तम प्रशंसा से (विश्वमिन्वे) सर्वत्र व्यापक (रोदसी) प्रकाश और पृथिवी के सदृश राजा और प्रजा के व्यवहारों का (नु) निश्चय (आ, अशिश्रेत्) आश्रय करे (तत्) वह (इत्) ही (मे) मेरे (नकिः) नहीं हुई ॥ ८ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जैसे चन्द्र आदि लोक सूर्य के प्रकाश का आश्रय करके उत्तम शोभित देख पड़ते हैं और जैसे स्त्री स्नेहपात्र अपने प्रिय और उत्तम लक्षणों से युक्त पति को प्राप्त होकर सन्तानों को उत्पन्न करके आनन्द करती है वैसे ही पृथिवी के राज्य को प्राप्त होकर दुःखों से रहित हुए राजजन निरन्तर आनन्द करें ॥ ८ ॥

अथ परस्परेण राजप्रजाविषयमाह ॥

अब परस्परभाव से राज प्रजा विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

युवं प्रत्नस्य साधथो महो यद्दैवी स्वस्तिः परि णः स्यातम्। गोपाजिह्वस्य तस्थुषो विरूपा विश्वे पश्यन्ति मायिनः कृतानि ॥ १ ॥

युवम्। प्रत्नस्य। साधथः। महः। यत्। दैवी। स्वस्तिः। परि। नः। स्यातम्। गोपाऽजिह्वस्य। तस्थुषः। विऽरूपा। विश्वे। पश्यन्ति। मायिनः। कृतानि ॥ १ ॥

पदार्थः—(युवम्) युवाम् (प्रत्नस्य) पुरातनस्य (साधथः) (महः) महती (यत्) या (दैवी) देवानामियम् (स्वस्तिः) स्वास्थ्यम् (परि) (नः) अस्मभ्यम् (स्यातम्) (गोपाजिह्वस्य) गोरक्षका जिह्वा यस्य तस्य (तस्थुषः) स्थिरस्य (विरूपा) विविधानि रूपाणि येषु तानि (विश्वे) सर्वे (पश्यन्ति) (मायिनः) प्रशस्तप्रज्ञाः (कृतानि) निष्पन्नानि ॥ १ ॥

अन्वयः—हे राजप्रजाजनौ युवं यथा विश्वे मायिनस्तस्थुषः कृतानि विरूपा पश्यन्ति तथा प्रत्नस्य गोपाजिह्वस्य यन्महो दैवी स्वस्तिरस्ति ता नः परि साधथः सर्वेषां सुखकरौ स्यातम् ॥ १ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यथा विपश्चितः शिल्पिनो विविधरूपाणि वस्तूनि निर्माय सर्वान् सुभूषयन्ति तथैव राजादयो जनाः प्रजायां स्वास्थ्यं संस्थाप्य सर्वेषां कार्याणि साध्नुवन्तु ॥ १ ॥

पदार्थः—हे राजा और प्रजा जनो (युवम्) आप दोनों जैसे (विश्वे) सम्पूर्ण (मायिनः) उत्तम बुद्धि वाले (तस्थुषः) स्थिर पुरुष के (कृतानि) उत्पन्न किये हुए (विरूपा) अनेक प्रकार के रूपों से युक्त पदार्थों को (पश्यन्ति)

देखते हैं वैसे (प्रत्नस्य) प्राचीन (गोपाजिह्वस्य) रक्षा करने वाली जिह्वा वाले पुरुष का (यत्) जो (महः) बड़ी (दैवी) देवनाओं की (स्वस्तिः) स्वस्थता अर्थात् शान्ति है उस को (नः) हम लोगों के लिये (परि, साधथः) सब प्रकार सिद्ध करते हैं वैसे सब के सुखकारक हूजिये ॥ ९ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०— जैसे बुद्धिमान् शिल्पी जन अनेक प्रकार की वस्तुओं को रच के सब को शोभित करते हैं वैसे ही राजा आदि जन प्रजा में स्वस्थता को स्थिर करके सब के कार्यों को सिद्ध करें ॥ ९ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ । शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ॥ १० ॥ २४ ॥ ३ ॥

शुनम् । हुवेम । मघऽवानम् । इन्द्रम् । अस्मिन् । भरे । नृऽतमम् । वाजऽसातौ । शृण्वन्तम् । उग्रम् । ऊतये । समत्ऽसु । घ्नन्तम् । वृत्राणि । सम्ऽजितम् । धनानाम् ॥ १० ॥ २४ ॥ ३ ॥

पदार्थः—(शुनम्) राजप्रजाजनितं सुखम् (हुवेम) गृह्णीयाम (मघवानम्) बहुधनवन्तं वैश्यम् (इन्द्रम्) परमैश्वर्य्यं राजानम् (अस्मिन्) (भरे) पालनीये राज्ये (नृतमम्) प्रशस्तनायकम् (वाजसातौ) सत्यासत्यविभागे (शृण्वन्तम्) (उग्रम्) पापनाशाय तेजस्विनम् (ऊतये) रक्षणाद्याय (समत्सु) सङ्ग्रामेषु (घ्नन्तम्) (वृत्राणि) धनानि । वृत्रमिति धनना० निघं० २ । १० (सञ्जितम्) सम्यग्जयशीलं शूरवीरम् (धनानाम्) ॥ १० ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यथा वयमूतयेऽस्मिन्वाजसातौ भरे शुनं मघवानं शृण्वन्तं नृतममुग्रं समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि ददतं धनानां सञ्जितमिन्द्रं हुवेम तथैतं यूयमप्याह्वयत ॥ १० ॥

भावार्थः—ये राजप्रजाजनाः परस्परं प्रीता अन्योऽन्यस्य सुख-दुःखवार्त्ताः शृण्वन्तो दुष्टान् ताडयन्तः सत्पुरुषान् सत्कुर्वन्तोऽन्यो-न्येषां सत्कर्माणि प्रशंसेयुस्ते परमैश्वर्य्यं लब्ध्वा सुखिनःस्युरिति॥ १०॥

अस्मिन्सूक्ते विद्वच्छिल्पिसभाराजप्रजासूर्य्यभूम्यादिगुणवर्ण-नादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिर्वेद्या ॥

इति ३८ सूक्तं २४ वर्गः ३ मण्डले ३ अनुवाकश्च समाप्तः ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे हम लोग (ऊतये) रक्षा आदि के लिये (अस्मिन्) इस (वाजसातौ) सत्य और असत्य के विभाग और (भरे) पालन करने योग्य राज्य में (शुनम्) राजप्रजाजनित अर्थात् राजा प्रजा से उत्पन्न हुए सुख (मघ-वानम्) बहुत धन से युक्त वैश्य (शृण्वन्तम्) सुनते हुए (नृतमम्) उत्तम नायक (उग्रम्) पाप के नाश के लिये प्रतापी (समत्सु) संग्रामों में (घ्नन्तम्) शत्रुओं के नाश करने (वृत्राणि) धनों को देने और (धनानाम्) धनों को (सञ्जितम्) उत्तम प्रकार जीतने वाले (इन्द्रम्) परमैश्वर्यवान् राजा को (हुवेम) ग्रहण करें वैसे इस को आप लोग भी ग्रहण करो ॥ १० ॥

भावार्थः—जो राजा और प्रजा जन परस्पर प्रसन्न परस्पर के सुख और दुःख की वार्त्ताओं को सुनते दुष्ट पुरुषों का ताड़न करते और सत्पुरुषों का सत्कार करते हुए परस्पर के उत्तम कर्मों की प्रशंसा करें वे अत्यन्त ऐश्वर्य को प्राप्त हो कर सुखी होवें ॥ १० ॥

इस सूक्त में विद्वान् शिल्पी सभा राजा प्रजा सूर्य और भूमि आदि के गुणों का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्तार्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह ३८ वां सूक्त २४ वां वर्ग और ३ मंडल में ३ अनुवाक समाप्त हुआ ॥

वैदिकयन्त्रालय प्रयाग के पुस्तकों का सूचीपत्र

और संक्षिप्त नियम ।

१) मूल्य रोक भेज कर मंगावें (२) रोक भेजने वालों को १०) रु० वा इस से अधिक पर २०) रु० सैकड़ा के हिसाब से कमीशन के पुस्तक अधिक भेजे जांय गे (३) डाक महसूल वेदभाष्य छोड़ कर सब से अलग लिया जायगा । ५) इस से अधिक के पुस्तक ग्राहक को आज्ञानुसार रजिस्टरी भेजे जांय गे (४) मूल्य नीचे लिखे पते से भेजें ॥

पुस्तक	मू०	डा०
ऋग्वेदभाष्य अं० १—१२५		४५)
यजुर्वेदभाष्य सम्पूर्ण		३८)
ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका	मू०	डा०
विना जिल्द की	२)	।)
„ जिल्द की	२॥)	।)
वर्णोच्चारणशिक्षा	‌/)	)॥
सन्धिविषय	।)॥	)॥
नामिक	।)॥	)॥
कारकीय	।/)॥	)॥
सामासिक	।)॥	)॥
स्त्रैणताद्धित	१)	/)
अव्ययार्थ	)॥	)॥
सौवर	)॥	)॥
आख्यातिक	१॥)	)॥
पारिभाषिक	)॥	)॥
धातुपाठ	।)	)॥
गणपाठ	।/)	)॥
उणादिकोष	॥)	/)
निघण्टु	।)	)॥
अष्टाध्यायी मूल	।/)॥	)॥
संस्कृतवाक्यप्रबोध	)	)॥
व्यवहारभानु	)	)॥

पुस्तक	मू०	डा०
भ्रमोच्छेदन	)॥	)॥
अनुभ्रमोच्छेदन	)॥	)॥
मेलाचांदापुर	/)	)॥
आर्योद्देश्यरत्नमाला	/)	)॥
गोकरुणानिधि	/)	)॥
स्वामीनारायणमतखण्डन गुजराती	)॥	)॥
वेदान्तध्वान्तनिवारण	)	)॥
स्वमन्तव्याऽमन्तव्यप्रकाश	)॥	)॥
शास्त्रार्थ फीरोज़ाबाद	)	)॥
शास्त्रार्थकाशी	/)	)॥
आर्याभिविनय	।)	/)
„ जिल्द की	।)	/)
वेदान्तिध्वान्तनिवारण	/)	)॥
भ्रान्तिनिवारण	/)॥	)॥
पञ्चमहायज्ञविधि	)॥	)॥
„ जिल्द की	।/)॥	/)
आर्य्यसमाज के नियमोपनियम	)।	)॥
सत्यार्थप्रकाश छपता है		
संस्कारविधि „		

ओश्म्

रसीद मूल्य वेदभाष्य ॥

श्रीमान् लाला मथुरादास जी सुपर वाईजर	सीतापुर	८)
श्रीमान् लाला कुंजबिहारी लाल जी मंत्री आर्य्यसमाज	रावलपिण्डी	१६)
श्रीमान् पं० अनन्द प्रसाद जी मंत्री आर्य्यसमाज	बांदीकुई	२६)
श्रीमान् साहब मजिस्ट्रेट	प्रयाग	६)
श्रीमान् सीताराम जी हकीम छिड़ावली	जिला अलीगढ़	८)
श्रीमान् पं० श्यामनारायण जी तिकू कमान बांदरी की, नासिक मोती कटरा बाजार	जयपुर	२२)
		८७)

ऋग्वेदभाष्यम्

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मितम्

संस्कृतार्य्यभाषाभ्यां समन्वितम् ॥

अस्यैकैकाङ्कस्य प्रतिमासं मूल्यम् भारतवर्षान्तर्गतदेशान्तर—
प्रापणमूल्येन सहितम् ।=) अङ्कद्वयस्यैकीकृतस्य ॥=)
वार्षिकं मूल्यम् ८)

इस ग्रन्थ के प्रतिमास एक एक अंक का मूल्य भरतखंड के भीतर डांक-
महसूल सहित ।=) एक साथ छपे हुए दो अङ्कों के ॥=)
और वार्षिक मूल्य ८)

यस्य सज्जनमहाशयस्यास्य ग्रन्थस्य जिघृक्षा भवेत् स प्रयागनगरे वैदिक-
यन्त्रालयप्रबन्धकर्त्तुः समीपे वार्षिकमूल्यप्रेषणेन प्रतिमासं
मुद्रितावङ्कौ प्राप्स्यति ॥

जिस सज्जनमहाशय को इस ग्रन्थ के लेने की इच्छा हो वह प्रयाग नगरमें वैदिकयन्त्रालय मैनेजर
के समीप वार्षिक मूल्य भेजने से प्रतिमास के छपे हुए दोनों अङ्कों को प्राप्त कर सकता है ।

पुस्तक (१५८, १५९) अङ्क (१४२, १४३)

अयं ग्रन्थः प्रयागनगरे वैदिकयन्त्रालये मुद्रितः ॥

संवत् १९४७ भाद्रपद शुक्ल

वेदभाष्यसम्बन्धी विशेषनियम ॥

[१] यह "ऋग्वेदभाष्य" मासिक छपता है। एक मास में बत्तीस २ पृष्ठ के एक साथ छपे हुए दो अङ्क १ वर्ष में २४ अङ्क "ऋग्वेदभाष्य" के भेजे जाते हैं ॥

[२] वेदभाष्य का मूल्य बाहर और नगर के ग्राहकों से एक ही लिया जायगा अर्थात् डाकव्यय से कुछ न्यूनाधिक न होगा ॥

[३] इस वर्तमान तेरहवें वर्ष के कि जो १३३-१३४ अङ्क से प्रारंभ हो कर १५६। १५७ पर पूरा होगा। वार्षिक मूल्य ८) रु० हैं।

[४] पीछे के बारह वर्षमें जो वेदभाष्य छप चुका है उस का मूल्य यह है:-

[क] "ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका" विना जिल्द की ३)

स्वर्णाक्षरयुक्त जिल्द की ३।।)

[ख] ऋग्वेदभाष्य ११२ अङ्क तक ४४।-)॥

[५] वेदभाष्य का अङ्क प्रत्येक मास की पहिली तारीख को डाक में डाला जाता है। जो किसी का अङ्क डाक की भूल से न पहुंचे तो इस के उत्तरदाता प्रबन्धकर्त्ता न होंगे। परन्तु दूसरे मास के अङ्क भेजने से प्रथम जो ग्राहक अङ्क न पहुंचने की सूचना दे देंगे तो उन को विना दाम दूसरा अङ्क भेज दिया जायगा इस अवधि के व्यतीत हुए पीछे अङ्क दाम देने से मिलें गे एक अङ्क।≠) दो अङ्क ॥≠) तीन अङ्क १) देने से मिलेंगे॥

[६] दाम जिस को जिस प्रकार से सुबीता हो भेजे परन्तु मनीआर्डर द्वारा भेजना ठीक होगा। टिकट डाक के अधन्नी वाले लिये जा सकते हैं परन्तु एक रुपये पीछे आध आना बट्टे का अधिक लिया जायगा। टिकट आदि मूल्यवान् वस्तु रजिस्टरी पत्री में भेजना चाहिये॥

[७] जो लोग पुस्तक लेने से अनिच्छुक हों, वे अपनी ओर जितना रुपया हो भेज दें और पुस्तक के न लेने से प्रबन्धकर्त्ता को सूचित कर दें जब तक ग्राहक का पत्र न आवेगा तब तक पुस्तक बराबर भेजा जायगा और दाम लेलिये जायंगे।

[८] बिके हुए पुस्तक पीछे नहीं लिये जायंगे॥

[९] जो ग्राहक एक स्थान से दूसरे स्थान में जांय वे अपने पुराने और नये पते से प्रबन्धकर्त्ता को सूचित करें। जिस में पुस्तक ठीक ठीक पहुंचता रहे।

[१०] "वेदभाष्य" सम्बन्धी रुपया, और पत्र प्रबन्धकर्त्ता वैदिकयन्त्रालय प्रयाग (इलाहाबाद) के नाम से भेजें॥

अथ नवर्चस्यैकोनचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य विश्वामित्र ऋषिः। इन्द्रो देवता । १ । ९ विराट् त्रिष्टुप् । ३ । ४ । ५ । ६ । ७ निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । २ । ८ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अथ विद्वद्विषयमाह ॥

अब नव ऋचा वाले तीसरे मण्डल में उनतालीशवें सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में विद्वान् के विषय को कहते हैं ॥

इन्द्रं मतिर्हृद आ वच्यमानाच्छा पतिं स्तोमंतष्टा जिगाति । या जागृविर्विदथे शस्यमानेन्द्र यत्ते जायते विद्धि तस्य ॥ १ ॥

इन्द्रम् । मतिः । हृदः । आ । वच्यमाना । अच्छ । पतिम् । स्तोमऽतष्टा । जिगाति । या । जागृविः । विदथे । शस्यमाना । इन्द्र । यत् । ते । जायते । विद्धि । तस्य ॥ १ ॥

पदार्थः—(इन्द्रम्) परमसुखप्रदम् (मतिः) प्रज्ञा (हृदः) हृदयात् (आ) समन्तात् (वच्यमाना) उच्यमाना । अत्र वाच्छन्दसीति सम्प्रसारणाऽभावः (अच्छ) सम्यक् । अत्र निपातस्य चेति दीर्घः (पतिम्) पालकं स्वामिनम् (स्तोमतष्टा) स्तोमैः स्तुतिभिस्तष्टा विस्तृता (जिगाति) स्तौति (या) (जागृविः) जागरूका (विदथे) विज्ञाने (शस्यमाना) स्तूयमाना (इन्द्र) परमैश्वर्ययुक्त (यत्) या (ते) तव (जायते) (विद्धि) (तस्य) ॥ १ ॥

अन्वयः—हे इन्द्र विद्वन् या वक्ष्यमाना विदथे जागृविः शस्यमाना स्तोमतष्टा मतिर्हृद इन्द्रं पतिमच्छा जिगाति यद्या प्रज्ञा ते जायते तया तस्य शुभगुणकर्मस्वभावान् विद्धि ॥ १ ॥

भावार्थः—येषां हृदये प्रमोत्पद्यते ते सर्वेषां गुणदोषान् विज्ञाय गुणान् गृहीत्वा दोषांश्च त्यक्त्वा गुणप्रशंसां दोषनिन्दां कृत्वोत्तमानि कर्माणि कुर्य्युस्सत्येवं तेऽत्र प्रशंसिताः स्युः ॥ १ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य्ययुक्त विद्वान् पुरुष (या) जो (वक्ष्यमाना) कही गई (विदथे) विज्ञान में (जागृविः) जागने वाली और विज्ञान में (शस्यमाना) स्तुति से युक्त हुई (स्तोमतष्टा) स्तुतियों से विस्तारयुक्त (मतिः) बुद्धि (हृदः) हृदय से (इन्द्रम्) अत्यन्त सुख देने (पतिम्) और पालने वाले स्वामी की (अच्छ) उत्तम प्रकार (आ) सब ओर से (जिगाति) स्तुति करती है (यत्) जो बुद्धि (ते) आप की (जायते) उत्पन्न होती है उस बुद्धि से (तस्य) उस पालने वाले के उत्तम गुण कर्म और स्वभावों को (विद्धि) जानो ॥ १ ॥

भावार्थः—जिन के हृदय में यथार्थ ज्ञान उत्पन्न होता है वे सब लोगों के गुण और दोषों को जान गुणों को ग्रहण दोषों का त्याग गुणों की प्रशंसा और दोषों की निन्दा करके उत्तम कर्मों को करें ऐसा होने से वे इस संसार में प्रशंसायुक्त होवें ॥ १ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

दिवश्चिदा पूर्व्या जायमाना वि जागृविर्विदथे शस्यमाना । भद्रा वस्त्राण्यर्जुना वसाना सेयमस्मे सनजा पित्र्या धीः ॥ २ ॥

दिवः । चित् । आ । पूर्व्या । जायमाना । वि । जागृविः । विदथे । शस्यमाना । भद्रा । वस्त्राणि । अर्जुना । वसाना । सा । इयम् । अस्मेइति । सनऽजा । पित्र्या । धीः ॥ २ ॥

पदार्थः—(दिवः) विज्ञानप्रकाशात् (चित्) अपि (आ) (पूर्व्या) पूर्वैर्विद्वद्भिर्निष्पादिता (जायमाना) (वि) (जागृविः) जागरूका (विदथे) विज्ञानवर्द्धके व्यवहारे (शस्यमाना) स्तूयमाना (भद्रा) सेवनीयानि कल्याणकराणि (वस्त्राणि) (अर्जुना) सुरूपाणि । अर्जुनमिति रूपना० निघं० ३ । १७ (वसाना) धारयन्ती (सा) (इयम्) (अस्मे) अस्मासु (सनजा) सनेन विभागेन जाता (पित्र्या) पितृषु भवा (धीः) प्रज्ञा ॥ २ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या याऽस्मे दिवो जायमाना पूर्व्या विदथे जागृविः शस्यमाना भद्राऽर्जुना वस्त्राणि वसाना सुन्दरी स्त्रीव सनजा पित्र्या धीर्विजायते सेयं युष्मासु चिदा जायताम् ॥ २ ॥

भावार्थः-अत्र वाचकलु०—त एवाप्ताः पुरुषा येष्वात्मवत्सर्वेषु बुद्ध्यादिपदार्थान् जनयितुमुद्यताः स्युः ॥ २ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (अस्मे) हम लोगों में (दिवः) विज्ञान के प्रकाश से (जायमाना) उत्पन्न हुई (पूर्व्या) प्राचीन विद्वानों से सिद्ध की गई (विदथे) विज्ञान के बढ़ाने वाले व्यवहार में (जागृविः) जागने वाली (शस्यमाना) स्तुति की जाती और (भद्रा) धारण करने योग्य और कल्याणकारक (अर्जुना) सुन्दररूपयुक्त (वस्त्राणि) वस्त्रों को (वसाना) ओढ़ती हुई सुन्दर स्त्री के तुल्य (सनजा) विभाग से प्रसिद्ध (पित्र्या) वा पितरों में प्रगट हुई (धीः) उत्तम बुद्धि (वि) विशेषता से उत्पन्न होती (सा,इयम्) सो यह आप लोगों में (चित् ,आ,) भी सब ओर से उत्पन्न होवे ॥ २ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—वे ही श्रेष्ठ पुरुष हैं जो कि अपने आत्मा के तुल्य सम्पूर्ण जनों में बुद्धि आदि पदार्थों को उत्पन्न कराने को उद्यत होवें ॥२॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

यमा चिदत्रं यमसूरसूत जिह्वाया अग्रं पतदा ह्यस्थात् । वपूंषि जाता मिथुना सचेते तमोहना तपुषो बुध्न एता ॥ ३ ॥

यमा । चित् । अत्र । यमऽसूः । असूत । जिह्वायाः । अग्रम् । पतत् । आ । हि । अस्थात् । वपूंषि । जाता । मिथुना । सचेते इति । तमःऽहना । तपुषः । बुध्ने । आऽईता ॥ ३ ॥

पदार्थः—(यमा) यमावुपरतौ (चित्) अपि (अत्र) (यमसूः) या यमं सूर्यं सूते सा विद्युत् (असूत) सूते जनयति (जिह्वायाः) (अग्रम्) (पतत्) पतति गच्छति प्राप्नोति वा (आ) समन्तात् (हि) यतः (अस्थात्) तिष्ठति (वपूंषि) रूपाणि (जाता) उत्पन्नानि (मिथुना) मिथुनौ परस्परसङ्गतौ (सचेते) सम्बध्नीतः (तमोहना) यौ तमोहतस्तौ (तपुषः) तपत्यस्मिन् सूर्यस्तस्य दिनस्य मध्ये (बुध्ने) बध्नन्त्यापो यस्मिँस्तस्मिन्नन्तरिक्षे (एता) एतौ वर्त्तमानौ ॥ ३ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यो यमसूश्चिदत्र यमा मिथुना तमोहना तपुषो बुध्न एता सूर्याचन्द्रमसावसूत जिह्वाया अग्रं हि पतज्जाता वपूंष्यास्थाद्यौ तमोहना मिथुनैता सूर्याचन्द्रमसौ तपुषो बुध्ने सचेते ताँस्तौ विद्धि विजानीत ॥ ३ ॥

भावार्थः—हे मनुष्या यथा विद्युत्सूर्यं सूर्यश्चन्द्रादिकं प्रकाशयति तमो हन्ति तथैव परस्परस्यानुकूला भूत्वा सद्व्यवहारे सचन्ताम् ॥३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (यमसूः) सूर्य्य को उत्पन्न करने वाली विजुली (चित्) अथवा (अत्र) इस संसार में (यमा) सहचारी (मिथुना) परस्पर मिले हुए (तमोहना) अन्धकार का नाश करने वाले (तपुषः) जिस में सूर्य्य तपता है उस दिन के बीच वा (बुध्ने) बंधते अर्थात् इकट्ठे होते जल जिस में उस अन्तरिक्ष में (एता) वर्त्तमान इन सूर्य्य और चन्द्रमा को (असूत) उत्पन्न करती है (जिह्वायाः) वथा जिह्वा के (अग्रम्) अग्रभाग को (हि) जिस कारण (पतन्) जाती वा प्राप्त होती है और (जाता) उत्पन्न हुए (वपूंषि) रूपों को प्राप्त हो (आ,अस्थात्) स्थिर होती है जो अन्धकार के नाश करने वाले परस्पर मिले हुए सूर्य्य और चन्द्रमा सूर्य्यमण्डल जिस में तपता है उस दिन के बीच और जल जिस में इकट्ठे हों उस अन्तरिक्ष में (सचेते) सम्बन्ध करते हैं उन को (विद्धि) जानिये ॥ ३ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो आप जैसे विजुली सूर्य का और सूर्य चन्द्रादिक का प्रकाश और अन्धकार का नाश करता है वैसे ही परस्पर अनुकूल होकर उत्तम व्यवहार में तत्पर होओ ॥ ३ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

नकिरेषां निन्दिता मर्त्येषु ये अस्माकं पितरो गोषु योधाः । इन्द्र एषां दृंहिता माहिनावानुद्गोत्राणि ससृजे दंसनावान् ॥ ४ ॥

नकिः । एषाम् । निन्दिता । मर्त्येषु । ये । अस्माकम् । पितरः । गोषु । योधाः । इन्द्रः । एषाम् । दृंहिता । माहिनऽवान् । उत् । गोत्राणि । ससृजे । दंसनाऽवान् ॥ ४ ॥

पदार्थः—(नकिः) (एषाम्) (निन्दिता) गुणेषु दोषारोपको दोषेषु गुणारोपकश्च (मर्त्येषु) मनुष्येषु (ये) (अस्माकम्) (पितरः) पालकाः (गोषु) पृथिवीषु (योधाः) योद्धारः (इन्द्रः) सूर्य इव वर्त्तमानः (एषाम्) (दृंहिता) वर्द्धकः (माहिनावान्) प्रशस्तानि माहिनानि पूजनानि विद्यन्ते यस्य (उत) (गोत्राणि) वंशान् (ससृजे) (दंशनावान्) प्रशस्तकर्मयुक्तः ॥ ४ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या य इन्द्रो येऽस्माकं गोषु मर्त्येषु च योधाः पितरः सन्त्येषां दृंहिता माहिनावान् दंसनावान् गोत्राण्युत्ससृजे तं भजत यत एषां निन्दिता नकिर्भवेत् ॥ ४ ॥

भावार्थः—मनुष्यैस्तथा प्रयतितव्यं यथा मनुष्येषु निन्दितारो न स्युः प्रशंसका भवेयुर्यथा सूर्य्यः सर्वं जगत् पाति तथा रक्षकाः पितरः संसेवनीयाः ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (इन्द्रः) सूर्य्य के सदृश वर्त्तमान (ये) वा जो (अस्माकम्) हम लोगों के (गोषु) पृथिवियों और (मर्त्येषु) मनुष्यों में (योधाः) योद्धा लोग और (पितरः) पालन करने वाले हैं (एषाम्) इन लोगों का (दृंहिता) बढ़ाने वाला (माहिनावान्) प्रशंसित पूजन हैं जिस के वह और (दंशनावान्) जो उत्तम कर्मों से युक्त है वह (गोत्राणि) वंशों को (उत्, ससृजे) उत्पन्न करता है उस की सेवा करो । जिस से (एषाम्) इन लोगों का (निन्दिता) गुणों में दोषों का आरोपक और दोषों में गुणों का आरोपक (नकिः) नहीं होवे ॥ ४ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि ऐसा प्रयत्न करें कि जिस से निन्दित न हों और आप दूसरों की स्तुति करने वाले हों और जैसे सूर्य्य संपूर्ण जगत् का पालन करता है वैसे रक्षा करने वाले पितरों की सेवा करनी चाहिये ॥ ४ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

सखा॑ ह॒ यत्र॒ सखि॑भि॒र्नव॑ग्वैरभि॒ज्ञ्वा सत्व॑भि॒र्गा अ॑नु॒ग्मन् । स॒त्यं तदिन्द्रो॑ द॒शभि॒र्दश॑ग्वैः॒ सूर्यं॑ वि॒वेद॒ तम॑सि क्षि॒यन्त॑म् ॥ ५ ॥ व० २५ ॥

सखा॑ । ह॒ । यत्र॑ । सखि॑ऽभिः । नव॑ऽग्वैः । अ॒भि॒ऽज्ञु । आ । सत्व॑ऽभिः । गाः । अ॒नु॒ऽग्मन् । स॒त्यम् । तत् । इन्द्रः॑ । द॒शऽभिः॑ । दश॑ऽग्वैः । सूर्य॑म् । वि॒वेद॑ । तम॑सि । क्षि॒यन्त॑म् ॥ ५ ॥ २५ ॥

पदार्थः—(सखा) (ह) खलु (यत्र) (सखिभिः) (नवग्वैः) नवीनगतिभिः (अभिज्ञु) आभिमुख्ये जानुनी यस्य सः (आ) समन्तात् (सत्वभिः) पदार्थैः सह (गाः) सुशिक्षिता वाचो भूमीर्वा (अनुग्मन्) अनुकूलं गच्छन् (सत्यम्) सत्सु साधु (तत्) तम् (इन्द्रः) विद्युत् (दशभिः) दशविधैर्वायुभिः (दशग्वैः) दशविधागतयोयेषान्तैः (सूर्यम्) (विवेद) विन्दति (तमसि) अन्धकारे रात्रौ (क्षियन्तम्) निवसन्तम् ॥ ५ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यत्र नवग्वैः सखिभिः सहाऽभिज्ञु सखा सत्वभिर्ह गा आनुग्मन् यत्सत्यं दशग्वैर्दशभिः सहेन्द्रो तमसि । क्षियन्तं सूर्यं विवेद तद्विवेद तदनुकरणं सर्वे कुर्वन्तु ॥ ५ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यथा सखिवद्वर्त्तमानेन वायुना विद्युदाख्योऽग्निरन्धकारे सूर्यपरिणामं प्राप्य सर्वान् प्रकाशयाऽऽनन्दति तथैव धार्मिकैर्मित्रैः सहितो सुहृद्विद्वान् शुद्धान्तःकरणतया विद्यया च प्रकटीभूत्वा सर्वेषामात्मनः प्रकाशयाऽऽनन्दति ॥ ५ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यत्र) जिस स्थल में (नवग्वैः) नवीन गतियों और (सखिभिः) मित्रों के साथ (अभिज्ञु) सन्मुख जांघों से युक्त (सखा) मित्र (सत्वभिः) पदार्थों के साथ (ह) निश्चय (गाः) उत्तम प्रकार शिक्षित वाणी वा भूमियों के (आ,अनुग्मन्) अनुकूल प्राप्त होता हुआ जो (सत्यम्) श्रेष्ठ व्यवहारों में उत्तम अर्थात् सच्चापन जैसे हो वैसे (दशग्वैः) दश प्रकार की गतियों से युक्त (दशभिः) दश प्रकार के पवनों के साथ (इन्द्रः) बिजुली (तमसि) रात्रि में (क्षियन्तम्) निवास करते अर्थात् अपना काम प्रकाश न करते हुए (सूर्यम्) सूर्य को (विवेद) प्राप्त होती है (तत्) उस को जो जानता है उस का अनुकरण सब लोग करो ॥ ५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे मित्र के तुल्य वर्त्तमान वायु से बिजुली नामक अग्नि अन्धकार में सूर्य के परिणाम को प्राप्त हो और सब को प्रकाशित कर आनन्द देती है वैसे ही धार्मिक मित्रों के सहित मित्र विद्वान् शुद्धान्तःकरणात्मा तथा विद्या से प्रकट हो कर सब के आत्माओं का प्रकाश करके आनन्द देता है ॥ ५ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इन्द्रो मधु सम्भृतमुस्रियायां पद्वद्विवेद शफवन्नमे गोः । गुहा हितं गुह्यं गूळ्हमप्सु हस्ते दधे दक्षिणे दक्षिणावान् ॥ ६ ॥

इन्द्रः । मधु । सम्ऽभृतम् । उस्रियायाम् । पत्ऽवत् । विवेद । शफऽवत् । नमे । गोः । गुहा । हितम् । गुह्यम् । गूळ्हम् । अप्ऽसु । हस्ते । दधे । दक्षिणे । दक्षिणऽवान् ॥ ६ ॥

पदार्थः—(इन्द्रः) विद्युदिवनरः (मधु) मधुरादिकं रसम् (सम्भृतम्) सम्यग्धृतम् (उस्रियायाम्) भूमौ (पद्वत्) पद्भ्यां तुल्यम् (विवेद)

(शफवत्) शफा विद्यन्ते यस्मिन् पदे तत् (नमे) नमेत् (गोः) वाचः (गुहा) गुहायां बुद्धौ (हितम्) स्थितम् (गुह्यम्) गुप्तम् (गूढम्) (अप्सु) प्राणेषु जलेषु वा (हस्ते)(दधे) दध्यात् (दक्षिणे) (दक्षिणावान्) दक्षिणा विद्यते यस्य स इव ॥ ६ ॥

अन्वयः—य इन्द्रो उस्त्रियायां पद्वच्छफवन्न मधु सम्भृतं नमे विवेद गोर्गुहा हितमप्सु गुह्यं गूढं दक्षिणावानिव दक्षिणे हस्ते दधे तं सर्वे जानन्तु ॥ ६ ॥

भावार्थः—अत्रोपमा वाचकलु०—यथा मनुष्याः पद्भ्यां पशवः शफैर्गमनं कृत्वा देशान्तरं साक्षात्कुर्वन्ति तथैव बाह्याभ्यन्तरस्थां विद्युतं विद्वानेव हस्तगतदक्षिणावद्विदित्वाऽऽभ्यन्तरं स्वात्मानं परमात्मानं च बाह्यं सूर्यादिकं विजानात्येतत्सहायेन धर्मार्थकाममोक्षान् सर्वे साध्नुवन्तु ॥ ६ ॥

पदार्थः—जो (इन्द्रः) बिजुली के समान मनुष्य (उस्त्रियायाम्) भूमि में (पद्वन्) पैरों के और (शफवत्) खुरों के सदृश (मधु) मधुर आदि रस (सम्भृतम्) जो कि उत्तम धारण किया गया उसे (नमे) नमें स्वीकार करे (विवेद) जाने (गोः) वाणी और (गुहा) बुद्धि में (हितम्) स्थित (अप्सु) प्राणों वा जलों में (गुह्यम्) गुप्त और (गूढम्) ढपे हुए व्यवहार को (दक्षिणावान्) दक्षिणा को धारण किये हुए के समान (दक्षिणे) दहिने (हस्ते) हाथ में (दधे) धारण करे उस को सब लोग जानों ॥ ६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलु०—जैसे मनुष्य पैरों और पशु खुरों से गमन करके दूसरे स्थान को प्रत्यक्ष करते हैं वैसे ही बाहर भीतर वर्त्तमान बिजुली को विद्वान् पुरुष हस्त प्राप्त दक्षिणा के सदृश जान कर और हृदय में वर्त्तमान अपने आत्मा और परमात्मा तथा बाह्य सूर्य आदि को जानता है इस के सहाय से धर्म अर्थ काम और मोक्षों को सब सिद्ध करें ॥ ६ ॥

पश्चात् (स्यात्) भवेत् (आरे) दूरे समीपे वा (स्याम) (दुरितस्य) दुःखेनेतस्य प्राप्तस्य (भूरेः) बहोः (भूरि) बहु (चित्) अपि (हि) यतः (तुजतः) बलवतः (मर्त्यस्य) मनुष्यस्य (सुपारासः) शोभनो विद्यायाः पारो येषान्ते (वसवः) ये विद्यासु वसन्त्यन्यान् वासयन्ति ते (बर्हणावत्) बर्हणं वृद्धिकारकं विज्ञानं धनं वा विद्यते यस्मिंस्तत् ॥ ८ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यथा सुपारासो वसवो वयं यज्ञाय रोदसी इवारे दुरितस्य भूरेर्भूरि चित्तुजतो मर्त्यस्य बर्हणावज्ज्योतिः स्यादिति कामयमाना अनु ष्याम तथाहि भवन्तो भवन्तु ॥ ८ ॥

भावार्थः—त एवाप्तये दूरस्थेषु समीपस्थेषु च कृपामनु संधाय विद्योपदेशौ प्रचार्य्यातिकठिनस्य बोधस्य सुगमतां संपादयेयुस्त एव सर्वैः सत्कर्त्तव्या भवन्तु ॥ ८ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (सुपारासः) सुन्दर विद्या का पार है जिन का और (वसवः) विद्याओं में स्वयं वसते वा अन्य जनों को वसाते वह हम लोग (यज्ञाय) विद्वानों के सत्कार आदि अनुष्ठान के लिये (रोदसी) भूमि और प्रकाश के सदृश विद्या और नीति को (आरे) दूर वा समीप में (दुरितस्य) दुःख से प्राप्त हुए (भूरेः) बहुत का (भूरि) बहुत (चित्) भी (तुजतः) बलवान् (मर्त्यस्य) मनुष्य का (बर्हणावत्) वृद्धिकारक विज्ञान वा धन जिस में विद्यमान ऐसा (ज्योतिः) सूर्य के प्रकाश के सदृश विज्ञान का प्रकाश (स्यात्) होवे ऐसी कामना करते हुए (अनु) पीछे (स्याम) होवें वैसे (हि) ही आप हूजिये ॥ ८ ॥

भावार्थः—वे ही श्रेष्ठ पुरुष हैं जो लोग दूर और समीप में वर्त्तमान पुरुषों में कृपा का अनुसन्धान विद्या और उपदेश का प्रचार करके बड़े कठिन बोध की सरलता को उत्पन्न करें वे ही सब लोगों को सत्कार करने योग्य होवें ॥८॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ। शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ॥ १ ॥ २६ । २ ॥

शुनम्। हुवेम। मघऽवानम्। इन्द्रम्। अस्मिन्। भरे। नृऽतमम्। वाजऽसातौ। शृण्वन्तम्। उग्रम्। ऊतये। समत्ऽसु। घ्नन्तम्। वृत्राणि। सम्ऽजितम्। धनानाम् ॥ १ ॥ २६ । २ ॥

पदार्थः—(शुनम्) सुखकारकं विज्ञानम् (हुवेम) स्वीकुर्याम (मघवानम्) वहुधनप्रदानकरम् (इन्द्रम्) विद्युतम् (अस्मिन्) (भरे) भरणीये संसारे (नृतमम्) अतिशयेन नायकम् (वाजसातौ) पदार्थानां विभागविद्यायाम् (शृण्वन्तम्) श्रोतारं न्यायाधीशं दण्डप्रदमिव (उग्रम्) तेजस्विभावम् (ऊतये) व्यवहारसिद्धिप्रवेशाय (समत्सु) सङ्ग्रामेषु (घ्नन्तम्) विद्यावन्तं शूरवीरमिव (वृत्राणि) धनानि (सञ्जितम्) सम्यक् जयति येन (धनानाम्) श्रियाम् ॥१॥

अन्वयः—हे मनुष्या यं वयमूतयेऽस्मिन्भरे नृतमं मघवानं वाजसातौ शृण्वन्तमिवोग्रं समत्सु घ्नन्तमिव धनानां सञ्जितमिन्द्रं विज्ञाय वृत्राणि शुनं च हुवेम तथैतं विज्ञाय सर्वमेतद्यूयं प्राप्नुत॥१॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—आप्ता विद्वांसो भूगर्भविद्युद्भूगोलखगोलस्थस्थानां पदार्थानां विद्योपदेशेन पदार्थविद्याः प्रापय्य सर्वान्त्सततमुन्नयेयुरिति ॥ १ ॥

अत्र विद्वद्गुणवर्णनं निन्दितजननिवारणं मैत्रीभावनमज्ञानं विहाय विद्याप्राप्तीच्छाकरणमत एतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिर्वेद्या ॥

इत्यृग्संहितायां तृतीयाष्टके द्वितीयोऽध्यायः षड्विंशो वर्गस्तृतीये-मण्डल एकोनचत्वारिंशत्तमं सूक्तञ्च समाप्तम् ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जिस को हम लोग (ऊतये) व्यवहार सिद्धि प्रवेश के लिये (अस्मिन्) इस (भरे) पालन करने योग्य संसार में (नृतमम्) अत्यन्त नायक (मघवानम्) बहुत धन के दान करने और (वाजसातौ) पदार्थों की विभाग विद्या में (शृण्वन्तम्) सुनने वाले न्यायाधीश दण्ड देने वाले के सदृश (उग्रम्) तेजस्वीरूप और (समत्सु) संग्रामों में (घ्नन्तम्) विद्यावान शूरवीर के सदृश (धनानाम्) लक्ष्मियों को (सञ्जितम्) शीघ्र जीतता है जिस से उस (इन्द्रम्) बिजुली रूप अग्नि को जान कर (वृत्राणि) धनों को और (शुनम्) सुख-कारक विज्ञान को (हुवेम) स्वीकार करें वैसे इस को जान कर आप लोग प्राप्त हूजिये ॥ ९ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—यथार्थवक्ता विद्वान् लोग भूगर्भ बिजुली भूगोल खगोल और सृष्टिस्थ पदार्थों की विद्या के उपदेश से पदार्थ-विद्याओं को प्राप्त करा के सब की निरन्तर वृद्धि करें ॥ ९ ॥

इस सूक्त में विद्वानों के गुणों का वर्णन, निन्दित जनों का निवारण, मित्रता करना, अज्ञान का त्याग कर, विद्या की प्राप्ति की इच्छा करना इत्यादि विषय वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछिले सूक्त के अर्थ के साथ संगति है यह समझना चाहिये ॥

यह ऋग्वेद संहिता में तृतीय अष्टक में दूसरा अध्याय छवीसवां वर्ग और तृतीय मण्डल में उन्तालीशवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

ओ३म्

अथ ऋक्संहितायां तृतीयाष्टके तृतीयाऽध्यायारम्भः॥

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव ।
यद्भद्रं तन्न आसुव ॥ १ ॥

अथ नवर्चस्य चत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य विश्वामित्र ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ । २ । ३ । ४ । ६ । ७ । ८ । ९ गायत्री । ५ निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अथ राजप्रजाविषयमाह ॥

अब तृतीयाष्टक के तृतीयाध्याय का आरम्भ तथा तृतीय मण्डल में नव ऋचा वाले चालीशवें सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में राज प्रजा के विषय को कहते हैं ॥

इन्द्रं त्वा वृषभं वयं सुते सोमे हवामहे । स पाहि मध्वो अन्धसः ॥ १ ॥

इन्द्र । त्वा । वृषभम् । वयम् । सुते । सोमे । हवामहे । सः । पाहि । मध्वः । अन्धसः ॥ १ ॥

पदार्थः—(इन्द्र) परमैश्वर्य्यप्रद (त्वा) त्वाम् (वृषभम्) बलिष्ठम् (वयम्) (सुते) निष्पन्ने (सोमे) ऐश्वर्य्य ओषधिगणे वा (हवामहे) (सः) (पाहि) रक्ष (मध्वः) मधुरादिगुणयुक्तस्य (अन्धसः) अन्नादेः ॥ १ ॥

अन्वयः—हे इन्द्र वयं मध्वोऽन्धसः सुते सोमे यं वृषभं त्वा हवामहे स त्वमस्मान् पाहि ॥ १ ॥

भावार्थः—ये प्रजा जना राजानं हृदयेन सत्कृत्याऽस्मा ऐश्वर्य्यं प्रयच्छेयुस्तान् राजा स्वात्मवद्वैद्य ओषधै रोगिणमिव रक्षेत् ॥ १ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य्य के देने वाले (वयम्) हम लोग (मध्वः) मधुर आदि गुणों से युक्त (अन्धसः) अन्न आदि के (सुते) उत्पन्न (सोमे) ऐश्वर्य्य वा ओषधियों के समूह में जिस (वृषभम्) बलिष्ठ (त्वा) आप को (हवामहे) पुकारें (सः) वह आप हम लोगों की (पाहि) रक्षा कीजिये ॥ १ ॥

भावार्थः—जो प्रजाजन राजा का हृदय से सत्कार करके इस राजा के लिये ऐश्वर्य्य देवें उन की राजा अपने आत्मा के सदृश वा जैसे वैद्य जन ओषधियों से रोगी की रक्षा करता है वैसे रक्षा करे ॥ १ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इन्द्रं क्रतुविदं सुतं सोमं हर्य्य पुरुष्टुत । पिबा वृषस्व तातृपिम् ॥ २ ॥

इन्द्र । क्रतुऽविदम् । सुतम् । सोमम् । हर्य्य । पुरुऽस्तुत । पिब । आ । वृषस्व । ततृपिम् ॥ २ ॥

पदार्थः—(इन्द्र) विद्यैश्वर्य्यमिच्छुक (क्रतुविदम्) क्रतुः प्रज्ञा तां विन्दति येन तम् (सुतम्) सुसंस्कारैर्निष्पादितम् (सोमम्) ओषधिगणम् (हर्य्य) कामयस्व (पुरुष्टुत) बहुभिः प्रशंसित (पिब) (आ) (वृषस्व) वृष इव बलिष्ठो भव (तातृपिम्) अतिशयेन तृप्तिकरम् ॥ २ ॥

अन्वयः—हे पुरुष्टुतेन्द्र त्वं तातृपिं क्रतुविदं सुतं सोमं हर्य्य पिब तेनाऽऽवृषस्व ॥ २ ॥

भावार्थः—हे राजन् भवान् प्रज्ञावर्द्धकं भोजनं पानं च कृत्वा तृप्तो भूत्वा बलारोग्यबुद्धिविनयान् वर्द्धय ॥ २ ॥

पदार्थः—हे (पुरुष्टुत) बहुतों से प्रशंसित (इन्द्र) विद्या और ऐश्वर्य की इच्छा करने वाले आप (तातृपिम्) अत्यन्त तृप्ति करने और (क्रतुविदम्) यज्ञ के सिद्ध करने वाले और (सुतम्) उत्तम संस्कारों से उत्पन्न (सोमम्) ओषधियों के समूह की (हर्य्य) कामना और (पिब) पान करो उन से (आ, वृषस्व) बैल के सदृश बलिष्ठ होओ ॥ २ ॥

भावार्थः—हे राजन् आप बुद्धि के बढ़ाने वाले खाने तथा पीने योग्य वस्तु का भोजन और पान कर तृप्त हो कर बल आरोग्य बुद्धि और नम्रता को बढ़ाइये ॥ २ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इन्द्र॒ प्र णो॑ धि॒तावा॑नं य॒ज्ञं विश्वे॑भिर्दे॒वेभि॑: ।
ति॒रः स्त॑वान विश्पते ॥ ३ ॥

इन्द्र॑ । प्र । नः॒ । धि॒तऽवा॑नम् । य॒ज्ञम् । विश्वे॑भिः । दे॒वेभि॑ः । ति॒रः । स्त॒वा॒न॒ । वि॒श्प॒ते॒ ॥ ३ ॥

पदार्थः—(इन्द्र) दुष्टानां विदारक (प्र) (नः) अस्माकम् (धितावानम्) धितो धृतो वानः संविभागो येन तम् (यज्ञम्) विद्याविनयाभ्यां सङ्गतं पालनाख्यम् (विश्वेभिः) सर्वैः (देवेभिः) धार्मिकैः सभ्यैर्विद्वद्भिः सह (तिरः) प्लवदुःखात्पारं गच्छ (स्तवान) यः सत्यं स्तौति तत्सम्बुद्धौ (विश्पते) प्रजापालक ॥ ३ ॥

अन्वयः—हे विश्पते स्तवानेन्द्र त्वं विश्वेभिर्देवेभिः सह नो धितावानं यज्ञं प्र तिरः ॥ ३ ॥

भावार्थः—प्रजाजनै राजैवमुपदेष्टव्यो भवान् नोऽस्माकं रक्षको भवैवमाज्ञापय भवतः सर्वे श्रेष्ठमध्यमकनिष्ठा भृत्या धर्मेणाऽस्मान् सततं रक्षन्त्विति ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे (विश्पते) प्रजा का पालन (स्तवान) सत्य की स्तुति और (इन्द्र) दुष्टों का नाश करने वाले आप (विश्वेभिः) संपूर्ण (देवेभिः) धार्मिक श्रेष्ठ विद्वानों के साथ (नः) हम लोगों के (धितावानम्) धारण किया है विभाग जिस से उस (यज्ञम्) विद्या और विनय से संगत पालन करने रूप कर्म को (प्र, तिरः) पार हो समाप्त करो अर्थात् उक्त कर्म से दुःख से पार पहुंचो ॥ ३ ॥

भावार्थः—प्रजा जनों को चाहिये कि राजा को इस प्रकार का उपदेश देवें कि आप हम लोगों के रक्षक हूजिये और ऐसी आज्ञा दीजिये कि आप के सब श्रेष्ठ मध्यम कनिष्ठ कर्मचारी लोग धर्मपूर्वक हम लोगों की निरन्तर रक्षा करें ॥ ३ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इन्द्र सोमाः सुता इमे तव प्र यन्ति सत्पते।
क्षयं चन्द्रास इन्दवः ॥ ४ ॥

इन्द्र। सोमाः। सुताः। इमे। तव। प्र। यन्ति। सत्ऽपते। क्षयम्। चन्द्रासः। इन्दवः ॥ ४ ॥

पदार्थः—(इन्द्र) सकलौषधिविद्यावित् (सोमाः) ओषध्यादयः पदार्थाः (सुताः) सुविचारेणाऽभिसंस्कृताः (इमे) (तव) (प्र)

(यन्ति) प्राप्नुवन्ति (सत्पते) सतां रक्षक (क्षयम्) निवास-स्थानम् (चन्द्रासः) आह्लादकराः (इन्दवः) सार्द्राः ॥ ४ ॥

अन्वयः—हे सत्पते इन्द्र राजन् य इमे चन्द्रास इन्दवः सुताः सोमास्तव क्षयं प्रयन्ति ताँस्त्वं सेवस्व ॥ ४ ॥

भावार्थः—हे राजन् यावान् राज्यादंशो भवता गृहीतव्यस्तावन्तं गृहीत्वा भुङ्क्ष्व नाऽधिकं न न्यूनमेवं कृतेन न कदाचिद्भवतः तिक्षर्भविष्यति ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे (सत्पते) सत्पुरुषों के रक्षा करने और (इन्द्र) सम्पूर्ण औषधियों की विद्या के जानने वाले राजन् जो (इमे) ये (चन्द्रासः) आनन्दकारक (इन्दवः) गीले (सुताः) उत्तम प्रकार से पाक आदि संस्कार से युक्त (सोमाः) ओषधी आदि पदार्थ (तव) आप के (क्षयम्) रहने के स्थान को (प्र,यन्ति) प्राप्त होते हैं उन का आप सेवन करो ॥ ४ ॥

भावार्थः—हे राजन् जितना आप को राज्य का भाग लेना चाहिये उतना ही ग्रहण कर भोग करिये न अधिक न न्यून ऐसा करने से नहीं कभी आप की हानि होगी ॥ ४ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

दधिष्वा जठरे सुतं सोममिन्द्र वरेण्यम् । तव द्युक्षास इन्दवः ॥ ५ ॥ १ ॥

दधिष्व । जठरे । सुतम् । सोमम् । इन्द्र । वरेण्यम् । तव । द्युक्षासः । इन्दवः ॥ ५ ॥ १ ॥

पदार्थः—(दधिष्व) धरस्व । अत्र संहितायामिति दीर्घः (जठरे) जायते सुखं यस्मात्तस्मिन्नुदरे (सुतम्) सुसंस्कृतम् (सोमम्)

महौषधिविशिष्टमन्नम् (इन्द्र) पूर्णायुःकामुक (वरेण्यम्) स्वीकर्त्तुं भोक्तुमर्हम् (तव) (द्युत्तासः) दिवि प्रकाशे क्षियन्ति निवासयन्ति ते (इन्दवः) सस्नेहाः ॥ ५ ॥

अन्वयः—हे इन्द्र ये तव द्युत्तास इन्दवः स्युस्तेषां सकाशाद्वरेण्यं सुतं सोमं जठरे त्वं दधिष्व ॥ ५ ॥

भावार्थः—राजादिभिर्मनुष्यैः सर्वेषां पदार्थानां मध्यात्त एव पदार्था भोक्तव्याः पेयाश्च ये प्रज्ञायुर्बलानि वर्धयेयुः ॥ ५ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) पूर्ण अवस्था की कामना करने वाले जो (तव) आप के (द्युत्तासः) प्रकाश में रहने (इन्दवः) और स्नेह करने वाले होवें उन के समीप से (वरेण्यम्) भोग करने योग्य (सुतम्) उत्तम प्रकार बनाया (सोमम्) श्रेष्ठ औषधियों से युक्त अन्न को (जठरे) उत्पन्न हो सुख जिस में उस पेट में आप (दधिष्व) धरो ॥ ५ ॥

भावार्थः—राजा आदि मनुष्यों को संपूर्ण पदार्थों के मध्य से उन्हीं पदार्थों का खान और पान करना चाहिये कि जो बुद्धि अवस्था और बल को निरन्तर बढ़ावें ॥ ५ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

गिर्वणः पाहि नः सुतं मधोर्धाराभिरज्यसे ।
इन्द्र त्वा दातमिद्यशः ॥ ६ ॥

गिर्वणः । पाहि । नः । सुतम् । मधोः । धाराभिः । अज्यसे । इन्द्र । त्वाऽदातम् । इत् । यशः ॥ ६ ॥

पदार्थः—(गिर्वणः) यो गीर्भिर्वन्यते याच्यते तत्सम्बुद्धौ (पाहि) (नः) अस्मान् (सुतम्) (मधोः) मधुरादिगुणयुक्तस्य (धाराभिः)

प्रवाहैः (अज्यसे) प्राप्यसे (इन्द्र) (त्वादातम्) त्वया गृहीतम् (इत्) एव (यशः) आरोग्यप्रदमुदकमन्नं धनं वा। यश इति उदकना० निघं० १। १२ अन्ननामसु च २। ७ धनना० निघं० २। १०॥ ६॥

अन्वयः—हे गिर्वण इन्द्र यत्त्वादातं यशोऽस्ति तेन मधोर्धाराभिश्च सह सुतं सोमं प्राप्तोऽस्माभिरज्यसे स त्वमस्मान् पाहि॥६॥

भावार्थः—हे राजन् यावत्पेयमन्नं धनं चास्मद्भवता स्वीकृतं तेन स्वस्याऽस्माकं च रक्षा विधेहि॥ ६॥

पदार्थः—हे (गिर्वणः) वाणियों से याचना किये जाते (इन्द्र) तेजस्विन् जो (त्वादातम्, इत्) आप से ग्रहण किया हुआ ही (यशः) रोगनाशक जल अन्न वा धन है उस से और (मधोः) मधुर आदि गुणों से युक्त वस्तु के (धाराभिः) प्रवाहों के साथ (सुतम्) उत्पन्न हुए (सोमम्) ओषधि आदि पदार्थ को पाये हुए हम लोगों से जाने जाते हो वह आप (नः) हमारी (पाहि) रक्षा कीजिये॥ ६॥

भावार्थः—हे राजन् जितना पीने योग्य वस्तु अन्न और धन हम लोगों का आपने स्वीकार किया है उस से अपनी और हम लोगों की रक्षा कीजिये॥६॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं॥

अभि द्युम्नानि वनिन इन्द्रं सचन्ते अक्षिता।
पीत्वी सोमस्य वावृधे॥ ७॥

अभि। द्युम्नानि। वनिनः। इन्द्रम्। सचन्ते। अक्षिता। पीत्वी। सोमस्य। ववृधे॥ ७॥

पदार्थः—(अभि) आभिमुख्ये (द्युम्नानि) यशांसि जलान्यन्नानि धनानि वा (वनिनः) याञ्चावन्तः (इन्द्रम्) ऐश्वर्यकरम् (सचन्ते) सम्बध्नन्ति (अक्षिता) क्षयरहितानि (पीत्वी) (सोमस्य) ओषध्यैश्वर्य्यस्य योगेन (वावृधे) वर्धते ॥ ७ ॥

अन्वयः—हे राजन् यथा वनिनोऽक्षिता द्युम्नान्यभीन्द्रं सचन्ते यथाऽहं सोमस्य पीत्वी वावृधे तथा त्वमाचर ॥ ७ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—सर्वैर्मनुष्यैर्धर्मयुक्तेन परमपुरुषार्थेनाऽक्षयमैश्वर्यं प्राप्य युक्ताऽऽहारविहारेणाऽऽरोग्यं सम्पाद्य च जगति सुकीर्त्तिर्विस्तारणीया ॥ ७ ॥

पदार्थः—हे राजन् जैसे (वनिनः) मांगने वाले जन (अक्षिता) नाश से रहित (द्युम्नानि) यशों के (अभि) सन्मुख (इन्द्र) ऐश्वर्य करने वाले का (सचन्ते) सम्बन्ध होते हैं और जैसे मैं (सोमस्य) ओषधिरूप ऐश्वर्य्य के योग से (पीत्वी) पान करके (वावृधे) वृद्धि करूं वैसे आप करो ॥ ७ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—सब मनुष्यों को चाहिये कि धर्म्मयुक्त अत्यन्त पुरुषार्थ से नहीं नाश होने योग्य ऐश्वर्य्य को प्राप्त हो कर नियमित भोजन और विहार से आरोग्य को उत्पन्न करके संसार में उत्तम कीर्ति का विस्तार करें ॥ ७ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अर्वावतो न आ गहि परावतंश्च वृत्रहन् ।
इमा जुषस्व नो गिरः ॥ ८ ॥

अर्वाऽवतः । नः । आ । गहि । पराऽवतः । च । वृत्रऽहन् । इमाः । जुषस्व । नः । गिरः ॥ ८ ॥

पदार्थः—(अर्वावतः) प्रशस्ता अश्वा विद्यन्ते येषाम् (नः) अस्मान् (आ) समन्तात् (गहि) प्राप्नुहि (परावतः) दूर-देशात् (च) समीपात् (वृत्रहन्) यो वृत्तं धनं हन्ति प्राप्नोति तत्सम्बुद्धौ (इमाः) (जुषस्व) सेवस्व (नः) अस्माकम् (गिरः) वाचः ॥ ८ ॥

अन्वयः—हे वृत्रहँस्त्वमर्वावतो नोऽस्मान् परावतश्चागहि न इमा गिरो जुषस्व ॥ ८ ॥

भावार्थः—हे राजन् दूरे समीपे वा स्थिता सेनाङ्गयुक्ता वीरा वयं यदा भवन्तमाह्वयेम तदैव श्रीमताऽऽगन्तव्यमस्माकं वचनानि श्रोतव्यानि च यथार्थो न्यायश्च कर्त्तव्यः ॥ ८ ॥

पदार्थः—हे (वृत्रहन्) धन को प्राप्त होने वाले आप (अर्वावतः) प्रशंसा करने योग्य घोड़ों से युक्त (नः) हम लोगों को (परावतः) दूर देश से (च) और समीप से (आ) सब ओर से (गहि) प्राप्त हूजिये और (नः) हम लोगों की (इमाः) इन (गिरः) वाणियों का (जुषस्व) सेवन करो ॥ ८ ॥

भावार्थः—हे राजन् दूर वा समीप में स्थित सेना के अङ्ग शस्त्र आदि से युक्त वीर हम लोग जब आप को पुकारें उसी समय आप को आना चाहिये तथा हम लोगों के वचन सुनना और यथार्थ न्याय करना चाहिये ॥ ८ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

यदन्तरा परावतमर्वावतं च हूयसे । इन्द्रेह तत आ गहि ॥ ९ ॥ २ ॥

यत् । अन्तरा । पराऽवतम् । अर्वाऽवतम् । च । हूयसे ।
इन्द्र । इह । ततः । आ । गहि ॥ १ ॥ २ ॥

पदार्थः—(यत्) यः (अन्तरा) व्यवधाने (परावतम्) दूरदेशस्थम् (अर्वावतम्) प्राप्तसामीप्यम् (च) (हूयसे) स्तूयसे (इन्द्र) परमैश्वर्य्यप्रद (इह) अस्मिन् राज्ये (ततः) (आ) (गहि) आगच्छ ॥ १ ॥

अन्वयः—हे इन्द्र त्वमिह यद्यमन्तरा परावतमर्वावतं चाह्वयति तैश्च हूयसे ततोऽस्मानागहि ॥ १ ॥

भावार्थः—राजा दूरदेशे प्रजासेनाऽमात्यजनोऽन्यत्रापि वर्त्तेत तथापि भृत्यद्वारा सर्वैः सह समीपस्थो भवेदिति ॥ १ ॥

अत्र राजप्रजागुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिर्वेद्या ॥

इति चत्वारिंशत्तमं सूक्तं द्वितीयो वर्गश्च समाप्तः ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य्य के दाता आप (इह) इस राज्य में (यत्) जो (अन्तरा) व्यवधान अर्थात् मध्य में (परावतम्) दूर देश और (अर्वावतम्) समीप में वर्त्तमान को (च) और पुकारते हैं उन लोगों से (हूयसे) पुकारे जाते हो (ततः) इस से हम लोगों को (आ, गहि) प्राप्त हूजिये ॥ १ ॥

भावार्थः—राजा दूर देश में हो और प्रजा सेना और मन्त्री जन अन्यत्र भी वर्त्तमान हों तथापि दूतों के द्वारा सब लोगों के साथ समीप में वर्त्तमान हो सके ॥ १ ॥

इस सूक्त में राजा और प्रजा के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की पिछिले सूक्त के अर्थ के साथ संगति जानना चाहिये ॥

यह चालीशवां सूक्त और दूसरा वर्ग समाप्त हुआ ॥

अथ नवर्चस्यैकाधिकचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य विश्वामित्र ऋषिः। इन्द्रो देवता । १ यवमध्या गायत्री । २ । ३ । ५ । ९ गायत्री । ४ । ७ । ८ निचृत् गायत्री । ६ विराट् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अथाग्निविषयमाह ॥

अब नव ऋचा वाले एकतालीशवें सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में अग्नि के विषय को कहते हैं ॥

आ तू न॑ इन्द्र म॒द्र्य॑ग्घुवा॒नः सोम॑पीतये। हरि॑भ्यां याह्यद्रिवः ॥ १ ॥

आ । तु । नः॒ । इ॒न्द्र॒ । म॒द्र्य॑क् । हु॒वा॒नः । सोम॑ऽपीतये । हरि॑ऽभ्याम् । या॒हि॒ । अ॒द्रि॒ऽवः॒ ॥ १ ॥

पदार्थः—(आ) समन्तात् (तु)। अत्र ऋचि तुनुघेति दीर्घः (नः) अस्मान् (इन्द्र) ऐश्वर्य्यकारक (मद्र्यक्) मामञ्चतीति मद्र्यक् (हुवानः) आहूतः (सोमपीतये) सोमः पीतो यस्मिंस्तस्मै (हरिभ्याम्) अश्वाभ्याम् (याहि) (अद्रिवः) मेघवान् सूर्य्य इव वर्त्तमान ॥ १ ॥

अन्वयः—हे अद्रिव इन्द्र त्वं सोमपीतये मद्र्यग्घुवानो हरिभ्यां नोऽस्मानायाहि वयन्तु भवन्तमायाम ॥ १ ॥

भावार्थः—मनुष्यैरुत्सवेषु परस्परेषामाह्वानं कृत्वाऽन्नपानादिभिः सत्कारः कर्त्तव्यः ॥ १ ॥

पदार्थः—हे (अद्रिवः) मेघों से युक्त सूर्य्य के तुल्य वर्त्तमान (इन्द्र) ऐश्वर्य्य के करने वाले आप (सोमपीतये) सोमलतारूप औषध का रस पीया

जाय जिस कर्म में उस के लिये (मह्यूक्) मेरी पूजा अर्थात् उपासना करने वाला (हुवानः) पुकारा गया जन (हरिभ्याम्) घोड़ों से (नः) हम लोगों को (आ) सब प्रकार (याहि) प्राप्त हो और हम लोग (तु) शीघ्र आप को प्राप्त होवें ॥ १ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि शुभ कार्य्य आदि के उत्सवों में परस्पर एक दूसरे का आह्वान करके अन्न और जल आदिकों से सत्कार करें ॥१॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

सत्तो होता न ऋत्वियस्तिस्तिरे बर्हिरानुषक् ।
अयुञ्जन् प्रातरद्रयः ॥ २ ॥

सत्तः । होता । नः । ऋत्वियः । तिस्तिरे । बर्हिः । आनुषक् । अयुञ्जन् । प्रातः । अद्रयः ॥ २ ॥

पदार्थः—(सत्तः) निषण्णः (होता) आदाता (नः) अस्मान् (ऋत्वियः) य ऋतुमर्हति सः (तिस्तिरे) स्तृणात्याच्छादयति (बर्हिः) उत्तममासनं वस्तु वा (आनुषक्) य आनुकूल्यं सचति समवैति सः (अयुञ्जन्) युञ्जन्ति (प्रातः) (अद्रयः) मेघाः ॥ २ ॥

अन्वयः—यः सत्तो होतर्त्विय आनुषक् सन्नोऽस्मान् बर्हिरद्रयः प्रातरयुञ्जन्निव तिस्तिरे ते क्रियायज्ञं कर्त्तुमर्हन्ति ॥ २ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यथा प्रभातकालीना मेघाः सूर्य्यप्रकाशमाच्छाद्य छायां जनयन्ति तथैव क्रियाविदो जना वस्त्रादिपदार्थैः शरीराण्याच्छाद्याऽऽनुकूल्येन सुखं जनयन्ति ॥ २ ॥

पदार्थः—जो (सत्तः) बैठा हुआ (होता) ग्रहण करने वाला और (ऋत्वियः) जो ऋतु को योग्य होता वा (आनुषक्) अनुकूलता के साथ मिलता ये (नः) हम लोगों के लिये (बर्हिः) उत्तम आसन वा वस्तु को (अद्रयः) मेघों के सदृश (प्रातः) प्रातःकाल में (अयुज्रन्) युक्त करते हैं और (तिस्तिरे) वस्त्रों से आच्छादन करते हैं वे क्रियारूप यज्ञ करने को योग्य हैं ॥ २ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे प्रभातकाल के मेघ सूर्य्य के प्रकाश का आच्छादन करके छाया को उत्पन्न करते हैं वैसे ही क्रियाओं को जानने वाले लोग वस्त्र आदि पदार्थों से शरीरों को ढांप के अनुकूलता से सुख को उत्पन्न करते हैं ॥ २ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इमा ब्रह्म ब्रह्मवाहः क्रियन्त आ बर्हिः सीद ।
वीहि शूर पुरोडाशम् ॥ ३ ॥

इमा । ब्रह्म । ब्रह्मऽवाहः । क्रियन्ते । आ । बर्हिः । सीद ।
वीहि । शूर । पुरोडाशम् ॥ ३ ॥

पदार्थः—(इमा) (ब्रह्म) धनम् (ब्रह्मवाहः) धनप्रापिकाः (क्रियन्ते) (आ) (बर्हिः) अन्तरिक्षम् (सीद) (वीहि) प्राप्नुहि (शूर) दुष्टानां हिंसक (पुरोडाशम्) विशेषसंस्कृतमन्नम् ॥ ३ ॥

अन्वयः—हे शूर या इमा ब्रह्मवाहः क्रियाः क्रियन्ते ताभिर्ब्रह्म वीहि बर्हिरासीद पुरोडाशं वीहि ॥ ३ ॥

भावार्थः—मनुष्यैर्निष्फलाः क्रियाः कदाचिन्नैव कर्त्तव्याः । यया यया धर्मार्थकाममोक्षसिद्धिः स्यात्तां २ प्रयत्नेनानुतिष्ठन्तु ॥३॥

पदार्थः—हे (शूर) दुष्टों के नाश करने वाले जो (इमाः) ये (ब्रह्मवाहः) धनों को प्राप्त कराने वाली क्रियायें (क्रियन्ते) की जाती हैं उन से (ब्रह्म) धन को (वीहि) प्राप्त (बर्हिः) अन्तरिक्ष में (आ, सीद) वर्त्तमान और (पुरोडाशम्) उत्तम प्रकार संस्कारयुक्त अन्न को प्राप्त हो ॥ ३ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि निष्फल क्रियाओं को कभी न करें । जिस जिस क्रिया से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि हो उस २ को प्रयत्न से करो ॥ ३ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

रारन्धि सवनेषु ण एषु स्तोमेषु वृत्रहन् । उक्थेष्विन्द्र गिर्वणः ॥ ४ ॥

ररन्धि । सवनेषु । नः । एषु । स्तोमेषु । वृत्रऽहन् । उक्थेषु । इन्द्र । गिर्वणः ॥ ४ ॥

पदार्थः—(रारन्धि) रमस्व रमय वा (सवनेषु) ऐश्वर्येषु (नः) अस्मान् (एषु) (स्तोमेषु) प्रशंसनीयेषु (वृत्रहन्) प्राप्तधन (उक्थेषु) वक्तुमर्हेषु (इन्द्र) परमैश्वर्य्यप्रद (गिर्वणः) यो गीर्भिर्वन्यते याच्यते तत्सम्बुद्धौ ॥ ४ ॥

अन्वयः—हे गिर्वणो वृत्रहन्निन्द्र त्वं स्तोमेषूक्थेषु सवनेषु नोऽस्मान् रारन्धि ॥ ४ ॥

भावार्थः—दरिद्रैर्धनाढ्याः सदैव याचनीया यतस्ते सुखमाप्नुयुः॥४॥

पदार्थः—हे (गिर्वणः) वाणियों से जिस से याचना करें वह (वृत्रहन्) धनों से युक्त (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य के देने वाले आप (स्तोमेषु) प्रशंसा करने और (उक्थेषु) कहने के योग्य (सवनेषु) ऐश्वर्यों में (नः) हम लोगों को (रारन्धि) रमाओ ॥ ४ ॥

भावार्थः—दरिद्र लोगों को चाहिये कि धनयुक्त पुरुषों से सदा याचना करें जिस से कि वे दरिद्र लोग सुख को प्राप्त होवें ॥ ४ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

मतयः सोमपामुरुं रिहन्ति शवसस्पतिम् ।
इन्द्रं वत्सं न मातरः ॥ ५ ॥ ३ ॥

मतयः । सोमऽपाम् । उरुम् । रिहन्ति । शवसः । पतिम् ।
इन्द्रम् । वत्सम् । न । मातरः ॥ ५ ॥ ३ ॥

पदार्थः—(मतयः) प्रज्ञायुक्ता मनुष्याः (सोमपाम्) ऐश्वर्य्य-रक्षकम् (उरुम्) बह्वैश्वर्य्यम् (रिहन्ति) लिहन्ति (शवसः) बलस्य (पतिम्) पालकम् (इन्द्रम्) ऐश्वर्य्ययुक्तम् (वत्सम्) (न) इव (मातरः) गावः ॥ ५ ॥

अन्वयः—ये मतयः शवसस्पतिमुरुं सोमपामिन्द्रं मातरो वत्सं न रिहन्ति ते सुखं लभन्ते ॥ ५ ॥

भावार्थः—यथा गावो वात्सल्यभावमास्थाय वत्सेषूत्तमं प्रेम दधति तथैव राजादयोऽध्यक्षाः सेनाः वात्सल्यभावेन रक्षन्तु ॥ ५ ॥

पदार्थः—जो (मतयः) उत्तम बुद्धि से युक्त मनुष्य लोग (शवसः) बल के (पतिम्) पालन करने वाले (उरुम्) बहुत ऐश्वर्य से पूर्ण (सोमपाम्)

ऐश्वर्य्य के रक्षक (इन्द्रम्) ऐश्वर्य्य से युक्त पुरुष (मातरः) गौवें (वत्सम्) बछड़े को (न) जैसे (रिहन्ति) चाटतीं वैसे मिलते हैं वे सुख को प्राप्त होते हैं ॥५॥

भावार्थः—जैसे गौवें प्रेमभाव का आश्रयण करके बछड़ों में प्रेम धारण करती हैं वैसे ही राजा आदि अध्यक्ष पुरुष सेनाओं की प्रजाओं के प्रेमभाव से रक्षा करें ॥ ५ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

स मन्दस्वा ह्यन्धसो राधसे तन्वा महे। न स्तोतारँ निदे करः ॥ ६ ॥

सः। मन्दस्व। हि। अन्धसः। राधसे। तन्वा। महे। न। स्तोतारम्। निदे। करः ॥ ६ ॥

पदार्थः—(सः) (मन्दस्व) आनन्द। अत्र संहितायामिति दीर्घः (हि) यतः (अन्धसः) अन्नादेः (राधसे) संसिद्धिकराय धनाय (तन्वा) शरीरेण (महे) महते (न) निषेधे (स्तोतारम्) विद्वांसम् (निदे) निन्दनाय (करः) कुर्यात् ॥ ६ ॥

अन्वयः-हे विद्वन् हि यतस्त्वं स्तोतारं निदे न करस्तस्मात्स त्वं तन्वाऽन्धसो महे राधसे मन्दस्व ॥ ६ ॥

भावार्थः—ये मनुष्या स्तुत्यर्हान् निन्दितान् न कुर्वन्ति ते महदैश्वर्य्यं प्राप्य शरीरेणात्मना च सदैव सुखयन्ति ॥ ६ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् पुरुष (हि) जिस से आप (स्तोतारम्) विद्वान् पुरुष की (निदे) निन्दा करने के लिये (न) नहीं (करः) करें इस से (सः) वह आप (तन्वा) शरीर से (अन्धसः) अन्न आदि की (महे) बड़ी (राधसे) सिद्धि करने वाले धन के लिये (मन्दस्व) आनन्द करो ॥ ६ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य स्तुति करने योग्य पुरुषों की निन्दा नहीं करते वे बड़े ऐश्वर्य को प्राप्त होकर शरीर और आत्मा से सदा ही सुखी होते हैं ॥६॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

वयमिन्द्र त्वायवो हविष्मन्तो जरामहे । उत त्वमस्मयुर्वसो ॥ ७ ॥

वयम् । इन्द्र । त्वाऽयवः । हविष्मन्तः । जरामहे । उत । त्वम् । अस्मऽयुः । वसो इति ॥ ७ ॥

पदार्थः—(वयम्) (इन्द्र) ऐश्वर्य्ययुक्त (त्वायवः) त्वत्कामयमानाः (हविष्मन्तः) बहूनि हवींषि दातव्यानि वस्तूनि विद्यन्ते येषान्ते (जरामहे) प्रशंसेम (उत) अपि (त्वम्) (अस्मयुः) अस्मान् कामयमानः (वसो) वासहेतो ॥ ७ ॥

अन्वयः—हे वसो इन्द्र हविष्मन्तो त्वायवो वयं त्वां जरामहे उतापि त्वमस्मयुः सन्नस्मान्स्तुहि ॥ ७ ॥

भावार्थः—ये मनुष्याः सर्वेषां गुणानां प्रशंसां दोषाणां निन्दां कुर्य्युस्ते विवेकिनो भूत्वा गुणान् ग्रहीतुं दोषांस्त्यक्तुं समर्था भवन्ति ॥ ७ ॥

पदार्थः—हे (वसो) निवास के कारण (इन्द्र) ऐश्वर्य से और (हविष्मन्तः) बहुत देने योग्य वस्तुओं से युक्त (त्वायवः) आप की कामना करते हुए (वयम्) हम लोग आप की (जरामहे) प्रशंसा करें (उत) और भी (त्वम्) आप (अस्मयुः) हम लोगों की कामना करते हुए हम लोगों की प्रशंसा करो ॥ ७ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य सब लोगों के गुणों की प्रशंसा और दोषों की निन्दा करें वे विवेकी अर्थात् विचारशील हो के गुणों के ग्रहण करने और दोषों के त्याग करने को समर्थ होते हैं ॥ ७ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

मारे अस्मद्वि मुमुचो हरिप्रियार्वाङ् याहि ।
इन्द्र स्वधावो मत्स्वेह ॥ ८ ॥

मा । आरे । अस्मत् । वि । मुमुचः । हरिऽप्रिय । अर्वाङ् । याहि । इन्द्र । स्वधाऽवः । मत्स्व । इह ॥ ८ ॥

पदार्थः—(मा) निषेधे (आरे) समीपे दूरे वा (अस्मत्) (वि) (मुमुचः) मोचयेः (हरिप्रिय) यो हरीन् हरणशीलान् प्रीणाति तत्सम्बुद्धौ (अर्वाङ्) अर्वाचीनं देशं गच्छन् (याहि) गच्छ (इन्द्र) ऐश्वर्य्ययुक्त (स्वधावः) बह्वन्नादिप्राप्त (मत्स्व) आनन्द (इह) अस्मिञ्जगति ॥ ८ ॥

अन्वयः—हे हरिप्रियेन्द्र स्वधावस्त्वमस्मदारे मा वि मुमुचोऽर्वाङ् याहीह मत्स्व ॥ ८ ॥

भावार्थः—हे मित्रजना यूयमस्मद्दूरे समीपे वा स्थिताः सन्तोऽस्माकं प्रियमाचरत प्रीतिं मा त्यजत वयमपि युष्मासु तथा वर्त्तेमह्येवं परस्परं वर्त्तमानं कृत्वेह सुखिनो भवेम ॥ ८ ॥

पदार्थः—हे (हरिप्रिय) हरने वालों को प्रसन्न करने वाले (इन्द्र) ऐश्वर्य्य में युक्त (स्वधावः) बहुत अन्नादि वस्तुओं से पूर्ण आप (अस्मत्)

हम लोगों से (आरे) समीप वा दूर देश में (मा) मत (वि, मुमुचः) त्याग करिये (अर्वाङ्) नीचे के स्थान को जाते हुए (याहि) जाइये और (इह) इस संसार में (मत्स्व) आनन्द करिये ॥ ८ ॥

भावार्थः—हे मित्र जनो आप लोग हम लोगों से दूर वा समीप स्थान में वर्त्तमान हुए हम लोगों का कल्याण करो और प्रीति का त्याग मत करो और हम लोग भी आप लोगों में ऐसा ही वर्त्ताव करें इस प्रकार परस्पर वर्त्ताव करके इस संसार में सुखी होवें ॥ ८ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अर्वाञ्चं त्वा सुखे रथे वहंतामिन्द्र केशिनां ।
घृतस्नू बर्हिरासदें ॥ ९ ॥ ४ ॥

अर्वाञ्चम् । त्वा । सुऽखे । रथे । वहंताम् । इन्द्र । केशिनां । घृतस्नू इति घृतऽस्नूं । बर्हिः । आऽसदें ॥ ९ ॥ ४ ॥

पदार्थः—(अर्वाञ्चम्) योऽर्वागधोऽञ्चति गच्छति तम् (त्वा) त्वाम् (सुखे) सुखकारके (रथे) रमणीये याने (वहताम्) (इन्द्र) ऐश्वर्य्ययुक्त (केशिना) बहवः केशा विद्यन्ते ययोस्तौ (घृतस्नू) यौ घृतमुदकं स्नातः शोधयतस्तौ (बर्हिः) अन्तरिक्षे (आसदे) आसादनीयाय ॥ ९ ॥

अन्वयः—हे इन्द्र यौ घृतस्नू केशिनाऽर्वाञ्चं त्वा सुखे रथे बर्हिरासदे वहतां तौ त्वं जानीहि ॥ ९ ॥

भावार्थः—हे मनुष्या द्वाभ्यामग्निभ्यां चालितेषु यानेषु स्थित्वाऽध ऊर्ध्वं तिर्य्यग्देशं च गत्वाऽऽगच्छत ॥ ९ ॥

अत्र विद्वन्मनुष्यगुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति वेद्यम् ॥ इत्येकाधिकचत्वारिंशत्तमं सूक्तं ४ वर्गश्च समाप्तः ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) ऐश्वर्य्य से युक्त जो (घृतस्नू) घृत अर्थात् जल को पवित्र करने वाले (केशिना) बहुत केशों से युक्त (अर्वाञ्चम्) नीचे जाने वाले (त्वा) आप को (सुखे) सुख कराने वाले (रथे) सुन्दर वाहन और (बर्हिः) अन्तरिक्ष में (आसदे) वर्त्तमान होने के लिये (वहताम्) पहुचावें उन को आप जानिये ॥ ९ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो दो अग्नियों से चलाये हुए वाहनों पर स्थित हो कर नीचे ऊपर और तिरछे देश में जा कर आइये ॥ ९ ॥

इस सूक्त में विद्वान् मनुष्यों के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की पिछिले सूक्त के अर्थ के साथ संगति है ऐसा जानना चाहिये ॥

यह इकतालीशवां सूक्त और चौथा वर्ग समाप्त हुआ ॥

अथ उप नः सुतमित्यस्य नवर्चस्य द्विचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य विश्वामित्र ऋषिः । इन्द्रो देवता । १।४।५।६।७ गायत्री ।२।३।८।९ निचृद्गायत्री च्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अथ विद्वद्विषयमाह ॥

अब नव ऋचा वाले बयालीशवें सूक्त का आरम्भ है इस के प्रथम मन्त्र में विद्वान् के गुणों को कहते हैं ॥

उप॑ नः सु॒तमा ग॑हि॒ सोम॑मिन्द्र॒ गवा॑शिरम् ।
हरि॑भ्यां॒ यस्ते॑ अस्म॒युः ॥ १ ॥

उप॑ । नः॒ । सु॒तम् । आ । ग॒हि॒ । सोम॑म् । इ॒न्द्र॒ । गोऽआ॑शिरम् । हरि॑ऽभ्याम् । यः । ते॒ । अ॒स्म॒ऽयुः ॥ १ ॥

पदार्थः—(उप) (नः) अस्माकम् (सुतम्) सुसाधितम् (आ) (गहि) समन्तात् प्राप्नुहि (सोमम्) ओषधिगणमिवैश्वर्य्यम् (इन्द्र) बह्वैश्वर्य्ययुक्त (गवाशिरम्) गावोऽश्नन्ति यं तम् (हरिभ्याम्) अश्वाभ्यां युक्तेन रथेन (यः) (ते) तव (अस्मयुः) आत्मनोऽस्मानिच्छुरिव ॥ १ ॥

अन्वयः—हे इन्द्र त्वं हरिभ्यां युक्तेन रथेन यस्ते रथोऽस्मयुर्वर्त्तते तेन हरिभ्यां युक्तेन नः सुतं सोममुपागहि ॥ १ ॥

भावार्थः—त एव सर्वेषां सुहृदः सन्ति ये स्वैश्वर्येण सर्वानामन्त्र्य सत्कुर्वन्ति ॥ १ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य्ययुक्त आप (हरिभ्याम्) घोड़ों से युक्त रथ से (यः) जो (ते) आप का वाहन (अस्मयुः) अपने को हम लोगों की इच्छा करता हुआ सा वर्त्तमान है घोड़ों से युक्त उस रथ से (नः) हम लोगों के (सुतम्) उत्तम प्रकार सिद्ध (सोमम्) ओषधिगणों के सदृश ऐश्वर्य्य को (उप, आ, गहि) समीप में सब प्रकार प्राप्त हूजिये ॥ १ ॥

भावार्थः—वे लोग ही सब लोगों के मित्र हैं कि जो लोग अपने ऐश्वर्य्य से सब लोगों को बुला कर सत्कार करते हैं ॥ १ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

तमिन्द्र मदमा गहि बर्हिष्ठां ग्रावभिः सुतम् ।
कुविन्न्वस्य तृष्णवः ॥ २ ॥

तम् । इन्द्र । मदम् । आ । गहि । बर्हिःऽस्थाम् । ग्रावऽभिः । सुतम् । कुवित् । नु । अस्य । तृष्णवः ॥ २ ॥

पदार्थः—(तम्) पूर्वोक्तम् (इन्द्र) ऐश्वर्य्यमिच्छो (मदम्) आन्दकरम् (आ) (गहि) सर्वतः प्राप्नुहि (बर्हिष्ठाम्) यो बर्हिष्यन्तरिक्षे तिष्ठति तम् (ग्रावभिः) मेघैः (सुतम्) निष्पन्नम् (कुवित्) महान् सन् (नु) सद्यः (अस्य) सोमस्य (तृप्णवः) ये तृप्यन्ति ते ॥ २ ॥

अन्वयः—हे इन्द्र येऽस्य तृप्णवः सन्ति तैः कुवित्सन् तं ग्रावभिः सुतं मदं बर्हिष्ठां सोमं त्वागहि ॥ २ ॥

भावार्थः—ये सोमलतादयो वर्षाभिरुत्पद्यन्ते रोगविनाशकत्वेन तृप्तिकरा भवन्ति सूक्ष्मांशैरन्तरिक्षं प्राप्य सर्वत्र प्रसरन्ति तान् युक्त्या संसेव्य सदाऽऽनन्दो भोक्तव्यः ॥ २ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) ऐश्वर्य की इच्छा करने वाले जो (अस्य) इस सोमलता की (तृप्णवः) तृप्ति करने वाले हैं उन से (कुवित्) श्रेष्ठ होकर (तम्) उस पूर्वोक्त को (ग्रावभिः) मेघों से (सुतम्) उत्पन्न (मदम्) आनन्दकारक (बर्हिष्ठाम्) अन्तरिक्ष में वर्त्तमान होने वाले ओषधिगणों के सदृश वर्त्तमान ऐश्वर्य को (नु) शीघ्र (आ, गहि) सब प्रकार प्राप्त हूजिये ॥ २ ॥

भावार्थः—जो सोमलता आदि ओषधियां वृष्टियों से उत्पन्न होतीं रोगविनाशक होने से तृप्तिकारक होतीं और सूक्ष्म अवयवों के द्वारा अन्तरिक्ष को प्राप्त हो के सब स्थानों में फैलती हैं उन का युक्ति से सेवन करके सदा आनन्द का भोग करना चाहिये ॥ २ ॥

अथ विद्वत्सत्कारविषयमाह ॥

अब विद्वानों के सत्कार विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इन्द्र॒मि॒त्था गिरो॒ ममाच्छा॑गुरिषि॒ता इ॒तः ।
आ॒वृते॒ सोम॑पीतये ॥ ३ ॥

इन्द्रम् । इत्था । गिरः । मम । अच्छ । अगुः । इषिताः । इतः । आऽवृते । सोमऽपीतये ॥ ३ ॥

पदार्थः—(इन्द्रम्) परमैश्वर्य्यवन्तम् (इत्था) अनेन प्रकारेण (गिरः) सुशिक्षिता वाचः (मम) (अच्छ) (अगुः) प्राप्नुवन्तु (इषिताः) प्रेरिताः (इतः) अस्मात् (आवृते) सर्वत आच्छादिते स्थानविशेषे (सोमपीतये) सोमस्य पानाय ॥ ३ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यथाऽऽवृते सोमपीतये ममेषिता गिर इत इन्द्रमच्छागुरित्था युष्माकमप्येनं प्राप्नुवन्तु ॥ ३ ॥

भावार्थः–अत्र वाचकलु०–विद्वांसोऽन्यान् प्रत्येवमुपदिशेयुर्वयं यानाहूय सत्कुर्य्याम यूयमपि तानेव सत्कुरुत ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (आवृते) सब ओर से ढांपे हुए स्थान विशेष में (सोमपीतये) सोमलता के रस के पान करने के लिये (मम) मेरी (इषिताः) प्रेरणा की गई (गिरः) उत्तम प्रकार शिक्षित वाणियां (इतः) इस से (इन्द्रम्) अत्यन्त ऐश्वर्य वाले को (अच्छ, अगुः) अच्छे प्रकार प्राप्त हों (इत्था) इस प्रकार से आप लोगों की भी वाणियां इस को प्राप्त हों ॥ ३ ॥

भावार्थः–इस मन्त्र में वाचकलु०–विद्वान् लोग अन्य जनों के प्रति इस प्रकार से उपदेश देवें कि हम लोग जिन का बुला कर सत्कार करें आप लोग भी उन्हीं का सत्कार करें ॥ ३ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इन्द्रं सोमस्य पीतये स्तोमैरिह हवामहे । उक्थेभिः कुविदागमत् ॥ ४ ॥

इन्द्रम् । सोम॑स्य । पीतये॑ । स्तोमैः॑ । इ॒ह । ह॒वा॒म॒हे॒ ।
उ॒क्थेभिः॑ । कु॒वित् । आ॒ऽगम॑त् ॥ ४ ॥

पदार्थः—(इन्द्रम्) परमविद्यैश्वर्य्यम् (सोमस्य) सुसाधितमहौषधिरसस्य (पीतये) पानाय (स्तोमैः) प्रशंसावचनैः (इह) अस्मिन् संसारे (हवामहे) आह्वयामहे (उक्थेभिः) वक्तुमर्हैः (कुवित्) बहुवारम् । कुविदिति बहुना० निघं० ३ । १ । (आगमत्) आगच्छतु ॥ ४ ॥

अन्वयः—हे विद्वन् वयं स्तोमैरुक्थेभिः सोमस्य पीतये यमिन्द्रमिह हवामहे सोऽस्माकं समीपं कुविदागमत् ॥ ४ ॥

भावार्थः—यद्यविद्वांसः प्रीत्या विदुष आह्वयेयुस्तदा ते तत्सन्निधिं बहुवारं गच्छन्तु ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे विद्वज्जन हम लोग (स्तोमैः) प्रशंसा के वचन जो (उक्थेभिः) कहने के योग्य उन से (सोमस्य) उत्तम प्रकार निकाले हुए बड़ी ओषधि के रस के (पीतये) पान करने के लिये जिस (इन्द्रम्) अत्यन्त विद्या और ऐश्वर्य्य वाले को (इह) इस संसार में (हवामहे) पुकारें वह हम लोगों के समीप (कुवित्) बहुत वार (आगमत्) आवे ॥ ४ ॥

भावार्थः—जो अविद्वान् लोग प्रीति से विद्वान् लोगों को बुलावें तो वे उन के समीप बहुत वार जावें ॥ ४ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

इन्द्र॒ सोमाः॑ सु॒ता इ॒मे तान्द॑धिष्व शतक्रतो ।
ज॒ठरे॑ वाजिनीवसो ॥ ५ ॥ ५ ॥

इन्द्र॑ । सोमाः॑ । सुताः । इ॒मे । तान् । द॒धि॒ष्व॒ । श॒त॒ऽक्र॒तो॒ इति॑ शतऽक्रतो । ज॒ठरे॑ । वा॒जि॒नी॒व॒सो॒ इति॑ वाजिनीऽवसो ॥ ५ ॥ ५ ॥

पदार्थः—(इन्द्र) परमैश्वर्यभोक्तः (सोमाः) पदार्थाः (सुताः) निष्पन्नाः (इमे) (तान्) (दधिष्व) (शतक्रतो) बहुकर्मप्रज्ञ (जठरे) जातेऽस्मिन् जगति (वाजिनीवसो) यो वाजिनीमुषसं वासयति तत्सम्बुद्धौ। वाजिनीत्युषसो ना० निघं० १।८॥५॥

अन्वयः—हे वाजिनीवसो शतक्रतो इन्द्र य इमे जठरे सोमाः सुतास्तान् दधिष्व ॥ ५ ॥

भावार्थः—तदैव मनुष्याः पूर्णविद्यैश्वर्य्याः स्युर्यदा सृष्टिस्थपदार्थविद्यां विजानन्तु ॥ ५ ॥

पदार्थः—हे (वाजिनीवसो) रात्रि को वसाने वाले (शतक्रतो) बहुत कर्मों में कुशल (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य के भोक्ता जो (इमे) ये (जठरे) प्रसिद्ध हुए इस संसार में (सोमाः) पदार्थ (सुताः) उत्पन्न हुए हैं उन को (दधिष्व) धारण करो ॥ ५ ॥

भावार्थः—तभी मनुष्य पूर्ण विद्या और ऐश्वर्य्य वाले होवें कि जब सृष्टि में वर्त्तमान पदार्थों की विद्या को जानें ॥ ५ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

वि॒द्मा हि त्वा॑ धनञ्जयं॒ वाजे॑षु दधृ॒षं क॑वे ।
अधा॑ ते सु॒म्नमी॑महे ॥ ६ ॥

विद्म । हि । त्वा । धनम्ऽजयम् । वाजेषु । दधृषम् । कवे । अध । ते । सुम्नम् । ईमहे ॥ ६ ॥

पदार्थः–(विद्म) विजानीयाम । अत्र द्व्यचोतस्तिङ इति दीर्घः (हि) यतः (त्वा) त्वाम् (धनञ्जयम्) यो धनं जयति तम् (वाजेषु) सङ्ग्रामेषु (दधृषम्) प्रगल्भम् (कवे) विद्वन् (अध) अथ । अत्र निपातस्य चेति दीर्घः (ते) तव सकाशात् (सुम्नम्) सुखम् (ईमहे) याञ्चामहे ॥ ६ ॥

अन्वयः–हे कवे वयं वाजेषु दधृषं धनञ्जयं त्वा विद्म । अध हि ते सुम्नमीमहे ॥ ६ ॥

भावार्थः–मनुष्या यं सुखप्रदानेषु योग्यं शूरवीरं न्यायाधीशं विजानीयुस्तस्मादेव सुखाऽलङ्कृतिः कार्य्या ॥ ६ ॥

पदार्थः–हे (कवे) विद्वान् पुरुष हम लोग (वाजेषु) सङ्ग्रामों में (दधृषम्) प्रचण्ड (धनञ्जयम्) धनों के जीतने वाले (त्वा) आप को (विद्म) जानें (अध) इस के अनन्तर (हि) जिस से (ते) आप के समीप से (सुम्नम्) सुख की (ईमहे) याचना करते हैं ॥ ६ ॥

भावार्थः–मनुष्य जिस को सुखों के प्रदानों में योग्य शूरवीर न्यायाधीश जानें उसी से सुखों की पूर्त्ति करनी चाहिये ॥ ६ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इममिन्द्र गवाशिरं यवाशिरञ्च नः पिब । आगत्या वृषभिः सुतम् ॥ ७ ॥

इमम् । इन्द्र । गोऽआशिरम् । यवऽआशिरम् । च ।
नः । पिब । आऽगत्यं । वृषऽभिः । सुतम् ॥ ७ ॥

पदार्थः—(इमम्) (इन्द्र) ऐश्वर्य्यप्रद (गवाशिरम्) गावः किरणा अश्नन्ति यं तम् (यवाशिरम्) यवा अस्यन्ते यस्मिँस्तम् (च) (नः) अस्माकम् (पिब) (आगत्य) । अत्र संहितायामिति दीर्घः (वृषभिः) वर्षकैर्मेघैः (सुतम्) उत्पादितम् ॥ ७ ॥

अन्वयः—हे इन्द्र त्वमागत्य नो वृषभिः सुतं गवाशिरं यवाशिरं चेमं सोमं पिब ॥ ७ ॥

भावार्थः—हे मनुष्या यं किरणा वायवश्च पिबन्ति तमेव रसं यूयं पीत्वा बलिष्ठा भवत ॥ ७ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) ऐश्वर्य्य के देने वाले आप (आगत्य) आय के (नः) हम लोगों के (वृषभिः) वृष्टिकर्त्ता मेघों से (सुतम्) उत्पन्न किये गये (गवाशिरम्) किरणें जिस को पीती हैं उस और (यवाशिरम्) यव अन्न का भोजन किया जाय जिस में उस (च) और (इमम्) इस पदार्थ को (पिब) पान करो ॥ ७ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो जिस को सूर्य की किरणें और पवनें पीती हैं उसी रस का आप लोग पान कर के बलिष्ठ होइये ॥ ७ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

तुभ्येदिन्द्र स्व ओक्ये३ सोमं चोदामि पीतये ।
एष रारन्तु ते हृदि ॥ ८ ॥

तुभ्य॑ । इत् । इ॒न्द्र॒ । स्वे । ओ॒क्ये॑ । सोम॑म् । चो॒दा॒मि॒ । पी॒तये॑ । ए॒षः । र॒र॒न्तु॒ । ते॒ । हृ॒दि ॥ ८ ॥

पदार्थः—(तुभ्य) तुभ्यम् । अत्र सुपां सुलुगिति विभक्तेर्लुक् (इत्) एव (इन्द्र) ऐश्वर्ययुक्त (स्वे) स्वकीये (ओक्ये) गृहे (सोमम्) रसम् (चोदामि) प्रेरयामि (पीतये) (एषः) (रारन्तु) भृशं रमताम् (ते) तव (हृदि) हृदये ॥ ८ ॥

अन्वयः—हे इन्द्र य एष ते हृदि रारन्तु तं सोमं स्व ओक्ये पीतये तुभ्येच्चोदामि ॥ ८ ॥

भावार्थः—प्राणिभिर्यद्भुज्यते पीयते च तत्सर्वं रुधिरादिकं भूत्वा हृदि संसृत्य मस्तकद्वारा सर्वत्र प्रसरति ॥ ८ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) ऐश्वर्ययुक्त जन जो (एषः) यह (ते) आप के (हृदि) हृदय में (रारन्तु) अत्यन्त रमै उस (सोमम्) रस को (स्वे) अपने (ओक्ये) गृह में (पीतये) पीने को (तुभ्य) आप के लिये (इत्) ही (चोदामि) प्रेरणा करता हूं ॥ ८ ॥

भावार्थः—प्राणी लोग जो खाते और पीते हैं वह सब पदार्थ रुधिर आदि हो और हृदय में फैल कर मस्तक के द्वारा सर्वत्र फैलता है ॥ ८ ॥

अथ विद्वद्विषयमाह ॥

अब विद्वान् के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

त्वां सु॒तस्य॑ पी॒तये॑ प्र॒त्नमि॑न्द्र हवामहे । कु॒शि॒कासो॑ अव॒स्यवः॑ ॥ ९ ॥ ६ ॥

त्वाम् । सु॒तस्य॑ । पी॒तये॑ । प्र॒त्नम् । इ॒न्द्र॒ । ह॒वा॒म॒हे॒ । कु॒शि॒कासः॑ । अ॒व॒स्यवः॑ ॥ ९ ॥ ६ ॥

पदार्थः—(त्वाम्) (सुतस्य) सुसंस्कृतस्य रसस्य (पीतये) (प्रत्नम्) प्राक्तनम् (इन्द्र) सुखप्रद (हवामहे) दद्याम (कुशिकासः) विद्याविनयादिभिराप्ता निष्पन्नाः (अवस्यवः) य आत्मनो रक्षणादिकमिच्छवः ॥ १ ॥

अन्वयः—हे इन्द्र कुशिकासोऽवस्यवो वयं सोमस्य पीतये यं प्रत्नं त्वां हवामहे स त्वमस्मानाह्वय ॥ १ ॥

भावार्थः—नूतनेभ्यो विद्वद्भ्यः प्राक्तना विद्वांसः श्रेष्ठाः सन्तीति निश्चेतव्यमिति ॥ १ ॥

अत्रेन्द्रविद्वत्सोमगुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिर्वेद्या ॥

इति द्विचत्वारिंशत्तमं सूक्तं षष्ठो वर्गश्च समाप्तः ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) सुख के दाता (कुशिकासः) विद्या और विनय आदिकों से श्रेष्ठ हुए (अवस्यवः) आप लोगों के आत्माओं की रक्षा की इच्छा करने वाले हम लोग (सुतस्य) उत्तम प्रकार संस्कारयुक्त रस के (पीतये) पान करने के लिये जिस (प्रत्नम्) प्राचीन काल से सिद्ध (त्वाम्) आप को (हवामहे) देवें वह आप हम लोगों को बुलाइये ॥ १ ॥

भावार्थः—नवीन विद्वानों से प्राचीन विद्वान् श्रेष्ठ हैं ऐसा निश्चय करना चाहिये ॥ १ ॥

इस सूक्त में इन्द्र विद्वान् और सोम के गुण वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

॥ यह बैयालीसवां सूक्त और छठा वर्ग समाप्त हुआ ॥

अथाष्टर्चस्य त्रिचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य विश्वामित्र ऋषिः। इन्द्रो देवता। १ विराट् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः। २। ४। ६ निचृत् त्रिष्टुप्। ५ भुरिक् त्रिष्टुप्। ७। ८ त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथ विद्वद्विषयमाह॥

अब आठ ऋचा वाले तैतालीशवें सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में विद्वानों के विषय को कहते हैं॥

आ याह्यर्वाङुप वन्धुरेष्ठास्तवेदनु प्रदिवः सोमपेयम्। प्रिया सखाया वि मुचोप बर्हिस्त्वामिमे हव्यवाहो हवन्ते॥ १॥

आ। याहि। अर्वाङ्। उप। वन्धुरेऽस्थाः। तव। इत्। अनु। प्रऽदिवः। सोमऽपेयम्। प्रिया। सखाया। वि। मुच। उप। बर्हिः। त्वाम्। इमे। हव्यऽवाहः। हवन्ते॥ १॥

पदार्थः—(आ) (याहि) आगच्छ (अर्वाङ्) अर्वाचीनः (उप) (वन्धुरेष्ठाः) यो वन्धुरे बन्धने तिष्ठति सः (तव) (इत्) एव (अनु) पश्चात् (प्रदिवः) प्रकृष्टो द्यौः प्रकाशो येषान्ते (सोमपेयम्) सोमश्चासौ पेयश्च तम् (प्रिया) प्रसन्नताकरौ (सखाया) सखायौ अध्यापकोपदेशकौ (वि) (मुच) त्यज (उप) समीपे (बर्हिः) अन्तरिक्षे (त्वाम्) (इमे) (हव्यवाहः) ये हव्यं वहन्ति ते (हवन्ते) गृह्णन्ति॥ १॥

अन्वयः—हे विद्वंस्त्वमर्वाङ् सन् यस्तव वन्धुरेष्ठा रथोऽस्ति तेन प्रदिवः सोमपेयमुपायाहि यौ प्रिया सखायाऽध्यापकोपदेशकौ तावुपायाहि । यद्बर्हिस्त्वामन्विमे तद्विमुच यान् हव्यवाह उपहवन्ते तैस्सहेद्दुःखं विमुच ॥ १ ॥

भावार्थः—ये विद्याप्रकाशं प्राप्य विमानादीनि यानानि निर्माय तत्राऽग्न्यादिकं प्रयुज्यान्तरिक्षे गच्छन्ति ते प्रियाचारान् सखीन् प्राप्येव दारिद्र्यमुच्छिन्दन्ति ॥ १ ॥

पदार्थः—हे विद्वज्जन आप (अर्वाङ्) नीचे के स्थल में वर्त्तमान होकर जो (तव) आप के (वन्धुरेष्ठाः) बन्धन में वर्त्तमान रथ है उस से (प्रदिवः) उत्तम प्रकाश वाले (सोमपेयम्) पीने योग्य सोमलता के रस के (उप,आ,याहि) समीप आइये और जो (प्रिया) प्रसन्नता के करने वाले (सखाया) मित्र अध्यापक और उपदेशक हैं उन के समीप प्राप्त हूजिये । जो (बर्हिः) अन्तरिक्ष में (त्वाम्) आप के (अनु) पीछे (इमे) ये हैं उन का (वि, मुच) त्याग कीजिये जिन को (हव्यवाहः) हवन सामग्री धारण करने वाले (उप, हवन्ते) ग्रहण करते हैं उन के साथ (इत्) ही दुःख का त्याग कीजिये ॥ १ ॥

भावार्थः—जो लोग विद्या के प्रकाश को प्राप्त हो विमानादि वाहनों को निर्माण और उस में अग्नि आदि का प्रयोग करके अन्तरिक्ष में जाते हैं वे प्रिय आचरण करने वाले मित्रों को प्राप्त होकर दारिद्र्य का नाश करते हैं ॥ १ ॥

अथ मित्रतागुणविषयमाह ॥

अब मित्रता के गुण के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

आ याहि पूर्वीरति चर्षणीराँ अर्य आशिष उप नो हरिभ्याम् । इमा हि त्वा मतयः स्तोमतष्टा इन्द्र हवन्ते सख्यं जुषाणाः ॥ २ ॥

आ । य<u>ाहि</u> । पू<u>र्वीः</u> । अति । च<u>र्षणीः</u> । आ । <u>अ</u>र्य्यः । <u>आ</u>ऽशिषः । उप । <u>नः</u> । हरिऽभ्याम् । <u>इ</u>माः । हि । त्<u>वा</u> । <u>म</u>तयः । स्तोमऽतष्टाः । इन्द्र । हवन्ते । <u>स</u>ख्यम् । जु<u>षा</u>णाः ॥ २ ॥

पदार्थः—(आ) समन्तात् (याहि) गच्छ (पूर्वीः) पूर्वभूताः (अति) (चर्षणीः) मनुष्यादिप्रजाः (आ) (अर्य्यः) स्वामी (आशिषः) आशीर्वादान् (उप) (नः) अस्मान् (हरिभ्याम्) वाय्वग्नीभ्याम् (इमाः) वर्त्तमानाः (हि) यतः (त्वा) त्वाम् (मतयः) प्रज्ञाः (स्तोमतष्टाः) विस्तृतस्तुतयः (इन्द्र) बह्वैश्वर्यप्रद (हवन्ते) आददति (सख्यम्) मित्रत्वम् (जुषाणाः) सेवमानाः॥२॥

अन्वयः—हे इन्द्र या इमाः स्तोमतष्टाः सख्यं जुषाणा मतयस्त्वाऽऽहवन्ते ताभिः सह नोऽस्मानायाहि। यथार्य्यश्चर्षणीः प्राप्याऽऽशिष उपलभते तथा ताः पूर्वीर्हि हरिभ्यामत्यायाहि ॥ २ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—हे मनुष्या यया प्रज्ञया सर्वैः सह मित्रता स्यात्तया युक्ताः सन्तः सर्वाशिषः प्राप्य सुखं सततं प्राप्नुत ॥२॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) बहुत ऐश्वर्य्यों के देने वाले जो (इमाः) इन वर्त्तमान (स्तोमतष्टाः) विस्तारयुक्त स्तुतियों से विशिष्ट और (सख्यम्) मित्रता का (जुषाणाः) सेवन करती हुई (मतयः) बुद्धियां (त्वा) आप को (आ, हवन्ते) ग्रहण करती हैं उन के साथ (नः) हम लोगों को (आ) सब प्रकार (याहि) प्राप्त हूजिये जिस प्रकार (अर्य्यः) स्वामी (चर्षणीः) मनुष्य आदि प्रजाओं को प्राप्त हो कर (आशिषः) आशीर्वादों को प्राप्त होता है वैसे उन (पूर्वीः) प्राचीन काल में उत्पन्न हुई आशिषों को (हि) ही (हरिभ्याम्) वायु और अग्नि से (अति, आ) सब ओर से अत्यन्त प्राप्त हूजिये ॥ २ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो जिस बुद्धि से सब लोगों के साथ मित्रता हो उस से युक्त हुए सब के आशीर्वादों को प्राप्त हो कर सुख को निरन्तर प्राप्त होइये ॥ २ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

आ नो यज्ञं नमोवृधं सजोषा इन्द्र देव हरिभिर्याहि तूयम् । अहं हि त्वा मतिभिर्जोहवीमि घृतप्रयाः सधमादे मधूनाम् ॥ ३ ॥

आ । नः । यज्ञम् । नमःऽवृधम् । सऽजोषाः । इन्द्र । देव । हरिऽभिः । याहि । तूयम् । अहम् । हि । त्वा । मतिऽभिः । जोहवीमि । घृतऽप्रयाः । सधऽमादे । मधूनाम् ॥३॥

पदार्थः—(आ) समन्तात् (नः) अस्माकम् (यज्ञम्) प्रयत्नसाध्यम् (नमोवृधम्) अन्नाद्यैश्वर्य्यवर्धकम् (सजोषाः) समानप्रीतिसेवनाः (इन्द्र) ऐश्वर्य्ययोजक (देव) विद्वन् (हरिभिः) अश्वैरिव वह्न्यादिभिः (याहि) गच्छ (तूयम्) तूर्णम् (अहम्) (हि) (त्वा) त्वाम् (मतिभिः) प्रज्ञाभिः (जोहवीमि) भृशं प्रशंसाम्याह्वयामि वा (घृतप्रयाः) यो घृतेन प्रीणाति सः (सधमादे) समानस्थाने (मधूनाम्) मधुरादिगुणयुक्तानां पदार्थानाम् ॥ ३ ॥

अन्वयः—हे देवेन्द्र घृतप्रया अहं मतिभिर्मधूनां सधमादे हि त्वा जोहवीमि तस्मात्सजोषास्त्वं हरिभिर्नो नमोवृधं यज्ञं तूयमायाहि ॥ ३ ॥

भावार्थः—मनुष्यैस्तेषामेव प्रशंसा कार्य्या ये सर्वेषां सुखं वर्द्धयेयुः ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे (देव) विद्वन् (इन्द्र) ऐश्वर्य से युक्त करने वाले (घृतप्रयाः) घृत से प्रसन्न होने वाला (अहम्) मैं (मतिभिः) बुद्धियों से (मधूनाम) और मधुर आदि गुणों से युक्त पदार्थों के (सधमादे) तुल्य स्थान में (हि) जिस से कि (त्वा) आप की (जोहवीमि) प्रशंसा करता वा बुलाता हूं इस से (सजोषाः) तुल्य प्रीति के सेवने वाले आप (हरिभिः) घोड़ों के सदृश अग्नि आदिकों से (नः) हम लोगों के (नमोवृधम्) अन्न आदि ऐश्वर्य्य के बढ़ाने वाले (यज्ञम्) प्रयत्न से सिद्ध होने योग्य सङ्गत व्यवहार के प्रति (तूयम्) शीघ्र (आ) सब प्रकार (याहि) प्राप्त हूजिये ॥ ३ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को उन लोगों की ही प्रशंसा करनी चाहिये कि जो सब के सुखों की वृद्धि करें ॥ ३ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

आ च त्वामेता वृषणा वहातो हरी सखाया सुधुरा स्वङ्गा। धानावदिन्द्रः सवनं जुषाणः सखा सख्युः शृणवद्वन्दनानि ॥ ४ ॥

आ । च । त्वाम् । एता । वृषणा । वहातः । हरी इति । सखाया । सुऽधुरा । सुऽअङ्गा । धानाऽवत् । इन्द्रः । सवनम् । जुषाणः । सखा । सख्युः । शृणवत् । वन्दनानि ॥ ४ ॥

पदार्थः—(आ) (च) (त्वाम्) (एता) प्राप्तौ (वृषणा) वृष्टिकरौ वायुविद्युतौ (वहातः) प्राप्नुतः (हरी) हरणशीलावश्वाविव

(सखाया) सुहृदाविव वर्त्तमानौ (सुधुरा) शोभना धुरो ययोस्तौ (स्वङ्गा) शोभनान्यङ्गानि ययोस्तौ (धानावत्) परिपक्वा धाना विद्यन्ते यस्मिँस्तत् (इन्द्रः) परमैश्वर्यप्रदः (सवनम्) ऐश्वर्यम् (जुषाणः) सेवमानः (सखा) सुहृत् (सख्युः) मित्रस्य (शृणवत्) शृणुयात् (वन्दनानि) अभिवादनानि स्तवनानि वा ॥ ४ ॥

अन्वयः—हे विद्वन् यथा धानावत्सवनं जुषाण इन्द्रस्सखा सख्युर्वन्दनानि शृणवत्स्वङ्गा सखाया इव सुधुरा वृषणा त्वामेता हरी सर्वाना वहातश्च तथा त्वं सर्वेषां वचांसि शृणु प्रियाणि कार्य्याणि साधुहि ॥४॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—त एव सखायो भवितुमर्हन्ति ये महद्दुःखमपि प्राप्य सखीन् न जहति यथा द्वावनेका वाऽश्वाः सङ्गता भूत्वाऽभीष्टानि स्थानानि गमयन्ति तथैव स्वात्मवत्प्रिया जना इच्छासिद्धिं प्राप्नुवन्ति ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् पुरुष ! जैसे (धानावत्) पकाये हुये यवों से युक्त (सवनम्) ऐश्वर्य्य का (जुषाणः) सेवन करता हुआ (इन्द्रः) अत्यन्त ऐश्वर्य्य का देने वाला (सखा) मित्र पुरुष (सख्युः) मित्र के अभिवादन आदि वा स्तुतियों को (शृणवत्) सुने और (स्वङ्गा) सुन्दर अङ्गों से विशिष्ट (सखाया) मित्रों के तुल्य वर्त्तमान तथा (सुधुरा) उत्तम धुरों से युक्त (वृषणा) वृष्टि करने वाले वायु और बिजुली (त्वाम्) आप को (एता) प्राप्त हुए (हरी) ले चलने वाले घोड़ों के सदृश सब को (आ, वहातः) प्राप्त होते हैं वैसे आप सब लोगों के वचनों को सुनिये और प्रिय कार्य्यों को सिद्ध कीजिये ॥ ४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—वे लोग ही मित्र होने योग्य हैं कि जो बड़े दुःख को प्राप्त होकर भी मित्रों का त्याग नहीं करते और जैसे दो वा बहुत घोड़े इकट्ठे हो कर यथेष्ट स्थानों में पहुंचाते हैं वैसे अपने आत्मा के सदृश प्रिय जन इच्छा की सिद्धि को प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

कुविन्मा गोपां करसे जनस्य कुविद्राजानं मघवन्नृजीषिन् । कुविन्म ऋषिं पपिवांसं सुतस्य कुविन्मे वस्वो अमृतस्य शिक्षाः ॥ ५ ॥

कुवित् । मा । गोपाम् । करसे । जनस्य । कुवित् । राजानम् । मघऽवन् । ऋजीषिन् । कुवित् । मा । ऋषिम् । पपिऽवांसम् । सुतस्य । कुवित् । मे । वस्वः । अमृतस्य । शिक्षाः ॥ ५ ॥

पदार्थः—(कुवित्) महान्तम् (मा) माम् (गोपाम्) धार्मिकाणां रक्षकम् (करसे) कुर्य्याः (जनस्य) (कुवित्) महान्तम् (राजानम्) (मघवन्) परमपूजितधनयुक्त (ऋजीषिन्) ऋजुभावमिच्छन् (कुवित्) महान्तम् (मा) माम् । अत्र ऋत्यक इति ह्रस्वो भूत्वा प्रकृतिभावः (ऋषिम्) सकलवेदमन्त्रार्थवेत्तारम् (पपिवांसम्) पीतवन्तम् (सुतस्य) निष्पादितस्य सोमस्य रसम् (कुवित्) महतः (मे) मम (वस्वः) धनस्य (अमृतस्य) नाशरहितस्य (शिक्षाः) शिक्षस्व । अत्र व्यत्ययेन परस्मैपदम् ॥ ५ ॥

अन्वयः—हे विद्वन् यस्त्वं जनस्य कुविद्गोपां मा करसे । हे मघवन्नृजीषिन् यस्त्वं जनस्य कुविद्राजानं करसे सुतस्य पपिवांसं कुविदृषिं मा शिक्षाः कुविदमृतस्य मे वस्वः करसे तं त्वां वयं भजामहे ॥५॥

भावार्थः—हे मनुष्या ये युष्मान् विद्याविनयसुशिक्षादानेन महतो राज्ञः कुर्वन्ति वेदार्थं विज्ञाप्य मोक्षं साधयन्ति तान् यूयं स्वात्मवत्प्रीणीत ॥ ५ ॥

पदार्थः—हे विद्वज्जन जो आप (जनस्य) सब लोगों के (कुवित्) श्रेष्ठ (गोपाम्) धार्मिक पुरुषों के रक्षा करने वाले (मा) मुझ को (करसे) करें। हे (मघवन्) परम प्रशंसनीय धनयुक्त (ऋजीषिन्) कोमलपन को चाहने वाले जो आप जन समूह का (राजानम्) राजा करें वह (सुतस्य) उत्पन्न किये हुए सोम के रस को (पपिवांसम्) पीते हुए (कुवित्) श्रेष्ठ (ऋषिम्) सम्पूर्ण वेदों के अर्थ के जानने वाले होने की (मा) मुझ को (शिक्षाः) शिक्षा दीजिये और आप (कुवित्) श्रेष्ठ (अमृतस्य) नाश से रहित (मे) मेरे (वस्वः) धन को करें उन आप की हम लोग सेवा करें ॥ ५ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो जो लोग आप लोगों को विद्या विनय और उत्तम शिक्षादान से बड़े राजा करते और वेद के अर्थों को समझा के मोक्ष सिद्ध करते हैं उन को आप अपने आत्मा के सदृश प्रसन्न करें ॥ ५ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

आ त्वा बृहन्तो हरयो युजाना अर्वागिन्द्र सधमादो वहन्तु । प्र ये द्विता दिव ऋञ्जन्त्याताः सुसंमृष्टासो वृषभस्य मूराः ॥ ६ ॥

आ । त्वा । बृहन्तः । हरयः । युजानाः । अर्वाक् । इन्द्र । सधऽमादः । वहन्तु । प्र । ये । द्विता । दिवः । ऋञ्जन्ति । आताः । सुऽसंमृष्टासः । वृषभस्य । मूराः ॥ ६ ॥

पदार्थः—(आ) समन्तात् (त्वा) त्वाम् (बृहन्तः) महान्तः (हरयः) सुशिक्षितास्तुरङ्गा इवाऽग्न्यादयः (युजानाः) समादधानाः (अर्वाक्) योऽर्वागगच्छति (इन्द्र) परमपूजनीय (सधमादः) समानस्थानाः (वहन्तु) प्राप्नुवन्तु (प्र) (ये) (द्विता) द्वयोर्भावः (दिवः) विद्याप्रकाशमानान् (ऋञ्जन्ति) साध्नुवन्ति (आताः) व्याप्ता दिशः । आता इति दिङ्ना० निघं० १ । ६ (सुसंमृष्टासः) श्रेष्ठरीत्या सम्यक् शुद्धाः (वृषभस्य) बलिष्ठस्य (मूराः) मूढाः ॥ ६ ॥

अन्वयः—हे इन्द्र ये वृहन्तो युजाना सधमादो हरय इव त्वाऽऽवहन्तु द्विता दिव ऋञ्जन्ति सुसंमृष्टास आता इव वृषभस्य वेगं प्रवहन्तु तैर्ये मूरा मूढाः स्युस्तानर्वाक् त्वमावह ॥ ६ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—ये विद्वांसोऽश्वा इवाऽभीष्टस्थाने मूढान् प्रापयन्ति ते समग्रसमृद्धिं साद्धुं शक्नुवन्ति ॥ ६ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) अत्यन्त सेवा करने योग्य विद्वान् (ये) जो (बृहन्तः) बड़े (युजानाः) समाधान देते हुए (सधमादः) समान स्थान वाले (हरयः) उत्तम प्रकार शिक्षित घोड़ों के सदृश अग्नि आदि पदार्थ (त्वा) आप को (आ) सब प्रकार (वहन्तु) एक स्थान से दूसरे स्थान को पहुंचावें और वे तथा (द्विता) दो दो पदार्थों का होना जैसे वैसे विद्वान् (दिवः) विद्याओं से प्रकाशमानों को (ऋञ्जन्ति) सिद्ध करते हैं (सुसंमृष्टासः) वा श्रेष्ठ रीति से उत्तम प्रकार शुद्ध किये हुए (आताः) व्याप्त हुई दिशाओं के सदृश (वृषभस्य) बलवान् पदार्थ के वेग को (प्र, वहन्तु) प्राप्त हों उन से जो (मूराः) मूढ़ होवें उन पुरुषों को (अर्वाक्) नीचे के स्थल में आप पहुंचाइये ॥ ६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो विद्वान् लोग घोड़ों के सदृश अभीष्ट स्थान में मूढों को पहुंचाते हैं वे संपूर्ण समृद्धि सिद्ध कर सकते हैं ॥६॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इन्द्र पिब वृषधूतस्य वृष्ण आ यन्ते श्येन उशते जभार । यस्य मदे च्यावयसि प्र कृष्टीर्यस्य मदे अप गोत्रा ववर्थ ॥ ७ ॥

इन्द्र । पिब । वृषऽधूतस्य । वृष्णः । आ । यम् । ते । श्येनः । उशते । जभार । यस्य । मदे । च्यावयसि । प्र । कृष्टीः । यस्य । मदे । अप । गोत्रा । ववर्थ ॥ ७ ॥

पदार्थः—(इन्द्र) विशेषैश्वर्य्यप्रद (पिब) (वृषधूतस्य) वृषा बलिष्ठाः पदार्था धूताः कम्पिता येन तस्य (वृष्णः) बलिष्ठस्य (आ) (यम्) (ते) तुभ्यम् (श्येनः) एतत्पक्षीव (उशते) कामयमानाय (जभार) धरति (यस्य) (मदे) आनन्दे (च्यावयसि) प्रापयसि (प्र) (कृष्टीः) मनुष्यान् (यस्य) (मदे) आनन्दे (अप) (गोत्रा) पृथिवी (ववर्थ) वर्त्तते ॥ ७ ॥

अन्वयः—हे इन्द्र त्वं वृषधूतस्य वृष्णो रसं पिब श्येन इव यमुशते तुभ्यं यमा जभार यस्य मदे त्वं कृष्टीः प्र च्यावयसि । यस्य मदे गोत्रा अप ववर्थ तं स्वात्मवत्सेवस्व ॥ ७ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—हे मनुष्या ये श्येनवत्सद्यो गामिनः सर्वस्य सुखं कामयमाना मनुष्यान् सुखयन्ति तेषां सन्निधौ स्थित्वा विद्याव्यवहाराऽऽनन्दं प्राप्नुत ॥ ७ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) विशेष ऐश्वर्य के देने वाले आप (वृषधूतस्य) बलिष्ठ पदार्थों के कपाने वाले (वृष्णः) बलिष्ठ पदार्थ के रस का (पिब) पान करो (श्येनः) बाज पक्षी के सदृश (यम्) जिस की (उशते) कामना करने वाले (ते) आप के लिये जिस को (आ, जभार) धारण करता है (यस्य) जिस के (मदे) आनन्द में आप (कृष्टीः) मनुष्यों को (प्र, च्यावयसि) प्राप्त कराते हैं और (यस्य) जिस के (मदे) आनन्द के निमित्त (गोत्रा) पृथिवी (अप, ववर्थ) वर्त्तमान है उस की अपने तुल्य सेवा करो ॥ ७ ॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो जो श्येन पक्षी के सदृश शीघ्र चलने और सब के सुख की कामना करने वाले पुरुष मनुष्यों को सुख देते हैं उन लोगों के समीप वर्त्तमान हो कर विद्यासम्बन्धी व्यवहार के आनन्द को प्राप्त होओ ॥ ७ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ । शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ॥ ८ ॥ ७ ॥

शुनम् । हुवेम । मघऽवानम् । इन्द्रम् । अस्मिन् । भरे । नृऽतमम् । वाजऽसातौ । शृण्वन्तम् । उग्रम् । ऊतये । समत्ऽसु । घ्नन्तम् । वृत्राणि । सम्ऽजितम् । धनानाम् ॥ ८ ॥ ७ ॥

पदार्थः—(शुनम्) महौषधिसेवनजन्यं सुखम् (हुवेम) आदद्याम (मघवानम्) सकलविद्याजनितारम् (इन्द्रम्) अविद्यादिक्लेशविदर्त्तारम् (अस्मिन्) (भरे) देवासुरविद्वदविद्वत्सङ्ग्रामे (नृतमम्) अतिशयेन विद्यायाः प्रापकम् (वाजसातौ)

ज्ञानाऽज्ञानयोर्विभागे (शृण्वन्तम्) सम्यक् परीक्षां कुर्वन्तम् (उग्रम्) उत्कृष्टस्वभावम् (ऊतये) विद्यादिशुभगुणप्रवेशाय (समत्सु) धार्मिकाऽधार्मिकविरोधाख्येषु युद्धेषु (घ्नन्तम्) विरोधं विनाशयन्तम् (वृत्राणि) धनानि (सञ्जितम्) जयशीलम् (धनानाम्) ऐश्वर्य्याणाम् ॥ ८ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यथाऽस्मिन् वाजसातौ भर ऊतये समत्सु घ्नन्तं धनानां सञ्जितं वृत्राणि शृण्वन्तमुग्रं मघवानं नृतममिन्द्रं प्राप्य शुनं हुवेम तथैतं प्राप्याऽऽनन्दं लभध्वम् ॥ ८ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—मनुष्यैर्विद्वच्छरणं प्राप्याऽविद्यादारिद्र्ये हत्वा विद्याश्रियौ जनयित्वा सततमानन्दो वर्द्धनीय इति ॥८॥

अत्रेन्द्रविद्वत्सखिसोमपानादिगुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिर्वेद्या ॥

इति त्रिचत्वारिंशत्तमं सूक्तं सप्तमो वर्गश्च समाप्तः ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (अस्मिन्) इस (वाजसातौ) ज्ञान और अज्ञान के विभाग और (भरे) विद्वान् और अविद्वान् के संग्राम में (ऊतये) विद्या आदि उत्तम गुणों में प्रवेश होने के लिये (समत्सु) धार्मिक और अधार्मिकों के विरोधनामक युद्धों में (घ्नन्तम्) विरोध को नाश करते हुए (धनानाम्) ऐश्वर्य्यों के (सञ्जितम्) जीतने का स्वभाव रखने वाले (वृत्राणि) धनों की (शृण्वन्तम्) उत्तम प्रकार परीक्षा करते हुए (उग्रम्) उत्तम स्वभाव युक्त (मघवानम्) संपूर्ण विद्याओं के उत्पन्न करने (नृतमम्) अतिशय करके विद्या के प्राप्त कराने और (इन्द्रम्) अविद्या आदि क्लेशों के नाश करने वाले को प्राप्त हो कर (शुनम्) महौषधियों के सेवन से उत्पन्न हुए सुख का (हुवेम) ग्रहण करें वैसे इस को प्राप्त हो कर आनन्द को प्राप्त हूजिये ॥ ८ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—मनुष्यों को चाहिये कि विद्वानों के शरण को पहुंच कर अविद्या और दारिद्र्य का नाश तथा विद्या और लक्ष्मी को उत्पन्न कर निरन्तर आनन्द बढ़ावें ॥ ८ ॥

इस सूक्त में विद्वान् सखि और सोमपानादिकों के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की पिछिले सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह तेंतालीशवां सूक्त और सातवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चर्चस्य चतुश्चत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य विश्वामित्र ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ । २ निचृद्बृहती । ३ । ५ बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः । ४ स्वराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अथ सूर्य्यविषयमाह ॥

अब पांच ऋचा वाले चौवालीशवें सूक्त का आरम्भ है इस के प्रथम मन्त्र में सूर्य के विषय को कहते हैं ॥

अयं ते अस्तु हर्य्यतः सोम आ हरिभिः सुतः। जुषाण इन्द्र हरिभिर्न आ गह्या तिष्ठ हरितं रथम् ॥ १ ॥

अयम् । ते । अस्तु । हर्य्यतः । सोमः । आ । हरिऽभिः । सुतः । जुषाणः । इन्द्र । हरिऽभिः । नः । आ । गहि । आ । तिष्ठ । हरितम् । रथम् ॥ १ ॥

पदार्थः—(अयम्) (ते) तव (अस्तु) (हर्यतः) कामयमानस्य (सोमः) ऐश्वर्य्यवृन्दः (आ) (हरिभिः) अश्वैरिव साधनैः (सुतः) प्राप्तः (जुषाणः) सेवमानः (इन्द्र) परमैश्वर्य्यमिच्छो

(हरिभिः) हरणशीलैरश्वैः (नः) अस्मान् (आ) (गहि) आगच्छ (आ) (तिष्ठ) (हरितम्) अग्न्यादिभिर्वाहितम् (रथम्) रमणीयं यानम् ॥ १ ॥

अन्वयः—हे इन्द्र हर्यतस्ते हरिभिर्योऽयं सोमः सुतोऽस्तु तं जुषाणः सन् हरिभिर्हरितं रथमातिष्ठानेन नोऽस्मानागहि ॥ १ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—त एव दयालवः सन्ति येऽन्येषामैश्वर्यवृद्धिमिच्छेयुरैश्वर्यवत आगतान् दृष्ट्वा प्रसन्ना भवेयुः ॥ १ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) परम ऐश्वर्य की इच्छा करने वाले (हर्यतः) कामना करते हुए (ते) आप के (हरिभिः) घोड़ों के सदृश साधनों से जो (अयम्) यह (सोमः) ऐश्वर्यों का समूह (सुतः) प्राप्त हुआ (अस्तु) हो उस का (जुषाणः) सेवन करता हुआ (हरिभिः) ले चलने वाले घोड़ों से (हरितम्) अग्नि आदिकों से चलाये गये (रथम्) मनोहर यान पर (आ,तिष्ठ) स्थिर हूजिये इस से (नः) हम लोगों को (आ,गहि) प्राप्त हूजिये ॥ १ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—वे ही लोग दयालु हैं कि जो अन्य जनों के ऐश्वर्य की वृद्धि की इच्छा करें और ऐश्वर्य वालों को आते हुए देख के प्रसन्न होवें ॥ १ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

हर्य्यन्नुषसमर्चयः सूर्य्यं हर्य्यन्नरोचयः । विद्वाँश्चिकित्वान्हर्यश्व वर्द्धस इन्द्र विश्वा अभि श्रियः ॥२॥

हर्यन् । उषसम् । अर्चयः । सूर्य्यम् । हर्य्यन् । अरोचयः । विद्वान् । चिकित्वान् । हरिऽअश्व । वर्धसे । इन्द्र । विश्वाः । अभि । श्रियः ॥ २ ॥

पदार्थः—(हर्यन्) कामयमान (उषसम्) प्रत्यूषकालमिव सत्पुरुषान् (अर्चयः) सत्कुरु (सूर्य्यम्) सवितारमिव न्यायम् (हर्यन्) प्राप्नुवन् प्रापयन् (अरोचयः) रोचय (विद्वान्) (चिकित्वान्) ज्ञानवान् (हर्य्यश्व) हर्याः कामयमाना अश्वा आशुगामिनोऽग्न्यादयस्तुरङ्गा वा यस्य तत्सम्बुद्धौ (वर्धसे) (इन्द्र) धनमिच्छुक (विश्वाः) सर्वाः (अभि) आभिमुख्ये (श्रियः) शोभाः सम्पत्तयः॥२॥

अन्वयः—हे हर्य्यन्नुषसं सूर्य्य इव सत्पुरुषांस्त्वमर्चयः। हे हर्य्यन् सूर्य्यं विद्युदिव न्यायमरोचयः। हे हर्य्यश्वेन्द्र यतश्चिकित्वान्त्सन् विश्वा अभिश्रियः प्राप्तुमिच्छसि तस्माद्वर्धसे ॥ २ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—ये मनुष्या उषर्वद्विद्याप्रकाशाभिमुखाः सूर्यवद्धर्माचरणं कामयमानाः सन्तः प्रयत्नेनैश्वर्य्यमिच्छेयुस्ते सर्वथा श्रीमन्तो भूत्वा सततं वर्धन्ते ॥ २ ॥

पदार्थः—हे (हर्यन्) कामना करने वाले (उषसम्) प्रातःकाल को सूर्य के सदृश सत्पुरुषों का आप (अर्चयः) सत्कार करिये और हे (हर्य्यन्) अनेक पदार्थों को प्राप्त होने वा प्राप्त कराने वाले (सूर्यम्) सूर्य को बिजुली जैसे वैसे न्याय का (अरोचयः) प्रकाश करो और हे (हर्यश्व) कामना करते हुए शीघ्र चलने वाले अश्व वा अग्नि आदि पदार्थों से युक्त (इन्द्र) धन की इच्छा करने वाले जिस से (चिकित्वान्) ज्ञानवान् (विद्वान्) विद्वान् होते हुए (विश्वाः) संपूर्ण (अभि) सन्मुख वर्त्तमान (श्रियः) सुन्दर संपत्तियों को प्राप्त होने की इच्छा करते हो इस से (वर्धसे) वृद्धि को प्राप्त होते हो ॥ २ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो मनुष्य प्रातःकाल के सदृश विद्याओं के प्रकाश में तत्पर और सूर्य के सदृश धर्माचरण की कामना करते हुए प्रयत्न से ऐश्वर्य्य की इच्छा करें वे सब प्रकार लक्ष्मीयुक्त हो कर निरन्तर वृद्धि को प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

द्यामिन्द्रो हरिधायसं पृथिवीं हरिवर्पसम् ।
अधारयद्धरितोर्भूरि भोजनं ययोरन्तर्हरिश्चरत् ॥३॥

द्याम् । इन्द्रः । हरिऽधायसम् । पृथिवीम् । हरिऽवर्पसम् । अधारयत् । हरितोः । भूरि । भोजनम् । ययोः । अन्तः । हरिः । चरत् ॥ ३ ॥

पदार्थः—(द्याम्) प्रकाशम् (इन्द्रः) विद्युत् सूर्य्यो वा (हरिधायसम्) या हरीन् किरणान् दधाति ताम् (पृथिवीम्) भूमिम् (हरिवर्पसम्) हरयः किरणा वर्पसो रूपस्य प्रकाशका यस्यास्ताम् (अधारयत्) धारयति (हरितोः) हरणशीलयोर्गुणयोः (भूरि) बहु (भोजनम्) पालनं भक्षणं वा (ययोः) (अन्तः) मध्ये (हरिः) हरणशीलो वायुः (चरत्) चरति ॥ ३ ॥

अन्वयः—हे विद्वन् यथेन्द्रो हरिधायसं द्यां हरिवर्पसं पृथिवीमधारयद्यथा हरिर्वायुर्ययोर्हरितोरन्तर्वर्त्तमानः सन् भूरि भोजनं चरत्तथा त्वं भव ॥ ३ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—ये सूर्यवन्नियमेन धर्म्यकार्याणि साध्नुवन्ति वायुरिव सततं प्रयत्नं कुर्वन्ति ते बह्वैश्वर्यं लब्ध्वाऽऽनन्दन्ति ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् पुरुष जैसे (इन्द्रः) बिजुली वा सूर्य (हरिधायसम्) किरणों को धारण करने वा (द्याम्) प्रकाश लोक और (हरिवर्पसम्) जिस के

रूप का प्रकाश करने वाली किरणें विद्यमान उस (पृथिवीम्) पृथिवी को (अधारयत्) धारण करता है और जैसे (हरिः) हरने वाला वायु (ययोः) जिन (हरितोः) हरने वाले गुणों के (अन्तः) मध्य में वर्त्तमान हुआ (भूरि) बहुत (भोजनम्) पालन वा भक्षण का (चरत्) आचरण करता है वैसे आप हूजिये ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचलु०—जो लोग सूर्य के सदृश नियम पूर्वक धर्मयुक्त कर्मों को सिद्ध करते और वायु के सदृश निरन्तर प्रयत्न करते हैं वे बहुत ऐश्वर्य को प्राप्त हो कर आनन्दित होते हैं ॥ ३ ॥

अथ विद्वद्विषयमाह ॥

अब विद्वान् के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

जज्ञानो हरितो वृषा विश्वमा भाति रोचनम् ।
हर्यश्वो हरितं धत्त आयुधमा वज्रं बाह्वोर्हरिम् ॥४॥

जज्ञानः । हरितः । वृषा । विश्वम् । आ । भाति । रोचनम् । हरिऽअश्वः । हरितम् । धत्ते । आयुधम् । आ । वज्रम् । बाह्वोः । हरिम् ॥ ४ ॥

पदार्थः—(जज्ञानः) जायमानः (हरितः) हरितादिवर्णः (वृषा) वृष्टिकरः (विश्वम्) (आ) (भाति) (रोचनम्) रोचन्ते यस्मिँस्तत् (हर्यश्वः) हर्याः कामयमाना आशुगामिनो गुणा यस्य विद्युद्रूपस्य सः (हरितम्) कमनीयम् (धत्ते) धरति (आयुधम्) समन्तात् युध्यन्ति येन तत् (आ) (वज्रम्) शस्त्रमिव किरणसमूहम् (बाह्वोः) भुजयोः (हरिम्) हरणशीलम् ॥ ४ ॥

अन्वयः—हे विद्वांसो यो जज्ञानो हरितो हर्यश्वो वृषा हरितरोचनं विश्वं बाह्वोर्हरितं वज्रमायुधमिवाऽऽधत्त आ भाति तं विज्ञायोपयुञ्जत ॥ ४ ॥

भावार्थः—विद्वांसो यथा प्रसिद्धः सूर्यः सर्वं जगत् प्रकाश्य रोचयति तथैव सद्विद्योपदेशेन धर्मं रोचयन्तु ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् लोगो जो (जज्ञानः) उत्पन्न होता हुआ (हरितः) हरित आदि वर्णों से युक्त (हर्यश्वः) कामना करते हुए शीघ्र चलने वाले गुण हैं जिस बिजुली रूप के वह (वृषा) वृष्टिकारक (हरिनम्) कामना करने योग्य (रोचनम्) और सब ओर से जिस में प्रीति करते हैं ऐसे (विश्वम्) संपूर्ण लोक को (बाह्वोः) भुजाओं के (हरितम्) हरने वाले (वज्रम्) शस्त्रों के सदृश किरणों के समूह को (प्र, आ, धत्ते) धारण करता और (आ, भाति) प्रकाशित होता है उस को जान कर उपयोग करो ॥ ४ ॥

भावार्थः—विद्वान् लोग जैसे प्रसिद्ध सूर्य्य संपूर्ण जगत् को प्रकाशित कर के आप प्रकाशित होता है वैसे ही सद्विद्या के उपदेश से धर्म का प्रकाश करावें ॥ ४ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इन्द्रो॑ ह॒र्य्यन्त॒मर्जु॑नं॒ वज्रं॑ शु॒क्रैर॒भीवृ॑तम् । अपा॑वृणो॒द्धरि॑भि॒रद्रि॑भिः सु॒तमुद्गा हरि॑भिराजत ॥५॥८॥

इन्द्रः॑ । ह॒र्य्यन्त॑म् । अर्जु॑नम् । वज्र॑म् । शु॒क्रैः । अ॒भिऽवृ॑तम् । अप॑ । अ॒वृ॒णो॒त् । हरि॑ऽभिः । अद्रि॑ऽभिः । सु॒तम् । उत् । गाः । हरि॑ऽभिः । आ॒ज॒त ॥ ५ ॥ ८ ॥

पदार्थः—(इन्द्रः) सूर्य्यः (हर्य्यन्तम्) कामयन्तम् (अर्जुनम्) रूपम् । अर्जुनमिति रूपना० निघं० ३ । ७ (वज्रम्) किरणसमूहम् (शुक्रैः) आशुकरैर्गुणैः (अभीवृतम्) अभितो वृतं युक्तम् (अप) (अवृणोत्) दूरी करोति (हरिभिः) हरणशीलैः

किरणैः (अद्रिभिः) मेघैः (सुतम्) सिद्धम् (उत्) (गाः) पृथिवी (हरिभिः) मनुष्यैः सह राजा । हरय इति मनुष्यना० निघं० २ । ३ (आजत) प्रक्षिपति ॥ ५ ॥

अन्वयः—हे विद्वांसो यथेन्द्रः शुक्रैरभीवृतमर्जुनं वज्रं हर्यन्तं हरिभिरद्रिभिः सुतमपावृणोत्तथा हरिभिः सह राजा गा इवोदाजत ॥ ५ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—ये सूर्य्यवद्विद्याविनयसेनाधनादिकं प्रकाश्याऽविद्यादि निवर्त्य सुसहायेन राज्ञा सहाऽऽमन्त्र्य राज्यं पालयन्ति ते पूर्णकामा भवन्तीति ॥ ५ ॥

अत्र सूर्य्यविद्युद्वायुविद्वद्गुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिर्वेद्या ॥

इति चतुश्चत्वारिंशत्तमं सूक्तमष्टमो वर्गश्च समाप्तः ॥

पदार्थः—हे विद्वान् लोगो जैसे (इन्द्रः) सूर्य्य (शुक्रैः) शीघ्रता करने वाले गुणों से (अभीवृतम्) सब ओर से युक्त (अर्जुनम्) रूप और (वज्रम्) किरणों के समूह की (हर्य्यन्तम्) कामना करते हुए (हरिभिः) हरने वाली किरणों और (अद्रिभिः) मेघों से (सुतम्) सिद्ध हुए पदार्थ को (अप,अवृणोत्) दूर करता है वैसे (हरिभिः) मनुष्यों के साथ राजा (गाः) पृथिवियों के तुल्य और पदार्थों को (उत्, आजत) फेंकता है ॥ ५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो लोग सूर्य्य के सदृश विद्या नम्रता सेना और धन आदि का प्रकाश और अविद्या आदि की निवृत्ति कर जिस का उत्तम सहाय उस राजा के साथ सलाह करके राज्य का पालन करते हैं वे पूर्ण मनोर्थ वाले होते हैं ॥ ५ ॥

इस सूक्त में सूर्य्य बिजुली वायु और विद्वान् के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछिले सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥५॥

यह चवालीशवां सूक्त और आठवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चर्चस्य पञ्चचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य विश्वामित्र ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ । २ निचृद्बृहती । ३ । ५ बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः । ४ स्वराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अथ विद्वद्विषयमाह ॥

अब पांच ऋचा वाले पैंतालीशवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में विद्वान् के विषय को कहते हैं ॥

आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभिः । मा त्वा केचिन्नि यमन्विं न पाशिनोऽति धन्वेव ताँ इहि ॥ १ ॥

आ । मन्द्रैः । इन्द्र । हरिऽभिः । याहि । मयूररोमऽभिः । मा । त्वा । के । चित् । नि । यमन् । विम् । न । पाशिनः । अति । धन्वऽइव । तान् । इहि ॥ १ ॥

पदार्थः—(आ) (मन्द्रैः) आनन्दप्रदैः (इन्द्र) परमैश्वर्य्ययुक्त (हरिभिः) प्रयत्नवद्भिर्मनुष्यैरिवाऽश्वैः किरणैर्वा (याहि) आगच्छ (मयूररोमभिः) मयूराणां लोमानीव लोमानि येषान्तैः (मा) निषेधे (त्वा) त्वाम् (के) (चित्) अपि (नि) नितराम् (यमन्) यच्छन्तु (विम्) पक्षिणम् (न) इव (पाशिनः) पाशवन्तो बन्धनाय प्रवृत्ताः (अति) (धन्वेव) यथा शस्त्रविशेषः (तान्) (इहि) गच्छ ॥ १ ॥

अन्वयः—हे इन्द्र त्वं मयूररोमभिर्मन्द्रैर्हरिभिरायाहि यतः केचित्त्वा पाशिनो विं न मा नियमं धन्वेव तानतीहि ॥ १ ॥

भावार्थः—अत्रोपमावाचकलु०—राजपुरुषैस्तादृश्या सेनया तादृशैर्यानैर्युद्धादिव्यवहारसिद्धये गन्तुमतिचातुर्य्येण सङ्ग्रामं कृत्वा विजयो लब्धव्यो येन केचित्तान्न निगृह्णीयुस्तथाऽनुष्ठातव्यम्॥१॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य से युक्त आप (मयूररोमभिः) मयूरों के रोमों के सदृश रोम हैं जिन के उन (मन्द्रैः) आनन्द को देने वाले (हरिभिः) प्रयत्नवान् मनुष्यों के सदृश घोड़ों वा किरणों से (आ याहि) आओ जिस से (के, चित्) कोई लोग (त्वा) आप को (पाशिनः) बन्धन के लिये प्रवृत्त हुए (विम्) पक्षी को (न) तुल्य (मा) नहीं (नि) अत्यन्त (यमन्) निग्रह क्लेश देवें किन्तु (धन्वेव) शस्त्र विशेष धनुष् के तुल्य (तान्) उन को (अति इहि) अतिक्रमण कर प्राप्त हूजिये॥ १॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलु०—राज पुरुषों को चाहिये कि ऐसी सेना ऐसे रथ आदि कि जिन से युद्धादि व्यवहारसिद्धि के लिये जाने को अति चतुराई के साथ संग्राम करके विजय पावें और जिस से और जन उन को ग्रहण न करें ऐसा उपाय करें॥ १॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी वि०॥

वृत्रखादो वलंरुजः पुरां दर्मो अपामजः। स्थाता रथस्य हर्योरभिस्वर इन्द्रो दृढा चिदारुजः॥२॥

वृत्रऽखादः। वलम्ऽरुजः। पुराम्। दर्मः। अपाम्। अजः। स्थाता। रथस्य। हर्योः। अभिऽस्वरे। इन्द्रः। दृढा। चित्। आऽरुजः॥ २॥

पदार्थः—(वृत्रखादः) यो वृत्रं मेघं खादति किरणो वायुर्वा (वलंरुजः) यो वलं मेघं रुजति (पुराम्) शत्रूणां नगराणाम्

वैदिकयन्त्रालय प्रयाग के पुस्तकों का सूचीपत्र

और संक्षिप्त नियम ।

(१) मूल्य टीक भेज कर मंगावें (२) टीक भेजने वालों को १०) रु० वा इस से अधिक पर २०) रु० सैकड़ा के हिसाब से कमीशन के पुस्तक अधिक भेजे जांय गे (३) डांक महसूल वेदभाष्य छोड़ कर सब से अलग लिया जायगा । ५) रु० इस से अधिक के पुस्तक ग्राहक को आज्ञानुसार रजिस्टरी भेजे जांय गे (४) मूल्य नीचे लिखे पते से भेजें ॥

ऋग्वेदभाष्य अं० १—१२५		४५)
यजुर्वेदभाष्य सम्पूर्ण		३८)
ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका	मू०	डा०
विना जिल्द की	२)	=)
" जिल्द की	३॥)	।)
वर्णोच्चारणशिक्षा	-)	)॥
सन्धिविषय	।=)॥	)॥
नामिक	।=)॥	)॥
कारकीय	।-)॥	)॥
सामासिक	।=)॥	)॥
स्त्रैणताद्धित	१=)	-)
अव्ययार्थ	=)॥	)॥
सौवर	=)॥	)॥
आख्यातिक	१॥)	=)॥
पारिभाषिक	=)॥	)॥
धातुपाठ	।=)	)॥
गणपाठ	।-)	)॥
उणादिकोष	॥=)	-)
निघण्टु	।=)	)॥
अष्टाध्यायी मूल	।-)॥	)॥
संस्कृतवाक्यप्रबोध	=)	)॥
व्यवहारभानु	=)	)॥

	मू०	डा०
भ्रमोच्छेदन	)॥।	)॥
अनुभ्रमोच्छेदन	)॥।	)॥
मेलाचांदापुर	-)	)॥
आर्योद्देश्यरत्नमाला	-)	)॥
गोकरुणानिधि	-)	)॥
स्वामीनारायणमतखण्डन गुजराती	)॥	)॥
वेदविरुद्धमतखण्डन	=)	)॥
स्वमन्तव्याऽमन्तव्यप्रकाश	)॥	)॥
शास्त्रार्थ फीरोज़ाबाद	=)	)॥
शास्त्रार्थकाशी	-)	)॥
आर्य्याभिविनय	।)	-)
" जिल्द की	।=)	-)
वेदान्तिध्वान्तनिवारण	-)	)॥
भ्रान्तिनिवारण	-)।	)॥
पञ्चमहायज्ञविधि	=)॥	)॥
" जिल्द की	।=)॥	-)
आर्य्यसमाज के नियमोपनियम	)।	)॥
सत्यार्थप्रकाश छपता है		
संस्कारविधि "		

मेनेजर—वैदिकयन्त्रालय—प्रयाग

ओ३म्

विज्ञापन

विदित हो कि—वैदिकयंत्रालय के काम को चलते १२ वां वर्ष पूरा हुआ तेरहवें वर्ष का प्रारम्भ है अतएव यहां के ग्राहक महाशयों से सविनय निवेदन है कि जिन २ महाशयों की ओर यंत्रालय का जो कुछ हिसाब हो नवंबर के अन्त तक चुकता कर भेज देवें पीछे मय व्याज रुपया देने होंगे और कमीशन में भी हानि होगी क्योंकि साल पीछे पिछले दामों पर कमीशन देने का नियम नहीं है॥

भवदीय
ज्वालादत्त शर्म्मा
स्था॰ प्रबन्ध कर्त्ता
वैदिकयंत्रालय
प्रयाग

रसीद मूल्य वेदभाष्य।

श्रीमान् पं॰ झुन्नालाल जी शर्म्मा साकिन अफजलगढ़ जिला बिजनौर १)॥
श्रीमान् बाबू श्रीनारायण जी खन्ना सवाईसिंह का हाथा कानपुर ८।/)

योग १०।/)॥

ऋग्वेदभाष्यम्

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मितम्

संस्कृतार्य्यभाषाभ्यां समन्वितम् ॥

अस्यैकैकाङ्कस्य प्रतिमासं मूल्यम् भारतवर्षान्तर्गतदेशान्तर—
प्रापणमूल्येन सहितम् ।=) अङ्कद्वयस्यैकीकृतस्य ॥=)
वार्षिकं मूल्यम् ८)

इस ग्रन्थ के प्रतिमास एक एक अंक का मूल्य भरतखंड के भीतर डांक-
महसूल सहित ।=) एक साथ छपे हुए दो अङ्कों के ॥=)
और वार्षिक मूल्य ८)

यस्य सज्जनमहाशयस्यास्य ग्रन्थस्य जिघृक्षा भवेत् स प्रयागनगरे वैदिक-
यन्त्रालयप्रबन्धकर्तुः समीपे वार्षिकमूल्यप्रेषणेन प्रतिमासं
मुद्रितावङ्कौ प्राप्स्यति ॥

जिस सज्जनमहाशय को इस ग्रन्थ के लेने की इच्छा हो वह प्रयाग नगर में वैदिकयन्त्रालय मैनेजर
के समीप वार्षिक मूल्य भेजने से प्रतिमास के छपे हुए दोनों अङ्कों को प्राप्त कर सकता है।

पुस्तक (१६०, १६१) अङ्क (१४४, १४५)

अयं ग्रन्थः प्रयागनगरे वैदिकयन्त्रालये मुद्रितः ॥

संवत् १९४७ आश्विन शुक्ल

वेदभाष्यसम्बन्धी विशेषनियम ॥

[१] यह "ऋग्वेदभाष्य" मासिक छपता है। एक मास में बत्तीस २ पृष्ठ के एक साथ छपे हुए दो अङ्क १ वर्ष में २४ अङ्क "ऋग्वेदभाष्य" के भेजे जाते हैं ॥

[२] वेदभाष्य का मूल्य बाहर और नगर के ग्राहकों से एक ही लिया जायगा अर्थात् डाकव्यय से कुछ न्यूनाधिक न होगा ॥

[३] इस वर्तमान तेरहवें वर्ष के कि जो १३३-१३४ अङ्क से प्रारंभ हो कर १५६। १५७ पर पूरा होगा। वार्षिक मूल्य ८) रु० हैं।

[४] पीछे के बारह वर्षमें जो वेदभाष्य छप चुका है उस का मूल्य यह है:-

[क] "ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका" विना जिल्द की ३)

स्वर्णाक्षरयुक्त जिल्द की ३॥)

[ख] ऋग्वेदभाष्य ११२ अङ्क तक ४४।-)॥

[५] वेदभाष्य का अङ्क प्रत्येक मास की पहिली तारीख को डाक में डाला जाता है। जो किसी का अङ्क डाक की भूल से न पहुंचे तो इस के उत्तरदाता प्रबन्धकर्त्ता न होंगे। परन्तु दूसरे मास के अङ्क भेजने से प्रथम जो ग्राहक अङ्क न पहुंचने की सूचना दे देंगे तो उन को विना दाम दूसरा अङ्क भेज दिया जायगा इस अवधि के व्यतीत हुए पीछे अङ्क दाम देने से मिलें गे एक अङ्क ।=) दो अङ्क ॥=) तीन अङ्क १) देने से मिलेंगे ॥

[६] दाम जिस को जिस प्रकार से सुबीता हो भेजें परन्तु मनीआर्डर द्वारा भेजना ठीक होगा। टिकट डाक के अधन्नी वाले लिये जा सकते हैं परन्तु एक रुपये पीछे आध आना बट्टे का अधिक लिया जायगा। टिकट आदि मूल्यवान् वस्तु रजिस्टरी पत्रों में भेजना चाहिये ॥

[७] जो लोग पुस्तक लेने से अनिच्छुक हों, वे अपनी ओर जितना रुपया हो भेज दें और पुस्तक के न लेने से प्रबन्धकर्त्ता को सूचित कर दें जब तक ग्राहक का पत्र न आवेगा तब तक पुस्तक बराबर भेजा जायगा और दाम लेलिये जायंगे।

[८] बिके हुए पुस्तक पीछे नहीं लिये जायंगे ॥

[९] जो ग्राहक एक स्थान से दूसरे स्थान में जांय वे अपने पुराने और नये पते से प्रबन्धकर्त्ता को सूचित करें। जिस में पुस्तक ठीक ठीक पहुंचता रहे।

[१०] "वेदभाष्य" सम्बन्धी रुपया, और पत्र प्रबन्धकर्त्ता वैदिकयन्त्रालय प्रयाग (इलाहाबाद) के नाम से भेजें ॥

(दर्मः) दणयास्म (अपाम्) जलानाम् (अजः) प्रेरकः (स्थाता) (रथस्य) मध्ये (हर्य्योः) अश्वयोः (अभिस्वरे) योऽभितः स्वरति शब्दयति तस्मिन् (इन्द्रः) सूर्यः (दृढा) दृढानि (चित्) अपि (आरुजः) यः समन्ताद्रुजति भनक्ति ॥ २ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यथा वृत्रखादो वलंरुजोऽपामज आरुज इन्द्रो दृढा दृणाति तथैव वयं चिच्छत्रूणां पुरां मध्ये स्थितान् वीरान्दर्मः । यथा हर्योरभिस्वरे स्थितस्य रथस्य मध्ये स्थाता वीरान् जयति तथैव वयं जयेम ॥ २ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यथा विद्युत्सूर्यवायवो मेघाऽवयवाञ्छिन्दन्ति तथैव धार्मिका राजादयश्शत्रून् विछिन्द्युः ॥ २ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (वृत्रखादः) मेघों को भक्षण करने वाला किरण वा वायु (वलंरुजः) मेघ को नाश करने और (अपाम्) जलों को (अजः) प्रेरणा करने तथा (आरुजः) चारों ओर से तोड़ने वाला (इन्द्रः) सूर्य (दृढा) दृढ भंग करता है वैसे हम लोग (चित्) भी (पुराम्) शत्रुओं के नगरों के मध्यमें वर्त्तमान वीरों को (दर्मः) नाश करें और जैसे (हर्योः) दो घोड़ों के (अभिस्वरे) चारों ओर शब्द करने वाले में वर्त्तमान (रथस्य) रथ के मध्य में (स्थाता) वर्त्तमान होने वाला पुरुष वीर पुरुषों को जीतता है वैसे ही हम लोग भी जीतें ॥ २ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचलु०—जैसे बिजुली सूर्य और पवन मेघों के अवयवों को काटते हैं वैसे ही धार्मिक राजा आदि लोग शत्रुओं को काटें ॥२॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

गम्भीराँ उदधीँरिव क्रतुं पुष्यसि गा इव । प्र सुगोपा यवसं धेनवो यथा ह्रदं कुल्या इवाशत ॥३॥

गम्भीरान् । उदधीन्ऽइंव । क्रतुंम् । पुष्यसि । गाःऽइंव । प्र । सुऽगोपाः । यवंसम् । धेनवंः । यथा । ह्रदम् । कुल्याःऽइंव । आशत ॥ ३ ॥

पदार्थः—(गम्भीरान्) अगाधान् (उदधीनिव) उदकानि धीयन्ते येषु तानिव (क्रतुम्) प्रज्ञाम् (पुष्यसि) (गाइव) पृथिव्य इव (प्र) (सुगोपाः) यः सुष्ठु रक्षति सः (यवसम्) धान्यपलादिकम् (धेनवः) गावः (यथा) (ह्रदम्) जलाशयम् (कुल्या इव) वाटिकादिषु जलचालनमार्गा इव (आशत) व्याप्नुत ॥ ३ ॥

अन्वयः—हे विद्वन्यतस्त्वं गम्भीरानुदधीनिव गा इव क्रतुं सुगोपाः सन् पुष्यसि यथा धेनवो यवसं ह्रदं कुल्याइव ये प्राशत तस्मात्तथा च त्वमेते सर्वाणि सुखानि लभन्ते ॥ ३ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालं०—येषां समुद्रवदक्षोभ्या प्रज्ञा पृथिवीवत् क्षमा पालनशक्तिर्धेनुवद्दानं कुल्यावद्वर्धनं वर्त्तते त एव सर्वसुखा जायन्ते ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् पुरुष जिस से आप (गम्भीरान्) अथाह (उदधीनिव) जल जिन में रहैं उन समुद्रों के सदृश और (गाइव) पृथिवियों के सदृश (क्रतुम्) बुद्धि को (पुष्यसि) पूर्ण करते हो (सुगोपाः) उत्तम प्रकार रक्षा करने वाले हो कर (यथा) जैसे (धेनवः) गौयें (यवसम्) धान्य तृण आदि (ह्रदम्) और जल के स्थान को (कुल्या इव) वाटिका आदि में जल चलाने के मार्गों के तुल्य जो (प्र, आशत) प्राप्त हों इस से और वैसे आप और ये लोग संपूर्ण सुखों को प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जिन लोगों की समुद्र के सदृश अचल गम्भीर बुद्धि पृथिवी के सदृश क्षमा और पालने का सामर्थ्य गौ के सदृश दान और नदी के सदृश वृद्धि है वे ही संपूर्ण सुखों से युक्त होते हैं ॥ ३ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

आ नस्तुजं रयिं भरांशं न प्रतिजानते । वृक्षं पक्वं फलमङ्कीव धूनुहीन्द्र संपारणं वसु ॥ ४ ॥

आ । नः । तुजम् । रयिम् । भर । अंशम् । न । प्रतिऽजानते । वृक्षम् । पक्वम् । फलम् । अङ्कीऽइव । धूनुहि । इन्द्र । सम्ऽपारणम् । वसु ॥ ४ ॥

पदार्थः—(आ) (नः) अस्मभ्यम् (तुजम्) आदातव्यम् (रयिम्) धनम् (भर) धेहि (अंशम्) भागम् (न) इव (प्रतिजानते) प्रतिज्ञया व्यवहारस्य साधकाय (वृक्षम्) (पक्वम्) (फलम्) (अङ्कीव) यथाऽङ्कुशी तथा (धूनुहि) कम्पय (इन्द्र) धनप्रद (सम्पारणम्) सम्यग् दुःखस्य पारं गच्छति येन तत् (वसु) धनम् ॥ ४ ॥

अन्वयः-हे इन्द्र त्वमंशं न नोऽस्मभ्यं प्रतिजानते च तुजं रयिमा-भर । वृक्षं पक्वं फलमङ्कीव सम्पारणं वसु धूनुहि ॥ ४ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालं०—त एव धार्मिका ये परसुखाय श्रियं धृत्वा परदुःखभञ्जनाः स्युः ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) धन के दाता आप (अंशम्) भाग के (न) तुल्य (नः) हम लोगों के लिये (प्रतिजानते) प्रतिज्ञा से व्यवहार के सिद्ध करने

वाले के लिये और (तुजम्) ग्रहण करने के योग्य (रयिम्) धन को (आ) सब ओर से (भर) दीजिये (वृक्षम्) वृक्ष को और (पक्वम्) पाक युक्त (फलम्) फल को (अङ्कीव) अंकुश धारण किये हुए के सदृश (सम्पारणम्) उत्तम प्रकार दुःख के पार जाता है जिस से ऐसे (वसु) धन को (धूनुहि) कम्पाइये अर्थात् भेजिये ॥ ४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—वे ही धार्मिक पुरुष हैं जो अन्य लोगों के सुख के लिये लक्ष्मी धारण करके औरों के दुःख नाश करने वाले होवें ॥४॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

स्वयुरिन्द्र स्वराळसि स्मद्दिष्टिः स्वयंशस्तरः । स वावृधान ओजसा पुरुष्टुत भवा नः सुश्रवस्तमः ॥ ५ ॥ ९ ॥

स्वऽयुः । इन्द्र । स्वऽराट् । असि । स्मत्ऽदिष्टिः । स्वयंशःऽतरः । सः । वृवृधानः । ओजसा । पुरुऽस्तुत । भव । नः । सुश्रवःऽतमः ॥ ५ ॥ ९ ॥

पदार्थः—(स्वयुः) यः स्वं धनं याति सः (इन्द्र) परमैश्वर्यवन् (स्वराट्) यः स्वेनैव राजते (असि) (स्मद्दिष्टिः) कल्याणोपदेष्टा (स्वयशस्तरः) स्वकीयं यशो धनं प्रशंसनं वा यस्य सोऽतिशयितः (सः) (वावृधानः) वर्द्धमानः (ओजसा) पराक्रमेण (पुरुष्टुत) बहुभिः प्रशंसित (भव) । अत द्व्यचोतस्तिङ इति दीर्घः (नः) अस्मभ्यम् (सुश्रवस्तमः) सुष्ठु धनः श्रवणयुक्तः सोऽतिशयितः ॥ ५ ॥

अन्वयः—हे पुरुष्टुतेन्द्र यस्त्वं रयिवृधः स्वराट् स्मद्दिष्टिः स्वयशस्तरोऽसि स त्वमोजसा वावृधानः सुश्रवस्तमो नोऽस्मभ्यं भव ॥ ५ ॥

भावार्थः—स एव सम्राट् भवितुं योग्यो जायते योऽतिशयेन प्रशंसितगुणकर्मस्वभावो भवति स एव सम्राट् सर्वेषां वर्द्धको भवतीति ॥ ५ ॥

अत्र सूर्य्यविद्वद्राजगुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिर्वेद्या ॥

इति पञ्चचत्वारिंशत्तमं सूक्तं नवमो वर्गश्च समाप्तः ॥

पदार्थः—हे (पुरुष्टुत) बहुतों से प्रशंसित (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य वाले जो आप (रयिवृधः) धन को प्राप्त (स्वराट्) स्वतन्त्र राज्यकर्त्ता (स्मद्दिष्टिः) कल्याण कर्म का उपदेश देने वाले और (स्वयशस्तरः) अपने यश धन और प्रशंसा से गम्भीर (असि) हैं (सः) वह (ओजसा) पराक्रम से (वावृधानः) वृद्धि को प्राप्त (सुश्रवस्तमः) श्रेष्ठ धन से युक्त बात चीत के अत्यन्त सुनने वाले (नः) हम लोगों के लिये (भव) होइये ॥ ५ ॥

भावार्थः—वही चक्रवर्त्ती राजा होने के योग्य होता है कि जो अत्यन्त प्रशंसायुक्त गुण कर्म और स्वभाव वाला है और वही राजा सब का वृद्धि कारक होता है ॥ ५ ॥

इस सूक्त में सूर्य विद्वान् और राजा के गुणवर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछिले सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह पैतालीसवां सूक्त और नववां वर्ग समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चर्चस्य षट्चत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य विश्वामित्र ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ विराट् त्रिष्टुप् । २ । ५ निचृत् त्रिष्टुप् । ३ । ४ त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अथ राजा कीदृशो भवेदित्याह ॥

अब पांच ऋचा वाले छियालीशवें सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में राजा कैसा हो इस विषय को कहते हैं ॥

युध्मस्य ते वृषभस्य स्वराज उग्रस्य यूनः स्थविरस्य घृष्वेः । अजूर्यतो वज्रिणो वीर्याणीन्द्र श्रुतस्य महतो महानि ॥ १ ॥

युध्मस्य । ते । वृषभस्य । स्वऽराजः । उग्रस्य । यूनः । स्थविरस्य । घृष्वेः । अजूर्यतः । वज्रिणः । वीर्याणि । इन्द्र । श्रुतस्य । महतः । महानि ॥ १ ॥

पदार्थः—(युध्मस्य) योद्धुं शीलस्य (ते) तव (वृषभस्य) बलिष्ठस्य (स्वराजः) यः स्वेन राजते तस्य (उग्रस्य) तेजस्विस्वभावस्य (यूनः) यौवनावस्थां प्राप्तस्य (स्थविरस्य) वृद्धस्य (घृष्वेः) शत्रूणां घर्षकस्य (अजूर्यतः) अजीर्णस्य (वज्रिणः) वज्रं बहुविधं शस्त्रं विद्यते यस्य तस्य (वीर्याणि) वीरस्य कर्माणि (इन्द्र) परमैश्वर्य्ययोजक (श्रुतस्य) प्रसिद्धस्य (महतः) पूज्यस्य (महानि) ॥ १ ॥

अन्वयः—हे इन्द्र यस्य युध्मस्य स्वराजो वृषभस्योग्रस्य यूनः स्थविरस्य घृष्वेरजूर्यतो वज्रिणो महतः श्रुतस्य ते तव यानि महानि वीर्याणि सन्ति तैर्युक्तस्त्वमस्माभिः सत्कर्त्तव्योऽसि ॥ १ ॥

भावार्थः—यदि सर्वलक्षणसम्पन्नो युवा वा वृद्धोपि राजा स्यात्त-थैव प्रयत्नेन स्वसामर्थ्यवर्द्धको भवेत् ॥ १ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य्य के दाता जिस (युध्मस्य) युद्ध करने और (स्वराजः) अपने से प्रकाशित (वृषभस्य) बल वाले (उग्रस्य) तेजस्वी स्वभाव और (युनः) यौवन अवस्था को प्राप्त पुरुष तथा (स्थविरस्य) वृद्धावस्थायुक्त पुरुष के और (घृष्वेः) शत्रुओं को घसीटने वाले (अजूर्य्यतः) शरीर की शिथिलता से रहित और (वज्रिणः) बहुत प्रकार के शस्त्रों से युक्त (महतः) सेवा करने योग्य (श्रुतस्य) प्रसिद्ध (ते) आप के जो (महानि) श्रेष्ठ (वीर्य्याणि) वीर पुरुषों के कर्म हैं उन से युक्त आप हम लोगों से सत्कार पाने योग्य हैं ॥ १ ॥

भावार्थः—जो संपूर्ण लक्षणों से युक्त युवा वा वृद्ध भी राजा हो वैसे ही अपने प्रयत्न से अपने सामर्थ्य का बढ़ाने वाला होवे ॥ १ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

म॒हाँ अ॑सि महिष॒ वृष्ण्ये॑भिर्धन॒स्पृदु॑ग्र॒ सह॑-मानो अ॒न्यान् । एको॒ विश्व॑स्य॒ भुव॑नस्य॒ राजा॒ स यो॒धया॑ च क्ष॒यया॑ च॒ जना॑न् ॥ २ ॥

म॒हान् । अ॒सि॒ । म॒हि॒ष॒ । वृष्ण्ये॑भिः । ध॒न॒ऽस्पृत् । उ॒ग्र॒ । सह॑मानः । अ॒न्यान् । एकः॑ । विश्व॑स्य । भुव॑नस्य । राजा॑ । सः । यो॒धय॑ । च॒ । क्ष॒यय॑ । च॒ । जना॑न् ॥ २ ॥

पदार्थः—(महान्) महागुणविशिष्टः (असि) (महिष) पूजनीयतम (वृष्ण्येभिः) वृषेषु बलिष्ठेषु भवैर्गुणैः (धनस्पृत्)

यो धनं स्पृणोति सेवते सः (उग्र) बलादियुक्त (सहमानः) (अन्यान्) शत्रून् (एकः) असहायः (विश्वस्य) समग्रस्य (भुवनस्य) भूताधिकरणस्य (राजा) प्रकाशमानः (सः) (योधय)। अत्र संहितायामिति दीर्घः (च) (क्षयय) क्षायय निवासय पराजयं प्रापय वा । अत्रापि संहितायामिति दीर्घः (च) (जनान्) प्रसिद्धान् वीरान् ॥ २ ॥

अन्वयः—हे महिषोग्र राजन् यतस्त्वं वृष्ण्येभिः सह महान् धनस्पृदेकोऽन्यान् सहमानो विश्वस्य भुवनस्य महान् राजासि स त्वं जनान् योधय च क्षयय शत्रून् पराजयं प्रापय सज्जनान् निवासय ॥ २ ॥

भावार्थः-ये शरीरात्मनोः पूर्णं बलं कृत्वा शत्रून् निवारयन्ति सज्जनान् सत्कृत्याऽऽनन्दन्ति ते महान्तो भवन्ति ॥ २ ॥

पदार्थः—हे (महिष) अत्यन्त आदर करने योग्य (उग्र) बल आदिकों से युक्त और (राजन्) प्रकाशित जिस से आप (वृष्ण्येभिः) बलवान् पुरुषों में उत्पन्न गुणों के साथ (महान्) श्रेष्ठ गुणों से युक्त और (धनस्पृत्) धन के सेवक (एकः) सहाय रहित (अन्यान्) शत्रुओं को (सहमानः) सहते हुए (विश्वस्य) सम्पूर्ण (भुवनस्य) प्राणियों के निवास के स्थान के श्रेष्ठ गुणों से युक्त (राजा) (असि) हैं (सः) वह आप (जनान्) प्रसिद्ध वीरों को (योधय) लड़ाइये शत्रुओं को (क्षयय) पराजय को पहुंचाइये (च) और सज्जनों को अपने देश में बसाइये ॥ २ ॥

भावार्थः—जो लोग शरीर और आत्मा का पूर्ण बल करके शत्रुओं को निवारण करते और सज्जनों का सत्कार करके आनन्द देते हैं वे श्रेष्ठ होते हैं ॥ २ ॥

अथ विद्युद्विषयमाह ॥

अब बिजुली के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

प्र मात्राभी रिरिचे रोचमानः प्र देवेभिर्विश्वतो अप्रतीतः । प्र मज्मना दिव इन्द्रः पृथिव्याः प्रोरोर्महो अन्तरिक्षादृजीषी ॥ ३ ॥

प्र । मात्राभिः । रिरिचे । रोचमानः । प्र । देवेभिः । विश्वतः । अप्रतिऽइतः । प्र । मज्मना । दिवः । इन्द्रः । पृथिव्याः । प्र । उरोः । महः । अन्तरिक्षात् । ऋजीषी ॥ ३ ॥

पदार्थः—(प्र) (मात्राभिः) शब्दादिभिः सूक्ष्मैर्व्यवहाराऽवयवैर्वा (रिरिचे) अतिरिच्यते (रोचमानः) रुचिं कुर्वन् (प्र) (देवेभिः) विद्वद्भिः सह (विश्वतः) सर्वतः (अप्रतीतः) प्रसिद्धिमप्राप्तः (प्र) (मज्मना) बलेन (दिवः) प्रकाशात् (इन्द्रः) पराक्रमवान् सूर्य्य इव तेजस्वी (पृथिव्याः) भूमेः (प्र) (उरोः) बहुविधगुणयुक्तात् (महः) महतः (अन्तरिक्षात्) आकाशात् (ऋजीषी) सरलस्वभावः ॥ ३ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यथा रोचमानो विश्वतोऽप्रतीत ऋजीषी इन्द्रो विद्युद्रूपोऽग्निर्मात्राभिः प्र रिरिचे देवेभिः सह प्र रिरिचे मज्मना दिवः पृथिव्या उरोर्महोऽन्तरिक्षात्प्ररिरिचे तथाऽऽचरन्तो यूयं प्रतिष्ठां प्रलभध्वम् ॥ ३ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—हे मनुष्या यथाऽविकृता विद्युद्गन्धकादिष्वपि स्थिता न विरुणद्धि तथैव सर्वैः सह मैत्रीं कृत्वा विरोधं विजहत ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (रोचमानः) प्रीति करता हुआ (विश्वतः) सर्वत्र (अप्रतीतः) प्रसिद्धि को नहीं प्राप्त (ऋजीषी) सीधे स्वभाव वाला (इन्द्रः) और पराक्रम से युक्त सूर्य्य के सदृश तेजस्वी बिजुलीरूप अग्नि (मात्राभिः) शब्द आदि वा सूक्ष्म व्यवहारों के अवयवों से (प्र, रिरिचे) अधिक होता है और (देवेभिः) विद्वानों के साथ (प्र) वृद्धि को प्राप्त होता है (मज्मना) बल से (दिवः) प्रकाश से (पृथिव्याः) भूमि (उरोः) अनेक प्रकार गुणों के समूह से युक्त (महः) बड़े (अन्तरिक्षात्) आकाश से (प्र) अधिक होता है वैसा आचरण करते हुए आप लोग प्रतिष्ठा को (प्र) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये ॥ ३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो जैसे विकार को नहीं प्राप्त हुई बिजुली गन्धक आदिकों में वर्त्तमान हुई भी कुछ हानि नहीं करती वैसे ही सब लोगों के साथ मित्रता करके विरोध का त्याग करो ॥ ३ ॥

अथ विद्वद्विषयमाह ॥

अब विद्वान् के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

उरुं गंभीरं जनुषाभ्यु१ग्रं विश्वव्यंचसमवतं मंतीनाम् । इन्द्रं सोमांसः प्रदिविं सुतासंः समुद्रं न स्रवत आ विंशन्ति ॥ ४ ॥

उरुम् । गभीरम् । जनुषा । अभि । उग्रम् । विश्वऽव्यंचसम् । अवतम् । मतीनाम् । इन्द्रम् । सोमांसः । प्रऽदिविं । सुतासंः । समुद्रम् । न । स्रवतः । आ । विशन्ति ॥ ४ ॥

पदार्थः—(उरुम्) बहुविधगुणम् (गभीरम्) गूढाशयम् (जनुषा) जन्मना (अभि) आभिमुख्ये (उग्रम्) सर्वैः सह समवेतम् (विश्वव्यचसम्) विश्वव्यापकम् (अवतम्) रक्षकम् (मतीनाम्)

मनुष्याणाम् (इन्द्रम्) विद्युतम् (सोमासः) ऐश्वर्य्यवन्तः (प्रदिवि) प्रकृष्टप्रकाशे (सुतासः) विद्याविनयाभ्यां निष्पन्नाः (समुद्रम्) (न) इव (स्रवतः) चलन्त्यः सरितः । अत्र वा च्छन्दसीति वर्णलोपो वेतीकाराऽभावे नुमोऽप्यभावः (आ) (विशन्ति) प्रविशन्ति ॥ ४ ॥

अन्वयः—ये प्रदिवि सुतासः सोमासो विद्वांसो जनुषोरुं गभीरमुग्रं विश्वव्यचसं मतीनामवतमिन्द्रं स्रवतः समुद्रं नाभ्याविशन्ति तथैव ये सर्वत्र प्रविशन्ति तेऽक्षयैश्वर्या भवन्ति ॥ ४ ॥

भावार्थः—ये विद्युद्विद्यां विज्ञायोपकारं ग्रहीतुं शक्नुवन्ति ते समग्राः श्रिय उपलभन्ते ॥ ४ ॥

पदार्थः—जो लोग (प्रदिवि) उत्तम प्रकाश में (सुतासः) विद्या और विनय से प्रसिद्ध (सोमासः) ऐश्वर्य्य वाले विद्वान् लोग (जनुषा) जन्म से (उरुम्) अनेक प्रकार के गुणों से युक्त (गभीरम्) गूढ़ अभिप्राय वाले (उग्रम्) सब के साथ मिले हुए (विश्वव्यचसम्) सर्वत्र व्यापक (मतीनाम्) मनुष्यों के (अवतम्) रक्षा करने वाले (इन्द्रम्) बिजुली रूप अग्नि को (स्रवतः) बहती हुई नदियां (समुद्रम्) समुद्र को (न) जैसे (अभि, आ, विशन्ति) सब ओर से प्रविष्ट होती हैं वैसे जो सब ओर से प्रवेश करते अर्थात् उस में चित्त देते हैं वे उस ऐश्वर्य वाले होते हैं जो ऐश्वर्य कभी नष्ट नहीं होता है ॥४॥

भावार्थः—जो लोग बिजुली सम्बन्धी विद्या को जान कर उस के द्वारा उपकार ग्रहण कर सकते हैं वे अनेक प्रकार की लक्ष्मियों को प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

यं सोममिन्द्र पृथिवीद्यावा गर्भं न माता बिभृतस्त्वाया । तं ते हिन्वन्ति तमु ते मृजन्त्यध्वर्यवो वृषभ पातवा उ ॥ ५ ॥ १० ॥

यम् । सोम॑म् । इ॒न्द्र॒ । पृ॒थि॒वीद्यावा॑ । गर्भ॑म् । न । मा॒ता । बि॒भृ॒तः । त्वा॒ऽया । तम् । ते॒ । हि॒न्व॒न्ति॒ । तम् । ऊं॒ इति॑ । ते॒ । मृ॒ज॒न्ति॒ । अ॒ध्व॒र्यवः॑ । वृ॒ष॒भ॒ । पात॒वै । ऊं॒ इति॑ ॥५॥१०॥

पदार्थः—(यम्) (सोमम्) ऐश्वर्यम् (इन्द्र) ऐश्वर्ययोजक (पृथिवीद्यावा) भूमिविद्युतौ (गर्भम्) (न) इव (माता) (बिभृतः) धरतः (त्वाया) त्वां प्राप्ते (तम्) (ते) तुभ्यम् (हिन्वन्ति) वर्द्धयन्ति (तम्) (उ) (ते) तुभ्यम् (मृजन्ति) शुन्धन्ति (अध्वर्यवः) आत्मनोऽध्वरमहिंसां कामयमानाः (वृषभ) बलिष्ठ (पातवै) पातुं रक्षितुम् (उ) ॥ ५ ॥

अन्वयः—हे वृषभेन्द्र ये त्वाया पृथिवीद्यावा माता गर्भं न यं सोमं बिभृतस्तं ते ये हिन्वन्ति तमु ते येऽध्वर्यवो हिन्वन्त्यु ते ये मृजन्ति तानु पातवै त्वमुद्युक्तो भव ॥ ५ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालं०—ये विद्वांसो पृथिवीवत्सूर्यवत् सर्वान् विद्याबलाभ्यां वर्धयन्ति सुशिक्षया शुन्धन्ति ते मातृवत्पालकाः सन्तीति मत्वा सर्वैः सत्कर्त्तव्या इति ॥ ५ ॥

अत्र राजविद्युत्पृथिव्यादिगुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिर्वेद्या ॥

इति षट्चत्वारिंशत्तमं सूक्तं दशमो वर्गश्च समाप्तः ॥

पदार्थः—हे (वृषभ) बलिष्ठ (इन्द्र) ऐश्वर्य से युक्त करने वाले जो (त्वाया) आप को प्राप्त हुई (पृथिवीद्यावा) भूमि और बिजुली (माता) माता (गर्भम्) गर्भ को (न) जैसे वैसे (यम्) जिस (सोमम्) ऐश्वर्य्य को (बिभृतः) धारण करते हैं (तम्) उस को (ते) तुम्हारे लिये जो (हिन्वन्ति) वृद्धि

करते हैं (तम्, उ) उसी को (ते) आप के लिये जो (अध्वर्यवः) अपनी हिंसा नहीं चाहते हुए बढ़ाते हैं वा तुम्हारे लिये उसी को जो लोग (मृजन्ति) शुद्ध करते हैं उन की (उ) ही (पातवै) रक्षा के लिये आप उद्युक्त होइये ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जो विद्वान् लोग पृथिवी और सूर्य्य के सदृश सब को विद्या और बल से बढ़ाते और उत्तम शिक्षा से पवित्र करते वे माता के सदृश पालन करने वाले हैं ऐसा जान कर वे सब लोगों से सत्कार करने योग्य हैं ॥ ५ ॥

इस सूक्त में राजा बिजुली और पृथिवी आदिकों के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की पिछिले सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह छयालीसवां सूक्त और दशवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चर्चस्य सप्तचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य विश्वामित्र ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ । २ । ३ निचृत् त्रिष्टुप् । ४ त्रिष्टुप् । ५ विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अथ राजविषयमाह ॥

अब पांच ऋचा वाले सैतालीशवें सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में राजा के विषय को कहते हैं ॥

मरुत्वाँ इन्द्र वृषभो रणाय पिबा सोममनुष्वधं मदाय । आ सिञ्चस्व जठरे मध्व ऊर्मिं त्वं राजासि प्रदिवः सुतानाम् ॥ १ ॥

मरुत्वान् । इन्द्र । वृषभः । रणाय । पिब । सोमम् । अनुऽस्वधम् । मदाय । आ । सिञ्चस्व । जठरे । मध्वः । ऊर्मिम् । त्वम् । राजा । असि । प्रऽदिवः । सुतानाम् ॥१॥

पदार्थः—(मरुत्वान्) मरुतः प्रशस्ता मनुष्या विद्यन्ते यस्य सः (इन्द्र) परमैश्वर्य्ययुक्त (वृषभः) बलिष्ठः (रणाय) सङ्ग्रामाय (पिब)। अत्र द्व्यचोतस्तिङ इति दीर्घः (सोमम्) महौषधिरसम् (अनुष्वधम्) अनुकूलं स्वधान्नं विद्यते यस्मिँस्तम् (मदाय) आनन्दाय (आ) (सिञ्चस्व) (जठरे) उदरे (मध्वः) मधुरस्य (ऊर्मिम्) तरङ्गम् (त्वम्) (राजा) प्रकाशमानः (असि) (प्रदिवः) प्रकर्षेण विद्याविनयप्रकाशस्य (सुतानाम्) उत्पन्नानामैश्वर्यादीनाम् ॥ १ ॥

अन्वयः—हे इन्द्र मरुत्वान् वृषभस्त्वं रणाय मदायानुष्वधं सोमं पिब । जठरे मध्व ऊर्मिमासिञ्चस्व यतस्त्वं प्रदिवः सुतानां राजाऽसि तस्मादेतदाचर ॥ १ ॥

भावार्थः—हे राजन् भवान् यदि विजयमारोग्यं बलं दीर्घमायुश्चेच्छेत्तर्हि ब्रह्मचर्य्यं धनुर्वेदविद्यां जितेन्द्रियत्वं युक्ताऽऽहारविहारञ्च करोतु ॥ १ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य से युक्त (मरुत्वान्) श्रेष्ठ मनुष्यों से युक्त (वृषभः) बलवान् आप (रणाय) सङ्ग्राम के और (मदाय) आनन्द के लिये (अनुष्वधम्) अनुकूल स्वधा अन्न वर्त्तमान जिस में ऐसे (सोमम्) श्रेष्ठ औषधी के रस का (पिब) पान करो और (जठरे) पेट में (मध्वः) मधुर की (ऊर्मिम्) लहर को (आ, सिञ्चस्व) सेचन करो जिस से (त्वम्) आप (प्रदिवः) अत्यन्त विद्या और विनय से प्रकाशित के (सुतानाम्) उत्पन्न हुए ऐश्वर्य आदिकों के (राजा) प्रकाश कर्त्ता (असि) हैं इस से ऐसा आचरण करो ॥१॥

भावार्थः—हे राजन् आप जो विजय आरोग्य बल और अधिक अवस्था की इच्छा करें तो ब्रह्मचर्य धनुर्वेदविद्या जितेन्द्रियत्व और नियमित आहार विहार को करिये ॥ १ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

सजोषा इन्द्र सगणो मरुद्भिः सोमं पिब वृत्रहा शूर विद्वान् । जहि शत्रूँरप मृधो नुदस्वाथाभयं कृणुहि विश्वतो नः ॥ २ ॥

सऽजोषाः । इन्द्र । सऽगणः । मरुत्ऽभिः । सोमम् । पिब । वृत्रऽहा । शूर । विद्वान् । जहि । शत्रून् । अप । मृधः । नुदस्व । अथ । अभयम् । कृणुहि । विश्वतः । नः ॥२॥

पदार्थः—(सजोषाः) समानप्रीतिसेवनः (इन्द्र) ऐश्वर्य्यप्रयोजक (सगणः) गणैः सह वर्त्तमानः (मरुद्भिः) वायुभिरिव वीरैः सह (सोमम्) (पिब) (वृत्रहा) मेघस्य हन्ता सूर्य्य इव (शूर) शत्रूणां हिंसक (विद्वान्) सकलविद्यावित् (जहि) नाशय (शत्रून्) (अप) दूरीकरणे (मृधः) सङ्ग्रामान् (नुदस्व) प्रेरस्व (अथ) (अभयम्) (कृणुहि) (विश्वतः) सर्वतः (नः) अस्मान् ॥२॥

अन्वयः—हे शूरेन्द्र राजन् मरुद्भिः सगणो वृत्रहा सूर्य्य इव सजोषाः सगणो मरुद्भिः सह विद्वान् सोमं पिब शत्रूनप जहि मृधो नुदस्वाथ विश्वतो नोऽभयं कृणुहि ॥ २ ॥

भावार्थः—ये राजादयो मनुष्याः परस्परेषु सुहृदो भूत्वा युक्ताहारविहारब्रह्मचर्यजितेन्द्रियत्वाभिः पूर्णशरीरात्मबलाः सन्तः शत्रून् हत्वा सङ्ग्रामान् जित्वा प्रजासु सर्वथाऽभयं स्थापयन्ति त एव सर्वत्राऽभयं सुखं प्राप्नुवन्ति ॥ २ ॥

पदार्थः—हे (शूर) शत्रुओं के नाशकर्त्ता (इन्द्र) ऐश्वर्य्य से युक्त करने वाले (मरुद्भिः) पवनों के सदृश वीरपुरुषों के और (सगणाः) गणों के सहित वर्त्तमान (वृत्रहा) मेघ का नाशकर्त्ता सूर्य्य जैसे वैसे (सजोषाः) तुल्य प्रीति का सेवन करने वाला गणों के सहित वर्त्तमान हो कर और पवनों के सदृश वीर पुरुषों के सहित (विद्वान्) सकल विद्याओं का जानने वाला पुरुष (सोमम्) सोमलता के रस को (पिब) पीजिये और (शत्रून्) शत्रुओं को (अप, जहि) देश से बाहर करके नष्ट करिये (मृधः) सङ्ग्रामों की (नुदस्व) प्रेरणा अर्थात् प्रवृत्ति का उत्साह दीजिये (अथ) उस के अनन्तर (विश्वतः) सब ओर से (नः) हम लोगों को (अभयम्) भयरहित (कृणुहि) कीजिये ॥ २ ॥

भावार्थः—जो राजा आदि मनुष्य परस्पर मित्र हो कर नियमित भोजन विहार ब्रह्मचर्य्य जितेन्द्रिय होने आदि से पूर्ण शरीर आत्मा के बल वाले हो शत्रुओं को नाश कर और संग्रामों को जीत कर प्रजाओं में सब प्रकार भय रहित करते हैं वे ही सर्वत्र भयरहित सुख को प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

अथ सूर्य्यविषयमाह ॥

अब सूर्य्य के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

उत ऋतुभिर्ऋतुपाः पाहि सोममिन्द्र देवेभिः सखिभिः सुतं नः। याँ आभंजो मरुतो ये त्वान्वहन्वृत्रमदधुस्तुभ्यमोजः ॥ ३ ॥

उत। ऋतुऽभिः। ऋतुऽपाः। पाहि। सोमम्। इन्द्र। देवेभिः। सखिऽभिः। सुतम्। नः। यान्। आ। अभंजः। मरुतः। ये। त्वा। अनु। अहन्। वृत्रम्। अदधुः। तुभ्यम्। ओजः ॥ ३ ॥

पदार्थः—(उत) अपि (ऋतुभिः) वसन्तादिभिः (ऋतुपाः) य ऋतून् पाति रक्षति स सूर्य्यः (पाहि) रक्ष (सोमम्) सूयन्ते यस्मिँस्तं संसारम् (इन्द्र) दुःखविदारक (देवेभिः) विद्वद्भिः (सखिभिः) सुहृद्भिः (सुतम्) निष्पन्नम् (नः) अस्मान् (यान्) (आ) समन्तात् (अभजः) सेवस्व (मरुतः) मरणधर्ममनुष्यान् (ये) (त्वा) त्वाम् (अनु) (अहन्) हन्ति (वृत्रम्) सर्वसुखकरं धनम् (अदधुः) दध्युः (तुभ्यम्) (ओजः) बलम् ॥ ३ ॥

अन्वयः—हे इन्द्र त्वमृतुभिस्सहर्त्तुपाः सूर्य इव देवेभिः सखिभिः सह सुतं सोमं पाहि यान् महतो नोऽस्माँस्त्वमाभजो ये तुभ्यमोजो वृत्रं त्वा त्वां चान्वदधुस्तांस्त्वं पाहि उतापि यथा सूर्यो वृत्रमहँस्तथा शत्रून् हिन्धि ॥ ३ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—हे राजादयो मनुष्या यथा सूर्य्यो वसन्तादिभिः सर्वं जगद्रक्षति जलादिकमाकृष्य वर्षित्वा पाति तथैव विद्वद्भिर्मित्रैः सह विचार्य विजयपुरुषार्थाभ्यां सर्वान् रक्षन्तु ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) दुःख के नाशकर्त्ता पुरुष आप (ऋतुभिः) वसन्त आदि ऋतुओं के साथ (ऋतुपाः) ऋतुओं की रक्षा करने वाले सूर्य के सदृश (देवेभिः) विद्वान् (सखिभिः) मित्रों के साथ (सुतम्) उत्पन्न (सोमम्) संसार की (पाहि) रक्षा करो और (यान्) जिन (मरुतः) मरणधर्म वाले मनुष्य (नः) हम लोगों का आप (आ) सब प्रकार (अभजः) सेवन करें (ये) जो लोग (तुभ्यम्) आप के लिये (ओजः) पराक्रम और (वृत्रम्) सब सुखों के कर्त्ता धन को (त्वा) और आप को (अनु, अदधुः) अनुकूलता से धारण करें इन की आप रक्षा कीजिये (उत) और भी जैसे सूर्य मेघ का (अहन्) नाश करता है वैसे शत्रुओं का नाश करिये ॥ ३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे राजा आदि मनुष्यो जैसे सूर्य्य वसन्त आदि ऋतुओं से सम्पूर्ण जगत् की रक्षा करता जलादि रसों का आकर्षण

और पुनः वृष्टि करके पालन करता है वैसे ही विद्वान् मित्रों के साथ विचार करके विजय और पुरुषार्थ से सब की रक्षा कीजिये ॥ ३ ॥

पुनाराजविषयमाह ॥

फिर राजा के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

ये त्वाहिहत्ये मघवन्नवर्धन्ये शाम्बरे हरिवो ये गविष्टौ। ये त्वा नूनमनुमदन्ति विप्राः पिबेन्द्र सोमं सगणो मरुद्भिः ॥ ४ ॥

ये । त्वा । अहिऽहत्ये । मघऽवन् । अवर्धन् । ये । शाम्बरे । हरिऽवः । ये । गोऽइष्टौ । ये । त्वा । नूनम् । अनुऽमदन्ति । विप्राः । पिब । इन्द्र । सोमम् । सऽगणः । मरुत्ऽभिः ॥४॥

पदार्थः—(ये) (त्वा) त्वाम् (अहिहत्ये) अहेर्मेघस्य हत्या हननं यस्मिँस्तस्मिन् (मघवन्) पूजितपुष्कलधनयुक्त (अवर्धन्) वर्धयेयुः (ये) (शाम्बरे) शम्बरस्याऽयं सङ्ग्रामस्तस्मिन् (हरिवः) प्रशस्ता हरयो विद्यन्ते यस्य तत्सम्बुद्धौ (ये) (गविष्टौ) गवां किरणानां सङ्गमने (ये) (त्वा) त्वाम् (नूनम्) निश्चितम् (अनुमदन्ति) आनुकूल्येनाऽऽनन्दयन्ति (विप्राः) मेधाविनः (पिब) (इन्द्र) ऐश्वर्यकारक (सोमम्) ओषधिजन्यं घृतदुग्धादिकं रसम् (सगणः) गणेन वीरसमूहेन सहितः (मरुद्भिः) वायुभिरिव स्वमित्रैः सह ॥४॥

अन्वयः—हे हरिवो मघवन्निन्द्र ये विप्रास्त्वा त्वां मरुद्भिः सह सूर्योऽहिहत्ये शाम्बर इवाऽवर्द्धन् ये गविष्टौ त्वा त्वामवर्धन् ये युद्धे नूनमनुमदन्ति ये च सर्वान् रक्षन्त्यानन्दयन्ति तैः मरुद्भिः सह सगणः सन् सोमं पिब ॥ ४ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यथाऽनुन्मदं मेघं सूर्यो वर्द्धयित्वोन्मदं हन्ति तथैव धार्मिका राजादयो धार्मिकाञ्छान्तान् रक्षित्वा दुष्टान् हत्वा स्वयं प्रसन्ना भूत्वा प्रजा अनुमदन्तु ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे (हरिवः) उत्तम घोड़ों से युक्त (मघवन्) श्रेष्ठ बहुत धनों वाले (इन्द्र) ऐश्वर्य के कर्त्ता (ये) जो (विप्राः) बुद्धिमान् लोग (त्वा) आप को (मरुद्भिः) पवनों के सदृश अपने मित्रों के साथ सूर्य (अहिहत्ये) मेघ का नाश हो जिस में ऐसे (शाम्बरे) मेघसम्बन्धी संग्राम में जैसे वैसे (अवर्धन्) वृद्धि करें और (ये) जो (गविष्टौ) किरणों के समूह में आप की वृद्धि करें (ये) जो युद्ध में (नूनम्) निश्चित (अनु,मदन्ति) अनुकूलता से आनन्द देते और (ये) जो सब लोगों की रक्षा करते और आनन्द देते हैं उन पवनों के सदृश मित्रों के और (सगणः) वीर पुरुषों के सहित (सोमम्) ओषधियों से उत्पन्न हुए घृत दुग्ध आदि रसों का (पिब) पान कीजिये ॥ ४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचलु०—जैसे नहीं बढे हुए मेघ को सूर्य बढ़ाय के और बढ़े हुए का नाश करता है वैसे ही धार्मिक राजा आदि पुरुष धार्मिक शान्त पुरुषों की रक्षा और दुष्ट पुरुषों का नाश कर स्वयं प्रसन्न होकर प्रजाओं को प्रसन्न करें ॥ ४ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

मरुत्वन्तं वृषभं वावृधानमकवारिं दिव्यं शासमिन्द्रम्। विश्वासाहमवसे नूतनायोग्रं सहोदामिह तं हुवेम ॥ ५ ॥ ११ ॥

मरुत्वन्तम् । वृषभम् । ववृधानम् । अकवऽअरिम् । दिव्यम् । शासम् । इन्द्रम् । विश्वऽसहम् । अवसे । नूतनाय । उग्रम् । सहःऽदाम् । इह । तम् । हुवेम ॥५॥११॥

पदार्थः—(मरुत्वन्तम्) प्रशस्ता मरुतो मनुष्या विद्यन्ते यस्य तम् (वृषभम्) बलिष्ठम् (वावृधानम्) वर्द्धमानं वर्द्धयितारं वा (अकवारिम्) अविद्यमानशत्रुम् (दिव्यम्) शुद्धगुणकर्मस्वभावम् (शासम्) प्रशासितारम् (इन्द्रम्) परमैश्वर्य्यवन्तम् (विश्वासाहम्) सर्वसहम् (अवसे) रक्षणाद्याय (नूतनाय) नवीनाय (उग्रम्) दुष्टानां दमयितारम् (सहोदाम्) बलप्रदम् (इह) अस्मिन् राज्यव्यवहारे (तम्) (हुवेम) प्रशंसेम ॥ ५ ॥

अन्वयः—हे विद्वांसो यूयमिह नूतनायावसे यं मरुत्वन्तं वृषभं वावृधानमकवारिं दिव्यं विश्वासाहमुग्रं सहोदामिन्द्रं शासन्नूतनायावसे प्रशंसत तं वयं हुवेम ॥ ५ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—मनुष्यैः स एव स्वकीयो राजा कर्त्तव्यो यस्मिन् सर्वे राजधर्माः साङ्गोपाङ्गा वर्त्तन्ते ॥ ५ ॥

अत्र राजसूर्य्यगुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति वेदितव्यम् ॥

॥ इति सप्तचत्वारिंशत्तमं सूक्तमेकादशो वर्गश्च समाप्तः ॥

पदार्थः—हे विद्वान् पुरुषो आप लोग (इह) इस राज्यव्यवहार में (नूतनाय) नवीन (अवसे) रक्षण आदि के लिये जिस (मरुत्वन्तम्) प्रशंसा करने योग्य मनुष्य हों जिस के उस और (वृषभम्) बल वाले और (वावृधानम्) बढ़ने वा बढ़ाने वाले (अकवारिम्) शत्रुओं से रहित (दिव्यम्) शुद्ध गुण कर्म और स्वभाव से युक्त (विश्वासाहम्) सब को सहने और (उग्रम्) दुष्टों के नाश करने (सहोदाम्) बल के देने और (इन्द्रम्) अत्यन्त ऐश्वर्य्य वाले (शासम्) शासन करने वाले की प्रशंसा करो (तम्) उस की हम लोग (हुवेम) प्रशंसा करें ॥ ५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—मनुष्यों को चाहिये कि उसी को अपना राजा करें कि जिस में संपूर्ण राजा के धर्म अङ्गों और उपाङ्ग सहित वर्त्तमान हैं ॥ ५ ॥

इस सूक्त में राजा और सूर्य्य के गुण वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछिले सूक्त के अर्थ के साथ संगति है यह जानना चाहिये ॥

यह सैंतालीसवां सूक्त और ग्यारहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चर्चस्याष्टचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य विश्वामित्र ऋषिः। इन्द्रो देवता । १ । २ निचृत् त्रिष्टुप् । ३ । ४ त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ५ भुरिक्-पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अथ राज्ञो विषयमाह ॥

अब पांच ऋचा वाले अड़तालीशवें सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में राजा के विषय को कहते हैं ॥

स॒द्यो ह॑ जा॒तो वृ॑ष॒भः क॒नीनः॒ प्रभ॑र्तु॒माव॒द-न्धंसः सु॒तस्य॑ । सा॒धोः पिंब प्रति॒का॒मं यथा॑ ते॒ रसा॑-शिरः प्र॒थ॒मं सो॒म्यस्य ॥ १ ॥

स॒द्यः । ह॒ । जा॒तः । वृ॒ष॒भः । क॒नीन॑ः । प्र॒ऽभ॑र्त्तुम् । आ॒व॒त् । अन्ध॑सः । सु॒तस्य॑ । सा॒धोः । पि॒ब॒ । प्र॒ति॒ऽका॒मम् । यथा॑ । ते॒ । रस॑ऽआशिरः । प्र॒थ॒मम् । सो॒म्यस्य॑ ॥ १ ॥

पदार्थः—(सद्यः) (ह) खलु (जातः) उत्पन्नः (वृषभः) वर्षकः (कनीनः) दीप्तिमान् (प्रभर्त्तुम्) प्रकर्षेण धर्त्तुम् (आवत्) रक्षेत् (अन्धसः) अन्नस्य (सुतस्य) सुसंस्कृतस्य (साधोः)

सन्मार्गे स्थितस्य (पिब) (प्रतिकामम्) कामं कामं प्रति (यथा) (ते) तव (रसाशिरः) यो रसानश्नाति सः (प्रथमम्) (सोम्यस्य) सोम ऐश्वर्ये भवस्य ॥ १ ॥

अन्वयः—हे राजन् यथा सद्यो जातो वृषभः कनीनो रसाशिरः सूर्योऽन्धसः सुतस्य सोम्यस्य प्रथममावत्तथाभूतस्त्वं प्रतिकामं सोमं पिबैवं भूतस्य साधोस्ते ह प्रजाः प्रभर्त्तुं शक्तिर्जायेत ॥ १ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालं०—हे राजादयो मनुष्या यथा सूर्यादयः पदार्थाः स्वप्रभावैरीश्वरनियोगेन सर्वान् पदार्थान् रक्षित्वा दोषान् घ्नन्ति तथैव साधून् रक्षित्वा दुष्टान् हन्युः ॥ १ ॥

पदार्थः—हे राजन् (यथा) जैसे (सद्यः) शीघ्र (जातः) उत्पन्न हुआ (वृषभः) वृष्टि करने वाला (कनीनः) प्रकाशवान् (रसाशिरः) रसों का भोजन करने वाला सूर्य्य (अन्धसः) अन्न के (सुतस्य) उत्तम प्रकार संस्कार युक्त (सोम्यस्य) ऐश्वर्य में उत्पन्न का (प्रथमम्) प्रथम (आवत्) रक्षा करे उस प्रकार के आप (प्रतिकामम्) कामना २ के प्रति ओषधियों के रस का (पिब) पान करो और इस प्रकार के (साधोः) उत्तम मार्गों में वर्त्तमान (ते) आप का (ह) निश्चय से प्रजाओं को (प्रभर्त्तुम्) प्रकर्षता से धारण करने को सामर्थ्य होवे ॥ १ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—हे राजा आदि मनुष्यो जैसे सूर्य्य आदि पदार्थ अपने प्रतापों और ईश्वर के नियोग से सब पदार्थों की रक्षा करके दोषों का नाश करते हैं वैसे ही साधु पुरुषों की रक्षा करके दुष्ट पुरुषों का नाश करें ॥ १ ॥

अथ सन्तानोत्पत्तिविषयमाह ॥

अब सन्तान की उत्पत्ति के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

यज्जायथास्तदहरस्य कामेंऽशोः पीयूषमपिबो गिरिष्ठाम् । तं ते माता परि योषा जनित्री महः पितुर्दम आसिञ्चदग्रे ॥ २ ॥

यत् । जायथाः । तत् । अहः । अस्य । कामे । अंशोः । पीयूषम् । अपिबः । गिरिऽस्थाम् । तम् । ते । माता । परि । योषा । जनित्री । महः । पितुः । दमे । आ । असिञ्चत् । अग्रे ॥२॥

पदार्थः—(यत्) (जायथाः) (तत्) (अहः) दिने (अस्य) (कामे) (अंशोः) प्राप्तस्य (पीयूषम्) अमृतात्मकं रसम् (अपिबः) पिब (गिरिष्ठाम्) यो गिरौ मेघे तिष्ठति (तम्) (ते) तव (माता) (परि) सर्वतः (योषा) (जनित्री) (महः) महत् (पितुः) पालकस्य जनकस्य (दमे) गृहे । दम इति गृहना० निघं० । ३ । ४ (आ) (असिञ्चत्) समन्तात् सिञ्चति (अग्रे) प्रथमतः ॥ २ ॥

अन्वयः—हे राजँस्त्वं यदहर्जायथास्तदहः कामेऽस्यांऽशोर्गिरिष्ठां पीयूषं ते तव पिताऽपिबस्तं तव पितुर्योषा तव जनित्री माताऽग्रे दमे महः पर्य्यासिञ्चत् ॥ २ ॥

भावार्थः—यदा स्त्रीपुरुषौ गर्भमादधेयातां तदा दुष्टान्नपानादिसेवनं विहाय श्रेष्ठान्नपानं कृत्वा गर्भमाधाय सन्तानमुत्पाद्य पुनस्तस्याप्येवमेव पालनं वर्धनं कुर्य्याद्यो राजा भवितुमर्हेत् ॥ २ ॥

पदार्थः—हे राजन् आप (यत्) जिस (अहः) दिन (जायथाः) उत्पन्न हुए (तत्) उस दिन की (कामे) कामना में (अस्य) इस (अंशोः) प्राप्त हुए भाग के (गिरिष्ठाम्) मेघ में विद्यमान (पीयूषम्) अमृतरूप रस को (ते) आप के पिता (अपिबः) पान करें (तम्) उस को आप के (पितुः) पालक और उत्पादक पिता की (योषा) स्त्री आप की (जनित्री) उत्पन्न करने वाली (माता) माता (अग्रे) पहिले (दमे) घर में (महः) बड़े को (परि आ, असिञ्चत्) चारों ओर से सींचता है ॥ २ ॥

भावार्थः—जब स्त्री और पुरुष गर्भ को धारण करें तब दुष्ट अन्न पान आदि का सेवन त्याग श्रेष्ठ अन्न पान गर्भधारण और सन्तान उत्पन्न करके फिर उस का भी इसी प्रकार पालन और वृद्धि करे जो कि राजा होने को योग्य हो ॥ २ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

उपस्थाय मातरमन्नमैट्ट तिग्ममपश्यदभि सोम-मूधः । प्रयावयन्नचरद्गृत्सो अन्यान्महानि चक्रे पुरुधप्रतीकः ॥ ३ ॥

उपऽस्थाय । मातरम् । अन्नम् । ऐट्ट । तिग्मम् । अपश्यत् । अभि । सोमम् । ऊधः । प्रऽयवयन् । अचरत् । गृत्सः । अन्यान् । महानि । चक्रे । पुरुधऽप्रतीकः ॥ ३ ॥

पदार्थः—(उपस्थाय) सामीप्यं प्राप्य (मातरम्) जननीम् (अन्नम्) अत्तुं योग्यम् (ऐट्ट) प्रशंसेत (तिग्मम्) तीव्रम् (अपश्यत्) पश्येत् (अभि) आभिमुख्ये (सोमम्) ऐश्वर्य्यम् (ऊधः) यथोषाः (प्रयावयन्) संयोजयन् विभाजयन् वा (अचरत्) आचरेत् (गृत्सः) मेधावी (अन्यान्) (महानि) महान्त्यपत्यानि (चक्रे) कुर्य्यात् (पुरुधप्रतीकः) पुरून् बहून् दधाति ते पुरुधा यः पुरुधान् प्रत्यायेति सः ॥ ३ ॥

अन्वयः—यो गृत्सः पुरुधप्रतीकः सूर्य्य ऊधइव मातरमुपस्थायान्नमैट्ट प्रयावयन् सन् तिग्मं सोममभ्यपश्यदन्यानचरन्महानि चक्रे स एव राजा भवितुमर्हेत् ॥ ३ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यथा सूर्य्य उपसं प्राप्य दिनं जनयति तथैवाऽपत्यमातरं सन्तानपितोपस्थाय गर्भमादधेत तथैव संस्कारान्मातापितरौ विदधेयातां यथाऽपत्यानि शुभगुणकर्मलक्षणस्वभावानि राजकर्माणि कर्त्तुमर्हेयुः ॥ ३ ॥

पदार्थः—जो (गृत्सः) बुद्धिमान् (पुरुधप्रतीकः) बहुतों को धारण करने वालों के प्रति प्राप्त होने वाला सूर्य्य (ऊधः) प्रातःकाल की रात्रि को जैसे वैसे (मातरम्) पुत्र की माता को (उपस्थाय) समीप प्राप्त हो कर (अन्नम्) खाने योग्य पदार्थ की (ऐट्ट) प्रशंसा करे और (प्रयावयन्) संयोग वा विभाग करता हुआ (सोमम्) ऐश्वर्य्य को (अभि) चारों ओर से (अपश्यत्) देखे और (अन्यान्) औरों को (अचरत्) आचरण करे (महानि) बड़े सन्तानों को (चक्रे) उत्पन्न करे वही राजा होने योग्य है ॥ ३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे सूर्य प्रातःकाल की रात्रि को प्राप्त हो कर दिन को उत्पन्न करता है वैसे ही सन्तान की माता को सन्तान का पिता प्राप्त हो कर गर्भस्थिति करे और वैसे ही संस्कारों को माता और पिता करें कि जैसे सन्तान उत्तम गुण कर्म लक्षण स्वभावों से युक्त राजकर्मों को करने योग्य होवें ॥ ३ ॥

अथ प्रजापालनविषयमाह ॥

अब प्रजा के पालन का विषय अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

उग्रस्तुराषाळभिभूत्योजा यथावशं तन्वं चक्र एषः । त्वष्टारमिन्द्रो जनुषाभिभूयामुष्या सोमम-पिबच्चमूषु ॥ ४ ॥

उग्रः । तुराषाट् । अभिभूतिऽओजाः । यथावशम् । तन्वम् । चक्रे । एषः । त्वष्टारम् । इन्द्रः । जनुषा । अभिऽभूय । आऽमुष्य । सोमम् । अपिबत् । चमूषु ॥ ४ ॥

पदार्थः—(उग्रः) तेजस्वी (तुराषाट्) यस्तुरान्त्वरितान्छीघ्रकारिणः सहते सः (अभिभूत्योजाः) शत्रूणामभिभवकरः पराक्रमो यस्य सः (यथावशम्) वशमनतिक्रम्य वर्त्तते तत् (तन्वम्) शरीरम् (चक्रे) करोति (एषः) (त्वष्टारम्) तेजस्विनम् (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् (जनुषा) जन्मना (अभिभूय) शत्रून् तिरस्कृत्य (आमुष्य) चोरयित्वा अत्र संहितायामिति दीर्घः (सोमम्) ओषधिरसम् (अपिबत्) ।पिबेत् (चमूषु) भक्षयित्रीषु सेनासु ॥४॥

अन्वयः—य एषश्चमूषु सोमममुष्याऽपिबत्तं त्वष्टारमभिभूय जनुषोग्रस्तुराषाडभिभूत्योजा इन्द्रो यथावशं तन्वं चक्रे स राज्यं कर्त्तुमर्हेत् ॥ ४ ॥

भावार्थः—ये विद्वांसो धार्मिका राजजनास्ते स्तेनादीन् दुष्टाँस्तिरस्कृत्य मादकद्रव्यसेविनो दण्डयित्वा स्वयमव्यसनिनो भूत्वा प्रजाः पालयितुं क्षमाः स्युस्त एव राज्यमुन्नेतुमर्हेयुः ॥ ४ ॥

पदार्थः—जो (एषः) यह (चमूषु) भक्षण करने वाली सेनाओं में (सोमम्) ओषधियों के रस की (आमुष्य) चोरी करके (अपिबत्) पीवे उस (त्वष्टारम्) तेजस्वी और शत्रुओं का (अभिभूय) तिरस्कार करके (जनुषा) जन्म से (उग्रः) तेजस्वी (तुराषाट्) शीघ्रकारियों को सहने वाला (अभिभूत्योजाः) शत्रुओं के तिरस्कार करने वाले पराक्रम से युक्त (इन्द्रः) अत्यन्त ऐश्वर्य वाला पुरुष (यथावशम्) यथासामर्थ्य (तन्वम्) शरीर को (चक्रे) करता है वह राज्य करने के योग्य होवे ॥ ४ ॥

भावार्थः—जो विद्वान् धार्मिक राजा जन हैं वे चोर आदि दुष्ट जनों का तिरस्कार और मादक द्रव्य अर्थात् उन्मत्तता करने वाले द्रव्यों के सेवन कर्त्ताओं का दण्ड करके और अपने आप अव्यसनी हो कर प्रजाओं के पालन करने को समर्थ होवें वे ही राज्य की वृद्धि करने के योग्य होवें ॥ ४ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाज-सातौ । शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ॥ ५ ॥ १२ ॥

शुनम् । हुवेम । मघऽवानम् । इन्द्रम् । अस्मिन् । भरे । नृऽतमम् । वाजऽसातौ । शृण्वन्तम् । उग्रम् । ऊतये । समत्ऽसु । घ्नन्तम् । वृत्राणि । सम्ऽजितम् । धनानाम् ॥ ५ ॥ १२ ॥

पदार्थः—(शुनम्) राजधर्मजं सुखम् (हुवेम) आह्वयेम (मघवानम्) न्यायोपार्जितबहुधनसत्कृतम् (इन्द्रम्) राजानम् (अस्मिन्) (भरे) भर्त्तव्ये राज्ये (नृतमम्) नरोत्तमम् (वाज-सातौ) सत्यासत्यव्यवहारविभाजके (शृण्वन्तम्) सत्याऽसत्ये निश्चित्याज्ञापयन्तम् (उग्रम्) दुष्टेषु कठिनस्वभावं श्रेष्ठेषु सरलम् (ऊतये) रक्षणाद्याय (समत्सु) धर्म्यसङ्ग्रामेषु (घ्नन्तम्) दुष्टान् विनाशयन्तम् (वृत्राणि) धनानि (सञ्जितम्) पालकं दातारं वा (धनानाम्) ॥ ५ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या वयमस्मिन् वाजसातौ भर ऊतये मघ-वानं नृतमं शृण्वन्तमुग्रं समत्सु घ्नन्तं धनानां सञ्जितं वृत्राणि प्रातमिन्द्रं प्राप्य शुनं हुवेम तथैव तादृशं राजानं प्राप्य यूयमप्येत-दाह्वयत ॥ ५ ॥

भावार्थः—सर्वैः सभ्यैर्विद्वज्जनैरवश्यं सकलशास्त्रविशारदं शुभगुणकर्मस्वभावं राजधर्मकोविदं कुलीनं परमैश्वर्य्यवन्तं सर्वाधीशं कृत्वा राष्ट्रस्य सततं रक्षाञ्च विधाय दस्यवः परिहन्तव्या इति ॥५॥

अत्र राजधर्मसन्तानोत्पत्तिराज्यपालनादिगुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिर्वेद्या ॥

इत्यष्टचत्वारिंशत्तमं सूक्तं द्वादशो वर्गश्च समाप्तः ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो हम लोग (अस्मिन्) इस (वाजसातौ) सत्य और असत्य व्यवहार के विभाग करने वाले (भरे) पोषण करने योग्य राज्य में (ऊतये) रक्षण आदि के लिये (मघवानम्) न्याय से इकट्ठे किये गये बहुत धन से सत्कृत (नृतमम्) मनुष्यों में उत्तम मनुष्य (शृण्वन्तम्) सत्य और असत्य का निश्चय करके आज्ञा देते हुए (उग्रम्) दुष्ट जनों में कठिन और श्रेष्ठ पुरुषों में सरल स्वभाव वाले (समत्सु) धर्मयुक्त संग्रामों में (घ्नन्तम्) दुष्ट पुरुषों के नाशकर्त्ता (धनानाम्) धनों के (सञ्जितम्) पालन करने वा देने वाले (वृत्राणि) धनों को प्राप्त (इन्द्रम्) राजा को प्राप्त हो कर (शुनम्) राजाओं के धर्म से उत्पन्न हुए सुख को (हुवेम) ग्रहण करें वैसे ही ऐसे राजा को प्राप्त हो कर आप लोग भी इस का ग्रहण करो ॥ ५ ॥

भावार्थः—संपूर्ण श्रेष्ठ सभासद् विद्वज्जनों को चाहिये कि अवश्य संपूर्ण शास्त्रों में निपुण उत्तम गुण कर्म और स्वभाव वाले राजधर्म में चतुर व उत्तम कुलयुक्त अत्यन्त ऐश्वर्य्यवान् पुरुष को सब का अधीश करके और राज्य की निरन्तर रक्षा करके चौरादिकों का नाश करें ॥ ५ ॥

इस सूक्त में राजधर्म सन्तानोत्पत्ति और राज्यपालन आदि के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछिले सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह अडतालीशवां सूक्त और बारहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चर्चस्यैकोनपञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य विश्वामित्र ऋषिः। इन्द्रो देवता । १ । ४ निचृत् त्रिष्टुप् । २ । ५ त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः। ३ भुरिक् पङ्क्तिः छन्दः। पञ्चमःस्वरः ॥

अथ प्रजाविषयमाह ॥

अब पांच ऋचा वाले उञ्चाशवें सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में प्रजा के विषय को कहते हैं ॥

शंसा महामिन्द्रं यस्मिन् विश्वा आ कृष्टयः सोमपाः काममव्यन् । यं सुक्रतुं धिषणे विभ्वतष्टं घनं वृत्राणां जनयन्त देवाः ॥ १ ॥

शंस । महाम् । इन्द्रम् । यस्मिन् । विश्वाः । आ । कृष्टयः । सोमऽपाः । कामम् । अव्यन् । यम् । सुऽक्रतुम् । धिषणे इति । विभ्वऽतष्टम् । घनम् । वृत्राणाम् । जनयन्त । देवाः ॥ १ ॥

पदार्थः—(शंस) स्तुहि । अत्र द्व्यचोतस्तिङ इति दीर्घः (महाम्) महान्तं पूजनीयम् (इन्द्रम्) राजानम् (यस्मिन्) (विश्वाः) समग्राः (आ) समन्तात् (कृष्टयः) मनुष्याः (सोमपाः) ऐश्वर्य्यपालकाः (कामम्) अभिलाषम् (अव्यन्) कामयन्ताम् (यम्) (सुक्रतुम्) शोभनकर्मकर्त्तृप्रज्ञम् (धिषणे) द्यावापृथिव्याविव विद्यानीती (विभ्वतष्टम्) विभुना जगदीश्वरेण निर्मितम् (घनम्) घनीभूतम् (वृत्राणाम्) मेघानाम् (जनयन्त) जनयन्ति (देवाः) विद्वांसः ॥ १ ॥

अन्वयः—हे विद्वन् यस्मिन् विश्वाः सोमपाः कृष्टयः काममाऽव्यन् वृत्राणां घनं विश्वतष्टं महामिन्द्रं धिषणे प्रकाशयन्तं सूर्य्यमिव विद्यानीती प्रकाशय यं सुक्रतुं देवा जनयन्त तं राजानं त्वं शंस ॥१॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—हे विद्वांसो यथा महानेकः सूर्य्यः प्रत्येकभूगोले स्थितान् मेघान् हन्ति प्राणिनां सुखं जनयति तथैव राजा दुष्टान् हत्वा श्रेष्ठानामिच्छां प्रपूर्य्याऽऽनन्दयति ॥ १ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् (यस्मिन्) जिस में (विश्वाः) संपूर्ण (सोमपाः) ऐश्वर्य्य के पालन करने वाले (कृष्टयः) मनुष्य (कामम्) अभिलाषा की (आ) सब प्रकार (अव्यन्) इच्छा करें (वृत्राणाम्) मेघों के (घनम्) समूह को (विश्वतष्टम्) व्यापक परमेश्वर ने रचा (महाम्) श्रेष्ठ और सेवा करने योग्य (इन्द्रम्) राजा को (धिषणे) अन्तरिक्ष और पृथिवी को प्रकाशित करते हुए सूर्य्य के सदृश विद्या और नीति को प्रकाशित करते हुए (यम्) जिस (सुक्रतुम्) उत्तम कर्म करने वाली बुद्धि से युक्त पुरुष को (देवाः) विद्वान् लोग (जनयन्त) उत्पन्न करते हैं उस राजा की आप (शंस) स्तुति करिये ॥ १ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे विद्वान् लोगो जैसे बड़ा एक सूर्य्य प्रत्येक भूगोल में वर्त्तमान मेघों को नाश करता और प्राणियों के सुख को उत्पन्न करता है वैसे ही राजा जन दुष्ट पुरुषों का नाश और श्रेष्ठ पुरुषों की इच्छा पूर्ण करके आनन्द देता है ॥ १ ॥

अथ राजविषयमाह ॥

अब राजा के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

यं नु नकिः पृतनासु स्वराजं द्विता तरति नृतमं हरिष्ठाम्। इनतमः सत्वभिर्यो ह शूषैः पृथुज्रया अमिनादायुर्दस्योः ॥ २ ॥

यम् । नु । नकिः । पृतनासु । स्वऽराजम् । द्विता । तरति । नृऽतमम् । हरिऽस्थाम् । इनऽतमः । सत्वऽभिः । यः । ह । शूषैः । पृथुऽज्रयाः । अमिनात् । आयुः । दस्योः ॥ २ ॥

पदार्थः—(यम्) (नु) सद्यः (नकिः) निषेधे (पृतनासु) वीरसेनासु (स्वराजम्) यः स्वेन सूर्य्य इव राजते तम् (द्विता) द्वयोर्भावः (तरति) उल्लङ्घने (नृतमम्) अतिशयेन नायकम् (हरिष्ठाम्) हरयो मनुष्यास्तिष्ठन्ति यस्मिन् स तम् (इनतमः) अतिशयेनेश्वरः समर्थः (सत्वभिः) शत्रून् सीदयद्भिर्वीरैः सह (यः) (ह) किल (शूषैः) बलयुक्तैः (पृथुज्रयाः) पृथुस्तीव्रो ज्रयो वेगो यस्य सः (अमिनात्) हिंस्यात् (आयुः) (दस्योः) दुष्टस्य ॥ २ ॥

अन्वयः—हे विद्वांसो यं हरिष्ठां नृतमं स्वराजं पृतनासु द्विता नकिस्तरति यः पृथुज्रया इनतमो ह शूषैः सत्वभिः सह दस्योरायुर्न्वमिनात्तं सर्वाऽधीशं कुरुत ॥ २ ॥

भावार्थः—हे मनुष्या यं शत्रोर्द्विगुणमपि बलं जेतुं न शक्नोति य उत्कृष्टसामर्थ्यो दुष्टान् सततं हन्ति तमेव सर्वबलाध्यक्षं कृत्वा सदैव विजयः कर्त्तव्यः ॥ २ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् लोगो (यम्) जिस (हरिष्ठाम्) मनुष्य वर्त्तमान हों जिस में उस (नृतमम्) अतिशय करके नायक (स्वराजम्) अपने से सूर्य्य के सदृश प्रकाशमान (पृतनासु) वीरों की सेनाओं में (द्विता) दोपन का (नकिः) नहीं (तरति) उल्लंघन करता है और (यः) जो (पृथुज्रयाः) तीव्र वेग से युक्त (इनतमः) अत्यन्त समर्थ (ह) निश्चय से (शूषैः) बलयुक्त

(सत्त्वभिः) शत्रुओं को दुःख देने वाले वीरों के साथ (दस्योः) दुष्ट पुरुष के (आयुः) अवस्था का (नु) शीघ्र (अमिनात्) नाश करे उस को सब का स्वामी करो ॥ २ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो जिस पुरुष को शत्रु का द्विगुना भी बल जीत नहीं सक्ता और जो अधिक सामर्थ्ययुक्त पुरुष दुष्ट पुरुषों का निरन्तर नाश करता है उसी को सब सेना का अध्यक्ष करके सदैव विजय करना चाहिये ॥ २ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

सहावा पृत्सु तरणिर्नार्वा व्यानशी रोदसी मेहनावान् । भगो न कारे हव्यो मतीनां पितेव चारुः सुहवो वयोधाः ॥ ३ ॥

सहऽवा । पृत्ऽसु । तरणिः । न । अर्वा । विऽआनशिः । रोदसी इति । मेहनाऽवान् । भगः । न । कारे । हव्यः । मतीनाम् । पिताऽइव । चारुः । सुऽहवः । वयःऽधाः ॥ ३ ॥

पदार्थः—(सहावा) सोढा । अत्राऽन्येषामपीति दीर्घः (पृत्सु) स्पर्द्धमानेषु सङ्ग्रामेषु (तरणिः) सद्यो गन्ता (न) इव (अर्वा) अश्वः (व्यानशिः) व्याप्तः (रोदसी) द्यावाभूमी (मेहनावान्) मेहनानि सेचनानि बहूनि विद्यन्ते यस्य सः (भगः) ऐश्वर्य्य-योगः (न) इव (कारे) कर्त्तव्ये व्यवहारे (हव्यः) आदातुमर्हः (मतीनाम्) मननशीलानां मनुष्याणाम् (पितेव) यथा जनकः (चारुः) सुन्दरः (सुहवः) शोभनाऽऽह्वानस्तुतिः (वयोधाः) यो वयो जीवनं दधाति सः ॥ ३ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यः पृत्सु तरणिरर्वा न सहावा रोदसी इव मेहनावान् कारे व्यानशिर्हव्यो भगो न मतीनां वयोधाः सुहवश्चारुः पितेव वर्त्तते तमेव यूयं भूपतिं कुरुत ॥ ३ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालं०—योऽश्ववद्वेगवान् बलिष्ठो योद्धा सूर्य्यभूमीवत् सर्वेषां सुखद ऐश्वर्य्यवत्कार्य्यसिद्धिकरः पितृवत्सर्वेषां पालको भवेत् स एव राज्याऽभिषेकमर्हेत् ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (पृत्सु) स्पर्द्धा करते हुए सङ्ग्रामों में (तरणिः) शीघ्र चलने वाले (अर्वा) घोड़े के (न) तुल्य (सहावा) सहने वाला (रोदसी) अन्तरिक्ष और भूमि के सदृश (मेहनावान्) सेचन बहुत विद्यमान हैं जिस के वह (कारे) करने योग्य व्यवहार में (व्यानशिः) व्याप्त (हव्यः) ग्रहण करने के योग्य (भगः) ऐश्वर्य्य के योग के (न) तुल्य (मतीनाम्) मनन करने वाले मनुष्यों के (वयोधाः) जीवन को धारण करने वाला (सुहवः) उत्तम पुकारने की स्तुतियुक्त (चारुः) सुन्दर (पितेव) पिता के सदृश वर्त्तमान है उसी को आप लोग राजा करिये ॥ ३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जो घोड़े के सदृश वेग और बलयुक्त योद्धा सूर्य्य और भूमि के सदृश सब का सुख देने और ऐश्वर्य्य के सदृश कार्य्य की सिद्धि करने वाला पिता के सदृश सब का पालनकर्त्ता होवे वही राज्याऽभिषेक करने के योग्य होवे ॥ ३ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

धर्त्ता दिवो रजसस्पृष्ट ऊर्ध्वो रथो न वायुर्वसुभिर्नियुत्वान्। क्षपां वस्ता जनिता सूर्यस्य विभक्ता भागं धिषणेव वाजम् ॥ ४ ॥

धर्त्ता । दिवः । रजसः । पृष्टः । ऊर्ध्वः । रथः । न । वायुः । वसुऽभिः । नियुत्वान् । क्षपाम् । वस्ता । जनिता । सूर्यस्य । विऽभक्ता । भागम् । धिषणांऽइव । वाजम् ॥ ४ ॥

पदार्थः—(धर्त्ता) धाता (दिवः) प्रकाशमयस्य (रजसः) लोकसमूहस्य (पृष्टः) पृष्टुं योग्यः (ऊर्ध्वः) उत्कृष्टः (रथः) रमणीयं यानम् (न) इव (वायुः) पवन इव बलवान् (वसुभिः) सर्वैर्लोकैः सह (नियुत्वान्) नियमकर्त्ता नियुत्वानितीश्वरना० निघं० २ । २१ (क्षपाम्) रात्रिम् (वस्ता) आच्छादयिता (जनिता) उत्पादकः (सूर्यस्य) सवितृमण्डलस्य (विभक्ता) विभागकर्त्ता (भागम्) अंशम् (धिषणेव) द्यावापृथिव्याविव (वाजम्) अन्नादिकम् ॥ ४ ॥

अन्वयः—हे विद्वांसो यो दिवः सूर्यस्य रजसश्च जनिता धर्त्ता पृष्ट ऊर्ध्वो रथो न वसुभिर्वायुरिव क्षपां वस्ता धिषणेव वाजं भागं विभक्ता नियुत्वानस्ति तं परमात्मानमिव राजानं मन्यध्वम् ॥ ४ ॥

भावार्थः—हे मनुष्या यो राजा परमेश्वरवत्प्रजासु वर्त्तते तमेव सततं सेवध्वम् ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् जनो जो (दिवः) प्रकाशस्वरूप (सूर्यस्य) सूर्य (रजसः) लोकों के समूह का (जनिता) उत्पन्न करने (धर्त्ता) धारण करने वाला (पृष्टः) पूंछने योग्य (ऊर्ध्वः) उत्तम (रथः) सुन्दर वाहन के (न) तुल्य (वसुभिः) सम्पूर्ण लोकों से (वायुः) पवन के सदृश बलवान् (क्षपाम्) रात्रि को (वस्ता) आच्छादन करने वाला और (धिषणेव) अन्तरिक्ष और भूमि के सदृश (वाजम्) घोड़े आदि (भागम्) अंश का (विभक्ता) विभाग करने और (नियुत्वान्) नियम करने वाला है उस को परमात्मा के सदृश राजा मानो ॥ ४ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो जो राजा परमेश्वर के सदृश प्रजाओं में वर्त्तमान है उसी की निरन्तर सेवा करो ॥ ४ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ । शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ॥ ५ ॥ १३ ॥

शुनम् । हुवेम । मघऽवानम् । इन्द्रम् । अस्मिन् । भरे । नृऽतमम् । वाजऽसातौ । शृण्वन्तम् । उग्रम् । ऊतये । समत्ऽसु । घ्नन्तम् । वृत्राणि । सम्ऽजितम् । धनानाम् ॥ ५ ॥ १३ ॥

पदार्थः—(शुनम्) सुखम् (हुवेम) स्वीकुर्याम (मघवानम्) बह्वैश्वर्यम् (इन्द्रम्) परमेश्वरवद्वर्त्तमानं राजानम् (अस्मिन्) (भरे) पालनीये जगति (नृतमम्) अतिशयेन न्यायकारिणम् (वाजसातौ) स्वस्य स्वस्यांशस्य दानमये व्यवहारे (शृण्वन्तम्) यथावच्छ्रोतारम् (उग्रम्) दुष्टानां दुःखप्रदम् (ऊतये) रक्षणाद्याय (समत्सु) सङ्ग्रामेषु (घ्नन्तम्) हन्तारम् (वृत्राणि) धनानि (सञ्जितम्) जयशीलम् (धनानाम्) ऐश्वर्य्याणाम् ॥ ५ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या वयं यमिन्द्रमिव वर्त्तमानं राजानं धनानामूतयेऽस्मिन् भरे वाजसातौ नृतमं मघवानं समत्सु शत्रून् घ्नन्तं वृत्राणि शृण्वन्तमुग्रं सञ्जितं राजानं समागत्य शुनं हुवेम तं यूयमपि स्वीकुरुत ॥ ५ ॥

भावार्थः—राजभिः प्रजासु पितृवदीश्वरवद्वर्त्तित्वा सर्वस्याः प्रजायाः पालनं कर्त्तव्यमित्युपदिशन्तु ॥ ५ ॥

अत्र प्रजाराजधर्मवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिर्वेद्या ॥

इत्येकोनपञ्चाशत्तमं सूक्तं त्रयोदशो वर्गश्च समाप्तः ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो हम लोग जिस (इन्द्रम्) परमेश्वर के सदृश वर्त्तमान राजा को (धनानाम्) ऐश्वर्य्यों के (ऊतये) रक्षण आदि के लिये (अस्मिन्) इस (भरे) पालन करने योग्य संसार और (वाजसातौ) अपने अपने अंश के दानस्वरूप व्यवहार में (नृतमम्) अत्यन्त न्यायकारी (मघवानम्) बहुत ऐश्वर्य्यवाले (समत्सु) संग्रामों में शत्रुओं के (घ्नन्तम्) नाशकर्त्ता (वृत्राणि) धनों को (शृण्वन्तम्) यथावत् सुनते हुए (उग्रम्) दुष्टों के दुःख देने और (सञ्जितम्) जीतने वाले राजा को प्राप्त हो कर (शुनम्) सुख का (हुवेम) स्वीकार करें उस का आप लोग भी स्वीकार करो ॥ ५ ॥

भावार्थः—राजाओं को चाहिये कि प्रजाओं में पिता के और ईश्वर के तुल्य वर्त्तमान हो कर संपूर्ण प्रजाओं का पालन करें ऐसा उपदेश दीजिये ॥५॥

इस सूक्त में प्रजा और राजा के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछिले सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह उनचाशवां सूक्त और तेरहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चर्चस्य पञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य विश्वामित्र ऋषिः। इन्द्रो देवता। १। २। ४ निचृत् त्रिष्टुप्। ३। ५ त्रिष्टुप् छन्दः। धैवत स्वरः॥

अथ राजविषयमाह॥

अब पांच ऋचा वाले पचासवें सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में राजा के विषय को कहते हैं॥

इन्द्रः स्वाहा पिबतु यस्य सोम आगत्या तुम्रो वृषभो मरुत्वान्। ओरुव्यचाः पृणतामेभिरन्नैरास्य हविस्तन्वः काममृध्याः॥ १॥

इन्द्रः। स्वाहा। पिबतु। यस्य। सोमः। आऽगत्य। तुम्रः। वृषभः। मरुत्वान्। आ। उरुऽव्यचाः। पृणताम्। एभिः। अन्नैः। आ। अस्य। हविः। तन्वः। कामम्। ऋध्याः॥ १॥

पदार्थः—(इन्द्रः) ऐश्वर्य्यकर्त्ता (स्वाहा) सत्यया क्रियया (पिबतु) (यस्य) (सोमः) ऐश्वर्य्यसमूहः (आगत्य) अत्र संहितायामिति दीर्घः (तुम्रः) आहन्ता (वृषभः) बलिष्ठः (मरुत्वान्) प्रशस्तपुरुषयुक्तः (आ) (उरुव्यचाः) बहुशुभगुणव्याप्तः (पृणताम्) सुखयतु (एभिः) वर्त्तमानैः (अन्नैः) यवादिभिः (आ) (अस्य) (हविः) आदातव्यम् (तन्वः) शरीरस्य (कामम्) (ऋध्याः) साध्नुयाः॥ १॥

अन्वयः—हे विद्वन् यस्तुम्रो वृषभो मरुत्वानुरुव्यचा इन्द्रः स्वाहा यस्य सोमस्तस्यास्यैभिरन्नैरागत्य हविः पिबतु तन्वः काममापृणातां तं त्वमार्ध्याः॥ १॥

भावार्थः—हे मनुष्या यः सत्यन्यायेन स्वांऽशं भुक्त्वा प्रजायाः सुखवर्द्धनायाऽन्यायं दुष्टांश्च हन्ति स समृद्धो भवति ॥ १ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् जो (सोमः) ऐश्वर्य्यों का समूह (तुम्रः) विघ्नकारियों का हिंसक (वृषभः) बलिष्ठ (मरुत्वान्) उत्तम पुरुषों से युक्त (उरुव्यचाः) बहुत श्रेष्ठ गुणों से व्याप्त (इन्द्रः) ऐश्वर्य्यों का कर्त्ता (स्वाहा) सत्य क्रिया से (यस्य) जिस का (सोमः) ऐश्वर्य्यों का समूह उस (अस्य) इस के (एभिः) इन वर्त्तमान (अन्नैः) यव आदि अन्नों से (आगत्य)प्राप्त होकर (हविः) ग्रहण करने योग्य वस्तु का (पिबतु) पान कीजिये और (तन्वः) शरीर के (कामम्) मनोरथ को (आ) (पृणानाम्) सब प्रकार पूर्ण करके सुख दीजिये और उस को आप (आ, ऋध्याः) सिद्ध कीजिये ॥१॥

भावार्थः—हे मनुष्यो जो सत्य न्याय से अपने अंश का भोग करके प्रजा के सुख बढ़ाने के लिये अन्याय और दुष्ट पुरुषों का नाश करता है वह पुरुष समृद्धियुक्त होता है ॥ १ ॥

अथ प्रीतिविषयमाह ॥

अब प्रीति के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

आ ते सपर्य्यू जवसे युनज्मि ययोरनु प्रदिवः श्रुष्टिमावः । इह त्वा धेयुर्हरयः सुशिप्र पिबा त्वस्य सुषुतस्य चारोः ॥ २ ॥

आ । ते । सपर्य्यू इति । जवसे । युनज्मि । ययोः । अनु । प्रऽदिवः । श्रुष्टिम् । आवः । इह । त्वा । धेयुः । हरयः । सुऽशिप्र । पिब । तु । अस्य । सुऽसुतस्य । चारोः ॥ २ ॥

पदार्थः—(आ) समन्तात् (ते) तव (सपर्य्यू) सेवकौ (जवसे) वेगाय (युनज्मि) (ययोः) (अनु) (प्रदिवः)

प्रकृष्टप्रकाशान् (श्रुष्टिम्) शीघ्रम् (आवः) रक्षेः (इह) (त्वा) त्वाम् (धेयुः) दध्युः । अत्र छन्दस्युभयथेति सार्वधातुकमाश्रित्य सलोपः (हरयः) पुरुषार्थिनो मनुष्याः (सुशिप्र) सुवदन (पिब)। अत्र द्व्यचोतस्तिङ इति दीर्घः (तु) (अस्य) (सुषुतस्य) सुष्ठु संस्कृतस्य (चारोः) अत्युत्तमस्य ॥ २ ॥

अन्वयः—हे सुशिप्र त्वं ययोरनु प्रदिवः श्रुष्टिमावस्ताविह सपर्य्यू ते जवस आ युनज्मि । ये हरयस्त्वा धेयुस्तैः सह त्वस्य सुषुतस्य चारोः सोमस्यांशं पिब ॥ २ ॥

भावार्थः—अस्मिन् संसारे ये येषां सेवकास्तैस्ते पोषणीयाः सर्वैः परस्परं प्रीत्या सुखोन्नतिः कार्य्या ॥ २ ॥

पदार्थः—हे (सुशिप्र) सुन्दर मुख वाले आप (ययोः) जिन के (अनु, प्रदिवः) उत्तम प्रकाशों को (श्रुष्टिम्) शीघ्र (आवः) रक्षा करें वे (इह) इस संसार में (सपर्य्यू) सेवा करने वाले (ते) आप के (जवसे) वेग के लिये (आ, युनज्मि) संयुक्त करता हूं । और जो (हरयः) पुरुषार्थी मनुष्य (त्वा) आप को (धेयुः) धारण करें उन के साथ (तु) शीघ्र (अस्य) इस (सुषुतस्य) उत्तम प्रकार संस्कारयुक्त (चारोः) अतिश्रेष्ठ इस सोमलतारूप ओषधियों के अंश का (पिब) पान कीजिये ॥ २ ॥

भावार्थः—इस संसार में जो लोग जिन के सेवक उन स्वामियों को चाहिये कि उन सेवकों का पोषण करें और सब लोग परस्पर प्रीति से सुख की उन्नति करें ॥ २ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

गोभिर्मिमिक्षुं दधिरे सुपारमिन्द्रं ज्यैष्ठ्याय धायसे गृणानाः । मन्दानः सोमं पपिवाँ ऋजीषिन्त्समस्मभ्यं पुरुधा गा इषण्य ॥ ३ ॥

गोभिः । मिमिक्षुम् । दधिरे । सुऽपारम् । इन्द्रम् । ज्यैष्ठ्याय । धायसे । गृणानाः । मन्दानः । सोमम् । पपिऽवान् । ऋजीषिन् । सम् । अस्मभ्यम् । पुरुधा । गाः । इषण्य ॥ ३ ॥

पदार्थः—(गोभिः) किरणैः (मिमिक्षुम्) सेक्तुमिच्छुम् (दधिरे) धरन्तु (सुपारम्) सुखेन पारं गन्तुं योग्यम् (इन्द्रम्) विद्यैश्वर्य्यवन्तम् (ज्यैष्ठ्याय) वृद्धस्य भावाय (धायसे) धातुम् (गृणानाः) स्तुवन्तः (मन्दानः) आनन्दन् (सोमम्) (पपिवान्) पीतवान् (ऋजीषिन्) सरलस्वभावः (सम्) (अस्मभ्यम्) (पुरुधा) बहुभिः प्रकारैः (गाः) पृथिव्यादयाः (इषण्य) प्रेरय ॥ ३ ॥

अन्वयः—हे ऋजीषिन् ये गृणाना गोभिर्धायसे ज्यैष्ठ्याय मिमिक्षुं सुपारमिन्द्रं त्वा दधिरे यश्च सोमं पपिवान्मन्दानः सन्नस्मभ्य मिषण्य प्रेरय सोमं पुरुधा गाश्च संदधाति ताँस्त्वं ते त्वां च सत्कुर्वन्तु ॥ ३ ॥

भावार्थः—यथा सूर्य्यः किरणैर्वृष्टिं कृत्वा सर्वान् पुष्णाति तथैव विद्वांसोऽध्यापनोपदेशाभ्यां विद्यासत्ये वर्षित्वा सर्वान् मनुष्यान् पुष्णन्तु ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे (ऋजीषिन्) नम्रस्वभाव और (गृणानाः) स्तुति करते हुए (गोभिः) किरणों से (धायसे) धारण करने को (ज्यैष्ठ्याय) वृद्ध होने के लिये (मिमिक्षुम्) सेचन करने की इच्छा करने वाले को (सुपारम्) सुख से पार जाने के योग्य (इन्द्रम्) विद्या और ऐश्वर्य्यवान् आप को (दधिरे) धारण करो और जिस ने (सोमम्) सोमलता के रस को (पपिवान्) पीया (मन्दानः) आनन्द करते हुए (अस्मभ्यम्) हम लोगों के लिये (इषण्य) प्रेरणा करिये सोम (सोमम्) ओषधि के रस को और (पुरुधा) अनेक प्रकारों से (गाः) पृथिवी आदि को धारण करता है उन का आप और वे आप का सत्कार करें ॥ ३ ॥

भावार्थः—जैसे सूर्य अपने किरणों से वृष्टि करके सब की पुष्टि करता है वैसे ही विद्वान् लोग पढ़ाने और उपदेश से विद्या और सत्य की वृष्टि करके सब मनुष्यों की पुष्टि करें ॥ ३ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इमं कामं मन्दया गोभिरश्वैश्चन्द्रवता राधसा पप्रथश्च । स्वर्यवो मतिभिस्तुभ्यं विप्रा इन्द्राय वाहः कुशिकासो अक्रन् ॥ ४ ॥

इमम् । कामम् । मन्दय । गोभिः । अश्वैः । चन्द्रऽवता । राधसा । पप्रथः । च । स्वःऽयवः । मतिऽभिः । तुभ्यम् । विप्राः । इन्द्राय । वाहः । कुशिकासः । अक्रन् । ॥ ४ ॥

पदार्थः—(इमम्) प्रत्यक्षम् (कामम्) (मन्दय) प्रापय । अत्र संहितायामिति दीर्घः (गोभिः) धेन्वादिभिः (अश्वैः) तुरङ्गादिभिः (चन्द्रवता) पुष्कलं चन्द्रं सुवर्णं विद्यते यस्मिँस्तेन। चन्द्र इति हिरण्यना० निघं० १ । २ (राधसा) धनेन (पप्रथः) प्रख्यातो भव (च) अन्यान् प्रख्यापय (स्वर्य्यवः) ये सुखं यावयन्ति मिश्रयन्ति ते (मतिभिः) मनुष्यैः (तुभ्यम्) (विप्राः) पूर्णविद्या मेधाविनः (इन्द्राय) परमैश्वर्याय (वाहः) प्रापकाः (कुशिकासः) सर्वशास्त्रसिद्धान्तवेत्तारः (अक्रन्) कुर्युः ॥ ४ ॥

अन्वयः—हे राजन् ये स्वर्य्यवः कुशिकासो वाहो विप्रा मतिभिरिन्द्राय तुभ्यमिमं काममक्रँस्तेषामिमं कामं गोभिरश्वैश्चन्द्रवता राधसा त्वं पप्रथश्चैतान् मन्दय ॥ ४ ॥

भावार्थः—यदि सत्पुरुषैः सहाऽऽनुकूल्येन वर्त्तित्वा परस्पराऽनुभूत्या पशुधनादिभिरिच्छामलंकुर्य्युस्ते सदा सुखिनः स्युः ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे राजन् जो (स्वर्वन्तः) सुख को प्राप्त कराने (कुशिकासः) संपूर्ण शास्त्रों के सिद्धान्त जानने और (वाहः) प्राप्त कराने वाले (विप्राः) पूर्ण विद्या से युक्त बुद्धिमान् लोग (मतिभिः) मनुष्यों से (इन्द्राय) अत्यन्त धन से युक्त (तुभ्यम्) आप के लिये (इमम्) इस प्रत्यक्ष (कामम्) मनोरथ को (अक्रन्) करें उन लोगों के इस मनोरथ को (गोभिः) गौ आदि और (अश्वैः) घोड़े आदि और (चन्द्रवता) बहुत सुवर्ण विद्यमान है जिस में उस (राधसा) धन से आप (पप्रथः) प्रसिद्ध होइये(च)और इन को(मन्दय) पहुंचाइये॥४॥

भावार्थः—जो श्रेष्ठ पुरुषों के साथ अनुकूलता से वर्त्तमान हो कर परस्पर ऐश्वर्य्य से और पशु आदि धन आदिकों से इच्छा को पूर्ण करें वे सदा सुखी होवें॥४॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ । शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ॥ ५ ॥ १४ ॥

शुनम् । हुवेम । मघऽवानम् । इन्द्रम् । अस्मिन् । भरे । नृऽतमम् । वाजऽसातौ । शृण्वन्तम् । उग्रम् । ऊतये । समत्ऽसु । घ्नन्तम् । वृत्राणि । सम्ऽजितम् । धनानाम् ॥ ५ ॥ १४ ॥

पदार्थः—(शुनम्) परस्परमेलजन्यं सुखम् (हुवेम) (मघवानम्) पूजितधनवन्तम् (इन्द्रम्) विरोधविदारकम् (अस्मिन्) (भरे) प्रेम्णा पालनीये व्यवहारे (नृतमम्) अतिशयेन प्रीतेर्नेतारं प्रापकम्

(वाजसातौ) विज्ञानसेवने (शृण्वन्तम्) (उग्रम्) द्वेषविनाशकम् (ऊतये) ऐक्यभावप्रवेशाय (समत्सु) विरोधव्यवहारेषु (घ्नन्तम्) विनाशयन्तम् (वृत्राणि) प्रेमास्पदवस्तूनि (सञ्जितम्) सम्यग् जयशीलम् (धनानाम्) द्रव्याणाम् ॥ ५ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या वयमस्मिन् वाजसातौ भरे ऊतये मघवानं नृतमं वृत्राणि शृण्वन्तं समत्सु वर्त्तमानानि निमित्तानि घ्नन्तमुग्रं धनानां सञ्जितमिन्द्रं शुनमिव हुवेम तं यूयमपि सेवध्वम् ॥ ५ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—त एव धन्या मनुष्या ये विरोधं परिहाय सहाऽनुभूतिं जनयन्तीति ॥ ५ ॥

अत्र परस्परेषां प्रीतिवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिर्वेद्या ॥

इति पञ्चाशत्तमं सूक्तं चतुर्दशो वर्गश्च समाप्तः ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो हम लोग (अस्मिन्) इस (वाजसातौ) विज्ञान के सेवन करने और (भरे) प्रेम से पालन करने योग्य व्यवहार में (ऊतये) ऐक्यभाव में प्रवेश होने के लिये (मघवानम्) श्रेष्ठ धन वाले और (नृतमम्) अत्यन्त प्रीति के प्राप्त कराने वाले और (वृत्राणि) प्रेम के स्थानभूत वस्तुओं को (शृण्वन्तम्) सुनने वाले (समत्सु) विरोध के व्यवहारों में वर्त्तमान कारणों को (घ्नन्तम्) नाश करते हुए (उग्रम्) द्वेष के विनाशकर्त्ता (धनानाम्) द्रव्यों को (सञ्जितम्) उत्तम प्रकार जीतने और (इन्द्रम्) विरोध के नाश करने वाले को (शुनम्) परस्पर मेल से उत्पन्न सुख को जैसे वैसे (हुवेम) ग्रहण करें उस का आप लोग भी सेवन करें ॥ ५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—वे ही धन्य मनुष्य कि जो विरोध का त्याग करके एक साथ ऐश्वर्य उत्पन्न करते हैं ॥ ५ ॥

इस सूक्त में परस्पर की प्रीति वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह पचासवां सूक्त और चौदहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

अथ द्वादशर्चस्यैकाधिकपञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य । विश्वामित्र ऋषिः। इन्द्रो देवता। ४। ७। ८। ९ त्रिष्टुप्। ५। ६ निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः। १। २। ३ निचृज्जगती छन्दः। निषादः स्वरः। १०। ११ यवमध्या गायत्री। १२ विराट् गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

अथ राजविषयमाह॥

अब बारह ऋचा वाले एकानवें सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में राजा के विषय को कहते हैं॥

चर्षणीधृतं मघवानमुक्थ्य१मिन्द्रं गिरो बृहतीरभ्यनूषत। वावृधानं पुरुहूतं सुवृक्तिभिरमर्त्यं जरमाणं दिवेदिवे॥ १॥

चर्षणिऽधृतम्। मघऽवानम्। उक्थ्यम्। इन्द्रम्। गिरः। बृहतीः। अभि। अनूषत। वावृधानम्। पुरुऽहूतम्। सुवृक्तिऽभिः। अमर्त्यम्। जरमाणम्। दिवेऽदिवे॥ १॥

पदार्थः—(चर्षणीधृतम्) मनुष्याणां धर्त्तारम् (मघवानम्) बहुधनयुक्तम् (उक्थ्यम्) प्रशंसनीयम् (इन्द्रम्) राजानम् (गिरः) विदुषां वाचः (बृहतीः) बृहद्विषयाः (अभि, अनूषत) प्रशंसेयुः (वावृधानम्) वर्द्धमानम् (पुरुहूतम्) बहुभिः सत्कृतम् (सुवृक्तिभिः) सुष्ठु संविभागैः (अमर्त्यम्) मरणधर्मरहितम् (जरमाणम्) स्तुवन्तम् (दिवेदिवे) प्रतिदिनम्॥ १॥

अन्वयः—हे मनुष्या बृहतीर्गिरो दिवेदिवे सुवृक्तिभिर्यं चर्षणीधृतं मघवानमुक्थ्यं वावृधानं पुरुहूतममर्त्यं जरमाणमिन्द्रमभ्यनूषत तं यूयमाश्रयत ॥ १ ॥

भावार्थः—ये राजपुरुषा बहुभिः सत्कृतं प्रजाधारणक्षमं राजानं विद्वांसः प्रशंसेयुस्तस्यैव यूयं शरणं गच्छत ॥ १ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (बृहतीः) बड़े विषय अर्थात् तात्पर्य वाली (गिरः) विद्वानों की वाणियों को (दिवेदिवे) प्रतिदिन (सुवृक्तिभिः) उत्तम संविभागों से जिस (चर्षणीधृतम्) मनुष्यों के धारण करने वाले (मघवानम्) बढ़े हुए धन से युक्त (उक्थ्यम्) प्रशंसा करने योग्य (वावृधानम्) बढ़े हुए (पुरुहूतम्) बहुतों से सत्कार किये गये (अमर्त्यम्) मरणधर्म से रहित (जरमाणम्) स्तुति करते हुए (इन्द्रम्) राजा की (अभ्यनूषत) प्रशंसा करें उस का आप लोग भी आश्रयण करो ॥ १ ॥

भावार्थः—हे राजपुरुषो बहुत जनों से सत्कृत प्रजाओं के धारण करने में समर्थ जिस राजा की विद्वान् लोग प्रशंसा करें उसी के आप लोग शरण जाओ ॥ १ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

श॒तक्र॑तुमर्ण॒वं शा॒किनं॒ नरं॒ गिरो॑ म॒ इन्द्र॒मुप॑ यन्ति वि॒श्वतः॑। वा॒ज॒सनिं॑ पू॒र्भिदं॒ तूर्णि॑म॒प्तुरं॑ धाम॒साचं॑मभि॒षाचं॑ स्व॒र्विदं॑म् ॥ २ ॥

श॒त॒ऽक्र॑तुम्। अ॒र्ण॒वम्। शा॒किन॑म्। नर॑म्। गिरः॑। मे॒। इन्द्र॑म्। उप॑। य॒न्ति॒। वि॒श्वतः॑। वा॒ज॒ऽस॒नि॑म्। पूः॒ऽभि॒दम्। तूर्णि॑म्। अ॒प्ऽतुर॑म्। धा॒म॒ऽसाच॑म्। अ॒भि॒ऽसाच॑म्। स्वः॒ऽवि॒द॑म् ॥ २ ॥

पदार्थः—(शतक्रतुम्) अमितप्रज्ञम् (अर्णवम्) समुद्रमिव गम्भीरम् (शाकिनम्) शक्तिमन्तम् (नरम्) नायकम् (गिरः) वाण्याः (मे) मम (इन्द्रम्) परमैश्वर्य्यप्रदम् (उप) (यन्ति) प्राप्नुवन्ति (विश्वतः) सर्वतः (वाजसनिम्) अन्नविज्ञानविभाजकम् (पूर्भिदम्) शत्रूणां नगराभिदारकम् (तूर्णिम्) शीघ्रकारिणम् (असुरम्) प्राणप्रेरकम् (धामसाचम्) समवयन्तम् (अभिषाचम्) आभिमुख्ये सचन्तम् (स्वर्विदम्) सुखप्राप्तम् ॥२॥

अन्वयः—हे मनुष्या मे गिरोऽर्णवमिव शतक्रतुं शाकिनं नरं वाजसनिं पुर्भिदं तूर्णिमसुरं धामसाचमभिषाचं स्वर्विदमिन्द्रं विश्वत उ यन्ति तस्यैव शरणमुपगच्छत ॥ २ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यदि मनुष्या अखिलविद्यासु निपुणं शक्तिमन्तं सत्यसन्धिं दुष्टताडकं राजनमुपगच्छेयुस्तर्हि तेषां कुतश्चिदपि भयं न जायते ॥ २ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (मे) मेरी (गिरः) वाणियों को (अर्णवम्) समुद्र के सदृश गम्भीर (शतक्रतुम्) नाप रहित बुद्धि और (शाकिनम्) शक्तियुक्त (नरम्) नायक (वाजसनिम्) अन्न और विज्ञान के विभागकर्त्ता (पूर्भिदम्) शत्रुओं के नगर के भेदन करने और (तूर्णिम्) शीघ्रता करने वाले (असुरम्) प्राणों के प्रेरणकर्त्ता (धामसाचम्) रक्षा करते हुए (अभिषाचम्) सन्मुख भाव और (स्वर्विदम्) सुख को प्राप्त (इन्द्रम्) अत्यन्त ऐश्वर्य्य के देने वाले को (विश्वतः) सब प्रकार (उप, यन्ति) प्राप्त होते हैं उस ही के शरण जाओ ॥ २ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो मनुष्य लोग संपूर्ण विद्याओं में कुशल सामर्थ्ययुक्त सत्यधारणकर्त्ता दुष्ट पुरुषों के ताड़न करने वाले राजा के समीप जावें तो उन का किसी से भी भय नहीं होता है ॥ २ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

आकरे वसोर्जरिता पनस्यतेऽनेहसः स्तुभ इन्द्रो दुवस्यति । विवस्वतः सदन आ हि पिप्रिये सत्रासाहमभिमातिहनं स्तुहि ॥ ३ ॥

आऽकरे । वसोः । जरिता । पनस्यते । अनेहसः । स्तुभः । इन्द्रः । दुवस्यति । विवस्वतः । सदने । आ । हि । पिप्रिये । सत्राऽसहम् । अभिमातिऽहनम् । स्तुहि ॥ ३ ॥

पदार्थः—(आकरे) समूहे (वसोः) धनस्य (जरिता) स्तोता (पनस्यते) व्यवहरति (अनेहसः) अहन्तव्यस्य (स्तुभः) यः स्तोभते सः (इन्द्रः) विद्युदिव सर्वाधीशो राजा (दुवस्यति) परिचरति (विवस्वतः) सूर्यस्य (सदने) स्थाने (आ) समन्तात् (हि) खलु (पिप्रिये) प्रीणाति (सत्रासाहम्) सत्यसहम् (अभिमातिहनम्) योऽभिमानयुक्तं शत्रुं हन्ति तम् (स्तुहि) ॥ ३ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यः स्तुभो जरिता अनेहसो वसोराकरे विवस्वतः सदन इन्द्र इव पनस्यते विदुषो धर्मं च दुवस्यति सत्रासाहमभिमातिहनमा पिप्रिये तं हि स्तुहि ॥ ३ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यथेश्वरेण विद्युत उत्पादितः सूर्य एकत्र वर्त्तमानः सन् सर्वत्र सन्निहितं सर्वं प्रकाशते तथैवैकस्मिन् देशे स्थितो राजा अमात्यदूतचारसेनादिप्रबन्धेन सर्वं राज्यं विद्याविनयाभ्यामुज्ज्वलयैश्वर्यसमूहेन धर्मोन्नतये व्यवहरेत् ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (स्तुभः) फलों को प्राप्त होने (जरिता) स्तुति करने वाला (अनेहसः) नहीं नाश करने योग्य (वसोः) धन के (आकरे) समूह में (विवस्वतः) सूर्य के (सदने) स्थान में (इन्द्रः) बिजुली के सदृश सब का स्वामी राजा (पनस्यते) व्यवहार करता है और विद्वान् के धर्म का (दुवस्यनि) सेवन करता और (सत्रासाहम्) सत्य के सहने वाले (अभिमातिहनम्) अभिमानयुक्त शत्रु के नाश करने वाले को (आ, प्रीणाति) प्रसन्न करता है उस की (हि) निश्चय (स्तुहि) स्तुति करो ॥ ३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे ईश्वर से बिजुली द्वारा उत्पन्न किया गया सूर्य एकत्र वर्त्तमान हुआ सर्वत्र विद्यमान सब वस्तुओं को प्रकाशित करता है वैसे ही एक स्थान में वर्त्तमान राजा मन्त्री दूत पियादे और सेनादि के प्रबन्ध से सम्पूर्ण राज्य को विद्या और विनय से प्रकाशित करके ऐश्वर्य के समूह से धर्म की उन्नति के लिये व्यवहार करे ॥ ३ ॥

अथ प्रजाप्रशंसाविषयमाह ॥

अब प्रजा के प्रशंसा के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

नृणामु त्वा नृतमं गीर्भिरुक्थैरभि प्र वीरमर्चता सबाधः । सं सहसे पुरुमायो जिहीते नमो अस्य प्रदिव एक ईशे ॥ ४ ॥

नृणाम् । ऊं इति । त्वा । नृऽतमम् । गीःऽभिः । उक्थैः । अभि । प्र । वीरम् । अर्चत । सऽबाधः । सम् । सहसे । पुरुऽमायः । जिहीते । नमः । अस्य । प्रऽदिवः । एकः । ईशे ॥ ४ ॥

पदार्थः–(नृणाम्) नायकानां मनुष्याणाम् (उ) (त्वा) त्वाम् (नृतमम्) अतिशयेन नायकम् (गीर्भिः) वाग्भिः (उक्थैः) प्रशंसावचनैः (अभि) (प्र) (वीरम्) व्याप्तराजाविद्याबलम्

(अर्चत) सत्कुरुत। अत्र संहितायामिति दीर्घः (सबाधः) बाधेन सह वर्त्तमानः (सम्) (सहसे) बलाय (पुरुमायः) यः पुरून् बहून् मिनोति (जिहीते) प्राप्नोति (नमः) अन्नं संस्कारं वा (अस्य) (प्रदिवः) प्रकृष्टप्रकाशस्य (एकः) असहायः (ईशे) ईष्टे। आत्मनेपदेष्वितिं तलोपः॥४॥

अन्वयः—हे विद्वांसो यूयं यः सबाधः पुरुमाय एकः सेनेशोऽस्य प्रदिव ईशे सहसे नमः संजिहीते तं वीरं प्रार्चत। हे राजन् ये गीर्भिरुक्थैर्नृणां नृतमं त्वा सत्कुर्युस्तानु त्वमभ्यर्च ॥ ४ ॥

भावार्थः—विद्वद्भिस्तस्यैव प्रशंसा कार्या यः प्रशंसाऽर्हाणि कर्माणि कुर्यात् ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् जनो आप लोग जो (सबाधः) बाध के सहित वर्त्तमान (पुरुमायः) बहुत कार्यों का कर्त्ता (एकः) सहाय रहित सेनाधिपति पुरुष (अस्य) इस (प्रदिवः) उत्तम प्रकाश का (ईशे) स्वामी है (सहसे) बल के लिये (नमः) अन्न वा सत्कार को (सम्, जिहीते) प्राप्त होता है उस (वीरम्) राजविद्या और बल से व्याप्त पुरुष का (प्र, अर्चत) सत्कार करिये। और हे राजन् जो (गीर्भिः) वाणियों और (उक्थैः) प्रशंसा के वचनों से (नृणाम्) अग्रणी मनुष्यों के (नृतमम्) अत्यन्त नायक (त्वा) आप का सत्कार करें उन का (उ) ही आप सत्कार करिये ॥ ४ ॥

भावार्थः—विद्वानों को चाहिये कि उस ही की प्रशंसा करें कि जो प्रशंसा योग्य कर्मों को करे ॥ ४ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

पूर्वीरस्य निष्षिधो मर्त्येषु पुरू वसूनि पृथिवी बिभर्त्ति। इन्द्राय द्याव ओषधीरुतापो रयिं रक्षन्ति जीरयो वनानि ॥ ५ ॥ १५ ॥

पूर्वीः। अस्य। निःऽसिधः। मर्त्येषु। पुरु। वसूनि। पृथिवी। बिभर्त्ति। इन्द्राय। द्यावः ओषधीः। उत। आपः। रयिम्। रक्षन्ति। जीरयः। वनानि॥ ५॥ १५॥

पदार्थः—(पूर्वीः) सनातनीः (अस्य) राज्ञः (निष्षिधः) नितरां साधिकाः (मर्त्येषु) मनुष्येषु (पुरू) पुरूणि बहूनि (वसूनि) द्रव्याणि (पृथिवी) (बिभर्त्ति) (इन्द्राय) ऐश्वर्याय (द्यावः) सूर्यादिप्रकाशाः (ओषधीः) सोमाद्याः (उत) अपि (आपः) प्राणा जलानि वा (रयिम्) श्रियम् (रक्षन्ति) (जीरयः) ये जीर्यन्ते ते मनुष्याः (वनानि) वनन्ति सम्भजन्ति सुखानि यैस्तानि॥ ५॥

अन्वयः—हे मनुष्या ये जीरयोऽस्य मर्त्येषु पूर्वीर्निष्षिधो रक्षन्ति पुरू वसूनि पृथिवीव यो बिभर्त्ति द्याव इन्द्राय रयिं वनानि च उताप्याप ओषधी रक्षन्तीव राज्यं बिभर्त्ति स एव राजा भवतुमर्हति॥ ५॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—ये मर्त्येषु धनानि विज्ञानं भैषज्यं धरन्ति त एव राजकर्मचारिणो भवितुमर्हन्ति॥ ५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (जीरयः) वृद्ध होने वाले मनुष्य (अस्य) इस राजा के (मर्त्येषु) मनुष्यों में (पूर्वीः) अनादि काल से सिद्ध (निष्षिधः) अत्यन्त सिद्ध करने वालियों की (रक्षन्ति) रक्षा करते हैं और (पुरू) बहुत (वसूनि) द्रव्यों को (पृथिवी) भूमि के सदृश जो पुरुष (बिभर्त्ति) धारण करता है (द्यावः) सूर्य्य आदि के प्रकाश (इन्द्राय) ऐश्वर्य्य के लिये (रयिम्) लक्ष्मी और (वनानि) सन्मुख हों सुख जिन से उन को (उत) भी (आपः) प्राण वा जल जैसे (ओषधीः) सोमलता और ओषधियों की रक्षा करते हैं वैसे राज्य का (बिभर्त्ति) पोषण करता है वही राजा होने के योग्य हो॥ ५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो मनुष्यों में धन विज्ञान और ओषधि धारण करते वे ही राजाओं के कर्मचारी होने के योग्य हैं ॥ ५ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

तुभ्यं ब्रह्माणि गिर इन्द्र तुभ्यं सत्रा दधिरे हरिवो जुषस्व । बोध्याऽपिरवसो नूतनस्य सखे वसो जरितृभ्यो वयो धाः ॥ ६ ॥

तुभ्यम् । ब्रह्माणि । गिरः । इन्द्र । तुभ्यम् । सत्रा । दधिरे । हरिऽवः । जुषस्व । बोधि । आपिः । अवसः । नूतनस्य । सखे । वसो इति । जरितृऽभ्यः । वयः । धाः ॥ ६ ॥

पदार्थः—(तुभ्यम्) (ब्रह्माणि) धनानि (गिरः) वाचः (इन्द्र) ऐश्वर्य्यधारक (तुभ्यम्) (सत्रा) सत्यम् (दधिरे) धरेयुः (हरिवः) प्रशस्ताऽश्वादियुक्त (जुषस्व) सेवस्व (बोधि) बुध्यस्व (आपिः) व्याप्तः सन् (अवसः) रक्षणादेः (नूतनस्य) नवीनस्य (सखे) मित्र (वसो) प्राप्तधन (जरितृभ्यः) स्तावकेभ्यो विद्वद्भ्यः (वयः) जीवनम् (धाः) धेहि ॥ ६ ॥

अन्वयः—हे इन्द्र या गिरस्तुभ्यं ब्रह्माणि । हे हरिवो या वाचस्तुभ्यं सत्रा दधिरे तास्त्वं जुषस्व । हे सखे नूतनस्याऽवस आपिस्सँस्ता बोधि । हे वसो त्वं जरितृभ्यो वयो धाः ॥ ६ ॥

भावार्थः—मनुष्यैस्तादृशी वाग् ग्राह्या ययाऽन्या यादृश्या धनं जायते सत्यं रक्ष्यते जीवनं वर्द्धयते ॥ ६ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) ऐश्वर्य्य के धारणकर्त्ता जो (गिरः) वाणियां (तुभ्यम्) आप के लिये (ब्रह्माणि) धनों को और हे (हरिवः) उत्तम घोड़े आदि से युक्त जो वाणियां (तुभ्यम्) आप के लिये (सत्रा) सत्य को (दधिरे) धारण करें उन का आप (जुषस्व) सेवन करो । हे (सखे) मित्र (नूतनस्य) नवीन (अवसः) रक्षणादि के (आपिः) व्याप्त हुए आप उन को (बोधि) जानिये हे (वसो) धन को प्राप्त आप (जरितृभ्यः) स्तुति-कर्त्ता विद्वानों के लिये (वयः) जीवन को (धाः) धारण कीजिये ॥ ६ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि ऐसी वाणी ग्रहण करें और सुनें कि जिस से धनसंग्रह होता है सत्य की रक्षा की जाती और जीवन बढ़ता है ॥ ६ ॥

अथ राजविषयमाह ॥
अब राजा के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इन्द्रं मरुत्व इह पाहि सोमं यथा शार्य्याते अपिंबः सुतस्यं । तव प्रणीती तवं शूर शर्मन्ना विंवासन्ति कवयंः सुयज्ञाः ॥ ७ ॥

इन्द्रं । मरुत्वः । इह । पाहि । सोमंम् । यथां । शार्याते । अपिंबः । सुतस्यं । तवं । प्रऽनीती । तवं । शूर । शर्मन् । आ । विवासन्ति । कवयंः । सुऽयज्ञाः ॥ ७ ॥

पदार्थः—(इन्द्र) ऐश्वर्य्यधारक (मरुत्वः) प्रशंसितधनयुक्त (इह) अस्मिन् संसारे (पाहि) रक्ष (सोमम्) ऐश्वर्य्यकारकम् (यथा) (शार्याते) यः शरीरे हिंसकान् याति प्राप्नोति तस्यास्मिन् व्यवहारे (अपिबः) पिब (सुतस्य) निष्पन्नस्य (तव) (प्रणीती) प्रकृष्टया नीत्या (तव) (शूर) दुष्टानां

हिंसक (शर्मन्) सुखकारके गृहे (आ) (विवासन्ति) परिचरन्ति (कवयः) विद्वांसः (सुयज्ञाः) शोभना यज्ञाः सङ्गताः क्रिया येषान्ते ॥७॥

अन्वयः—हे इन्द्र त्वमिह सोमं पाहि। हे मरुत्वो यथा शार्याते सुतस्य त्वमपिबः। हे शूर ये सुयज्ञाः कवयस्तव प्रणीती तव शर्मन्त्सोममाविवासन्ति तांस्त्वं पाहि ॥ ७ ॥

भावार्थः—हे राजन् यथा भवान् स्वं राष्ट्रमैश्वर्य्यं न्यायं धर्मं च रक्षति तथा येऽमात्यभृत्याः स्युस्तेषां सत्कारस्त्वया सदैव कर्त्तव्यः॥७॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) ऐश्वर्य्य के धारण करने वाले आप (इह) इस संसार में (सोमम्) ऐश्वर्य्य करने वाले की (पाहि) रक्षा कीजिये। और हे (मरुत्वः) उत्तम धनों से युक्त (यथा) जिस प्रकार (शार्य्याते) हिंसा करने वालों को प्राप्त होने वाले के इस व्यवहार में (सुतस्य) उत्पन्न को आप (अपिबः) पान कीजिये। हे (शूर) दुष्टों के नाशकर्त्ता जो (सुयज्ञाः) श्रेष्ठ संयुक्त क्रियायें जिन की वे (कवयः) विद्वान् लोग (तव) आप की (प्रणीती) उत्तम नीति से और (तव) आप के (शर्मन्) सुखकारक गृह में ऐश्वर्य्यकर्त्ता को (आ, विवासन्ति) प्राप्त होते हैं उन की आप रक्षा कीजिये ॥ ७ ॥

भावार्थः—हे राजन् जैसे आप अपने राज्य ऐश्वर्य्य न्याय और धर्म की रक्षा करते हैं उसी प्रकार के आप के मन्त्री और नौकर आदि होवें उन का सत्कार आप को सदा ही करना चाहिये ॥ ७ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

स वा॑वशा॒न इ॒ह पा॑हि॒ सोमं॑ म॒रुद्भि॑रिन्द्र॒ सखि॑भिः सु॒तं नः॑। जा॒तं यत्त्वा॒ परि॑ दे॒वा अभू॑षन्म॒हे भरा॑य पुरुहूत॒ विश्वे॑ ॥ ८ ॥

सः । वावशानः । इह । पाहि । सोमम् । मरुत्ऽभिः । इन्द्र । सखिऽभिः । सुतम् । नः । जातम् । यत् । त्वा । परि । देवाः । अभूषन् । महे । भराय । पुरुऽहूत । विश्वे ॥८॥

पदार्थः—(सः) (वावशानः) कामयमानः (इह) अस्मिन् राज्यव्यवहारे (पाहि) (सोमम्) ऐश्वर्यम् (मरुद्भिः) वायुभिः सूर्य इव (इन्द्र) सकलैश्वर्यसम्पन्न (सखिभिः) सुहृद्भिः (सुतम्) उत्पन्नम् (नः) अस्माकम् (जातम्) प्रकटम् (यत्) येन (त्वा) त्वाम् (परि) सर्वतः (देवाः) विद्वांसः (अभूषन्) अलङ्कुर्युः (महे) महते (भराय) भरणीयाय सङ्ग्रामाय (पुरुहूत) बहुभिः प्रशंसित (विश्वे) सर्वे ॥ ८ ॥

अन्वयः—हे इन्द्र इह स वावशानस्त्वं मरुद्भिः सूर्य इव सखिभिः सह नो जातं सुतं सोमं पाहि । हे पुरुहूत विश्वे देवा यद्येन महे भराय त्वा पर्यभूषंस्तेन त्वमस्मान्त्सर्वतोऽलङ्कुरु ॥ ८ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यथा सूर्यो वायुसहायेन सर्वं रक्षति तथैवाप्तैर्मित्रैः सह राजा सर्वं राष्ट्रं रक्षेद्येऽमात्यभृत्या राज्यहितकारिणः स्युस्तान् सर्वदा सत्कुर्यात् ॥ ८ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) सम्पूर्ण ऐश्वर्यों से युक्त (इह) इस राज्य के व्यवहार में (सः) वह (वावशानः) कामना करते हुए आप (मरुद्भिः) पवनों से सूर्य के सदृश (सखिभिः) मित्रों के साथ (नः) हम लोगों के (जातम्) प्रकट और (सुतम्) उत्पन्न (सोमम्) ऐश्वर्य की (पाहि) रक्षा कीजिये और । हे (पुरुहूत) बहुतों से प्रशंसित (विश्वे) सम्पूर्ण (देवाः) विद्वान् लोग (यत्) जिस से (महे) बड़े (भराय) पोषण करने योग्य संग्राम के लिये (त्वा) आप को (परि) सब प्रकार (अभूषन्) शोभित करें तिस से आप हम लोगों को सब प्रकार शोभित करें ॥ ८ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे सूर्य्य वायुरूप सहाय से सब की रक्षा करता है वैसे ही यथार्थवक्ता मित्रों के साथ राजा संपूर्ण राज्य की रक्षा करे और जो मन्त्री और नौकर राज्य के हितकारी होवें उन का सब काल में सत्कार करे ॥ ८ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥
फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अप्तूर्य्ये मरुत आपिरेषोऽमन्दन्निन्द्रमनु दातिवाराः। तेभिः साकं पिबतु वृत्रखादः सुतं सोमं दाशुषः स्वे सधस्थे ॥ ९ ॥

अप्ऽतूर्य्ये। मरुतः। आपिः। एषः। अमन्दन्। इन्द्रम्। अनु। दातिऽवाराः। तेभिः। साकम्। पिबतु। वृत्रऽखादः। सुतम्। सोमम्। दाशुषः। स्वे। सधऽस्थे ॥ ९ ॥

पदार्थः—(अप्तूर्य्ये) अपोभिः कर्मभिः प्रेरयितव्ये (मरुतः) मनुष्याः (आपिः) यः समन्तात् पिबति शुभगुणव्याप्तो वा (एषः) (अमन्दन्) आनन्दयेयुः (इन्द्रम्) राजानम् (अनु) (दातिवाराः) ये दातिं लवनं छेदनं वृणवन्ति (तेभिः) (साकम्) सह (पिबतु) (वृत्रखादः) यो वृत्रं खादति स्थिरीकरोति सः (सुतम्) सिद्धम् (सोमम्) ऐश्वर्यम् (दाशुषः) दातुः (स्वे) स्वकीये (सधस्थे) समानस्थाने ॥ ९ ॥

अन्वयः—ये दातिवारा मरुतोऽप्तूर्य्ये इन्द्रममन्दँस्तेभिस्साकमेष आपिर्वृत्रखादो दाशुषस्स्वे सधस्थे सुतं सोममनु पिबतु ताँस्तञ्च राजा सततं हर्षयेत् ॥ ९ ॥

भावार्थः—ये नराः सत्याचारं प्रतिप्रेरित्वा दुष्टाचारान् निषेध्य सर्वान् धार्मिकान् कृत्वाऽऽनन्देयुस्तैः सह राजाऽन्वानन्देत् ॥ ९ ॥

पदार्थः—जो (दातिवाराः) छेदन करने वाले (मरुतः) मनुष्य (अप्रूर्व्यं) कर्मों से प्रेरणा करने योग्य म (इन्द्रम्) राजा को (अमन्दन्) आनन्द देवें (तेभिः) उन के (साकम्) साथ (एषः) यह (आपिः) सब प्रकार पीने वाला वा शुभ गुणों से व्याप्त (वृत्रखादः) मेघ को स्थिर करने वाला (दाशुषः) दान करने वाले के (स्वे) अपने (सधस्थे) तुल्य स्थान में (सुतम्) सिद्ध (सोमम्) ऐश्वर्य्य को (अनु,पिबतु) पीछे पान करे उस को आप राजा निरन्तर प्रसन्न करें ॥ ९ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य सत्य आचरण की प्रेरणा और दुष्ट आचरणों का निषेध और सब को धार्मिक करके आनन्द देवें उन के साथ राजा आनन्द करे ॥९॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥
फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इदं ह्यन्वोजसा सुतं राधानां पते । पिबा त्व१स्य गिर्वणः ॥ १० ॥

इदम् । हि । अनु । ओजसा । सुतम् । राधानाम् । पते । पिब । तु । अस्य । गिर्वणः ॥ १० ॥

पदार्थः—(इदम्) (हि) खलु (अनु) (ओजसा) बलेन (सुतम्) साधितम् (राधानाम्) धनानाम् (पते) पालक (पिब) । अत्र द्व्यचोतस्तिङ इति दीर्घः (तु) (अस्य) (गिर्वणः) यो गीर्यते याच्यते तत्सम्बुद्धौ ॥ १० ॥

अन्वयः—हे गिर्वणो राधानां पते त्वमोजसाऽस्येदं सुतं तु पिब हि अनु पिपासयेदं पिब ॥ १० ॥

भावार्थः—हे राजँस्त्वं हि सदैव धनैश्वर्य्यं रक्षित्वा प्राप्तं राज्यमन्वेक्षणेन वर्द्धयित्वा सुखी भव ॥ १० ॥

पदार्थः—हे (गिर्वणः) प्रार्थित हुए (राधानाम्) धनों के (पते) पालन करने वाले आप (ओजसा) बल से (अस्य) इस के (इदम्) इस (सुतम्) सिद्ध किये गये सोमलतारूप रस का (पिब) पान कीजिये (हि) निश्चय से और पान करने की इच्छा से इस सोमलता का पान करो ॥ १० ॥

भावार्थः—हे राजन् आप निश्चय सब काल में धन और ऐश्वर्य्य की रक्षा करके और जो प्राप्त राज्य उस की देख भाल से वृद्धि करके सुखी होइये॥१०॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

यस्ते अनु स्वधामसत्सुते नि यच्छ तन्वम् ।
स त्वा ममत्तु सोम्यम् ॥ ११ ॥

यः । ते । अनु । स्वधाम् । असत् । सुते । नि । यच्छ । तन्वम् । सः । त्वा । ममत्तु । सोम्यम् ॥ ११ ॥

पदार्थः—(यः) विद्वान् (ते) तव (अनु) (स्वधाम्) अन्नम् (असत्) भवेत् (सुते) (नि) (यच्छ) निगृह्णीहि (तन्वम्) शरीरम् (सः) (त्वा) त्वाम् (ममत्तु) आनन्दतु (सोम्यम्) सोमे भवम् ॥ ११ ॥

अन्वयः—हे राजन् यस्ते सुते स्वधामन्वसत्स त्वा ममत्तु त्वं तन्वं नियच्छ सोम्यमाचर ॥ ११ ॥

भावार्थः—हे राजन् यो भवदनुकूलो भूत्वा धर्मात्मा सन् प्रजा आनन्दयेत् स श्रीमत ऐश्वर्यं प्राप्नुयात्त्वं जितेन्द्रियो भूत्वा प्रजाः साधि॥११॥

पदार्थः—हे राजन् (यः) जो (ते) आप के (सुते) उत्पन्न सोमलता के रस में (स्वधाम्) अन्न (अनु, असत्) पीछे होवे (सः) वह (त्वा) आप को (ममत्तु) आनन्द देवे और आप (तन्वम्) शरीर को (नियच्छ) ग्रहण कीजिये (सोम्यम्) सोमलता में उत्पन्न का पान आदि आचरण कीजिये ॥ ११ ॥

भावार्थः—हे राजन् जो आप के अनुकूल और धर्मात्मा हो कर प्रजाओं को आनन्दित करे वह लक्ष्मीवान् से ऐश्वर्य को प्राप्त होवे और आप इन्द्रिय-जित् हो कर प्रजाओं को सिद्ध कीजिये ॥ ११ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥
फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

प्र ते॑ अश्नोतु कु॒क्ष्योः॒ प्रेन्द्र॒ ब्रह्म॑णा॒ शिरः॑ ।
प्र बा॒हू शू॑र॒ राध॑से ॥ १२ ॥ १६ ॥

प्र । ते॒ । अ॒श्नो॒तु॒ । कु॒क्ष्योः॑ । प्र । इ॒न्द्र॒ । ब्रह्म॑णा । शिरः॑ ।
प्र । बा॒हू इति॑ । शू॒र॒ । राध॑से ॥ १२ ॥ १६ ॥

पदार्थः—(प्र) (ते) तव (अश्नोतु) प्राप्नोतु । अत्र व्यत्ययेन परस्मैपदम् (कुक्ष्योः) उदरपार्श्वयोः (प्र) (इन्द्र) राजवर (ब्रह्मणा) धनेन (शिरः) उत्तमाङ्गम् (प्र) (बाहू) भुजौ (शूर) (राधसे) धनाय ॥ १२ ॥

अन्वयः—हे इन्द्र यस्ते कुक्ष्योर्ब्रह्मणा सह रसः प्राश्नोतु । हे शूर तव शिरो बाहू राधसे प्राश्नोतु तं त्वं पालय ॥ १२ ॥

भावार्थः—हे राजँस्तदेव त्वयाऽऽशितव्यं पातव्यं च यदुदरं प्राप्य विकृतं सद्रोगानुत्पाद्य बुद्धिं न हिंस्याद्येन सततं त्वयि प्रज्ञा वर्द्धित्वा राज्यमैश्वर्यं च वर्धेतेति ॥ १२ ॥

अत्र राजप्रजाधर्मवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिर्वेद्या ॥

इत्येकाऽधिकपञ्चाशत्तमं सूक्तं षोडशो वर्गश्च समाप्तः ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) राजाओं में श्रेष्ठ जो (ते) आप के (कुक्ष्योः) पेट के आस पास के भागों में (ब्रह्मणा) धन के साथ रस को (प्र) (अश्नोतु) प्राप्त होवे और हे (शूर) वीर पुरुष (ते) आप के (शिरः) श्रेष्ठ अङ्ग मस्तक को (बाहू) भुजाओं को (राधसे) धन के लिये प्राप्त होवे उस का आप पालन करिये ॥ १२ ॥

भावार्थः—हे राजन् वही वस्तु आप को खाना तथा पीना चाहिये कि जो पेट में प्राप्त हो तथा विकृत हो रोगों को उत्पन्न करके बुद्धि का न नाश करे और जिस से निरन्तर आप में बुद्धि बढ़ कर राज्य और ऐश्वर्य बढ़े ॥ १२ ॥

इस सूक्त में राजा और प्रजा के धर्म वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछिले सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह इक्यावनवां सूक्त और सोलहवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

अथाऽष्टर्चस्य द्विपञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य विश्वामित्र ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ । ३ । ४ गायत्री । २ निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः । ६ जगती छन्दः । निषादः स्वरः । ५ । ७ निचृत् त्रिष्टुप् । ८ त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अथ राजविषयमाह ॥

अब आठ ऋचा वाले बावनवें सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में राजा के विषय को कहते हैं ॥

धानावन्तं करम्भिणमपूपवन्तमुक्थिनम् । इन्द्र प्रातर्जुषस्व नः ॥ १ ॥

धानाऽवन्तम् । करम्भिणम् । अपूपऽवन्तम् । उक्थिनम् । इन्द्र । प्रातः । जुषस्व । नः ॥ १ ॥

पदार्थः—(धानावन्तम्) बह्व्यो धाना विद्यन्ते यस्य तम् (करम्भिणम्) बहवः करम्भा पुरुषार्थेन संशोधिता दध्यादयः पदार्था विद्यन्ते यस्य तम् (अपूपवन्तम्) प्रशस्ता अपूपा विद्यन्ते यस्य तम् (उक्थिनम्) बहून्युक्थानि वक्तुं योग्यानि वेदस्तोत्राणि विद्यन्ते यस्य तम् (इन्द्र) ऐश्वर्यधारक (प्रातः) प्रातःकाले (जुषस्व) सेवस्व (नः) अस्मान् ॥ १ ॥

अन्वयः—हे इन्द्र त्वं यथा प्रातर्धानावन्तं करम्भिणमपूपवन्तमुक्थिनं प्रातर्जुषस्व तथा नोऽस्मान् जुषस्व ॥ १ ॥

भावार्थः—अत्र वाचलु०—यथाऽर्थ्यैश्वर्यवन्तं याचते तथैव राजा राजधर्मबोधायाऽऽप्तान् विदुषो याचेत ॥ १ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) ऐश्वर्य के धारण करने वाले आप जैसे (प्रातः) प्रातःकाल में (धानावन्तम्) बहुत भूंजे हुए यव विद्यमान जिस के उस (करम्भिणम्) बहुत पुरुषार्थ अर्थात् परिश्रम से शुद्ध किये गये दधि आदि पदार्थों से युक्त (अपूपवन्तम्) उत्तम पूवा विद्यमान जिस के उस (उक्थिनम्) बहुत कहने योग्य वेद के स्तोत्र विद्यमान जिस के उस का (प्रातः) प्रातःकाल सेवन करते हो वैसे (नः) हम लोगों का (जुषस्व) सेवन करो ॥ १ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे अर्थी जन ऐश्वर्य वाले से याचना करता है वैसे ही राजा जन राजधर्म जानने के लिये श्रेष्ठ यथार्थवक्ता विद्वानों से याचना करे ॥ १ ॥

पुनः राजधर्मविषयमाह ॥

फिर राजधर्म विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

पुरोळाशं पचत्यं जुषस्वेन्द्रा गुरस्व च । तुभ्यं हव्यानि सिस्रते ॥ २ ॥

पुरोळाशम् । पचत्यम् । जुषस्व । इन्द्र । आ । गुरस्व । च । तुभ्यम् । हव्यानि । सिस्रते ॥ २ ॥

पदार्थः—(पुरोळाशम्) सुसंस्कारैर्निष्पादितमन्नविशेषम् (पचत्यम्) पचने साधुम् (जुषस्व) सेवस्व (इन्द्र) भोक्तः (आ) (गुरस्व) उद्यमं कुरुस्व । अत्र व्यत्ययेनात्मनेपदम् (च) (तुभ्यम्) (हव्यानि) (सिस्रते) प्राप्नुवन्तु ॥ २ ॥

अन्वयः—हे इन्द्र त्वं पचत्यं पुरोडाशं जुषस्व तदा गुरस्व च यतस्तुभ्यं हव्यानि सिस्रते ॥ २ ॥

भावार्थः—हे राजँस्त्वं रोगनाशकं बुद्धिवर्द्धकमन्नपानं भुक्त्वाऽरोगो भूत्वा सततमुद्यमं कुरु येन भवन्तं सर्वाणि सुखानि प्राप्नुयुः ॥२॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) ऐश्वर्य्यों के भोगने वाले आप (पचत्यम्) उत्तम प्रकार पाकयुक्त (पुरोळाशम्) उत्तम संस्कारों से उत्पन्न किये गये अन्न विशेष का (जुषस्व) सेवन करिये तब (गुरस्व) उद्यम करो और जिस से (तुभ्यम्) आप के लिये (हव्यानि) हवन करने योग्य पदार्थों को (सिस्रते) प्राप्त हों ॥ २ ॥

भावार्थः—हे राजन् आप रोगनाशक और बुद्धि के बढ़ाने वाले अन्नपान का भोग कर तथा रोग रहित हो कर निरन्तर उद्यम को करो जिस से आप को संपूर्ण सुख प्राप्त होवें ॥ २ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

पुरोळाशं च नो घसो जोषयासे गिरश्च नः । वधूयुरिव योषणाम् ॥ ३ ॥

पुरोळाशम् । च । नः । घसः । जोषयासे । गिरः । च । नः । वधूयुःऽइव । योषणाम् ॥ ३ ॥

पदार्थः—(पुरोळाशम्) पुरस्ताद्दातुं योग्यम् (च) (नः) अस्माकम् (घसः) भक्षय (जोषयासे) सेवयस्व (गिरः) वाचः (च) (नः) अस्माकम् (वधूयुरिव) यथाऽऽत्मनो वधूमिच्छुः (योषणाम्) स्वस्त्रियम् ॥ ३ ॥

अन्वयः—हे इन्द्र राजँस्त्वं नः पुरोळाशं घसोऽस्मान् भोजय च । योषणां वधूयुरिव नो जोषयासे वयं तव च गिरो जोषयेम ॥३॥

भावार्थः—अत्रोपमालं०—राजप्रजाजनाः परस्परैश्वर्य्यं स्वकीयमेव मन्येरन् । यथा स्त्रीकामः प्रियां भार्य्यां प्राप्याऽऽनन्दति तथैव राजा धार्मिकीः प्रजा लब्धा सततं हर्षेत् ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे राजन् आप (नः) हम लोगों के (पुरोळाशम्) प्रथम देने के योग्य का (घसः) भक्षण करो और हम लोगों के लिये भक्षण कराओ (च) और (योषणाम्) अपनी स्त्री को (वधूयुरिव) अपनी स्त्री विषयिणी इच्छा करने वाले के सदृश (नः) हम लोगों की (जोषयासे) सेवा करो (च) और हम लोग आप की (गिरः) वाणियों का (जोषयेम) सेवन करें ॥ ३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—राजा और प्रजा जन आपस के ऐश्वर्य्य को अपना ही समझें । और जैसे स्त्री की कामना करने वाला पुरुष प्रिया स्त्री को प्राप्त होकर आनन्दित होता है वैसे ही राजा धर्म करने वाली प्रजाओं को प्राप्त कर निरन्तर प्रसन्न होवे ॥ ३ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

पुरोळाशं सनश्रुत प्रातःसावे जुषस्व नः । इन्द्र क्रतुर्हि ते बृहन् ॥ ४ ॥

पुरोळाशम् । सनऽश्रुत । प्रातःऽसावे । जुषस्व । नः ।
इन्द्र । क्रतुः । हि । ते । बृहन् ॥ ४ ॥

पदार्थः—(पुरोडाशम्) सुसंस्कृतमन्नविशेषम् (सनश्रुत) सत्याऽसत्यविवेकिनां सकाशाच्छ्रुतं येन यद्वा सनं सत्यासत्यविभाजकं वचनं श्रुतं येन तत्सम्बुद्धौ (प्रातःसवने) यः प्रातः सूयते निष्पद्यते तस्मिन् (जुषस्व) सेवस्व (नः) अस्माकम् (इन्द्र) विद्यैश्वर्ययुक्त (क्रतुः) प्रज्ञा कर्म वा (हि) यतः (ते) तव (बृहन्) महान् ॥४॥

अन्वयः—हे सनश्रुतेन्द्र हि यतस्ते क्रतुर्बृहन्नस्ति तस्मात्त्वं प्रातःसावे नः पुरोडाशं जुषस्व ॥ ४ ॥

भावार्थः—मनुष्यैर्येषु यादृशी विद्या शीलता भवेत् तादृश्येव तेषु सत्कृपा कार्या ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे (सनश्रुत) सत्य और असत्य के विचार कर्त्ताओं से उत्तम कृत्य सुना जिस ने ऐसे (इन्द्र) विद्या और ऐश्वर्य से युक्त (हि) जिस से (ते) आप की (क्रतुः) बुद्धि वा कर्म्म (बृहन्) बड़ा है तिस से आप (प्रातःसावे) जो प्रातःकाल में किया जाय उस में (नः) हम लोगों के (पुरोडाशम्) उत्तम प्रकार संस्कार युक्त अन्न विशेष का (जुषस्व) सेवन करो ॥ ४ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि जिन पुरुषों में जैसी विद्या और शीलता होवे वैसी ही उन पर उत्तम कृपा करें ॥ ४ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

माध्यंन्दिनस्य सवंनस्य धानाः पुंरोळाशंमिन्द्र कृष्वेह चारुंम् । प्र यत् स्तोता जंरिता तूर्ण्यर्थो वृषायमांण उपं गीर्भिरीट्टे ॥ ५ ॥ १७ ॥

माध्यंन्दिनस्य। सवंनस्य। धानाः। पुरोळाशंम्। इन्द्र। कृष्व। इह। चारुंम्। प्र। यत्। स्तोता। जरिता। तूर्णिऽअर्थः। वृषऽयमाणः। उपं। गीःऽभिः। ईट्टे॥ ५॥ १७॥

पदार्थः—(माध्यन्दिनस्य) मध्यन्दिने भवस्य (सवनस्य) कर्मविशेषस्य (धानाः) भृष्टान्नानि (पुरोडाशम्) (इन्द्र) (कृष्व) कुरुष्व (इह) (चारुम्) भक्षणीयं सुन्दरम् (प्र) (यत्) यः (स्तोता) प्रशंसकः (जरिता) भवतः सेवकः (तूर्णर्यर्थः) तूर्णिः सद्योऽर्थो यस्य सः (वृषायमाणः) वृषं बलं कुर्वाणः (उप) (गीर्भिः) (ईट्टे) ऐश्वर्यवान् भवेत्॥ ५॥

अन्वयः—हे इन्द्र त्वं माध्यन्दिनस्य सवनस्य मध्ये या धानाश्चारुं पुरोडाशं त्वमिह कृष्व। यद्यो वृषायमाणस्तूर्णर्यर्थो जरिता स्तोता गीर्भिः प्रोपेट्टे स तव सत्कर्त्तव्यो भवेत्॥ ५॥

भावार्थः—ये राजजना ऋत्विग्वद्राज्यं वर्धयेयुस्तान् राजा सत्कारेण हर्षयेत्॥ ५॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) प्रतापयुक्त आप (माध्यन्दिनस्य) मध्य दिन में होने वाले (सवनस्य) कर्म विशेष के मध्य में जो (धानाः) भूंजे हुए अन्न और (चारुम्) भक्षण करने योग्य सुन्दर (पुरोडाशम्) अन्न विशेष का आप (इह) इस उत्तम कर्म में (कृष्व) संग्रह कीजिये और (यत्) जो (वृषायमाणः) बल को करने वाला (तूर्ण्यर्थः) शीघ्र है प्रयोजन जिस का वह (जरिता) आप का सेवाकारी और (स्तोता) प्रशंसा करने वाला (उप) समीप में (गीर्भिः) वाणियों से (प्र, उप) समीप में (ईट्टे) ऐश्वर्य्यवान् हो वह आप के सत्कार करने योग्य होवे॥ ५॥

भावार्थः—जो राजा के जन ऋत्विजों के सदृश राज्य की वृद्धि करें उन को राजा सत्कार से प्रसन्न करे॥ ५॥

रसीदमूल्यवेदभाष्य

श्रीमान् पण्डित श्यामनारायण जी कप्तान बांदरी की मासिक जयपुर ८॥)
श्रीमान् बाबू नन्दगोपाल जी मार्फ़त बाबू नारायणदास वकील
गुजरात पंजाब १४)
श्रीमान् रंगापामंगेश शर्म्मा ज़मीदार मंजेश्वर सीतकीनारी २४)
४७॥)

विज्ञापन

विदित हो कि परमपद प्राप्त श्रीमत्परम पूजनीय परमहंस परिव्राजकाचार्य्य श्रीमद्दयानन्द सरस्वती स्वामी जी महाराजकृत स्वीकारपत्र के उद्देश्य २ के अनुसार वर्तमान काल में जो २ संन्यासी स्वामी और ब्रह्मचारी आदि जो किसी से कुछ वेतन न लेकर सर्वत्र भ्रमण करके आर्य्य सामाजिक सिद्धान्तों का उपदेश कर रहे हैं उन की एक उपदेशकमण्डली श्रीमती परोपकारिणी सभा के इस वर्ष के अधिवेशन समय विधिवत् स्थापन होगी और उस की नियमावली भी उसी समय सिद्ध होकर प्रयोग में लाई जायगी अत एव उक्त सर्व संन्यासी स्वामी और ब्रह्मचारी आदि जो अवैतनिकरीत्या वर्तमान काल में सर्वत्र उपदेश कर रहे हैं उन से इस विज्ञापन पत्र द्वारा सविनय निवेदन किया जाता है कि वे कृपा कर इस मास के अन्त की ता० २८ । २६ को श्रीमती परोपकारिणी सभा के अधिवेशन में अजमेर अवश्य ही पधारें ॥

ता० ३ । १२ । १८६० ई०
दयानन्दी संवत् ८

श्रीयुत उपसभापति जी की आज्ञानुसार
ह० मोहनलाल विष्णुलाल पण्ड्या
मन्त्री श्रीमतीपरोपकारिणीसभा उदयपुर

संस्कारविधि—

विदित हो कि संस्कारविधि जो यन्त्रालय में छप रही है इस के २ फार्म छप के और टायटल पेज छपने को और शेष है वह छपा कर पीछे १० दिन में तैयार करा ग्राहकों के पास भेजी जावेगी जिन महाशयों को लेना हो शीघ्र पत्र भेजें।

[illegible] शर्म्मा
[illegible] वैदिक यन्त्रालय [illegible]